रजिस्टर्ड नं० एल १४२४

॥ ओ३म् ॥

वार्षिक मूल्य २ रु० पेशगी ।

आर्य्य

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मासिक पत्र

सम्पादक—चमूपति ।

भाग ३ } मार्गशीर्ष १९७९ दिसम्बर १९२२ { अंक ७

प्रार्थना ।

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । अपघ्नन्तोऽरावणः ॥

ऋग्वेद ॥

हे प्रभु ! हम तुम से वर पावें ।
विश्व जगत् को आर्य बनावें ॥
फैलें, सुख सम्पत् फैलावें ।
आप बढ़ें, तव राज्य बढ़ावें ॥
वैर-विघ्न को मार मिटावें ।
प्रीति—नीति की रीति चलावें ॥

"... प्रेस" अमृतधारा भवन लाहौर द्वारा ला० नन्दलाल उपमंत्री आ० प्रति० सभा ने मुद्रित व प्रकाशित किया ।

विषय सूची ।

२०९०२१

'आर्य' के नियम ।

१—यह पत्र अंग्रेज़ी मास के आरम्भ में प्रकाशित होता है । डाकखाना में चूंकि अंग्रेजी तारीख देनी होती है, इसलिये अंग्रेजी तारीख का हिसाब रक्खा गया है ।

२—इसका वार्षिक मूल्य २) है ≈) डाक महसूल निकाल कर केवल १।।।-) में आर्य भाषा का पत्र देना घाटे का काम है । सभा ने प्रचारार्थ इसको जारी किया है । षण्मासिक तथा त्रैमासिक का कोई हिसाब नहीं है ।

३—इस पत्र में धर्मोपदेश, धर्म जिज्ञासा वैदिक संरक्षण, धर्म प्रचार विषयक बातों के अतिरिक्त आर्य सामाजिक समाचार तथा आ[र्य] प्रतिनिधि सभा की सूचनायें दर्ज होती हैं ।

४—पत्र के प्रकाशित होने के लि[ये] समाचार तथा लेख प्रत्येक अंग्रेजी मास [की] १५ तारीख के पूर्व आजाने चाहियें ।

५—यदि डाक की गलती से कोई अं[क] न पहुंचे तो १५ दिन के भीतर सूचना दे[ने] से वह अंक भेज दिया जा[येगा] किन्तु [इस] अवधि के पश्चात् मंगवाने [पर] अंक [का] मूल्य देना पड़ेगा ।।

—०—

॥ ओ३म् ॥

भाग ३] लाहौर-अगहन १९७९ तदनुसार दिसम्बर १९२२ [अंक ७

वेदामृत ।

बल-दाता ।

ॐ य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

आत्मिक शारीरिक बलदाता ।
विश्व-विनायक वेद-विधाता ॥
भक्त-भाल प्रभु-आज्ञा धारे ।
मुक्ति मरण वर शाप तुम्हारे ॥
सुख-स्वरूप लख सीस नवावें ।
भक्ति-भेंट धर दर्शन पावें ॥

दूसरा नियम और यजुर्वेद ।

(श्री स्वा० स्वतन्त्रतानन्द जी)

आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के १० नियम बनाए हैं, जिन में दूसरा नियम निम्न प्रकार है :—"ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्व शक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है"। इस नियम में ईश्वर के विशेषण बतलाए गए हैं। मैं इस लेख में इन्हीं विशेषणों के प्रमाण यजुर्वेद से निकालने का यत्न करूंगा। संभव है मैं किसी विशेषण का पता न लगा सकूं, और हो सकता है मैं किसी मंत्र के विषय में ठीक निश्चय कर सकूं। यह संभावना भी है कि मेरे इस लेख में अनेक त्रुटियां हों। यह दोष होने पर भी मुझ उत्साह है कि मैं महर्षि के वाक्यों का जनता में प्रचार कर रहा हूं। विद्वान् लोग स्वयं इन दोषों को दूर कर लेंगे। मैं उनकी प्रवृत्ति का निमित्त मात्र तो बनूं।

(१) सत् ॥ **किंस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत्। यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिम्ना विश्वचक्षाः॥**
यजु० १७–१८

भा० इस जगत् का आधार आश्चर्य रूप है जिस से विश्वकर्मा सर्व का द्रष्टा पृथिवी और द्यौः को उत्पन्न करता हुआ अपनी महिमा से आच्छदित करता है।

सत् के अर्थ होने के अर्थात् अस्ति के हैं और इस मंत्र में ईश्वर का होना स्वीकार किया गया है और य० २३, ६३ में 'सुभूः' पाठ है जिस के अर्थ सत् ही हो सकते हैं और ३२, ६ में सत् पाठ है।

(२) चित् ॥ **सनो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥** य० ३२, १०

भा० वह ईश्वर बन्धु, उत्पादक और विधाता है। सर्व भुवनों को जानता है और धाम अर्थात् जन्म, नाम, स्थान का ज्ञाता है जिस देव में ज्ञानी मोक्षावस्थ को प्राप्त कर के विचरते हैं।

चित् के अर्थ "जानने वाला" हैं और इस मंत्र में प्रभु के जानने का वर्णन है।

(३) आनन्द ॥ **यस्येमे हिमवन्तो म-**

यस्य समुद्रं रसया सहाहुः । यस्येमा प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम् ॥ २५, १२

भा० जिसकी महत्ता से यह हिमवान् पर्वत और रस युक्त समुद्र ठहरते हैं, यह दिशोपदिशा जिस के बाहु तुल्य हैं, उस आनन्द स्वरूप परमात्मा के लिये हम श्रद्धा से आहुति दें।

(४) निराकार ॥ न तमूर्द्ध्वं न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् ॥ ३२, २

भा० इस ईश्वर को न तो ऊपर से न नीचे से, न मध्य से कोई ग्रहण कर सकता है।

यदि कोई आकार हो, तो वह ग्रहण हो सकता है। ग्रहण न होने से निराकार स्पष्ट है। यही भाव अध्याय ४० मंत्र ८ में "**अकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपाप विद्धम**" से प्रकट होता है। अतः ईश्वर निराकार है और इसी को 'नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्" य. ४०, ४ कथन करता है।

(५) सर्व शक्तिमान्। स पर्य्यगाच्छक्रम् ४०, ८

भा० वह ईश्वर सर्वशक्तिमान् संसार में सर्व ओर व्याप्त है। स्वामी जी ने 'शुक्रम्' के अर्थ इस स्थान पर 'शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान्' किये हैं। यह शब्द अन्य स्थानों पर भी इस अर्थ में आता है।

(६) न्यायकारी ॥ शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ३६. ९

भा० इस मंत्र में मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, बृहस्पति, विष्णु—इन नामों से ईश्वर की प्रार्थना है। इन में 'अर्यमा' के अर्थ 'न्यायकारी' हैं। अतः ईश्वर न्यायकारी है।

(७) दयालु ॥ 'दयालु' शब्द, यदि केवल दया का भाव लिया जाय तब तो प्रमाण मिलना कठिन है। परन्तु यदि यह भाव लिया जाय कि ईश्वर ने वायु, जल भूम्यादि पदार्थ जीव के भोगार्थ निर्माण किये हैं तब यह गुण 'सृष्टिकर्ता' से ही सिद्ध हो जायगा। और यदि यह माना जाय कि एक चोर को दण्ड देना उस पर दया करना है क्योंकि वह पापों से बच रहेगा, अथवा वह अनेकों को दुःख न दे सकेगा, तब यह भाव 'न्यायकारी' के अंतर्भूत है। वही प्रमाण यहां मान लेना चाहिये।

(८) अजन्मा ॥ सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे। दधेह गर्भमृत्वियं यतोजातः प्रजापतिः ॥ यजु० २३, ६२

भा० सुन्दर विद्यमान अपने आप सिद्ध ईश्वर विस्तृत प्रकृति में प्रथम समय गर्भ अर्थात् बीज को धारण करता है जिस से

प्रजापति उत्पन्न होता है। इस मंत्र में 'स्वयंभू' शब्द अजन्मा अर्थवाची है। और भी

स्वयम्भूरसि श्रेष्ठोरश्मिर्वर्च्चोदा असि वर्चो मे देहि ॥ २, २६ ॥

भा० हे ईश्वर! आप श्रेष्ठ प्रकाशस्वरूप और स्वयंभू हैं। आप विद्या (विज्ञान) स्वरूप हैं। मुझे विज्ञान दें।

(९) **अनन्त ॥ यस्माज्जातं न पुरा किंचनैव य आबभूव भुवनानि विश्वा ॥** ३२, ५

परि द्यावापृथिवी सद्यइत्वा परिलोकान् परिदिशः परिस्वः ॥ ३२, १२ ॥

भा० जिस परमेश्वर से पहले कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ जो सब ओर अच्छी प्रकार वर्तमान है और संपूर्ण भुवनों में व्यापक है।

जो द्यावा पृथिवी लोक दिशा और उपदिशा में व्यापक होकर रहता है।

अन्त दो प्रकार का होता है, एक देश कृत अन्त जैसे एक वस्तु एक देश में होती है और दूसरे में नहीं, दूसरा काल कृत अन्त जैसे कोई वस्तु किसी काल में हो और दूसरे में न हो। ऊपर वाले दोनों मंत्रों में से पहले में ईश्वर की कालदृष्टि से अनन्तता वर्णन की गई है और दूसरे में देशदृष्टि से अनन्तता का वर्णन है।

(१०) **निर्विकार** ॥ यह शब्द वेद में नहीं है। परन्तु श्री स्वामीजी ने ३४, ५३ 'एक पात्' शब्द के अर्थ 'एकरस रहने वाला' किये हैं। एक रस रहना ही निर्विकार होना है। मैंने यह मंत्र 'नित्य' विशेषण के प्रमाण में लिखा है। पाठक वहां देख लें।

(११) **अनादि ॥ समुद्रोऽसि विश्वव्यचा अजोऽसि ॥ यजु० ५, ३३**

भा० ईश्वर सर्व संसार का गमनागमन कराने वाला है। वह जगत् में व्यापक है और अजन्मा है।

जिस का जन्म नहीं हुआ वही अनादि है।

(१२) **अनुपम ॥ न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ॥ यजु० ३२, ३**

अनुमाते मघवन्नकिर्नु नत्वावां अस्ति देवता विदानः। न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ३३, ७६

भा० जिस का नाम और यश बड़ा है, उसकी कोई मूर्ति, अथवा ऐसा माप, जिस से उसका उपमा हो सके, नहीं है।

सब से श्रेष्ठ ऐश्वर्यवान् ईश्वर! आपका स्वरूप अप्रेरित है। आप के सदृश पूज्य देव निश्चय से कोई नहीं है। आप उत्पन्न होने वाले नहीं। उत्पन्न जगत् के व्यवहार जो करोगे और जो करते हो, उनको कोई स्मरण नहीं करता।

(१३) सर्वाधार ॥ धर्ता दिवो विभाति तपसस्पृथिव्यां धर्ता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः । वाचमस्मे नियच्छ देवायुवम् ॥ ३७, १६ ॥

भा०:—जो आकाश में तपाने वाले सूर्य को धारण करता है जो तप से प्रकट होनेवाले मरण-धर्म-रहित प्रकाशस्वरूप, देवों का धारण करने वाला है और विशेष रूप से प्रकाशवान् है उस संबंधी वाणी हमें निरंतर दीजिये ।

(१४) सर्वेश्वर ॥ यो भूतानामधिपतिर्यस्मिंल्लोका अधिश्रिताः । य ईशे महतो महांस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहं ॥ २०, ३२

भा०:—जो महान् से महान् है, और भूतों का अधिपति है, जिस में सर्व लोक आश्रित हैं, जो सब का ईश्वर है, उस से तुमको मैं ग्रहण करता हूं मैं अपने में तुम को ग्रहण करता हूं ।

(१५) सर्वव्यापक ॥ केष्वन्तः पुरुष आविवेश कान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि । एतद् ब्रह्मन्नुप बहूलामसि त्वा किं स्विन्नः प्रतिबोचास्यत्र ॥ ५१ ॥

पंचस्वन्तः पुरुष अविवेश तान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि । एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानो अस्मि न मायया भवस्युत्तरोमत् ॥ यजु० २३ ॥

भा०:—हे विद्वान् ! ईश्वर किस के भीतर प्रवेश कर रहा है और कौन उस ईश्वर में स्थापित है । यह आप से पूछते हैं । इस ज्ञान से आप प्रधान हैं । अतः हमारे प्रति उपदेश करें ।

पांच भूतों में ईश्वर व्यापक हो रहा है, और वह भूत उस में स्थापित हैं, यह सब कुछ जानकर मैं तुझे उपदेश देता हूं ।

इस प्रश्न-उत्तर में ईश्वर को सर्वव्यापक माना है ।

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् । तस्मिन्निदꣳ संच वि चैति सर्वꣳ स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु ॥ ३२, ८ ।

भा०:—जिस में सर्व जगत् एक आश्रम वाला होता है, उस बुद्धि में स्थित नित्य ब्रह्म को विद्वान् ज्ञान-दृष्टि से देखता है । उसी में यह जगत् व्याप्त है और वह परमात्मा इस संसार में ओतप्रोत है ।

इस मंत्र में अंतर्यामी अर्थ के लिये "गुहा निहितं" शब्द है और जो प्रथम विशेषण "सत्" ऊपर आ चुका है वही 'सत्' शब्द इस मंत्र में आता है, जिस का अर्थ श्री स्वामी जी ने 'नित्य' किया । अतः इस मंत्र से उस विशेषण का भी बोध होता है ।

(१७) अजर ॥ अश्यामतं काममग्ने तवोती अश्याम रयिँ् रयिवः सुवीरम् । अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥ १८, ७४ ।

भा०:–हे प्रकाशस्वरूप ईश्वर! आपकी रक्षा से हम अपनी कामना को प्राप्त हों। सुवीरों को जो अच्छा धन प्राप्त होता है उस धन को प्राप्त हों। युद्ध में हम विजेता हों। हे अजर! तेरी दया से हम अजर यश और कीर्ति को प्राप्त करें।

इस मंत्र का देवता अग्नि है। श्री स्वामी जी ने इसे सेनापति अर्थ में लगाया है। स्वामी के भाष्यानुसार यजुर्वेद में ईश्वर परक कोई अजर शब्द नहीं है।

(१८) अमर ॥ प्रतद्वोचेदमृतं नुविद्वान् गंधर्वो धाम विभृतं गुहा सत्। त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत् ॥ ३२, ६ ॥

भा०:–वेदवित् विद्वान् गुहा (बुद्धि) में स्थित सत् स्वरूप परमात्मा का उपदेश करे, जिस के विचार में जन्म, स्थिति, प्रलय निहित है। ऐसा जानने वाला पूज्य होता है।

इस मंत्र में "अमर" का पर्याय "अमृत" शब्द है। साथ ही प्रथम विशेषण 'सत्' भी यहां विद्यमान है, अतः 'सत्' विशेषण के लिये भी यह मंत्र प्रमाण है।

(१९) अभय ॥ यजुर्वेद में अभय शब्द कई स्थनों पर आता है परंतु ईश्वर के विशेषण रूप में कहीं नहीं आया। जितने स्थानों में आया है प्रायः ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि हम भय-रहित हों, जैसे "ततो नो अभयं कुरु"। इसी भांति एक स्थान पर इन्द्र के लिये आया है, जिसे श्री स्वामी जी राजा परक लगाते हैं। यदि किसी महानुभाव को कोई ऐसा मंत्र मिले तो वे मुझे बताने की कृपा करेंगे।

(२०) नित्य ॥ उतनोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः। विश्वे देवाऋतावृधो हुवानास्तुता मंत्राः कविशस्ता अवन्तु ॥ ३४, ५३ ।

भा०:–अंतरिक्ष में रहने वाला मेघ, पृथिवी, और समुद्र के सदृश जो एकरस और अज (नित्य) है, वह हमारे वचनों को सुने, और संपूर्ण देव जो बढ़ाने वाले, स्तुति करने वाले, विचारवान् और बुद्धिमानों में प्रशंस्त हैं वह हमारी रक्षा करें।

इस मंत्र में निर्विकार अर्थ का 'एकपात' शब्द भी आया है।

(२१) पवित्र ॥ चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मापुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुनेत्तच्छकेयम् ॥ ४, ४ ।

भा०:—हे पवित्रता के पति ! भगवन् ! चित्पति ! वाक्पति ! जगन्निर्माता देव ! शुद्ध करने हारे ! सूर्य की रश्मियों से मुझे शुद्ध करो ।

हे पवित्रस्वरूप ! मैं जो पवित्र कामना करूं उसके पूर्ण करने में सामर्थ्य दो ।

और यही पवित्रता का भाव य. ४०, ८ में 'शुद्ध' शब्द से कहा गया है ।

(२२) सृष्टि-कर्त्ता ॥ न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमंतरं बभूव । नीहारेण प्रवृता जल्प्या चासुतृप उकथ शासश्चरन्ति ॥ १७, ३१ ।

भा०:—आप उसे नहीं जानते जो इस संसार को बनाता है और तुम से अन्य है । क्यों नहीं जानते ? आप अज्ञान से आवृत हैं । और सत्यासत्य के निर्णय को छोड़ कर जल्प में मन लगाते हैं । केवल प्राण-पोषण को ही जीवन-उद्देश्य मान रखा है । और मनमानी करते हैं ।

इस अर्थ के और भी प्रमाण मिल सकते है किन्तु मैंने यही एक प्रमाण पर्याप्त समझा है क्योंकि यह विषय अति स्फुट है ।

(२३) उसी की उपासना करनी चाहिये ॥ यह विषय भी इस समय निर्णीत सा ही है, क्योंकि जो ईश्वर के स्थान पर किसी अन्य वस्तु की उपासना करते हैं वह भी यही कहते हैं कि हम इस वस्तु द्वारा ईश्वर की ही उपासना करते हैं, इस वस्तु की नहीं । मैंने इस विषय में कोई मंत्र नहीं लिखा और अभिलाषा करता हूं कि कोई अन्य आर्योपदेशक इस विषय के मंत्र यजुर्वेद से लेकर अवश्य 'आर्य' में दे देंगे, ताकि जनता को उन मंत्रों का तथा इस विषय का भलीभांति बोध हो जाय ।

वेद क्या भगवद्वाणी नहीं ?

श्रीयुत उदयवीर जी, शास्त्री, न्याय-वैशेषिक-सांख्य-तीर्थ इत्यादि ।

गत सितम्बर मास की 'सरस्वती में' "वेद क्या भगवद् वाणी है ?" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है । इसके मुख्य लेखक हैं कोई 'सोऽहं' शर्म्मा महाशय । आपने लेख के तीसरे कालम से कलकत्ता निवासी बा० उमेशचन्द्र विद्यारत्न के एक लेख का

प्रकाशित किया है, जो (आप के लेखानुसार) बंगला भाषा के मासिक पत्र 'भारतवर्ष' की गत आषाढ़ मास की संख्या में निकला है। इस सम्पूर्ण लेख का आशय यह हैं कि वेदभगवान् की वाणी नहीं हैं, किन्तु हमारे जैसे मनुष्यों के ही बनाये हुए हैं, इत्यादि। इस सारांश के पहिले 'सोऽहं शर्म्मा' महाशय ने कुछ अपनी स्वतन्त्र टीका टिप्पणी भी की है। आपने इस सारांश के प्रकट करने का केवल इसीलिये कष्ट उठाया है, कि आप विद्यारत्न महाशय की स्पष्टवादिता पर अत्यन्त मुग्ध हो गये हैं, ऐसा मालूम होता है। मैं विद्यारत्न महाशय और उनके सिद्धान्तों का कई वर्ष पहिले से ही परिचय प्राप्त कर चुका हूं। एक वार कलकत्ते में ही आप से परिचय हुआ था, और उसी समय आपकी कुछ पुस्तकें भी मिली थीं, जिन में से दो पुस्तकें मैंने देखी हैं, और उन्हीं से आप के सिद्धान्तों का परिचय मिला है। उन में से पहिली पुस्तक 'ऋग्वेद के तीन भाग' (संस्कृत में) और दूसरी 'मानवेर आदि जन्मभूमि' बंगला में है। इन पुस्तकों में प्रकृत विषय पर कोई महत्व के सिद्धान्त मुझे मालूम न हो सके थे, इसलिये इस विषय पर कभी कुछ लिखने की इच्छा नहीं हुई। 'सोऽहं शर्म्मा' महाशय के लेख को देखकर फिर विचार हुआ, कि एकवार फिर 'विद्यारत्न'-भण्डार को देखना चाहिये, सम्भव है अब की वार कोई रत्न तुम्हारे भी पल्ले पड़ जाय। देखने के बाद जो कुछ मिला है, वह पाठकों की भेंट करता हूं।

सब से प्रथम आप 'सोऽहं शर्म्मा' महाशय के 'अभेदभण्डार' से दो चार नमूने देखिये, पर ज़रा सावधान होकर इधर आंख उठाइये। कहीं रत्न की जगमगाहट और झलझलाहट से आपका मस्तिष्क भड़क न जाय। आप वेदों पर हिन्दुओं की श्रद्धा का अपूर्व वर्णन करते हुए, फ़रमाते हैं—'यह सब कुछ है, तथापि पुराने ज़माने में भी कितने पण्डित ऐसे हो गये हैं जो वेद को ईश्वर निर्मित न मानते थे। इस विषय में सन्दिहान तो कितने ही शास्त्रज्ञ और शास्त्रकार किंवा आचार्य तक थे'। शोक यह है कि आपने किसी शास्त्रकार का अथवा किसी अन्य के वचन का उद्धरण नहीं किया, कि फलाने ने इस प्रकार वेदों को मनुष्यों का बनाया हुआ बतलाया है। हां! आगे जाकर बड़े साहस के साथ एक आचार्य का नाम और काम इस प्रकार लिखते हैं:—

'कुसुमाञ्जलिकार ने लिखा है'—

वेदः पौरुषेयो वेदत्वात् आयुर्वेद वद्

वेदः पौरुषेयः वाक्यत्वात् भारतवद्वेदवाक्यानि पौरुषेयाणि अस्मदादिवाक्यवत् ।१

कुसुमाञ्जलिकार से आपका अभिप्राय शायद प्रसिद्ध उदयनाचार्य से है, जिन्होंने न्याय-कुसुमाञ्जलि का निर्माण किया है । आपकी लेख-शैली से मालूम होता है कि उदयनाचार्य इस विषय पर सन्दिहान थे, कि वेद ईश्वर का बनाया हुआ है, या मनुष्य का ? इसी की पुष्टि के लिये सम्भवतः आपने उन के ग्रन्थ से उपर्युक्त कुछ वाक्यों का उद्धरण किया है । अनन्तर उन वाक्यों का आप इस प्रकार अर्थ भी करते हैं :—'अर्थात् वेद मनुष्य कृत है, अतएव पौरुषेय है । आयुर्वेद, महाभारत तथा हम लोगों के मुंह से निःसृत वाक्य-समूह जैसे पौरुषेय है वैसे ही वेद भी पौरुषेय है" । वाह ! क्या खूब ! आपने अर्थ करने में भी कमाल ही किया है । ख़ैर, इस का पीछे विचार होगा, पहिले आप यह तो बताने की कृपा कीजिये कि आपने यह उपर्युक्त आनुपूर्वी पाठ कहां की छपी हुई पुस्तक में देखा है ? या आपके पास कोई हस्तलिखित पुस्तक विशेष है ? हमने जहां तक देखा है, हमको तो यह आनुपूर्वी पाठ उदयन कृत कुसुमाञ्जलिमें कहीं नहीं मिला । आप ने यह पाठ कहां से देख कर लिख दिया ? यह आप ही अपनी अभिन्न शक्ति से जान सकते हैं । पर हमारी समझ में जो कुछ आया है हम यहां लिखे देते हैं, और वह यह है, कि आपने सम्भवतः यह पाठ कुसुमाञ्जलि में स्वयं नहीं देखा । यह कहीं उन विद्यारत्न महाशय ही की कलम का करश्मा तो नहीं है ? जिन की स्पष्ट वादिता पर आप जी जान से मुग्ध हैं, यहां तक कि सिर्फ इसी बात पर आप उनको पाण्डेय रामावतार शर्मा जैसे पण्डित-प्रकाण्ड की कोटि में रखते हैं । बस या तो आपने यह वाक्य कुसुमाञ्जलिकार के नाम से उक्त बंगला के 'भारतवर्ष' नामक पत्र के उसी लेख में देखा होगा, या विद्यारत्न महाशय कृत ऋग्वेद संहिता के उपोद्घात प्रकरण के ४८ वें पृष्ठ पर देखा होगा । यदि कहीं और तीसरी जगह देखा हो तो बतलाने का कष्ट उठाइये, बड़ा अनुग्रह होगा । हां ! अलबत्ता इस पाठ का कुछ अंश कुसुमाञ्जलि में मिलता है, वह केवल इतना है 'वेदवाक्यानि पौरुषेयाणि, वाक्यत्वात् अस्मदादि वाक्यवत्' । उपर्युक्त वाक्यों का अर्थ करते हुए 'सोऽहं शर्मा' महाशय ने लिखा है :—'अर्थात् वेद मनुष्य कृत हैं, अतएव पौरुषेय हैं' । आपने पौरुषेय का अर्थ मनुष्य कृत कर लिया ? जब आप स्वयं ही अपने लेख

की आद्य पंक्तियों में लिख रहे हैं, कि 'हिन्दुओं का विश्वास है कि वेद अपौरुषेय है, वह किसी पुरुष का बनाया नहीं, पर यहां पुरुष से मतलब पुराण पुरुष से नहीं, मतलब मनुष्य से है' । हम इसका यही तात्पर्य समझ सके, कि अपौरुषेय शब्द से मनुष्य कर्तृता का निषेध किया है, पुराण पुरुष कर्तृता का नहीं । इसलिये यदि पुराण पुरुष को वेद का कर्त्ता बताया जाय, तो उसे पौरुषेय कहने में भी कोई भेद नहीं पड़ता । केवल शब्द का ऊपरि भेद माल्म होता है, आर्थिक भेद कुछ नहीं । यदि यही अर्थ आप यहां पर इस उदयन के वाक्य का कर देते तो क्या बिगड़ जाता ? पर आपको तो यह बतलाना आवश्यक था, कि उदयन भी वेद के ईश्वर कर्तृत्व में सान्दिग्ध था । चाहे शब्द का अर्थ कुछ भी हो, चाहे पूर्वापर प्रकरण किसी तरह का हो । ओ भाई ! उदयन विचारे को क्यों बदनाम करते हो ? उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? आखिर कुछ बात भी हो । यदि इस वाक्य को नहीं लिखते तो कौन सी लेख में कमी हो जाती । पुराने लोगों की बातों का तो अब कुछ विशेष महत्व ही नहीं समझा जाता । विचारे को बुड्ढा समझ कर ही छोड़ दिया होता । हमें विश्वास है कि यदि 'सोऽहं शर्मा' महाशय कुसुमाञ्जलि के इस प्रकरण को देख लेते, तो उन्हें यह भय न होता । पाठकों के सुभीते के लिये उस प्रकरण की दो एक बात हम यहां लिखे देते हैं:—

उदयन ने कुसुमाञ्जलि के पञ्चम स्तबक में ईश्वर-सत्ता का बोध कराने के लिये अनेक हेतुओं का एक कारिका में संग्रह किया है। उन हेतुओं में एक हेतु **वाक्यात्** है । उसी को विवरण करते हुये उदयन ने उपर्युक्त अनुमान लिखा है, जिसकी व्याख्या करते हुवे आचार्य वर्द्धमान यों लिखते हैं :—

स चासंसारी किञ्चिद्वाक्य प्रणेता पुरुषत्वादिति साध्य प्रसिद्धौ, वेदा असंसारी पुरुषप्रणीता इति साध्यम् ।

इसका तात्पर्य यह है:—वह असंसारी पुरुष होने से किसी वाक्य समूह का प्रणेता है वही वाक्य-समूह वेद है। बात साफ़ है, बिल्कुल लाग लपेट नहीं, इस सफाई में भी 'सोऽहं' को सन्दिग्धता की गन्ध कहां से आगई ? कहा नहीं जा सकता । उदयन ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में ईश्वर की सत्ता का बोध कराने के लिये उपर्युक्त अनुमान दिया है, अर्थात् वेदवाक्य (पुराण) पुरुष के बनाये हुवे हैं वाक्य होने से, हमारे वाक्यों

की तरह । यह कुसुमाञ्जलिकार का अपना मत नहीं, किन्तु व्यास ने लिखा है—'शास्त्रयोनित्वात्' जिसका स्पष्ट अर्थ शङ्कराचार्य्य ने यह किया है कि ऋग्वेद आदि शास्त्रों का बनाने वाला ईश्वर है। कुसुमाञ्जलिकार ने अन्यत्र भी वेदों को स्पष्टतया ईश्वर-प्रणीत लिखा है। उसी प्रकरण में देखिये, **श्रुतेः हेतुः** की व्याख्या—

'सर्वज्ञप्रणीता वेदाः, वेदत्वात् । यत् पुन र्न सर्वज्ञप्रणीतं नासौ वेदो यथेतर-वाक्यम्' ।

इसका तात्पर्य यह है, कि वेद सर्वज्ञ के बनाये हुए हैं; वेद होने से, जो सर्वज्ञ ने नहीं बनाया, वह वेद नहीं, जैसे और वाक्य। अब आप ही सोचिये कि इन सब बातों के होते हुवे क्या कोई यह लिखने का साहस कर सकता है ? कि उदयन वेदों को ईश्वर का बनाया नहीं मानता । और देखिये—

'कथमसर्वज्ञः ? कथं वा न कर्त्ता आगमस्यैव प्रणयनात्' (कुसुमाञ्जलि, ३ स्तबक, १६ वीं कारिका)

इसका तात्पर्य यह है, कि ईश्वर असर्वज्ञ कैसे हो सकता है ? और अकर्त्ता कैसे हो सकता है ? जब कि वह आगम अर्थात् वेद का बनाने वाला है। इत्यादि । ऐसे ही बीसों प्रकरण कुसुमाञ्जलि से दिखाये जा सकते हैं।

हमारा केवल इतना प्रयोजन है कि यदि आपकी तबीयत चाहती है, कि वेद ईश्वर का बनाया हुआ न माना जाय तो आप शौक से न मानिये, तथा विद्यारत्न महाशय की तरह आप भी स्पष्ट घोषणा कर दीजिये, इन बातों पर किसी को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं । पर आप अपने साथ बड़े आचार्यों को क्यों घसीटते हैं, दूसरों के कन्धे पर बन्दूक रखकर क्यों चलाते हैं। परमेश्वर के वास्ते उन पर रहम कीजिये । अगर वेद विषय में "आप हिन्दुओं" की श्रद्धा इतनी अधिक बढ़ गई है, कि वह अपनी सीमा से कुछ अधिक चली गई है, तो बुराई की बात नहीं । श्रद्धा का बढ़ना अच्छा ही होता है, क्योंकि वेद भगवान् का ज्ञान है इसीलिये उसके साक्षात् भगवान् होने में कोई सन्देह नहीं । यदि लोगों की ऐसी धारणा है, तो जाति का कल्याण समझना चाहिये । पर वस्तुतः हिन्दु जाति को ही यह सौभाग्य प्राप्त है, कि उसके धर्म और धार्मिक ग्रन्थों के अत्युच्च होते हुए भी उसी जातिके अंग उन्हें खिलोना समझते हैं। और उनके साथ खूब खुल २ कर खेल खेलते हैं। आगे आपने 'विद्यारत्न' जी की राय लिखी है जिसका तात्पर्य यह है कि जहां कहीं संस्कृत वाङ्मयमें वेदों को

ईश्वर का बनाया हुआ लिखा है, वह लेखकों की वेदविषयक अपारभक्ति का ही फल है। अच्छा ऐसे ही सही, पर इस में प्रमाण क्या? क्या हम यों नहीं कह सकते कि वेदों को ईश्वर का बनाया हुआ न मानना अपार-अभक्ति का ही फल है। अस्तु—आगे आप लिखते हैं कि किसी आचार्य ने साफ़ २ नहीं लिखा कि वेद ईश्वर के बनाये हुए हैं। विद्यारत्न जी महाराज! क्या आप यह बतलाने का कष्ट उठायेंगे? कि कहीं किसी आचार्य ने स्पष्ट या अस्पष्ट यह भी लिखा है कि वेद मनुष्य के बनाये हुए हैं? आपका कथन है कि और किसी आचार्य ने तो नहीं, पर कुल्लूक-भट्ट आदि टीकाकारों ने ऐसा ज़रूर लिखा है (कि वेद ईश्वर के बनाये हुए हैं), "पर वे लोग वेद में अकृतश्रम थे, वेद के पारगामी पण्डित नहीं थे, इसीलिये उन्होंने परंपरागत जनश्रुति के आधार पर वेद को अपौरुषेय कह दिया है परन्तु यह मत स्वयं वेद के विरुद्ध ही है, अतएव सर्वथा अग्राह्य है"॥

वाह! विद्यारत्नजी महाराज! आपने भी खूब कहा! कुल्लूकभट्ट के सिवाय और आचार्य्योंके ग्रन्थ भी आपने अवश्य देखे होंगे। पर आश्चर्य्य है, कि आपको उन में वेदका ईश्वरकर्तृत्व कहीं नहीं मिला। तीन चार स्थल तो मैं इसी लेख में दिखला चुका हूं। सम्पूर्ण उपनिषद् गीता पुराण इतिहास आदि ऐसे वाक्यों से भरे पड़े हैं। पर हां! आपको उससे क्या? आपके हाथोंमें तो बड़ा अद्भुत हथियार आ गया है। वह कभी झूटा हो नहीं सकता। चाहे दुनिया इधर से उधर हो जाए, पर उस में ख़म नहीं आ सकता। वह है अटल भक्ति। क्या खूब दलील है। कुल्लूकभट्ट विचारा कुछ नहीं जानता था, वेद के पारगामी पण्डित तो अब कलकत्ते ही में हुए हैं। आपने वेदों में बड़ा श्रम किया है। दो चार नमूने आपके पारगामी पाण्डित्यके उद्धृत किये जाते हैं—एक स्थल पर ऋग्वेद संहिता के उपोद्घात में आप लिखते हैं 'पूर्वतावन्माधवेन वेदानामपौरुषेयत्वसंसिद्धये ये द्वे वचने व्यरचयत्'। यह वेदके पारगामी पण्डितोंकी संस्कृत वाक्यरचना है। इसको शायद संस्कृत के साधारण पण्डित नहीं समझ सकते। इसी तरह से अनेक उदाहरण आपके इसी ग्रन्थके दिये जा सकते हैं, जिनसे आप का वेद-पारगामी पाण्डित्य तथा कृतश्रमता का अच्छी तरहसे प्रकाशन हो सकता है। परन्तु लेख-विस्तारभय से दो एक उदाहरण और देकर अपने प्रकृत विषयपर आ जाते हैं।

(क्रमशः)

*चर-नियम ।

चर-साख सत्य सब स्थितियों में । चर भक्त भक्ति के भाजन का ॥
चर हितकारी चर उपकारी । चर मित्र सकल मानवजन का ॥
चर बन्धु सदा हर चर का है । हो किसी समाज किसी गण का ॥
पितु माता, नायक, चर-पति की । चर रूप सदाज्ञा-पालन का ॥
चर सुशील, पशु--हितकारी है । चर मितव्ययी रक्षक धन का ॥
चर वीर हँसे हर आपद् में । चर शुद्ध कर्म, वाणी, मन का ॥

†चर-प्रण ।

हूं आत्म--साक्षि से करता प्रण । मैं भरसक शक्ति लगाऊंगा ॥
निज ईश्वर औ' निज देश प्रति । निज कृत्य सदैव निभाऊंगा ॥
चर--नियम करूंगा पूर्ण सदा । पर-हित में समय बिताऊंगा ॥
बलवान देह औ' मति जागृत । आचरण सुगठित बनाऊंगा ॥

'चातक'

* Scout Law † Scout Promise.

मैं कब हंसूंगा ?

(लेखकः— श्रीयुत वंशीधर विद्यालङ्कार)

गर्मी के दिन थे। सायङ्काल के समय सूर्य अपनी किरणें समेटता हुआ संसार के कारवार बन्द होने की सूचना दे रहा था। पक्षी अपने घोंसलों में लौटने की तयारी कर रहे थे। गौएं खेतों से चर कर रंभाती हुई अपने बछड़ों को देखने के लिये वेग से वापस आरही थीं। चारों ओर एक विचित्र सी शान्ति छारही थी जिसमें कोलाहल भी बड़ा मीठा प्रतीत होता था। इसी समय प्रसन्न कुमार और शरत् दोनों खेतों के बीच के मार्ग पर सैर करते हुये जा रहे थे। इतने में सूर्य डूब गया। शरत् इस दृश्य को बड़े ध्यान से देख रहा था। कहने लगा, 'देखो तो प्रसन्न! जब संसार में सूर्य आता है तो लोगों को पता लगता है कि कोई चीज़ आई है और जब जाता है तो पता लगता है कि कोई चीज़ चली गई। कितना महत्व है! कितना अनुभाव है!!' प्रसन्न एक दम ठिठक कर खड़ा हो गया और कहने लगा कि हैं! क्या? मैंने तुम्हारी बातें सुनी ही नहीं—शरत् खिल खिला कर हंस पड़ा—उसकी हंसी की आवाज़ को सायङ्काल की धीरे २ बहती हवा दूर ले गई। फिर बोला—किन चिन्ताओं की उधेड़ बुन में लगे हो? सारे दिन भर तो कामों में फंसे ही रहते हो। इस समय तो ज़रा इस सायङ्काल की शोभा का आनन्द लो। प्रकृति के साथ मिलकर हंसो खेलो और सब चिन्ताओं को भूल जाओ।

प्रसन्न ने उत्तर दिया:—तुम्हें शायद इस प्रकृति को देख कर प्रसन्नता होती होगी किन्तु मेरा हृदय तो इसको देख देख कर जल जाता है, मैं ईर्ष्या से कुढ़ने लगता हूं। मालूम होता है कि यह प्रकृति इसीलिये सुन्दर सुहावने रूप बना कर बैठ जाती है कि हमें चिढ़ा कर पूछे कि क्या तुम मनुष्य सजीव, चेतनाधारियों के पास भी ऐसी कोई सुन्दर चीज़ है? देखो! तो इस की एक एक चीज़ किस नज़ाकत किस शोभा के साथ खिली हुई है।

शरत्:—खिजाने को तो नहीं, हां! शिक्षा देने को अवश्य बैठती होगी। तुम अपने हृदय के भाव इस पर काहे को मढ़ते हो निस्सन्देह मानव-समाज इसके सामने कुम्हलाया सा प्रतीति होता है किन्तु प्रकृति तो हंसती हुई उसको भी हंसा ही देती है। खिन्न चित्त एक बार तो अवश्य लहलहा उठता है। क्यों प्रसन्न? क्या कहते हो?

प्रसन्न भरे हुये दिल से कहने लगा, भाई! तुम चाहे ये मेरे हृदय के भाव ही समझ लो। पता नहीं मेरे जीवन से तो प्रसन्नता का लोप ही होने लगा है, मैं चाहता हूं कि अपना नाम प्रसन्नकुमार से बदल कर दुःख कुमार रख लूं। ये मानव जीवन क्या है? एक दुःखों का भारी बोझ

है ? देखो तो सही, ये चेतन प्राणी देखते ही देखते छोटी २ चिन्ताओं का शिकार बन जाता है। भारी चिन्तायें तो मनुष्य को बना देती हैं किन्तु न जाने ये छोटी चिन्तायें क्या छोटे से चूहे के मुख के समान हैं जो मनुष्य के सब अवयवों को काट फेंकती ह। मुझ से तो हंसा नहीं जाता। इसीलिये जब मैं इस हंसती हुई प्रकृति को देखता हूं तो जल जाता हूं, सोचता हूं कि क्या ये मुझे ही देखकर हंस रही है ?

शरत्—तुम चाहे कितने ही जलो, प्रकृति तो हमेशा हंसती ही रहेगी, इसका स्वभाव ही यही है। प्रसन्न, मैं समझता हूं कि मनुष्य की भी वास्तविक आन्तरिक प्रकृति हंसना ही है और यदि वह सर्वदैव हंसती रहे तो इसकी सुन्दरता की झलक जड़ प्रकृति से कहीं बढ़कर होगी, परन्तु मनुष्य मूर्खतावश अपनी इस प्रकृति पर दुःखों का, और चिन्ताओं का बोझा डाल देता है। चिन्ताएं अपने आप तो आकर कहीं से नहीं पड़ जातीं। छोटी चिन्तायें भी मनुष्य की अपनी हवाई कल्पनाओं से ही बन जाती हैं, वे बहुधा निराधार होती हैं। उन के दूर करने का एक मात्र उपाय यही है कि इस खिलखिलाती हंसती प्रकृति के साथ हंसो। प्रसन्न ! एक बार हंस कर तो देखो! तुम्हारे दुःखों का पर्दा दूर हो जायेगा और तुम अपनी प्रसन्नता की प्रकृति को अनुभव करोगे।

प्रसन्न—भाई ! शरत् ! यदि मेरी ही ऐसी अवस्था होती तो मैं तुम्हारी बात को स्वीकार कर लेता, यहां तो समग्र मानव समाज की यही दशा है, इस संसार में कितने मनुष्य सुखी हैं ? लेकिन यदि उन से पूछो कि तुम किस चीज़ के लिये इतने दुःखी और कातर हो तो सुनकर सचमुच हंसी आती है कि हैं ! ये जीवधारी पुतला अपने से कैसी तुच्छ और निकम्मी वस्तुओं के लिये किस प्रकार मारा मारा फिरता है? अपनी उज्वल शक्तियों को एक तिनके के पीछे उड़ा देता है। क्या सारा संसार ही अन्धा है? मुझे ऐसा विश्वास नहीं होता। मैं तो यह समझता हूं कि जब तक हमारे जीवनों में कोई 'विशाल चीज़ घुसती नहीं, कोई अपने से बड़ी वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती, हम सुखी हो ही नहीं सकते। मनुष्य इसीलिये छोटा होता चला जा रहा है क्योंकि वह अपने से छोटी और तुच्छ चीज़ों के पीछे भाग रहा है। जब तक हमें किसी विशालता का अनुभव नहीं होता, हम प्रसन्न हो ही नहीं सकते। तुम्हीं बताओ कि मैं इस छोटे क्षुद्र वस्तुओं के पीछे भागने वाले चित्त से इस प्रकृति को देख कर क्योंकर प्रसन्न हो सकता हूं ?

शरत्—यह प्रकृति भी वास्तव में इसी लिये प्रसन्न दृष्टिगोचर होती है क्योंकि यह विशाल है। देखो तो सही-ये अनन्त कितना विस्तृत है-आकाश कितना विशाल है-कितनी फैली हुई पृथिवी है ? सभी

चीज़ें असीम सी दिखाई पड़ती हैं । आओ भाई ! यदि सचमुच तुम अपनी बातों को उसी प्रकार अनुभव करते हो जैसा कि तुमने अभी कहा है तो इस 'विशालता' के साथ, इस 'अनन्त' के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ लो । अपने मन को अपने इस छोटे से दायरे से निकाल कर इस विस्तृत अनन्त गगन में स्वच्छन्द रीति से घूमने दो । तुमने क्या ठीक कहा हैं ? मनुष्य इसीलिये दुःखी है क्योंकि वह अपने से छोटी वस्तुओं की ओर जा रहा है । प्रसन्न ! एक वार तो आंख उठा कर देखो-ये भूमि, ये आकाश, कितना विस्तृत है ! कितना विशाल है ? कितना असीम है ?

प्रसन्न—मुझे तो तुम्हारी बातें समझ नहीं पड़तीं । शायद इसका यही कारण है कि मेरा दिल बहुत छोटा है । और फिर मैं इस छोटे से दिल से इन का महत्व क्या समझ सकता हूं । शरत् ! क्या सचमुच हमारा हृदय भी इस आकाश और पृथिवी की तरह बड़ा हो सकता है ? नहीं-मुझे ऐसा विश्वास नहीं होता-यदि कभी ऐसा हो जायगा तो सचमुच मानव-समाज स्वर्ग हो जायगा । ये-स्वार्थ-मज़हब-जाति-देश-सब के सब छोटे दायरे टूट जांयगे और विश्व में 'अनन्त' की मधुर ध्वनि गूंज उठेगी । एक ही 'अनन्त' की पुकार होगी । संसार में चारों ओर प्रेम की गङ्गा बह निकलेगी । किन्तु यह नहीं हो सकेगा ? कभी नहीं ? क्या मनुष्य छोटे दायरों को तोड़ सकता है-छोटी २ चीज़ों के पीछे भागना छोड़ सकता है। भाई शरत् ! ये मनुष्य पशु हो सकता है किन्तु देवता नहीं । ऐसी अवस्था में हम इन छोटे दिलों से इस विशालता को देख कर कुढ़ तो सकते हैं किन्तु प्रसन्न नहीं हो सकते ।

शरत्--कुढ़ने से तो हमारा हृदय और भी छोटा होता चला जायगा । हमारा लाभ इसी में है कि हम कम से कम पहिले बड़ी चीज़ की ओर झुकें तो सही । यदि हम इन्हीं छोटी चीज़ों के पीछे भागते रहे तब तो हमारा सर्वनाश निश्चित है । क्या मनुष्य को वास्तव में इन बड़ी चीज़ों की अपेक्षा ये तुच्छ वस्तुयें ही अत्यन्त प्यारी हैं । ओह ! ये कितनी बड़ी मूर्खता है ? कितना बड़ा अज्ञान है ? इस अज्ञानता को दूर करने का एकमात्र यही उपाय है कि हम इस 'विशालता' के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ें-धीरे २ हमारा जीवन भी स्वयमेव विशाल हो जायगा ।

वह अभी इसी तरह कह ही रहा था कि इतने में खेत की एक झोपड़ी से एक गान सुनाई दिया-गाना कोई विशेष मधुर नहीं था-किन्तु इस सुनसान खेत में वह बहुत ही प्यारा मालूम होता था । सारा आकाश उसी से गूंजता प्रतीत होता था । दोनों एक दम खड़े हो गये और सुनने लगेः—

अब तो नाथ ! भरोसा तेरा ।
किधर जायंगे हम क्या जानें,
चहुंदिस घोर अँधेरा ॥ टेक ॥
आर, पार कुछ भी ना सूझे,
चित्त निराशा घेरा ।
हाथ उठाय पुकारूं किसको,
कोई यहां न मेरा ॥ १ ॥
भटक रहा था मैं तो खुद ही,
क्यों हर लिया उजेरा ।
नयन रहित मुझ को कर डाला,
अन्ध कूप में गेरा ॥ २ ॥
कुछ तो दया करो करुणानिधि !
उठे रात का डेरा ।
अपनी उजली झलक दिखाकर,
स्वामी करो सवेरा ॥ ३ ॥

गाना क्या था ! हृदय के भाव फूट २ कर निकल रहे थे। सारी प्रकृति मंत्र-मुग्ध हुई २ थी। धीरे २ शीतल हवा बह रही थी, इस निर्मल शान्ति में अगर कोई शब्द गूंज रहे थे तो यही, साक्षात् करुणा का स्रोत बह कर निकल रहा था। शरत् मुग्ध अन्तःकरण से कहने लगा कि यहां भी वही दुःख का उद्गार है!! इस दुःख में भी तो किसी प्रकार की शान्ति है! आनन्द है!!

फिर हाथ जोड़ कर ऊपर की ओर देख कर कहने लगा। स्वामी! यह अज्ञान-अन्धकार की रात्रि कब बीतेगी। कब इस मानव हृदयाकाश में तुम्हारे ज्ञान सूर्य का उदय होगा। जिससे एक २ झोपड़ी प्रकाशित हो जायगी और यह समस्त मानव संसार एक सिरे से दूसरे सिरे तक ज्योतिर्मय हो जायगा। और इसी प्रकृति की तरह सर्वदा हंसता खिलता रहेगा।

प्रसन्न ने एक मीठी मुसकान के साथ कहा, "अभी तो सूर्य डूबा ही है-दिन होने में तो पूरी रात है। प्रकृति का सूर्य तो कल निकल ही आवेगा-देखें तुम्हारा सूर्य कब निकलेगा-जब निकलेगा तो मैं भी तुम्हारी तरह खूब खिल कर हंसा करूंगा॥"

बेसुरा आलाप

(लेखक --पण्डित हवाई राम शर्मा द्युलोक निवासी)

(१)

क्यों जी आपका शुभ नाम क्या है ?
जी मेरा नाम श्रीयुत पण्डित प्रेमनारायण चतुर्वेदी है।
क्या मैं आप का दौलत खाना भी पूछ सकता हूं ?
जी इस में क्या बात है, मेरा ग़रीब ख़ाना शीतल गढ़ है। आप शायद जानते होंगे।
मैं वहां कई दफ़ा जा चुका हूं। शायद आप ही ने वहां अभी जूतों की नई दुकान खोली है।

प्रेमनारायण—जी हां, मैंने ही खोली है।

दूसरे सज्जन—आप तो चतुर्वेदी हैं। आप पुरोहित बनते, अपने बाप दादाओं की प्रथा को आपने क्यों नाहक तोड़ दिया। आप सरीखे पुरुषों को जूते की दुकान शोभा नहीं देती।

प्रेमनारायण—क्या करें? लाचार हैं? शायद आप को पता नहीं, आजकल पुरोहिताई भी जूते का ही व्यवहार है।

दूसरे सज्जन—आर्यसमाज की पुरोहिताई तो ऐसी नहीं।

प्रेमनारायण—वह अभी जमे तो देखें।

(२)

सरलकुमार इन दिनों कश्मीर में था। वह एक दिन मटन वा भवन नामी तीर्थ स्थान की सैर करने गया। पहुंचते ही बहुत से लाल तिलकधारी, पैरों तलक चोगाधारी, शिव पार्वती के नाम की माला जपते हुये, पण्डे एक दम उसकी तरफ़ उमड़ पड़े।

पूछने लगे कि आप किस जाति के हैं।

१ पण्डा—आप कहां के रहने वाले हैं।

२ ,, —जल्दी बताइये, हम आपके पुरोहित हैं, तुम हमारे यजमान हो।

३ ,, —आप क्षत्रिय हैं या ब्राह्मण?

४ ,, —यदि आप अरोड़े हैं तो मैं आप का पुरोहित हूं।

सरलकुमार—मैं कुछ नहीं हूं। मैं आर्यसमाजी हूं।

सब पण्डे (एक साथ)—हम भी आर्यसमाजी हैं। हमारे बही खाते देख लीजिये। कई आर्यसमाजी हमारे यजमान बने हैं।

सरल—आप सब चले जांय। मुझे कोई श्राद्ध नहीं करना है।

१ पण्डा—तुम्हारे बाप दादा तो यहां आये। उन्होंने अपने बाप दादाओं का श्राद्ध किया। अब तुम क्या उन्हें तरसाओगे। ना-यह ठकि नहीं। हम ब्राह्मण हैं-इसी से कहते हैं कि यह ठीक नहीं।

२ ,, —इन 'आर्यों' ने कई बड़ी विचित्र बातें कर डाली हैं। कहते हैं श्राद्ध नहीं करना। तो भाई 'विवाह' काहे को करना। पुत्र तो 'श्राद्ध' के लिये ही उत्पन्न किये जाते हैं।

३ ,, —यदि तुम्हें श्राद्ध नहीं करना तो कश्मीर काहे को आये थे। इतनी दूर-इस कुण्ड के पानी से तुम्हें अवश्य श्राद्ध करना चाहिये।

४ ,, —हां कश्मीर यात्रा का और फल ही क्या है?

सरल—तुम सब चले जाओ इस समय हमारा पिण्ड छोड़ो।

पण्डे—आओ भाई चलें-इसीके साथ रहेंगे तो और यजमान चले जांयगे।

(एक पण्डे को छोड़ कर सब चले जाते हैं)

सरल—तुम काहे को बहियों का बोझा उठाये २ हमारे साथ चले आते हो।

पण्डा--महाशय जी ! हम ग़रीब हैं । क्या हम को कुछ नहीं दोगे ?

सरल—कुछ कार्य करो । ग़रीबी स्वयं दूर हो जायगी ।

पण्डा—क्या करें- बाप दादाओं के इस कार्य को छोड़ें तो आज ही बिरादरी से ख़ारिज हो जांय । अच्छा कुछ नहीं देते तो न सही । हमारे घर पर तो रहो-और अपना नाम और सम्मति-इस बही में लिख जाओ ।

सरल को दया आगई—कहने लगा कि लाओ लिखदें फिर पूछने लगा कि क्या लिखें ?

पण्डा—जो जी में आवे । किन्तु लिखना अंग्रेज़ी में । आज कल संस्कृत कोई नहीं देखता है ।

सरल ने हंस कर लिख दिया कि "ये पण्डे बड़े ख़राब हैं । विना प्रयोजन के हर एक को ठगते फिरते हैं । इनका आचार भी अच्छा नहीं है । इससे इनसे कोई कुछ श्राद्धादि क्रिया न करावे" ।

यह लिख कर उसे २) दे दिये-पण्डा बड़ा प्रसन्न हुआ-कहने लगा-कि महाशय जी ! तुम बड़े दानी हो । परमेश्वर तुम्हारा भला करें ।

वैदिक पितृयज्ञ का बौद्ध रूप ।

'श्रीयुत रघुबीर'

आज हम अपने पाठकों के समक्ष 'वैदिक सन्ध्या' तथा 'वैदिक अग्निहोत्र' के क्रममें 'वैदिक पितृयज्ञ' विषय उपस्थित करते हैं । संसार में देखा जाता है कि शब्द प्रायः स्थायी रहता है और तदभिप्रेत क्रिया तथा भाव सामान्यतः शीघ्र विलुप्त प्राय हो जाता है । वेद आज भी स्थिर है किन्तु संसारमें वैदिक कर्मों तथा वैदिक भावों का सर्वथा अभाव है । स्वा० मज़ीनियानन्द पर विश्वास किया जावे तो अद्यावधि तिब्बत में वैदिक पितृयज्ञ शेष हैं किन्तु केवल अपने शाब्दिक रूप में ही विद्यात्मक भागका लोप हो चुका है ।

उक्त स्वामी जी 'ओपन कोर्ट' नामक पत्र द्वारा प्रकाशित अपने लेख में 'सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा' का देवयज्ञ की परिसमाप्ति पर आङ्गल भाषानुवाद देते हुवे लिखते हैं 'Thus in English the priest recites. अर्थात् आङ्गल भाषा में पुरोहित निम्न लिखित वाक्यों का उच्चारण करता है । हमइस आङ्गल भाषा के साथ २ पञ्च महायज्ञ विधि के पितृयज्ञ में आये दो वेद मन्त्रों का ऋषिकृत संस्कृत भाष्य भी लिख देते हैं । तुलना करनेसे स्पष्ट हो जाएगा कि यह आङ्गलानुवाद इन्हीं दो मन्त्रों अ है और ऋषि के अर्थों के प्रायः अनुकूल हैं।

प्रथम मन्त्र यह है—

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।

पुनन्तु विश्वाभूतानि जातवेदः पुनीहिमाम्॥

'Mayest thou, O Lord, purify me (हे जातवेदः परमेश्वर! मां पुनीहि सर्वथा पवित्रं कुरु') May the wise purify me (विद्वांसः मां पवित्रं कुर्वन्तु) May the learned men purify me through their mental powers ('पुनन्तु मनसा धियः') इस मन्त्र भाग के अर्थ ऋषि ने इस प्रकार से किये हैं।

'भवद्दत्त ज्ञानेन नो बुद्धयः पुनन्तु) May the creatures of the universe conduce to my happiness.

(विश्वानि संसारस्थानि भूतानि पुनन्तुः सुखानन्दयुक्तानि भवन्तु)

आश्चर्य तो यह है कि न ऋषि ने और न ही स्वा० मज़ीनियानन्द ने 'जातवेदः पुनीहिमाम्' इस मन्त्र भाग के अर्थ किये हैं।

अब दूसरे मन्त्र को लीजिये।

'तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्चये॥

तं Unto him who is adored (बर्हिषि प्रौक्षन्) faithfully and affectionately in the firmament of heart हृदयान्तरिक्षे thesource of all जगत्कर्तारं पुरुषं all-pervading, existing from and through eternity अग्रतः जातं by whom all are instructed in the precepts of the Buddhas (तेन) परमेश्वरेण उपदिष्टाः whom all wise and learned people and saints worship ते देवा विद्वांसः साध्या ज्ञानिनः ऋषयः अपूजयन्त।

इस मन्त्रार्थ में 'by whom all are instructed in the precepts of the Budhas' यह वाक्य विशेष ध्यान देने योग्य है। यह वाक्य केवल 'तेन' शब्द की व्याख्या है। और फिर है ऋषि के शब्दों का ही भाषान्तर।

इस के पश्चात् स्वामी मज़ीनियानन्द जी ने कुछ और वेद मन्त्रों का अंगल भाषा अनुवाद दिया है। हम वह भी यहां दे देते हैं ताकि विद्वान् पाठक उनका विचार करें और "आर्य्य" द्वारा अपने विचार प्रकाशित करें।

Gratify our parents, so that they may attain unto Nirvana, also all our kindred and relatives.

"Almighty and eternal Fount of wisdom, grant us knowledge, understanding and wisdom, to speak here words of truth, love and hope. O Blessed Devas, we ask you for light from the angel spheres and may our guides guard and control our mind and tongue that nothing but the truth may be here given, and that the good seed dropped may find, under your guidance, fertile spots, may live and grow that those who are now in

obscurity and darkness may be brought into the radiant sunshine and joyous glories of the unfoldment of your true spiritual goodness."

इसका भाषानुवाद भी आंगल भाषानभिज्ञों के लिये हम लिख देते हैं।

'हमारे पितरों, प्रपितरों तथा आचार्य्यों को भी सन्तुष्ट करो ताकि वह निर्वाण को प्राप्त हों। इसी प्रकार हमारे समस्त सम्बन्धियों को।'

हे सर्वशक्तिमन्! ज्ञान के अनन्त स्रोत! हमको यहां सत्य, प्रिय और आशामय शब्दों को बोलने के लिये ज्ञान, बुद्धि और विवेक प्रदान करो। हे पुण्यमय देवो! हम आपके देवलोकों के प्रकाश के लिये याचना करते हैं। हमारे उपदेष्टा हमारे मन और वाणी को नियमित और प्रेरित करें ताकि केवल मात्र सत्य ही हमारे मुख से निकले और बोया हुआ शुभ (कर्मों का) बीज, आप की प्रेरणा से प्रेरित हो उर्वरा भूमि को प्राप्त हो कर फूले और फले, जिस से कि अज्ञान के घोर अन्धकार में पतित पुरुष भी आपके वास्तविक आध्यात्मिक आनन्द के विकास से आपके ज्योतिर्मय ताप और आनन्दमय वैभव को अनुभव कर सकें" ॥

इस स्थान पर स्वामी मर्जीनियानन्द द्वारा लिखित पितृयज्ञ प्रकरण समाप्त प्रतीत होता है क्योंकि इस से आगे बलिवैश्वदेवयज्ञ प्रारम्भ होता है।

हम इस आंगल भाषानुवाद के विषय में निश्चितरूप से अभी कुछ नहीं कह सकते कि यह किन किन और कितने वेद मन्त्रों का अनुवाद है। आशा है। कि कोई पाठक महाशय एतद्विषयक अनुसन्धान कर हमें अनुग्रहीत करेंगे।

अपने योग्य पाठकों को हम स्मरण कराना चाहते हैं कि ईश्वरोपासना, अग्निहोत्र तथा पितृयज्ञ, आर्यों के ये तीन प्रथम यज्ञ, संसार की सारी प्रथम जातियों में प्रचरित थे। प्राचीन ग्रीस, मिश्र, रोम, तथा पार्सियों के विषय में तो यह निर्विवाद ही है कि इन देशोंमें प्रत्येक महोत्सव पर धूप जलाई जाती थी। ईसा से पूर्व हम सब जातियों को प्राचीन जातियों के नामसे संज्ञित करते हैं। अन्य प्राचीन जातियें तो नामावशेष रह गई हैं किन्तु चीन और भारत तथा कुछ पारसी अद्यापि विद्यमान हैं। आधुनिक संसार में परम्परा के अन्धश्रद्धालुओं में हमारा प्रेम-भाजन चीन सब दशाओं में अग्रसर है। इसके साथ ही साथ हम बौद्ध जातियों को प्राचीन जातियें ही समझते हैं। अतएव हमें चीन में ऐतिहासिक तथा सर्वव्यापी धार्मिक समानताके बल पर विश्वास था कि यह सम्भव नहीं कि चीन में यह यज्ञ न किए जाते हों। हां विधि आदिमें भेद हो सकता है। बौद्ध इतिहास भी इसी बात को पुष्ट करता है। पि-

तृयज्ञ की साक्षी तो प्राचीन मिश्र की "ममी" (mummy) मृतक शरीर आज भी विद्यमान है। चाहे वह पितृयज्ञ की ठीक विधि हो या न हो किन्तु भाव तो वह पितृयज्ञ का ही है। प्राचीन रोम में तो पितृभक्ति तथा आज्ञा पालन पराकाष्ठा को पहुंच चुके थे। पिता का अपमान करने वाला न्यायालय में दण्डनीय था। एवमेव आधुनिक देशों में यदि किसी स्थान पर पितृ भक्ति गुण है और उस का अभाव महान् दोष है तो वह स्थान चीन है। चीन के सब से बडे आदर्श पुरुष कनफ्यूशस (Confuius) के पितृ भक्ति विषयक वाक्य भी हम कभी पाठकों के सम्मुख वेद मन्त्रों से तुलना करने के लिये रक्खेंगे।

इस समय केवल एक प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या यह पितृयज्ञ तथा अन्य यज्ञ अपने वास्तविक स्वरूप में लासा नगर अथवा किसी और बौद्ध मन्दिर में अद्यावधि अविच्छिन्न परम्परा से विद्यमान हैं और क्या इसकी कोई सम्भावना भी हो सकती है? इस ऐतिहासिक विषय में हम को ऐतिहासिक प्रमाणों की आवश्यकता है और लासा मन्दिर में रहने वालों की साक्षी इस विवाद का निपटारा करने के लिये केवल मात्र प्रतिकार है। शाब्दिक तथा मानसिक कल्पनाओं के आधार पर समालोचना करना उपयोगी नहीं।

इन लेखों का यह अभिप्राय है कि आर्य-जनता अपने साहित्य का, अपने धर्म का, और अपने प्राचीन धार्मिक सार्वभौम विजय का ऐतिहासिक निरीक्षण करने की ओर भी ध्यान दे। हमें विश्वास है कि इन लेखों ने जनता में साधारणतया एक विशेष प्रभाव उत्पन्न किया होगा। अपने आगामी लेखों में शेष दोनों यज्ञों का वर्णन करके हम अपनी सम्मति विस्तार से प्रकट कर इस विषय को समाप्त करेंगे।

ओ३म्

दम्पती ।

वैदिक धर्मादर्श से, विमुख हुआ संसार ।
है सदियों से सह रहा, दुःसह सङ्कट-भार ॥

दम्पती सुधर यदि जावें ॥ टेक ॥

(१)

क्यों निर्बल सन्तति पावें ? नहिं घर की आन गँवावें ।
फिर आर्य वीर कहलावें ॥ दम्पती सुधर यदि जावें ॥

(२)

नहिं ऊसर भू भारत हो । नहिं भिन्न २ जन-मत हो ।
ऐसी गृहस्थ की गत हो ? दम्पती सुधर यदि जावें ॥

(३)

हो शास्त्र वेद की जय जय । हो भद्र भाव का सञ्चय ।
सुन्दर समाज हों सुखमय ॥ दम्पती सुधर यदि जावें ॥

(४)

यों कलह न जग में फैले । मन हों न मोह से मैले ।
मिट जायँ विचार विषैले ॥ दम्पती सुधर यदि जावें ॥

(५)

हो वृत्र-विजय की लीला । हो इन्द्र सचाप सजीला ॥
सुर–उर–जयमाल *सुशीला* ॥ दम्पती सुधर यदि जावें ॥

जिस विवाह का रूप यह, वही सुधन्य विवाह ।
देवि–देव मंगल करें, दें शुभ में उत्साह ॥

"पी"

संपादकीय टिप्पणियां ।

दयानन्द जन्म शताब्दी ।

आर्य प्रतिनिधि सभा ने दयानन्द-जन्म-शताब्दी मनाने का जो प्रस्ताव पास किया था, वह "आर्य्य" के गताङ्क में प्रकाशित हो चुका है । इस महोत्सव का प्रबन्ध करने के लिये सभा ने दयानन्द-जन्म-शताब्दी समिति बनादी है जिस के प्रधान श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज और मंत्री पं० चमूपति जी एम. ए. 'आर्य्य सेवक' हैं । आर्य्य प्रतिनिधि सभा ने शताब्दी के सम्बन्ध में निम्न प्रस्ताव और अपने २५ नवम्बर के अधिवेशन में स्वीकार किये हैं:—

(१) प्रत्येक आर्य्य समाज में सुन्दर वेदासन बनाया जावे जिस पर प्रतिदिन प्रातःकाल वेद का प्रवचन हुआ करे ।

(२) उत्सव के वर्ष के अंतिम भाग में दयानन्द-पक्ष अथवा मास मनाया जावे जिसमें अधिक प्रचार हो और वेद-विद्यालय के लिये धन एकत्रित किया जाय ।

(३) प्रांत भर में जितनी अधिक समाजें स्थापित हो सकें, स्थापित की जावें ।

शताब्दी के कार्य्य को आरंभ करने के लिये जन्म-शताब्दी-समिति का पहला अधिवेशन २५ नवम्बर को हुआ । समिति के १४ सभासद पूर्व स्वीकार हो चुके थे । शेष ७ सभासद निम्नलिखित महाशय स्वीकार हुयेः—

लाला वज़ीरचन्द जी (रावलपिण्डी), पं० ब्रह्मदत्त जी विद्यालङ्कार (देहली), पं० विष्णुदत्त जी वकील फीरोज़पुर, श्री स्वा० स्वतंत्रानन्द जी, डा० सत्यपाल जी (लायलपुर), ला० सदानन्द जी (मुलतान), पं० चन्द्रमणि जी विद्यालङ्कार (जालन्धर शहर) ।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित महाशय और समिति में लिये गयेः—

ला० गंगाराम जी (शिमला), ला० ज्ञानचन्द जी (देहली), ला० बद्रीदास जी (लाहौर), ला० दीवानचन्द जी (बटाला) ।

जन्म-शताब्दी-समिति के इस अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकार हुएः—

(१) निश्चय हुआ कि वेद मंत्रों का विषयानुसार संग्रह-रूप ग्रंथ तैयार करने के लिये निम्नलिखित सभ्यों की एक सभा बनाई जायः—वेदोपाध्याय गुरुकुल कांगड़ी, श्री सत्यव्रत जी विद्यालंकार, श्री इन्द्र जी विद्यावाचस्पति, श्री चंद्रमणि जी विद्यालंकार, पं० जगन्नाथ जी निरुक्तरत्न । उक्त सभा विषय सूची बनाकर ऐसे सज्जनों से जो वेद का स्वाध्याय करते हैं पुस्तक की तयारी में सहायता ले। इस सभा के मंत्री गुरुकुल के वेदोपाध्याय होंगे ।

(२) निश्चय हुआ कि जन्म-शताब्दी संबंधी प्रस्तावों को सफल बनाने के लिये पंजाब प्रांत की सब आर्य्य समाजें ज़िलों अथवा जिलों के मंडलों में संगठित होकर कार्य्य करें जिससे अधिक सफलता हो ।

३—निश्चय हुआ कि सारे पंजाब प्रान्त

शिवरात्रि से पूर्व संवत् १९७९, ८०, ८१ में क्रमशः दयानंद-सप्ताह, दयानंद-पक्ष और दयानंद-मास मनाया जावे। उसमें आर्य्य समाजें प्रचार-कार्य अधिक करें और वेद-विद्यालय के लिये धन एकत्रित करें।

४—निश्चय हुआ कि देहली मंडल में, विशेष प्रचार-कार्य्य करने के लिये; आर्य्य प्रतिनिधि सभा से दो उपदेशक और नियत करने की प्रार्थना की जाय। और इस मंडल में शताब्दी संबंधी कार्य के अधिष्ठाता पं० ब्रह्मदत्त जी नियत किये जायं।

५—वेद-विद्यालय के निमित्त धन एकत्रित करने के लिये चार सभ्यों की उपसमिति बनाई जाय, जिसके सभ्य प्रो० रामदेव जी, पं० ब्रह्मदत्त जी, पं० जगन्नाथ जी, और म० कृष्ण जी हों। और सभ्य बढ़ाने का अधिकार इन्हीं सभ्यों को है।

६—उपदेशक सभा से प्रार्थना की जाय कि आर्य्य समाजों के मंडल बनाने आदि कार्य्य को सफल बनाने में उपदेशक महाशयों को भरसक प्रयत्न करने की प्रेरणा करे।

दो उपयोगी प्रस्ताव।

पं० परमानन्द जी लिखते हैं:—

वर्तमान में आर्य्य समाजों में वेद-पाठ और सिद्धान्तों की शिथिलता देख कर अपने पड़ोसी संयुक्त प्रान्त की आर्य्य-समाजों की दो बातें बड़ी अनुकरणीय प्रतीत होती हैं। वहां प्रत्येक आर्य्य समाज के साप्ताहिक अधिवेशन में एक आध वेदमंत्र का व्याख्यान अवश्यमेव करा दिया जाता है। फिर चाहे इसके पश्चात् कोई स्वतंत्र व्याख्यान हो या भजन। मेरी समझ में इस प्रथा को पंजाब की समाजों में भी चलाने की बड़ी आवश्यकता है। आशा है, पंजाब की समाजें इस ओर ध्यान देंगी। दूसरी बात जो उस प्रान्त की समाजों में अनुकरणीय जान पड़ती है, वह उत्सवों के संबंध में है। प्रत्येक उत्सव पर समाज का प्रधान या कोई अन्य आर्य्य पुरुष सभापति-रूपेण कुर्सी पर बैठा रहता है। वह जहां समय की व्यवस्था करता है, वहां किसी वक्ता को सिद्धान्त-विरुद्ध भी नहीं जाने देता। यह व्यवस्था भी बड़ी उत्तम है, और इस योग्य है कि समाजों के अधिकारी इस पर गंभीरता से विचार करके इसे अपनाएं।

लाहौर आर्य समाज का उत्सव।

लाहौर आर्य समाज का उत्सव क्या था, एक प्रान्तीय मेला था। इस बार केसरी रंग की पगड़ियों ने इस मेले का गौरव और भी बढ़ा दिया था। आर्यसमाज के बूढ़े बाले सब एक रंग में रंगे प्रतीत होते थे। जहां केसरी रंग की पगड़ी देखते ही किसी महाशय के आर्य समाजी होने का झट पता लग जाता था, वहां इस रंग का अपना संदेश भी कुछ कम मूल्य का न था। केसरी रंग क्या था, भक्ति की बहार थी, सामूहिक उत्साह का प्रत्यक्ष चिन्ह था।

चार दिन लंगे मंडी में प्रातःकाल

उपदेश और सायंकाल क्रमशः पुराणी, किरानी और कुरानी मतों की आलोचना होती रही। चौथे दिन सायंकाल नगर-कीर्तन हुआ। इस वार आर्य जनता नगर-कीर्तन की साक्षिमात्र न थी, केवल अपनी उपस्थिति से ही उत्सव की शोभा बढ़ाने न आई थी, किन्तु नगर-कीर्तन का क्रियात्मक काम भी आर्यजनता ने संभाल लिया था। इस नगर-कीर्तन ने सिद्ध किया कि प्रत्येक आर्य आर्य समाज का भजनीक है। दयानन्द का संदेश जिस हृदय तक एक वार पहुंच गया है, दूसरे हृदयों तक उसे पहुंचाना उस आर्य हृदय का अपना काम है।

अन्तिम दो दिन का उत्सव गुरुदत्त भवन में किया गया। आर्य सम्मेलन तो, जैसे एक महाशय ने उस समय कहा भी था, एक ठट्ठा सा वन गया। उस में न विचारों की गंभीरता थी, न भाषणों में गौरव था। संचालक महाशय प्रत्येक प्रस्ताव के लिये किसी उत्तरदाता व्यक्ति को प्रस्तोता तथा अनुमोदक आदि निश्चित कर लेते, तो प्रस्तावों का वह तमाशा न होता जो शनिवार की रात्रि को देखा गया।

व्याख्यान एक से एक उत्तम था। उपस्थिति बहुत थी और उत्सव का प्रभाव सब तरह अच्छा पड़ता रहा। समय का नियम कई वार पालन न किया जा सका।

दानों में सब से बड़ा दान स्वर्गवासिनी शान्तादेवीजी का दान था। यह महिला अंग्रेज़ जाति की देवी थीं, जो कुछ समय हुआ, आर्य धर्म में दीक्षित हुई थीं। उनका जन्म नाम Mary Edith Burrough था। आर्य समाज में आकर शान्ता देवी हुई। देहान्त से पूर्व आप ने स्वीकार पत्र लिखा जिस से ३०,०००) रु० के मूल्य के अपने शेयर Share आर्य समाज को दान कर गई।

यह दान, जैसे उसकी घोषणा करते हुए म० कृष्ण जी ने कहा था, आर्य समाज के इतिहास में अपने प्रकार का पहला दान है। यह दान प्रमाणित करता है (यदि इस तथ्य के लिये प्रमाण की आवश्यकता थी तो) कि आर्य समाज का कार्य-वृत्त सारा संसार है। यह धर्म और उसके लिये सर्वस्व-दान का भाव आर्यावर्त्त के अंदर ही सीमित नहीं। जातिरूप से अंग्रेज़ भी आर्य धर्म के उतने ही भक्त हो सकते हैं जैसे हिन्दू और हिन्दोस्तानी।

समस्त दान ५१,००० से अधिक आया।

उत्सव की सफलता पर हम लाहौर आर्यसमाज के अधिकारियों को वधाई देते हैं। त्रुटियां भी रहीं, जिनके संशोधन की आवश्यकता है, परन्तु मानुषीय कार्य कौनसा है जो सर्वथा त्रुटि-रहित हो।

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब १९७९।

मास भादों का आयव्यय का व्योरा।

निधि	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
वेद प्रचार	१९३७≡)॥	६४८५)११	६६।।।)११	२०३।।।)११
दसांस	२५=)११	४१५।।≡)८	...	...
चार आना	१०)	५३।=)	...	...
ट्रैक्ट	।-)	२७।।≡)	...	२१।।≡)
आर्य पत्र	२३१।)	२९४।।)	८३।।)।।।	३६९≡)।।।
वैदिक मेगज़ीन	१२४।।)	७२५।।।=)	२३१।।-)।	१०७६।।=)।।
पुस्तकालय	१।।)	८०।)	६६।≡)	४७९।।।=)।।।
वेतन उपदेशक	३५।।।)	३८४।।।=)४	१८३१)।।=।।	८५८६।।।≡)१
कार्य्यालय	...	...	३२५।।)	१३७०।।-)१०
दयानन्द सेवासदन	...	३।।)	...	...
कनटनजेंट	...	...	५७।।।)।।।	४८६≡)।।
मेजिक लेंटरी	...	१५१)	...	१५०)
मार्ग व्यय	...	-)।।	५४१=)	३३७०।।=)
बिजली व्यय	...	...	...	१८१)
वेद भाष्य	...	...	५००)	५००)
दायाद्य	...	४२।।)	...	५२-)
कराया दफतर	...	...	...	२००)
मुफत ट्रैक्ट	...	≡)	...	३।।)
पं० गणपति की माता की सहायता	...	...	...	८)
पं० शिबशंकरकी माता की सहायता	...	...	...	१२०)
योग	२३६५।।≡)५	८६६५=)२	३७०८।≡)८	१७०८०।)४
पं० लेखराम स्मारक निधि	...	२४।≡)	...	७२)
गुरुदत्त वि० आश्रम	८०५।)।।	१७५८।।)५	१००)	१९३।।।)
गुरुकुल धरोहर	१७१०९।।=)८	४८४००।।।=)८	१६६०८=)८	९४४४७।।≡)७

निधि	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
प्राविडेंट	१०९=)२	७०८॥।≡)७	...	७४२॥)१०
अमानत पुस्तकालय	१०)	४०)	२०)	३०)
,, नौलक्खा	१६००)	१६७८०।=)	९३।=)	५८३०॥।=)
,, समाजां	...	९६९॥)	...	४४०।)
,, अन्यसंस्थायें	७५॥)	३८७॥=)	...	...
सूद	५३६।)	२२७७।२	...	३२२।=)
डिगशाई मवानात	७५०)	७५०)	२)	२)
अमानत भोलाशाह	...	...	...	४९१)
अज्ञात निधि	...	३६५	...	११००)
पेडाराम निधि	...	...	...	२०३≡)११
बूटाराम ,,	...	...	...	३८)।
प्रेम देवी होमकली	...	...	...	८)
कन्या गुरुकुल	...	५)	...	...
बोनस	...	...	...	७८।≡)५
जोड़	३०८० ॥।=)२	२२२८३॥≡)९	११५।=)	९२९०)८
गुरुकुल महानिधि	१११७७=)८	५०१२८।≡)८	१३८८४-)८	४२५८३॥।=)
स्थिर छात्रवृत्ति	...	६६४४॥≡)	...	...
अस्थिर ,,	५३९०)	११२२८॥)।	...	...
आयुर्वेद	...	६५२५)	...	...
उपाध्याय वृत्ति	...	१५०००)	...	...
स्थिर मूलधन	...	४२९५॥।)	...	...
	१६५६७=)८	९३८२२।≡)१	...	४२५८३॥।=)८
सर्व योग	३९९२८॥≡)५	१७४९५५≡)१	३४४०६=)	१६३६५४॥≡।
गत मास तथा गत वर्ष का शेष	७:१३०॥≡)८	७४६१७३-)।	...	...
कुल	७९१८५९।≡)१	९२११२८।)४	...	...
वर्तमान शेष	७५७४५३॥-)१	...	...	...

मास आश्विन १९७९ की आय व्यय का व्योरा।

निधि	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
वेदप्रचार	२७११)	९१९६)११	५२)	२५५॥।)११
दशांस	३२।)	४४८≡)५	२५)	२५)
चार आना	२६)	७२।=)	...	...
ट्रेकट	५५=)॥	८३-)॥	१०)	३१॥≡)
आर्यपत्र	५६≡)	३५०॥≡)	२३॥।)॥	२९३)।
वैदिक मेगजीन	१९२)	९१७॥।=)	२२०॥=)।	१२९१।)॥।
,, पुस्तकालय	५।	८५।)	१६९॥≡)॥	६४९॥।=)।
वेतन उपदेशका	६३॥।≡)	४४८॥।-)४	१७४३।=)॥	१०३३०।-)७
कार्यालय	...	...	२६४≡)७	१६३४॥।-)५
दयानन्द सेवा सदन	११२॥)	११६)	...	...
दफतर कनटनजेन	८)	८)	११५≡)	६०१।=)॥
मैजिक लैटरी	...	१५१)	...	१५०)
मार्ग व्यय	९।=)	९।≡)॥	११७६)	४५४६॥=)
बिजली व्यय	...	...	...	१८१)
वेद भाष्य सहायता	...	...	...	५००)
दायाद्य	...	४२॥)	८२॥≡)८	१४०॥।)८
कराया दफतर	...	...	१००)	३००)
मुफत ट्रेकट	...	≡)	...	३॥)
पं० गजा पति शर्मा की माता की सहायता	...	...	४)	१२)
पं० शिव शंकर काव्य-तीर्थ की सहायता	...	...	६०)	१८०)
अर्ध कुम्भी प्रचार	...	...	१९५॥।≡)॥।	१९५॥।≡)॥।
योग	३३७१।=)॥	१२०३६॥)८	४२४२॥।=)॥।	२१३२३≡)१
पं० लेखराम स्मारक निधि	८)	३२≡	३६)	१०८)
गुरुदत्त वि० आश्रम	...	१७५८॥)५	...	१९३॥।)
प्राविडैंट	१०७॥।-)२	८१६॥।)९	...	७४२॥)१०

निधि	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
अमानत पुस्तकालय	...	४०)	...	३०)
,, नौलक्खा	...	१६७८०।=)	...	५८३०।।।=)
,, समाजां	७८)।।।	१०४७।।)।।	४५०)	९००।)
,, अन्य संस्थायें	३९।।)	४२७=)	६।।)	६।।)
,, सूद	३१९९।।)	५४७६।।।)२	२८)।।।	३५०।≡)
,, डिगमाई म-कानात	...	७५०)	७४८)	७५०)
,, भोला शाह	...	...	...	४९१)
अज्ञात निधि	...	३६५)	...	११००)
पेडाराम निधि	...	...	...	२०३≡)११
बूटाराम ,,	...	...	...	३८।)।
प्रेमदेवी होमकेता	...	...	४)	१२)
कन्यागुरुकुल	...	५)	...	...
चिक् Unpaid	४७५)	४७५)	...	...
बोनस	...	...	...	७८।≡५)
आर्य विद्यार्थी आश्रम	४२०।	४२०)	...	...
योग	४३१९।।।-)११	२६६०३।।-)८	१२३६।।)।।।	१०५३३।।=)५
गुरुकुल धरोहर	११६९३।=)।	६००९४।)१२	८०८०।-)	१०२५२८)७
गुरुकुल महानिधि	कुल ५००१७)	१११।≡)८	९४०३।।।-)।।।	५१९८७।।)५
स्थिर छात्र वृत्ति	...	६६४४।।≡)२	...	...
अस्थिर छात्र वृत्ति	१५५०)	१२७७८।।)।	...	...
आयुर्वेद	४१५९।)	१०६८४।)	...	...
उपाध्याय वृत्ति	४६५११।।।-)	६१५११।।।-)	...	...
	१००३५।।)	१००३५।।)	...	...
स्थिर मूलधन	कुल ४१५९।)	१३६।।)	...	...
योग	८०८०।-)	१०१९०२।।।)१	९४०३।।।-)।।।	५१९८७।।)५
सर्व योग	२७४७२।।≡)८	२०२४२८=)९	२२९९९।।=)।	१८६६७४।-)।
गत मास तथा गत वर्ष का शेष	७५७४५३।।-)१	७४६१७३-)।	...	...
	७८४९२६।।)।।।	९४८६०१।)	...	...
वर्तमान शेष	७६१९२६।।।=)।।	...	...	...

Registered No. L. 1424. रजिस्टर्ड नं० एल १४२४

ओ३म्

भाग ४ श्रावण १९८०
अङ्क ४ अगस्त १९२३

आर्य्य

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मासिक पत्र

सम्पादक—चमूपति ।

प्रार्थना ।

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । अपघ्नन्तोऽराव्णः ॥

ऋग्वेद ।

हे प्रभु ! हम तुम से वर पावें ।
विश्व जगत् को आर्य बनावें ॥
फैलें, सुख सम्पत् फैलावें ।
आप बढ़ें, तव राज्य बढ़ावें ॥
वैर-विघ्न को मार मिटावें ।
प्रीति-नीति की रीति चलावें ॥

वार्षिक मूल्य २) रु० पेशगी

"अमृत प्रेस" अमृतधारा भवन लाहौर द्वारा ला० नन्दलाल उपमंत्री आ० प्र० सभा ने मुद्रित व प्रकाशित किया ।

विषय सूची ।

'आर्य' के नियम ।

१—यह पत्र अंग्रेज़ी मास की १५ तारीख को प्रकाशित होता है। डाकखाना में चूंकि अंग्रेज़ी तारीख़ देनी होती है, इसलिये अंग्रेज़ी तारीख़ का हिसाब रक्खा गया है।

२—इसका वार्षिक मूल्य २) है ≡) डाक महसूल निकाल कर केवल १।||-) में यह पत्र देना घाटे का काम है, तथापि सभा ने वैदिक धर्म तथा नागरी प्रचार के लिये इसे जारी किया है।

३—इस पत्र में धर्मोपदेश, धर्म जिज्ञासा वैदिक धर्म संरक्षण, धर्म प्रचार विषयक बातोंके अतिरिक्त आर्य सामाजिक समाचार तथा आर्य प्रतिनिधि सभा की सूचनायें दर्ज होती हैं।

४—पत्र के प्रकाशित होने के लिये समाचार तथा लेख प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख के पूर्व आजाने चाहियें।

५—यदि डाक की गलती से कोई अंक न पहुंचे तो १५ दिन के भीतर सूचना देने से वह अंक भेज दिया जायगा, लेकिन इस अवधि के पश्चात् मंगवाने पर प्रति अंक ≡) मूल्य देना पड़ेगा ॥

—०—

॥ ओ३म् ॥

भाग ४] लाहौर—श्रावण १९८० तदनुसार अगस्त १९२३ [अंक ४

वेदामृत ।

एकता का सूत्र ।

ॐ संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥

ऋ० १०. १९१. मं० २ ।

प्रेम से मिल कर चलो ।
बोलो सभी ज्ञानी बनो ॥
पूर्वजों की भान्ति तुम ।
कर्तव्य के मानी बनो ॥

दुःख का साथी ।

(श्रीयुत वंशीधर विद्यालङ्कार)

[१]

दुःख निशा आई जब सारे जगने मुझको छोड़ दिया,
मेरे साथी सङ्गी सब ने अपना मुँह था मोड़ लिया ।
आंसू गर्म आह से था इस दिल पर पर्दा पड़ा हुआ,
ऐसे समय कोई झट आकर मेरे द्वारे खड़ा हुआ ॥

[२]

जा ! जा ! देख लिया जग सारा है केवल सुख का साथी,
क्या हँसने आया है मुझपर, कौन यहां दुख का नाती ।
नमक न डाल और बस मुझपर इतना ही था कह पाया,
पर्दा उठा और वह मेरे घर के भीतर घुस आया ॥

[३]

आते ही निज बाहु-पाश से उसने मुझको बांध दिया,
मैंने कहा-कौन तू ? तो यह, अश्रुभरा मुख चूम लिया ।
आश्वासन देकर फिर उसने कहा-न अब तुम करो विषाद,
मैं हूं-जिसे भुलाकर सुख में, दुख में सब करते हैं याद ॥

नियोग आपद्धर्म ।

(लेखक-श्रीयुत विश्वनाथ आर्योपदेशक)

आर्य समाज ने जब वेद विरुद्ध मतों के युक्तिशून्य सिद्धान्तों की समालोचना करके सत्य सनातन वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार किया तो सत्याभिलाषी पुरुषों का अधिकता से आर्य समाज में प्रवेश होने लगा । इस अवस्था में सम्प्रदायी पुजारियों ने आर्य समाज से घृणा दिलाने के लिये नियोग पर वृथा कटाक्ष करने प्रारम्भ किए । मैं जब कभी अन्य मतों की आर्य समाज के विरुद्ध पुस्तकों वा समाचार पत्रों को पढ़ता हूँ तो उन में आधिक्येन

इसी की चर्चा होती है । बातचीत में भी नियोग को सामने रख कर मिथ्यालाप किया जाता है । नियोग को वह अत्यन्त घृणित लज्जा शून्य बतलाते हैं । अतः इस लेख में इसी बात का विचार होगा ।

सनातन (पौराणिक) धर्म और नियोग ।

नियोग का विधान प्रायः सभी स्मृतियों में पाया जाता है । अतः पौराणिक पण्डित इन से बचने के लिए मनु के उन प्रक्षिप्त श्लोकों का आश्रयण करते हैं जिन में नियोग को पशु धर्म वर्णन किया है । अतः प्रथम यह देखना है कि उन श्लोकों का क्या प्रमाण है ? वह श्लोक यह हैं—

नान्यस्मिन् विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः । अन्यस्मिन् हि नियुंजानां धर्म हन्युः सनातनम् ॥ (मनु ९-६४) **नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् । न विवाह विधावुक्तं विधवा वेदनं पुनः ॥ ६५ ॥ अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशु धर्मो विगर्हितः । मनुष्याणां मपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति ॥ ६६ ॥ समही मखिलां भुञ्जन् राजर्षि प्रवरः पुरा । वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहत चेतनः ॥६७॥ ततः प्रभृतियो मोहात्प्रमीत पतिकांस्त्रियम् । नियोजयत्य पत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः६८**

इन श्लोकों का भाव यह है (१) नियोग न करें इस से धर्म नष्ट होता है (२) क्योंकि विवाह के मन्त्रों में नियोग अथवा पुनर्विवाह का वर्णन नहीं (३) विद्वान द्विजों ने इसे पशु धर्म कह कर निंदा की है । (४) इस का प्रचार राजर्षि प्रवर वेन के राज्य में हुआ । (५) जिस से वर्णसंकरता हुई (६) उस दिन से जो नियोग कराते हैं साधु जन उन की निन्दा करते हैं ।

(१) इन श्लोकों के विषय में प्रथम विचारणीय यह है कि महाभारत वा पुराणों की दृष्टि में राजा वेन मनु के कुल में हुआ है तो मनुस्मृति जो भगवान् मनु का उपदेश है इस में इस का कैसे उल्लेख होसकता है अतएव इन को प्रक्षिप्त ही मानना चाहिये और जब कि वेन को राजर्षि प्रवर कहा तो उस का प्रचलित किया धर्म निन्दित कैसे ? इस के अतिरिक्त पद्मपुराण में वेन को जैनी बतलाया है इस अवस्था में वैदिक धर्म में उस के प्रचार किए हुए धर्म का प्रवेश कैसे ? यथा—

अहमेव परो धर्मोऽहमेव सनातनः ।
अहं धर्मो महापुण्यो जैन धर्मः सनातनः ।

पद्म० भूमिखण्ड ३८–(१८-१९)

(२) द्वितीय विवाह के मन्त्रों में नियोग का कथन न होना नियोग के निषेध में जो

हेतु दिया है वह भी ठीक नहीं, क्योंकि विवाह के पश्चात् स्मृति कथित स्त्री पुरुष सम्बन्धी अन्य नियमों का भी विवाह मन्त्रों में उल्लेख नहीं । यथा मनु ९-८० में प्रतिकूल भार्या पर द्वितीय विवाह का वर्णन है—

मद्यपाऽसाधु वृत्ता च प्रतिकूला चया भवेत् ।
व्याधिता वाधिवेतव्या हिंस्रार्थघ्नी च सर्वदा ॥

मेधातिथि टीकाकार भी लिखते हैं कि—

नैव मुद्वाहिकेषु मन्त्रेषु तु सन्त्युक्तम् या ।
उत्तरं अन्यत्र तु दृश्यते को वांशयुत्रो विधवेव देवरम् ।

अर्थात् विवाह मन्त्रों में नियोग नहीं, अन्यत्र तो है, परञ्च विवाह मन्त्रों में "बीरसूर्देवृकामा" नियोग* का वर्णन भी है ।

(३) यह भी ठीक नहीं कि इस से धर्म का नाश होता है । मनु में पूर्व ही

अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्म मापदि ९-५६ नियोग को आपद्धर्म कहा है, फिर मनु ९-१६७ में भी है कि—

यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीवस्य व्याधितस्य च
स्वधर्मेण नियुंजायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ॥

जिस मरे हुए क्लीव वा रोगी की स्त्री से धर्म पूर्वक नियोग से सन्तान उत्पन्न हो वह उस की क्षेत्रज सन्तान है, और भी—

औरस क्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागितौ ।

मनु ९-१६५ में क्षेत्रज नियोग से उत्पन्न पुत्र पिता के धन का अधिकारी कहा है ।

अन्यच्च—

अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः ।
उभयोरप्य सौरिकथी पिंडदाता च धर्मतः ।

(याज्ञवल्क्य व्यवहाराध्याय)

इस श्लोक में भी नियोग को धर्म और नियोगज सन्तान को पितृ धन का अधिकारी और पिंडदाता भी माना है । इसी प्रकार धर्म सूत्र वा स्मृति नियोग को धर्म ही बताती हैं ।

(४) विद्वान द्विजों ने इसकी निंदा की है । यह भी मिथ्या है क्योंकि सर्व शास्त्रों ने नियोग का विधान किया है विद्वान इसको कार्य रूप में लाये और प्रशंसा भी की है:—

पारां श्वकुरुधर्मेण मा निमज्जीः पितामहान् ।
असंशयं परोधर्मो त्वयामातरुदाहृतः ॥

सत्यवती वाक्य महा० आदि० १०३

त्वमपत्यं प्रति च मे प्रतिज्ञां वेत्थ वैपराम् ।

(भीष्म वाक्य)

इन श्लोकों में सत्यवती वा भीष्म ने नियोग को धर्म कहा है ।

---

* पौराणिक विवाह पद्धति वा ऋग्वेद में देवकामा शब्द है परन्तु अथर्व वेद में भी कुछ शब्दों के परिवर्तन से यह मन्त्र आता है वहां देवृकामा ही है अतएव उक्त पद्धति वा संहिता में देवकामा यह अशुद्ध समझना चाहिये ।

एवं निक्षत्रये लोके कृते तेन महर्षिणः ।
उत्पादितान्य पत्यानि ब्राह्मणैर्वेद पारगैः ।
पाणिग्राहस्य तनय इति वेदेषुनिश्चितम् ।
धर्मं मनसि संस्थाप्य ब्राह्मणास्तःसमभ्ययुः ॥
(महाभारत)

इन श्लोकों में परशुराम कृत क्षात्रवध के पश्चात् उनकी विधवा स्त्रियों में ब्राह्मणों ने नियोग द्वारा संतान उत्पन्न की और नियोग को वेदका धर्म कहा है । इसी प्रकार कुन्ती अम्बका अम्बालका और मदयन्ति से वसिष्ठ के नियोग का वर्णन है । यथा ॥

सादासे नरम्भोरु नियुक्ता पुत्र जन्मति ।
मदयन्ति जगामर्षि वसिष्ट मितिनः श्रुतम् ।
(महाभारत)

अर्थ—राजा सौदास ने अपनी स्त्री मदयन्ति को नियोग की आज्ञा दी और उसने वसिष्ठ ऋषि से सन्तानोत्पन्न की ।

(५) क्या यह पशु धर्म है ? यह भी सर्वथा मिथ्या है । पशु धर्म वह होता है जहां स्त्री पुरुष पशुओं की सदृश स्वतन्त्र व्यवहार करें परन्तु नियोग नियमानुसार बड़ों की आज्ञा से होता है । और जितेन्द्रय पुरुष ही नियोग कर सकते है । अतएव साधारण मनुष्य भी नियोग के अधिकारी नहीं हो सकते प्रत्युत देव पदवी प्राप्त विद्वान जितेन्द्रय मनुष्यों के ही कर सकने के कारण इसको पशु धर्म नहीं देव धर्म कहना चाहिये देखो ।

देवराद्वा सपिंडाद्वा स्त्रीया सम्यङ्नियुक्तया ।
प्रजेप्सिता धिगन्तव्य संन्तानस्य परिक्षये ॥
(मनु ९–५९)

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि । एक मुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयंकथंचन ॥ ६० ॥ द्वितीय मेके प्रजननं मन्यन्ते स्त्रीषुतद्विदः । अनिर्वृत्तंनियोगार्थं पश्यन्तो धर्मतस्तयोः ॥६१॥ विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्तेतु यथाविधि । गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्त्तेयातां परस्परम् ॥६२॥ नियुक्ते यौ विधिं हित्वा वर्तेयातान्तु कामतः । तावुभौ पतितौस्यातां स्नुषागगरु तत्परौ ॥६३॥

इन श्लोकों में नियोग संबन्धि निम्न नियम वर्णित हैं:—

(१) नियोग अपने सपिंड अथवा गोत्र में हो (२) बड़ों की आज्ञा से हो (३) सन्तान के न होने पर हो (४) नियोग सम्बन्धि गर्भाधान ऋतुकाल में रात्रिके समय चुप होकर शरीर को घृत मलकर हो ! ताकि विषयासक्ति न हो । (५) एक ही सन्तान उत्पन्न करें आवश्यकता पर द्वितीय की भी आज्ञा है (६) नियोग सम्बन्धि गर्भाधान से निवृत्त होकर दोनों का वह संबन्ध नहीं रहता

(७) जो उपर्युक्त नियमों का भंग करेंगे उनको स्नुषाग व गुरुतल्पगका दोष लगेगा।

पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि।
(मनु ९–५८)

(८) आपत्काल के बिना नियोग न हो। अन्यथा दोनों स्त्री पुरुष पतित होंगे। और देखिये आपस्तम्भ धर्मसूत्र पर हिरण्यकेशी भाष्य:—

"तमिमं नियोगं दूषयति। तदिन्द्रय दौर्बल्यादि प्रतिपन्नम्"
(आपस्तम्भ प्र० २ प० १०कंडि० २७सूत्र४)

तदिति यद्यप्येवं पूर्वे कृतवन्तस्तथापि तदद्यत्वे विप्रतिपन्नं विप्रतिषिद्धम्। कुतः इन्द्रिय दौर्बल्यात्। दुर्बलेन्द्रियाहि अधत्वे मनुष्यास्ततश्चशास्त्र व्याजेन भर्तृव्यतिक्रम इति॥

अर्थात् नियोग यद्यपि शास्त्रोक्त है और प्राचीन समय में प्रचलित था, परन्तु आज कल के मनुष्यों के दुर्बलेन्द्रिय होने से निषिद्ध है ताकि वह शास्त्र के बहाने से व्यभिचार न करने लगें।

मेधा तिथि लिखता है (मनु ९–६५ पर)

अयमर्थवादएवनियोगप्रतिषेधः शेषः। ये अविद्वांसः सम्यक्शास्त्रं नजानतेतत्र व्यवहारिराये लिंगाद्यन्वय परत्वं नैवजानते तैरियं पशुधर्मः। स चात्यन्त गर्हितो मनुष्याणामपिप्रोक्तः प्रवर्त्तितः॥

अर्थात् नियोग का निषेध अर्थवाद है। जो अविद्वान् शास्त्र को भलीप्रकार नहीं जानते वही इसे पशु धर्म कहते हैं।

(६) वर्ण संकरता—यह बात सर्वथा प्रलाप है, कौरव पांडव हनुमानजी आदिको जो नियोग से उत्पन्न हुए,

सत्वं केसरिणः पुत्रः क्षेत्रजः भीमविक्रमः ॥२९॥ मरुतस्यौरसः पुत्रस्तेजसा चपि तत्समः ॥३०॥

(बालमीकीय रामायण किष्कन्धाकांड सर्ग ६६)

हनूमान जी केसरी के क्षेत्रज और मरुत के औरस पुत्र थे, वर्ण संकर नहीं कहते, और नहीं नियोगज सन्तान वर्णसंकरता से लक्षित है, यथा—

व्यभिचारेण वर्णानामवेद्या वेदनेनच।
स्वकर्मणाश्चव्यागेन जायन्ते वर्णसंकरः॥
(मनु)

अर्थ – वर्णों के व्यभिचार और न ग्रहण करने योग्य स्त्री के ग्रहण करने अपने वर्ण के कर्म धर्म के त्याग से वर्ण संकर होते हैं। इससे नियोगोत्पन्न सन्तति पर तो वर्ण संकरता नहीं घटती परन्तु आजकल के ब्राह्मण क्षत्रिय अभिमानी पुरुष जो कर्म धर्म से रहित हो चुके हैं उनपर ही घटती है॥

इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि पूर्वोक्त मनु के श्लोक इतिहास और शास्त्र की दृष्टि से प्रक्षिप्त होने के कारण किसी प्रकार भी प्रमाणित नहीं हो सकते और नहीं हमारे पौराणिक भाई उक्त श्लोकों के बहाने से नियोग से इनकार कर सकते हैं । इसके अतिरिक्त आश्चर्य की बात यह है कि मनु से भिन्न कहीं भी इन श्लोकों का आशय नहीं मिलता यद्यपि मनु धर्मशास्त्र की सभी बातें प्रायः अन्य शास्त्रों में मिल जाती हैं, और उक्त श्लोक तो यथा ऊपर दिखा चुके मनु के अन्य स्थलों में वर्णित आशय के भी प्रतिकूल पड़ते हैं, और पराशर स्मृति में जो यह लिखा है किः—

अश्वालम्भं गवालम्भं सन्यासं पलपतृकम्।
देवरातश्च सुतोत्पत्ति कलौ पञ्चविवर्जयेत्॥

अर्थात् गो अश्वकी बलि पितरों के लिये मांस पिंड सन्यास वा नियोग कलियुग में बर्जित हैं इससे भी सिद्ध होता है कि द्वापर युग तक नियोग प्रचालित था ॥

मनु के उक्त श्लोक वेद विरुद्ध होने से भी प्रमाणित नहीं स्वामीजी ने अपने ग्रन्थों में वेद प्रमाण दिये हैं हमारे पौराणिक उन अर्थों को तो प्रमाण नहीं मानते परन्तु उपर्युद्धत मेधातिथि की टीका में जो मनु ९—६५ पर है—

"कोवां शयुत्राविधवेव देवरम्"

वेद मन्त्र से जिस का प्रमाण स्वामीजी ने भी दिया है स्पष्ट नियोग सिद्ध किया है और स्वामीजी प्रमाणित "उदीर्षनार्य ३ अ० १० १८—८ पर सायन ने जो टीका की है उससे भी नियोग सिद्ध होता है यथा हे (नारि) **मृतस्य पत्नि (जीवलोकं) जीवनां पुत्र पौत्राणां स्थानं लोकं मभिलक्ष्य (उदीर्ष्व) अस्मात् स्थानात् उत्तिष्ठ (गतासुं) अपक्रान्त प्राणांम् एतम्) पतिम् (उपशेषे) समीपे स्वापिषितस्मात्त्वं (हस्त ग्रामस्य) पाणिग्राहं कुर्वतः (दिधिषोः) गर्भस्य निधातुः (तव) अस्य (पत्युः) संबन्धागतम् (इयं) जनित्वं जायत्त्वमभि लक्ष्य (संबभूथ) संभूतासि अनुसरण निश्चयं अकार्षीः तस्मादा गच्छ ॥**

भावार्थ—हे भूतपति के पास सोने वाली विधवा स्त्री यहां से उठ और पाणि ग्रहण करने वाले पति के सम्बन्ध से आये हुए तेरे गर्भ के धारण करने वाले दिधिषु द्वितीय पति के जायापन को लक्षिते कर पुत्र पौत्रों वाले इस लोककी इच्छा से निश्चय करके आ।

नोट—यह मन्त्र तैतरीय आरण्यक ६-१-४ पर भी है वहां सायन ने दिधिषु का अर्थ स्पष्ट पुनर्विवासेच्छु किया है जिससे यह मन्त्र नियोगार्थ का ही सूचक है ।

ऊपर के लेख से पाठकों को निश्चय हो गया होगा कि हमारे पौराणिक भाई तो इस सिद्धान्त से किसी प्रकार भी इनकार नहीं कर सकते और जो भाई यह आक्षेप करते हैं कि नियोग एक प्रकार का व्यभिचार है उनका कथन भी सर्वथा निर्मूल है इस भ्रमका कारण या तो शास्त्रों से अनभिज्ञता है अथवा वह जान बूझकर मिथ्या उपालम्भ देते हैं क्योंकि यथा ऊपर सिद्ध किया गया नियोग की विधि ऐसी है कि व्यभिचारी तो क्या साधारण मनुष्य भी इसके योग्य नहीं हो सकते केवल जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष ही इसके अधिकारी हो सकते हैं और यह एक आपद्धर्म है कर्तव्य कर्म नहीं। अतएव आर्य समाज में नियोग का कोई दृष्टान्त न मिलता उत्तरदातव्य नहीं॥

(शेष फिर)

आर्य समाज और समान वाद
(DEMOCRACY)

(लेखक—श्रियुत बंशीधर विद्यालङ्कार)

क्या आर्यसमाज में समानवाद की स्पिरिट है?

जिस समय कुछ आर्य विचारक परस्पर विचार करने बैठते हैं तो यह बहुधा कहा करते हैं कि भारतवर्ष में यदि किसी सोसाइटी में समानवाद की स्पिरिट है तो वह आर्यसमाज ही है। यहां किसी की गद्दी नहीं जम सकती यहां कोई किसी के आगे सिर झुकाने वाला नहीं है। यह तो सनातनियों के मन्दिरों में या सिक्खों के गुरुद्वारों में ही होसकता है कि "मत्था टेका और पैसा फेंका"। मसजिदों में भी मौलवियों की ही चलती है और गिर्जा घरों के तो ईसाई मालिक होते ही हैं, परन्तु आर्यसमाज के मन्दिरों का कोई मालिक नहीं है, यहां सब समान हैं और यदि समानवाद का भाव सत्य रूप में किसी सोसाइटी में है तो वह आर्यसमाज ही है। आज हम इस बात पर विचार करना नहीं चाहते कि आर्य समाज ने समानवाद के भाव का कितना प्रचार किया है, अपितु इस बात पर विचार करना चाहते हैं कि क्या आर्यसमाज में सच मुच समानवाद (Democracy) की स्पिरिट है? क्या क्रियात्मक रूप में (सिद्धान्त रूप में नहीं) आर्यसमाज में समानवाद के भाव हैं?

समानवाद की तह में, जहां से कि समान वाद प्रारम्भ होता है जो गुप्त-शक्ति छिपी रहती है वह "**पारस्परिक संघर्ष**" है । एक मुझ से बड़ा क्यों बने ? मैं भी उस के बराबर बन कर रहूंगा ? एक मुझ से क्यों ऊंचा समझा जाय और मैं उस से क्यों नीचा समझा जाऊं ? मैं भी तो अन्ततः मनुष्य ही मैं भी प्रयत्न कर उस के बराबर ही रहूंगा। इस प्रकार के भाव जिस सोसाइटी के अन्दर क्रियात्मक रूप में विद्यमान रहते हैं-जिन के हृदयों में इस प्रकार का पारस्परिक संघर्ष होता है (ईर्षा के रूप में नहीं) वहीं पहिले पहल समानवाद की जड़ जमती है । ऐसी ही सोसाइटियों में एक आदमी जाता है तो दूसरा आता है, वहां इस बात की कमी अनुभव नहीं की जाती कि इस कार्य के करने वाले मनुष्य कहां से मिलेंगे ? वहां मनुष्य तो बहुत से तैयार रहते हैं-हां एक मात्र चुनाव ही होता है ! ऐसी ही सोसाइटियां उन्नति-शील होती हैं, क्योंकि उन के प्रत्येक सभ्य के हृदय के अन्दर यह भाव जागृत रहते हैं कि एक मनुष्य जो कुछ करता है, वह मैं भी कर सकता हूं । इस बराबरी में वे लोग एक दूसरे पर फबतियां नहीं उड़ाते किन्तु क्रियाशील होकर अपने को अधिक २ उन्नत रूप में लाकर समाज-सोसाइटी की सेवा के लिए अपने आप को अधिकाधिक उपयुक्त बनाते हैं ! किन्तु जिस सोसाइटी में इस के विपरीत यह भाव होते हैं कि "अजी हम में यह शक्ति है ही कहां ? हम यह कार्य थोड़ा ही कर सकते हैं ? हमारे अन्दर वह बल ही नहीं है, हम इस कार्य के सर्वथा अयोग्य हैं" वहां न तो पारस्परिक संघर्ष ही पैदा होता है और ना ही समानवाद का भाव हृदय में लहरें मारता है, वहां तो जो एक कोई भाग्यवश कार्य में आगे बढ़ गया वही सब कुछ हो जाता है, वह जब चला जाता है तो सारा काम चौपट होजाता है, उसी पर सारा दारमदार होता है और अन्त में इसी का यह फल होता है कि सिर झुका २ कर व्यक्तियों को पहले कुछ बड़े रूप में बदला जाता है और अन्त में उन्हें देवताओं का स्थान दे दिया जाता है ।

यहां पर यह ध्यान में रखना चाहिये कि यह नहीं कि समानवाद में मनुष्य एक दूसरे की इज्जत नहीं करते । कार्य का आदर होता है और प्रत्येक उस आदर-बुद्धि को बनाये हुए अपने को उस कार्य के लिये अधिक २ योग्य बनाता जाता है । समानवाद में यदि सब मनुष्य समान अधिकार की दृष्टि से देखे

जाते हैं तो इस का मूल निमित्त यही होता है कि सब मनुष्य कम से कम क्रिया-शील अवश्य होते हैं। हमारा यह पूर्ण विश्वास है कि जिस सोसाइटी में समानवाद का सिद्धान्त कूट कूट कर भरा है, जिस का प्रत्येक सदस्य एक समान क्रिया-शील और उन्नतिशील है वह सोसाइटी कभी अवनत नहीं होसकती। वह हमेशा आगे ही आगे बढ़ती जाती है, गाड़ियां वही आगे आगे बढ़ती जाती हैं जिन का यदि एक इञ्जन बदलता है तो दूसरा तय्यार रहता है।

इस में कोई भी सन्देह नहीं कि आर्य समाज में समानवाद कम से कम सिद्धान्त-रूप में तो अवश्य है किन्तु यह कहते हुए हमें अत्यन्त दुःख होता है कि आर्य समाज में यह भाव क्रियात्मक रूप में नहीं है और यदि है तो वह बहुत ही थोड़ा है, यह कह देने से ही काम नहीं चलता कि सब के समान अधिकार हैं। जिस समाज या सोसाइटी में उन अधिकारों के लिए यत्न नहीं किया जाता वहां आप से आप ही कुछ समय के अनन्तर **एक वाद** चल पड़ता है। यदि आर्य-समाज में यह भाव जागृत होता तो आर्यसमाज सच मुच कहीं का कहीं पहुंच जाता। आर्यसमाज में काम करने वाले बहुत थोड़े हैं। लोग इन कामों के लिए अग्रसर नहीं होते। हमारा यह भी अनुभव है कि आर्यसमाज में **पारस्परिक संघर्ष** शक्ति का भी अभाव है। यहां लोग अपने आप को अनेक कार्यों के लिए योग्य नहीं बनाते किन्तु यही कहते हुए सुने जाते हैं कि हम में यह शक्ति नहीं है। किसी आर्यसमाज के सभासद से यह पूछो कि तुम ने अब तक आर्य भाषा या संस्कृत का अध्ययन क्यों नहीं किया? तो वह यही उत्तर देगा कि मुझ में तो यह सामर्थ्य ही नहीं है। यदि किसी नये आर्य-सभासद को मन्त्री या प्रधान चुना जाता है तो वह उस से इन्कार करता है, कहता है कि मैं तो इस के योग्य ही नहीं हूं। यह भाव उस के हृदय में जागृत ही नहीं होता कि मैं इस कार्य को कर दिखाऊंगा। मैं भी अपनी शक्तियों को इस पद पर रहता हुआ आजमाऊंगा। यही कारण है कि यदि आप आर्यसमाजों की अन्तरङ्ग-सभाओं के वृत्तान्तों को देखें तो यही पता लगेगा कि बरसों से वही मंत्री, वही प्रधान और वही अन्तरङ्ग सभा के सभासद चले आते हैं। यदि कहीं दुर्भाग्य से प्रधान या मंत्री एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदल जाते हैं तो वहां की आर्यसमाज का कार्य ढीला पड़ जाता है। दूर ही क्यों जायं, हमारी जो बड़ी आर्य

रङ्ग सभा है उसके सभासद भी प्रायः निश्चित हैं और आर्यसमाज जिन प्रतिनिधियों को चुन कर भेजता है, वह भी निश्चित हैं। इसका फल यही होता है कि फिर इनके बाद कार्य को संभालने वाले बड़ी कठिनाई से मिलते हैं। हमने तो यहां तक देखा है कि यदि कभी कोई १०, १२ साल तक रहा हुआ किसी आर्यसमाज का प्रधान अपने पद से हटाया जाता है तो वह न केवल इसमें अपना अपमान समझता है किन्तु आर्यसमाज को भी तिलाञ्जलि दे देता है। ऐसी अवस्थाओं में हमें भय है कि आर्यसमाज में सबका अधिकार बराबर रहेगा या नहीं और हमें यह कहते हुये बिलकुल भी संकोच नहीं है (हो सकता है इससे बहुत से लोग सहमत न हों) कि इस समय में भी आर्यसमाज सब सभासदों की समान सम्पत्ति नहीं है।

इसका कारण भी यही है कि इसके सभासदों में पारस्परिक संघर्ष का अभाव है। एक कारण अवसर का भी है-जो सभासद एक वार चुना गया और जब वह ही वारम्वार चुना जाता है तो इसका फल यह होता है कि वह तो अपने आपको अत्यन्त योग्य समझना प्रारम्भ करदेता है और दूसरे अपने आपको बिलकुल अयोग्य समझना प्रारम्भ करदेते हैं। यदि दूसरों को भी इन कामों के लिये अवसर दिया जाय तो वह भी इसमें आनन्द ले सकते हैं और अपने आपको योग्य बना सकते हैं। इसलिये हमारा यह विश्वास है जिसको कि हम विस्तार रूप में "आर्य" के किसी अन्य अङ्क में दिखलायेंगे कि प्रधान, मंत्री, अन्तरङ्ग सभाके सभासद तथा प्रतिनिधि चुनने की मियाद निश्चित होजानी चाहिये कि इतने वर्षों के बाद एक सभासद, प्रधान, मंत्री, अन्तरङ्ग सभासद तथा प्रतिनिधि नहीं रह सकता।

आवश्यकता इसबात की है कि आर्य-समाज में नये कार्यकर्ता पैदा किये जांय, किन्तु यह सब विना अवसर दिये नहीं होसकता। जब तक आर्य-सभासदों में पारस्परिक संघर्ष शक्ति जागती नहीं है और एक दूसरे से बढ़कर क्रियाशील नहीं होता है तब तक न तो समानवाद की स्पिरिट पैदा हो सकती है और न ही किसी प्रकार की उन्नति सम्भावित है। ऐसी अवस्था में यदि कुछ हो सकता है तो यही कि कुछ आदमियों की चले और कुछ की नहीं और आर्यसमाज में वर्तमान अवस्थाओं में हो भी यही रहा है।

समान-वाद इसको नहीं कहते कि अपने अन्दर जिस चीज़ की शक्ति नहीं है उसको पाने का यत्न तो न करना किन्तु अपने आप

को उसी आसन पर जबरन बैठाना । ऐसी हालत में हठात् ही नीचे आना पड़ेगा । स्पर्धात्मक क्रिया-शक्ति जब तक आर्यसमाज में जागृत नहीं होती और उसके सभासदों में यह भाव नहीं भरते कि हम सब कुछ कर सकते हैं-तब तक समानता के भाव बड़ी दूर हैं ।

इसलिये प्रत्येक आर्य सभ्य का यह कर्तव्य है कि आर्यसमाज के कार्या के लिये अपने को एक तो अधिकाधिक योग्य बनावे और दूसरा ऐसे अवसरों को प्राप्त कर अपनी सेवाओं से आर्यसमाज को उन्नति के शिखर पर पहुंचावे । तभी आर्यसमाज में समान-वाद की स्पिरिट आसकेगी ॥

ऐतरेय ब्राह्मण में तूष्णींशंस सूक्त।

(लेखक—श्रीयुत परमानन्द आर्योपदेशक)

वेद के पश्चात् आर्य्यों के लिए माननीय ग्रन्थों में ब्राह्मण ग्रन्थ सब से प्राचीन हैं । वेद स्वतः प्रमाण हैं तो यह परतः प्रमाण हैं, परन्तु प्रमाण होने में कोई सन्देह नहीं । सच तो यह है कि वेद के गूढ़ तत्त्वों को इन ग्रन्थों की सहायता के बिना खोलाही नहीं जा सक्ता । परन्तु यह क्या हैं इस को बहुत कम लोग समझते या समझने का यत्न करते हैं । आर्य्य समाज के सारे साहित्य में ऋषि दयानन्द के अतिरिक्त जिन्हों ने स्पष्ट ही इन का द्वार खटखटाया है और वेदार्थ करने में इन से सहायता लेने का उपदेश किया है, केवल श्री पं० शिवशंकर जी काव्यतीर्थ ने अपने अमूल्य ग्रन्थ 'वैदिकेतिहासादि निर्णय' में प्रकृत ऐतरेय ब्राह्मण की एक दो गाथाओं का उल्लेख किया है और उन की सङ्गति लगाने में बड़ा प्रशंसनीय प्रयास किया है । परन्तु दुःख की बात है कि आर्य्यसमाज के दूसरे विद्वानों ने इधर बहुत कम ध्यान दिया है और ब्राह्मण साहित्य को समझने और समझाने की कोई नियम पूर्वक चेष्टा नहीं हुई । इस के विपरीत यूरोपियन विद्वानों का परिश्रम यहां भी बड़ा सराहनीय है जिन्हों ने इन पुस्तकों का पारायण करके भली बुरी कुछ कल्पनाएं की हैं । विशेष करके प्रोफेसर मैकडानल ने जो ब्राह्मण ग्रन्थों का लक्षण किया है वह बड़े गहरे वि-

चार और गंभीर गवेषणा का द्योतक है और स्वतः बहुत कुछ माननीय है, आप के शब्द यह हैं:-

Theological Treatises. The chief purpose of the Brahmanas is to explain the mutual relation of the text and the ceremonial as well as their syombolical meaning with reference to each other .... To support their explanations of the ceremonial, they interweave exegetical, linguistic and etymological observations and introduce myths and philosophical speculations in confirmation of their cosmogonic and theosophic theories.

वास्तव में वेद को भी बहुत कुछ इसी ढंग पर पढ़ने और देखने की आवश्यकता है। Mystic (सूफी) अरविन्द घोष तो अपने वेदार्थ के आरम्भ दिवस से वेद को संकेत-मय मानते हुए उस के गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्वों को योग और यौगिक चमत्कारों और सिद्धियों की दृष्टि से प्रकट करते रहे हैं। परन्तु आप ने जो लेख 'Dayanand and the Vedas' शीर्षक वैदिक मैगजीन में दिया था उस में आप ने ऋषि दयानन्द के इस अपूर्व विचार और विश्वास के सन्मुख भक्ति पूर्वक सिर झुका दिया था कि वेद विज्ञान के भी भण्डार हैं; जैसे कि वह आध्यात्मिक सत्यताओं के स्रोत हैं। निरुक्तकार महर्षि यास्क भी ऐसा ही मानते हैं। परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत और आध्यात्मिक तीन प्रकार की वृत्तियां वेद में स्वीकार करते हुए वह प्रत्यक्षर्षी वेद में विज्ञान मानते हैं और उस की पुष्टि में स्थान २ पर ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रमाण 'इति ह विज्ञायते' इन शब्दों के साथ देते हैं।

इन्हीं शब्दों से यह भली भांति समझा जा सक्ता है कि निरुक्तकार ब्राह्मण ग्रन्थों का वैदिक साहित्य में क्या स्थान समझते थे? वेद-प्रतिपादित अधिदैवत, विज्ञान-परक तत्त्वों की विवेचना करना ही ब्राह्मण ग्रन्थों का मुख्य प्रयोजन है-यह उपर्युक्त शब्दों से सिद्ध होता है। इस के अतिरिक्त एक बात और विचारणीय है। प्रकृत ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेद का ब्राह्मण है; ऋक् शब्द 'ऋच् स्तुतौ' इस पाणिनीय धातु से बना है। जिस ज्ञान में पदार्थों की स्तुति, उनका गुण वर्णन, लक्षण किया गया हो वही 'ऋक्' शब्द का अभिधेय हो सक्ता है। अब कोई बड़ी युक्ति देने की आवश्यकता नहीं कि कम से कम ऋग्वेद का यह ब्राह्मण—ऐतरेय—पदार्थ विज्ञान से भरपूर है।

परन्तु उन भाष्यकारों की बुद्धि को क्या कहें जिन्होंने इन क्रिया-बहुल ग्रन्थों में यज्ञ

ही जा ढूंड़े हैं। जहां इन भाष्यकारों का उनके शब्दार्थ कर देने के लिये कृतज्ञ होना पड़ता है वहां यज्ञों के साथ जिन अश्लील, असंबद्ध बीभत्स और असंभव बातों को जोड़ा गया है उनको पढ़ और सुनकर लज्जा के मारे सिर झुकाना पड़ जाता है। कोई आश्चर्य नहीं यदि इन याज्ञिक अनर्थों को देखकर बुद्ध के आत्मा ने विद्रोह कर दिया हो और विद्रोह के क्षणों में कह दिया हो कि यदि वेद ऐसे हिंसायुक्त उपदेशों से परिपूर्ण हैं तो मैं ऐसे वेदों को दूर से नमस्कार करता हूं और यदि ऐसे वेद तुम्हारे परमात्मा की वाणी हैं तो मेरा उस परमात्मा को भी प्रणाम है। आज यदि बावन करोड़ बौद्ध संसार के अन्दर नास्तिकता की झण्डी फहरा रहे हैं और आस्तिक जगत के लिये एक स्थिर भय का कारण बने हुए हैं तो इसकी उत्तरदायिता बहुत कुछ इन्हीं याज्ञिक आचार्य्यों और भाष्यकारों के सिर पर है। आज पं० नेकीराम शर्म्मा जनता की वाह २ लेने के लिये भले ही ७५ करोड़ (इन ५२ करोड़ बौद्धों को जोड़ कर) आर्य्य गिन लें परन्तु जब तक जामदग्न्य परशुराम के unsparing (किसी को न छोड़ने वाले) परशु को लेकर इस याज्ञिक अनाप शनाप की समाप्ति न कर दी जायगी तब तक इन बौद्धों को हम आर्य्य-वैदिक धर्म्म का निमंत्रण नहीं दे सकते, और न उन्हें अपनी संख्या बढ़ाकर दिखलाने के लिये अपने में गिनने का हमें अधिकार है। इसी ऐतरेय ब्राह्मण का वपा-उत्खिदन स्थल पढ़ो और उसकी वह मनमानी संगति देखो जो भाष्यकार ने लगाई है। बड़ी घृणा आती है, और हृदय कांप उठता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो हम किसी भूत-नगरी में आगए हैं। डायरशाही इसके आगे क्या वस्तु है! सीमा प्रान्त के पठानों की निर्दयिता और कठोरता भी यहां मात पड़ जाती है। इसी प्रकार माता कौशल्या के साथ घोड़े का संभोग इत्यादि शाक्त लीलाएं यज्ञों के नाम पर की गई हैं जिन्हों ने आर्ष साहित्य के समुज्ज्वल भालपर सदा के लिये कलंक का टीका लगा रक्खा है जो न जाने कब उतरेगा?

अस्तु! महर्षि दयानन्द और उनके अनुगामी कतिपय आर्य्य विद्वानों के अतिरिक्त स्वर्गवासी कलिकाता विश्वविद्यालय के लैक्चरार, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के प्रतिष्ठित सदस्य और ग्रन्थकार, निरुक्तालोचन और ऐतरेयालोचन ग्रन्थों के संपादक, वेदतीर्थ और ऋक्तीर्थादि परीक्षाओं के परीक्षक और सहस्रों वेद-निरुक्त-विद्यार्थियों के अध्यापक, ऋषि दयानन्द के काशी शास्त्रार्थ के उभय-पक्षे

खक और मध्यस्थ पं० सत्यव्रत सामाश्रमी ऋषि के परलोक गमन के दस ही बारह वर्ष पश्चात् अपना यह सिद्धान्त प्रतिपादन करते हैं कि अखिल ज्ञान के भण्डार वेद में समस्त विज्ञानों का उपदेश है और होना चाहिये। आप वेद को 'विद्यापरपर्य्याम' यह विशेषण देते हुये अपनी प्रगाढ वेद-भक्ति का परिचय देते हैं। और जहां २ ब्राह्मण ग्रन्थों में इन याज्ञिक भाष्यकारों ने अप्रासंगिक यज्ञार्थ घुमेड़ा है उसको देखकर आप अपार शोक प्रकट करते हुए लिखते हैं:—

हन्तैवं पदार्थ विज्ञान शिक्षोपयोगीनि बहूपदेशपूर्णानि चैतादृशान्युत्कृष्टतमान्यधिदैवत व्याख्यानान्यपहाय परमात्मज्ञान पिपासूनां तर्पणानि अध्यात्म व्याख्यानानि च विलोप्य अधियज्ञ व्याख्यानान्येवाभाषत सर्व वेद भाष्यकारः सायणाचार्य्यस्तथाऽन्योऽन्योऽपि, उक्तं च तेन सायणेन ऋक्संहिता भाष्येऽस्य वामीय सूक्त व्याख्यानारम्भे 'एवमुत्तरत्राप्याधिदैवत परतया ध्यात्मपरतया च योजयितुं शक्यम्, तथापि स्वारस्याभावात् ग्रन्थ विस्तारभयाच्च न लिख्यते, यत्र द्वा सुपर्णेत्यादौ स्फुटमाध्यात्मिको ह्यर्थः प्रतीयते तत्र तमेव प्रतिपादयामः'।

वस्तुतो ध्वान्ताच्छन्न विज्ञानकालिका नाम शेषशेमुषीमतामपि तेषां सायण महीधरादीनामाधि दैवतार्थतोऽपि मंत्राभिप्रेतं प्रकृत विज्ञानं नैव स्फुरितं सम्यगिति तच्छोच्यमेवाभवत्।

अर्थ—शोक है इस प्रकार के पदार्थ विज्ञान की शिक्षा में उपयोगी, नाना प्रकार के उपदेशों से पूर्ण ऐसे २ उत्तम अधिदैवत व्याख्यानों को छोड़, परमात्मा के ज्ञान के प्यासे लोगों को तृप्त करने वाले अध्यात्म व्याख्यानों का लोप करके, याज्ञिक व्याख्यान ही सर्व वेद भाष्यकार सायण करता चला गया, उस के पीछे दूसरे भाष्यकार भी इसी पद्धति पर चलते गए। सायण ने स्वयं यह बात ऋक्संहिता भाष्य में कही है 'इसी प्रकार दूसरे स्थानों पर भी अधिदैवत और अध्यात्मिक पक्ष में इन मन्त्रों को लगाया जा सक्ता है, परन्तु मेरी इस में दिलचस्पी न होने के कारण और ग्रन्थ के विस्तार के भय से यह व्याख्यान यहां नहीं लिखे जाते। जहां 'द्वा सुपर्णा' इत्यादि मन्त्रों में स्पष्ट ही अध्यात्म अर्थ प्रतीत होजाता है वहां वही अर्थ हम लिखेंगे।

"वस्तुतः अन्धकार से विज्ञान के ढक जाने के काल में उत्पन्न, परम बुद्धिमान् सायण

और महीधरादि को अधिदैवत अर्थ से मन्त्र का अभिप्रेत प्रकरणानुकूल विज्ञान भलीभांति सूझा ही नहीं, यह शोक का अवसर है" ।

इस प्रकार वेद और ब्राह्मण के विषय में लम्बी भूमिका द्वारा सामान्य निवेदन करके हम ऐतरेय ब्राह्मण के तूष्णींशंस सूक्त पर आते हैं ।

देवा वै यदेव यज्ञेऽकुर्वंस्तदसुरा अकुर्वंस्ते समावद्वीर्य्या एवासन्न व्यावर्तन्त ततो वै देवा एतं तूष्णींशंसमपश्यंस्तं तमेषामसुराः प्रत्यबुध्यन्त ततो वै देवा एतं तूष्णींशंसं बज्रमपश्यंस्तमेभ्य उदयच्छंस्तमेषामसुरा न प्रत्यबुध्यन्त तमेभ्यः प्राहरंस्तेनैनानप्रतिबुद्धेनाघ्नं स्ततो वै देवा अभवन् परासुरा भवत्यात्मना परास्यद्विषन् पाप्मा भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद । इत्यादि ।

अर्थ—जो कुछ देवता लोग यज्ञ में किया करते थे वह असुर लोग कर डालते । वह तुल्य बल युक्त होगए, अतः कोई भी नहीं हटने में आता था, तब देवताओं ने इस तूष्णींशंस को देखा । इस देवताओं के नए शस्त्र की असुर नकल न कर सके । तूष्णींशंस शस्त्र में सार वस्तु तूष्णीं (मौन भाव है । देवता जिस २ वज्र को असुरों पर फेंकते थे उस २ को असुर लोग जान जाते थे, फिर (जब) देवों ने इस नए वज्र को देख कर असुरों पर उठाया तो असुर लोग उन (देवों) के इस शस्त्र को न जान पाये, उन अज्ञान मूढ असुरों को देवताओं ने तब इस वज्र से मार डाला । फिर देवों की विजय हुई और असुरों की हार, जो इस तत्त्व को जान जाता है उस की अपनी तो प्रतिष्ठा होजाती और उस का पापी शत्रु नष्ट होजाता है ।

इस तूष्णींशंस के विषय में सायणाचार्य्य का यह लेख है:—

सर्वेष्वपि शस्त्रेषु ऋचः पठ्यन्ते, अस्मिंस्तु शस्त्रे न पठ्यन्ते इति तूष्णींशंसत्वमृक्पाठराहित्येन गूढम्, योऽयं तूष्णींशंस एषः 'तूष्णीं सारो वै' ऋक्पाठराहित्यलक्षणः तूष्णींभाव एवास्मिन् शस्त्रे शस्तः । असुराणांतु निष्फलं तूष्णीमवस्थानमिति निश्चयः ।

सब शस्त्रों में ऋचाएं पढ़ी जाती हैं परन्तु इस शस्त्र में नहीं पढ़ी जातीं, अतः तूष्णींशंस शस्त्र ऋचाओं के पाठ के न होने से गूढ है, इस शस्त्र में ऋचाओं के पाठ का न होना रूप जो मौनवृत्ति है वही प्रशस्त है, असुरों का चुपचाप रहना निष्फल होता है यह निश्चय है ॥

सायण के शब्द कैसे फीके और निःसार

हैं, कथा उसको सचाई की ओर धकेल कर ले जाती है परन्तु वह अभीष्ट स्थान पर पहुंच-कर भी फिर पीछे को लौट जाता है। मौनवृत्ति के सुन्दर और अमूल्य उपदेश को जो यहां दिया गया है वही अनुभव कर सके हैं जिन्हों-ने ब्राह्मण-ग्रन्थों को देखते हुए याज्ञिक चश्मा आंखों पर न चढ़ाया हुआ हो।

मनुष्य के अन्दर देवासुर संग्राम सदैव चलता है। दैवी और आसुरी वृत्तियां सदैव एक दूसरे का विरोध करती रहती हैं। साधारण (normal) अवस्थाओं में इन दोनों का बल समान होता है, परन्तु एक सामान्य (average) मनुष्य भी तूष्णींसार तूष्णीं शंस शस्त्र की सहायता से आसुरी वृत्तियों को वशीभूत कर लेता है, उसकी दैवी वृत्तियां प्रबल हो जाती हैं और आसुरी वृत्तियों का नाश हो जाता है। वानप्रस्थाश्रम में मुनियों की सी मौनवृत्ति धारण करके जो मनुष्य साधन करते हैं उनके पापी द्वेषी शत्रु अपने पाप के कारण ही क्षीण हो जाते हैं और वह विश्व-मित्र बनकर सन्या-सावस्था में वृत्रहा, इन्द्र, शुद्ध जीव बन जाते हैं अन्य इंद्रियों की नाईं बाणी का नियमन भी बड़ा कठिन है। कई अंशों में यह उन से भी बढ़कर दुष्कर सिद्ध होता है, जितेन्द्रिय लोगों में भी लोकैषणा देखी जाती है जिसे अंग्रेज़ी भाषा में That last infirmity of the human mind कहते हैं, अर्थात् यह मा-नवी मन की अन्तिम निर्बलता है। इस लोकै-षणा का यदि कोई प्रधान शस्त्र है तो वह यही बाणी है। लोकैषणा के अतिरिक्त अनृत-व्यवहार, गालीप्रदान, निन्दा, इत्यादि भी इसी से प्रवृत्त होते हैं। अतः इसका वशीकरण बहुत आवश्यक है। बाणी के द्वारा जैसे अन्त-रीय विचारों को प्रकट किया जा सक्ता है वैसे ही उन्हें छिपाया भी जा सक्ता है। पश्चि-मीय देशों के कुटिल राजनीति विशारद लोग इस बाणी का कैसा दुरुपयोग करते हैं उसे देखकर मौनावलंबन, मितभाषण की महिमा प्रतीत होती है। रघुकुल की सबसे बड़ी प्रशंसा कविकुलगुरु कालिदास ने यह लिखी है, 'सत्यायमित भषिणाम्' वह सत्य की रक्षा के लिये थोड़ा बोलते थे।' अंग्रेज़ी भाषा में भी एक कहावत है जिसका तात्पर्य यह है कि बाणी चांदी है परन्तु मौन सोना है।

वेद मतानुयायिओं को चाहिये कि इस अभ्यास से अपने जीवन को सफल करें और भारतवासियों के प्रिय कर्म 'गप्प शप्प' को छोड़कर वेद और तदनुकूल ब्राह्मणों आदि के स्वाध्याय में कुछ समय नित्य लगाएं। लेखक की यह प्रतिज्ञा नहीं कि उपर्युक्त सूक्त का

जो अर्थ उसने किया है वह सर्वथा ठीक है। लेखक का तो केवल इतना ही अभिप्राय है कि किसी प्रकार हमारी उक्त ग्रंथों के पठन-पाठन में रुचि हो। इस अभ्यास के लिये सब से अधिक समुचित समय वानप्रस्थ का है जब कि मनुष्य जीवन के सायंकाल में अपने चरित की समालोचना करता है और आत्म विकास के लिये प्रयत्न करता है। काश कि वैदिक धर्म्म में ऐसे वनस्थी सैकड़ों की संख्या में निकलें और अपने आत्मा का उद्धार करते हुए वेद के क्रिया-रूपेण प्रचारक बनें।

काश्मीर यात्रा।

इस वार फिर श्रीनगर के आर्योत्सव में सम्मिलित होने का कुरा श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के और मेरे नाम पड़ा। १७ जूलाई प्रातः काल हमने रावल पिंडी की ओर प्रस्थान किया और उसी दिन सायंकाल जेहलम पहुंच गए। जेहलम का समाज मन्दिर जेहलम नदी के तट पर स्थित है। उसके सामने एक बाजू में जूबिली घाट है जहां जेहलम नगर के सब बड़े २ सम्मेलन तथा उत्सव होते हैं। परिस्थिति रमणीय है, और जनता के लिये आकर्षण का एक विशेष साधन है। नदी का पानी अत्यन्त शीतल है, उस ओर से आया हुआ वायु ग्रीष्म ऋतु में विशेष सुख स्पर्श कराता है।

जेहलम महता अमीचन्द का निवासस्थान रहा है—उन अमी चन्द का जिन के भजन आर्य समाज के संगीत-साहित्य का एक मात्र भक्ति-भंडार हैं। मैं इन दिनों महता जी के भजनों का एक विशेष संस्करण तयार कर रहा हूं। इस संबंध में उनके जीवन वृत्तान्त की खोज थी। इस अवसर से लाभ उठा कर जितना हुआ, महता महाशय का वृत्त एकत्रित्त किया। आशा है 'अमीरस' के साथ उस रसीले भक्त भजनीक का संक्षिप्त वृत्तान्त शीघ्र आर्य जनता के सन्मुख रखूंगा।

जेहलम में दो ऐसे वृद्ध महाशयों के दर्शन हुए जिन्हों ने ऋषि दयानन्द को स्वयं देखा है। जी चाहता था कि उनकी आंखों को चूम लूं। उन में एक मास्टर बोधराज हैं जिनकी आयु सत्तर वर्ष से कुछ कम है। जेहलम में स्वामी जी के व्याख्यानों का प्रबन्ध इन्हीं मास्टर महाशय ने कराया था। मैंने ऋषि सम्बन्धी

जेहलम की घटनाओं के विषय में उनसे प्रश्न किये और मास्टर जी के उत्तरों का मिलान पं० लेखराम कृत जीवन चरित्र से किया। चरित के अक्षरशः ठीक पाया। पं० जी ने भी इन्हीं मास्टर महाशय से ऋषि जीवनी का संकलन किया था।

रात्रि के समय वहां व्याख्यान दिया और दूसरे दिन प्रातः काल रावल पिंडी की ओर चल दिए। वहां तीन दिन रहे। एक दिन श्री स्वामी जी का और दूसरे दिन इस लेखक का व्याख्यान हुआ। अहमदी मत के प्रचारक वहां विशेष उपद्रव मचा रहे हैं। हमारे पहुंचने से पूर्व की रात को अहमदी वेदों से ऋषि के नाम का सत्कार पेट भर गालियों से हो चुका था।

२१ जूलाई को हम श्रीनगर के लिये लारी में बैठे। सायं काल 'बगला' पडाव पर लारी ठैर गई और हमने रात भर वहां विश्राम किया। हमारे साथ भसौड़ (रियासत पटियाला) के पंच खड दीवान (नामान्तर से खालसा पार्लियामेंट) के प्रचारकों की एक टोली यात्रा कर रही थी। एक आध को छोड़ कर शेष सभी सैनिक सेवा से लौटे हुए थे। एक महाशय उन में बहुत वृद्ध थे। पांचों ककारों से सजे हुए यह सिक्ख सर्दार पटियाला महाराज से, जो उन दिनों काश्मीर में थे, मिलने जा रहे थे। इन महाशयों को अपने ही पन्थ का बहुत थोड़ा ज्ञान था और जब उनका पल्ला स्वा० स्वतंत्रानन्द जी जैसे सिख इतिहास के अपूर्व विद्वान् से अड़ गया तो विचारे मूक रहे बिना क्या करते। सिख इतिहास वर्तमान सिख पंथ की पालिसी का पोषक नहीं, इसके विपरीत इस नीति का अत्यन्त विरोधी है। 'सूर्य प्रकाश' आदि ग्रन्थों की साक्षि जो सिक्खों के अपने लिखे हुए हैं, खालसा पंथ के सर्वथा उलटी पड़ती है। अब सिक्खों का प्रयत्न यह है कि इस इतिहास का मन माना परिवर्तन कर दिया जाए। वर्तमान इतिहास में सिक्ख लोग हिन्दुओं का प्रक्षेप मानते हैं। यह सारी बातें इन महाशयों के साथ वार्तालाप करने से ज्ञात हुई।

सिक्खों की एक विचित्र बात का ज्ञान मुझे इसी यात्रा में हुआ। पंच खालसा दीवान एक प्रकार से सिक्खों का शुद्ध वैष्णव टोला है। यह किसी सिक्ख के हाथ का भी छुआ नहीं खाते। मांस खाते हैं परन्तु छूत छात में बड़े कट्टर हैं। मुझे यह देख कर खेद हुआ कि हिन्दू कोई भी रूप धारण करें, छूत का भूत इन के साथ रह जाता है।

२२ जूलाई के पश्चात् की रात हमने

बारा मूला में काटी। वहां के तहसीलदार महाशय श्रीयुत् देवी दित्ता जी के परिश्रम से बारा मूला में आर्य समाज स्थापित हो गया है। परन्तु इस बात का ज्ञान हमें तहसीलदार महाशय के दर्शन के साथ श्रीनगर पहुंच कर हुआ।

लारी में श्री स्वामी जी को तो आगे स्थान मिल गया था पन्तु मेरा आसन पीछे सामान के साथ था। वहां बैठने का अनुभव इस वार हुआ। सारा मार्ग पेटरोल की दुर्गन्धि ने नासिका पर पट्टी बांधे रखी। श्रीनगर पहुंच कर पता लगा कि जम्मू का रास्ता भी लारियों के लिये खुल गया है। इसका स्पष्ट परिणाम यह होगा कि पांव से चलने के लिये केवल गुजरात का मार्ग रह जाएगा। या दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिये कि काश्मीर की यात्रा प्रायः व्यापार की यात्रा हो जायगी, मनोविनोद की यात्रा नहीं रहेगी। आनन्द पांव से चलने में है, परन्तु जहां लारी के पीछे लारी जा रही हो, वहां तो धूलि ही मनुष्य का दम नाक में कर देती है। फिर दुर्गन्धि एक और शाप का बौछाड है जो धनाढ्यों का धन साधारण जनों के सिरों पर वर्षाता चलता है।

२३ जूलाई को हम श्रीनगर पहुंच गए। जम्मू की ओर से पंडित परमानन्द जी तथा स्ना० केशव देव जी और स्ना० रामेश्वर जी की टोलियां भी आगईं।

आर्य्य समाज के वृद्ध संन्यासी--श्रीस्वामी अच्युदानन्द जी महाराज एक मास पूर्व से ही यहां विराजमान थे। उनका वेदोपदेश प्रतिदिन समाज में होता था। उत्सव में भी उपदेश इन्हीं महात्मा के होते रहे। स्वामी जी को वेदमंत्र इतने कण्ठस्थ हैं कि किसी और विरले साधु वा उपदेशक को होंगे। फिर श्लोकों का भी इनके उपदेश में एक प्रवाह सा चला करता है। वृद्ध होने पर भी उत्साह की दृष्टि से युवक हैं। उपदेश में कृत्रिमता कदापि नहीं आती। जो हृदय में होता है, वह विना लाग लपेट मुख पर आ जाता है।

इस वार श्री नगर आर्य समाज ने अपना नया मन्दिर बनाना आरम्भ कर दिया है। पूर्व मंदिर नगर में है। कुछ समय हुआ, वहां मल के ढेर रहते थे, जिससे स्वास्थ्य के लिए वह स्थान अत्यन्त हानिकर था। यों भी श्रीनगर कुछ स्वच्छ स्थान नहीं। नया मंदिर हजूरी बाग में बन रहा है जो नगर वासियों के दैनिक भ्रमण का स्थान है। सायंकाल जनता की टोलियां चनारों की छाया में बैठी

मनोविनोद करती हैं घास से छाया हुआ-एक विशाल क्षेत्र मन्दिर के आगे पड़ा है। उपदेश की साधारण घोषणा कर देने से ही उपस्थिति अच्छी हो जाती है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह स्थान श्रीनगर के उत्तम स्थानों में से है। इस समय दो कमरे ऊपर के, अतिथियों के उतारे को लिए, और एक कमरा उन कमरों के नीचे साप्ताहिक सत्संग के निमित्त बन चुका है। डिज़ाइन बहुत बड़ा है। अभी अभीष्ट भवन का एक पक्ष भी समाप्त नहीं हुआ। कार्य कर्त्ताओं के परिश्रम से आशा है कि थोड़े समय में सम्पूर्ण मन्दिर बन जायगा आंगन का काम सारा बाग़ देता है। इस वार भी उत्सव खुले क्षेत्र में शामियानों के नीचे हुआ।

२४ अगस्त को नगर कीर्तन था। म० सन्तराम, म० बलराम और म० जसवन्त पहुंचे हुए थे। नगर कीर्तन में विशेष बात यह हुई कि अहमदी भाइयों ने नियोग के विरुद्ध ट्रैक्ट बांटे। जब से शुद्धि-आन्दोलन होने लगा है, अहमदी लोग अपने आपे में नहीं रहे। काश्मीर में भी यह लोग पहुंच चुके हैं। काश्मीर की जन संख्या ९५ प्रतिशतक मुसल्मान है और यह सभी बालात्कार से हिन्दुओं से मुसल्मान बनाए गए लोग हैं। ग्रामों में रहने वालों को इसलाम का पता कम है। परन्तु अहमदी इस भय से कि कहीं यह भी मलकानों की तरह इसलाम को आंखें न दिखा जायं, उन्हें नमाज आदि में पक्का करने का यत्न कर रहे हैं। इन मुसल्मानों के गोत्र और जातियां वही हैं जो काश्मीरी पंडितों की। कौल आदि सब जातियां इनमें पाई जाती हैं। एक पंडितजी ने जो अच्छे खाते भूमिहार हैं, मुझ से कहा कि काश्मीरियों के इस समय तीन भाग हो चुके हैं। एक काश्मीरी वह हैं जो पुरोहित का कार्य करते चले जाते हैं, दूसरे वह जो हैं तो हिन्दू, परन्तु फारसी आदि पढ कर राज सेवा करते हैं, तीसरे इसलामी हैं। यह सब रक्त-सम्बन्ध से भाई २ हैं। यही कारण है कि यहां के ब्राह्मण मुसल्मानों के हाथ का छुआ तो खा लेते हैं परन्तु बाहर से आए ब्राह्मणों के हाथ का भी नहीं खाते। अंग्रेजी कहावत के अनुसार रक्त जल की अपेक्षा गाढा सिद्ध हुआ है॥

काश्मीरी पण्डित अब अनुभव करने लगे हैं कि इस प्रकार अल्प-संख्य रह कर उनका जीवन-निर्वाह कठिनतासे होगा। किसी महाशय ने ठीक कहा था कि काश्मीरी पण्डित तो पिंजरे में पड़ा पक्षी है। मकान की दूसरी मंज़िल में बैठा अपनी सारी आवश्यकताएं मुसल्मान

सेवकों से पूरी कराता है। उसे पानी चाहिए तो मुसल्मान ला देगा। बाज़ार से कोई वस्तु क्रय करनी हो तो मुसल्मान क्रय कर लाएगा। नौका में जाना हो तो मुसल्मान माझी के खेने से ही जायगा। सनातन धर्मसभा के मंत्री महाशय ने मुझे बताया कि पिछले दिनों एक मंदिर मुसल्मान लोगों ने गिरा दिया था। यह वही मन्दिर है जिस के विषय में मुसल्मान पत्रों ने इतना बड़ा रौला मचाया था। उस के स्थान पर शीघ्रता से एक कब्रिस्तान बना दिया गया। कुछ हो, अन्त में राजाज्ञा हुई कि मन्दिर फिर से बना लिया जाए। मुसल्मानों ने लाख अड़चनें उपस्थित कीं। जब और किसी प्रकार वश न चला तो राजों और मज़दूरों ने काम करने से नकार कर दिया। हिन्दू श्रमी हैं नहीं कि अपने धर्म-स्थान का निर्माण अपने हाथों कर लें। मुझे काश्मीर के हिन्दुओं की इस विवशता पर दया आती है। यह लोग राज्य कर्मचारिता के विना किसी काम जोगे नहीं रहे। सरकारी विवरण बताते हैं कि काश्मीर के ब्राह्मणों में जो जनसंख्या का पहिले ही ५ प्रति शतक हैं १००० का प्रति वर्ष ह्रास होता है। यह लोग मांस मछली खूब खाते हैं और हैं इतने बोदे कि परमात्मा ही इन्हें रखें तो रखें। मांसाहार को शारीरिक पुष्टि का केवल मात्र सा बताने वाले ज़रा इस उदाहरण की ओर ध्या दें और हो सके तो अपना सिद्धान्त बदल लें। इस समय तक मुसल्मान मूढ़ रहे हैं। उन मूढ़ता को भित्ति बनाकर उनसे अधिक च ब्राह्मण वर्ग ने उस भित्तिपर ही अपने आधिप का भवन खड़ा किया है परन्तु मुसल्मानों जागृति आ रही है। वह अपने राजनैति अधिकारों की ओर ध्यान देने लगे हैं। स कार में उनके कई आवेदन पत्र जा चुके कि ९५ प्रतिशतक होने के कारण उन्हें उ अनुपात से राज्याधिकार मिलना चाहिए वह समय निकट है जब काश्मीर पंडितों औ मुसल्मानों की युद्धस्थली बन जायगा। मैं सुना, मुसल्मानों की ओर से यह अयुक्त मां भी की गई है कि यदि काश्मीर के मुसल्मा अपठित होने से राज्याधिकार के भागी न हो सकते तो पंजाबी मुसल्मानों को उन स्थान दिया जाए। अब काश्मीरी हिन्दुओं की एक मात्र आशा आर्य समाज है। शुद्धि विना पंडित कदापि नहीं जी सकेंगे। अपने दु का बोध उन्हें होने लगा है। परमात्मा करें उपाय का बोध भी शीघ्र हो। अब तो थोड़ा सा विलंब भी जाति की जाति को मृत्यु गढ़े में ले जाएगा।

२५ जूलाई से उत्सव आरंभ हुआ और ६ अगस्त तक लगातार व्याख्यानों और भजनों का तार बँधा रहा । यहां उत्सव दो होते हैं, एक आर्य समाज का, दूसरा कुमार सभा का । यह इकट्ठ एक दूसरे के आगे पीछे होजाते हैं । उपस्थिति, कहा जाता है, इस वर्ष अपूर्व थी । मुसलमान भाई भी आते और व्याख्यानों को टोकते रहे । एक दो सज्जनों ने पत्रों द्वारा भी छेड़ छाड़ करना चाही । उचित उत्तरों से उनका समाधान किया गया । शुद्धि आन्दोलनने मुसलमानों को भौंकासा दिया है। कई एक मुसलमानों को जो मंडप के चारों ओर मँडरा रहे थे, अन्दर आने की प्रार्थना की गई तो एक बोल उठा " यह लोग शुद्ध कर लेते हैं । हमारा अन्दर जाना आपत्ति से खाली नहीं ।" आर्य समाज के निरन्तर प्रचार से ही यह हौवे का सा भय उठ जायगा । इस वार पोलीस भी बात २ पर व्याकुल हो उठती थी । उसके शिक्षण का साधन भी निरन्तर प्रचार है । जब यह लोग इन वाद'विवादों के अभ्यस्त होलेंगे तो गड़बड़ के नाम मात्र से इतना न थर्राएंगे ।

काश्मीर पृथिवी पर का स्वर्ग कहलाता है । यह रमणीय स्थानों की भूमि है । पिछले वर्ष के वृत्तान्त में मैंने कुछ ऐसे स्थानों का वर्णन किया था । अपने पुराने परिचित डल-सरोवर निशात बाग तथा शालामार का फिर दर्शन किया । एक दिन हार्बिन देखने गए । हार्बिन श्रीनगर का जल-भंडार है । वहीं से पानी नलकों द्वारा नगर में लाया जाता है । काश्मीर राज्य सारा ही जलमय है । हार्बिन के रास्ते में हमें वेरी नाग स्मरण आया । पानी के छोटे २ वाह अत्यन्त वेग के साथ पत्थरों और कंकरों पर सिर पटकते बहे चले जाते हैं । उनका मधुररव, शीतल स्पर्श, विफल संस्राव वेदके 'सं सं स्रवन्तु नद्यः' का स्मरण कराता था ।

हार्बिन से लौटते हुए हम पुरातत्व विभाग के खोदे हुए पुराने मंदिरों को देखने गए । एक मंदिर जिसमें फव्वारों के निशान मिलते हैं कानिष्क के समय का 'निशात' प्रतीत होता था । पृथिवी तलपर की शिलाएं बता रही थीं कि यह मन्दिर बौद्ध हैं । स्थान २ पर चित्र खुदे हुए थे और उन सब का ढंग बौद्धिक चित्रों कासा था ।

श्रीनगर से १३ मील की दूरी पर गान्धर बल है । नाव के रास्ते यह अन्तर और लंबा हो जाता है । जेहलम नदी है ही कुछ ऐसी टेढ़ी मेढ़ी कि कहीं पहाड़ पर चढ़कर देखो तो ऐसा प्रतीति होता है कि एक लंबा चौड़ा सांप पग २ पर चक्र काटता चला गया है । रात्रि के मध्य के चले हुए दूसरे दिन मध्याह्न में वहां पहुंच जाते हैं । चांदनी रात

और फिर चलते हुए दरिया का तरंगमय जल ! विचित्र दृश्य था। गुरुकुल की 'जीवन नौका बहती है' याद आती थी।

गांधर बल से मील दूर 'खीर भवानी' है यह एक प्रसिद्ध मन्दिर है। महाराज श्रीनगर में प्रवेश करने से पूर्व इसके दर्शन करते हैं। प्रत्येक अष्टमी और पौर्णमासी को वहां मेला होता है। ज्येष्ठ और आषाढ़ में इन मेलों का समारोह विशेष होता है। स्थान सुन्दर है। रास्ता भी रमणीय है। परन्तु जहां देवी का स्थापन हुआ है, वहां जाते ही दुर्गन्ध आने लगता है। देवी के एक दो हाथ वर्ग मंदिर के चारों ओर पानी का गहरा ताल है जिसमें रोज़ खीर, फूल, पूदना आदि डाले जाते हैं। इस से सड़ांद पैदा हो गई है। किसी समय किसी हैल्थ औफिसर ने प्रस्ताव किया था कि इस ताल को साफ़ कर दिया जाए। सारी नागरिक सभा रुष्ट हो गई थी कि हमारे धार्मिक भावों पर आघात किया जा रहा है। सुना तो यह था कि उन हैल्थ औफिसर पर अभियोग चलाने का प्रस्ताव भी हुआ था।

पास ही मुसल्मानों की एक 'ज़ियारत' है। खीर भवानी रक्षा की अति से रोग का स्रोत है, तो वह ज़ियारत रक्षा के अभाव के कारण अपवित्र पड़ी है।

मानस बल गान्धर बल से ५ मील दूर है वह पहाड़ों से घिरी हुई पानी की एक झील सी है। एक ओर के पहाड़ों पर वृक्ष हैं बेलें हैं, बूटे हैं। दूसरी ओर रुंड मुंड पर्वत खड़े हैं। प्रकृति नटी के खेल हैं।

इतनी ही दूर अंगूरी बाग है जिसमें लगभग एक मील की लंबाई तक केवल अंगूर की बेलें चली गई हैं। काश्मीर की अंगूर मीठी नहीं, खट्टी होती है। इस से शराब बनती है। अंगूर खाने के काम नहीं आता।

सोन मार्ग के रास्ते में लोहे का पुल आता है। वह स्थान भी हमने देखा। पहाड़ों की दो शृंखलाओं के बीच में कलरव करती हुई नदी अपने सुहावने कलोलों में मस्त चली जाती है। यह इस ओर का राम बन है, या उस से भी कहीं सुन्दर स्थल है। जी ठहरने को चाहता था, परन्तु कर्तव्य का बुलावा लौटने को बाधित कर रहा था। भारी हृदय के साथ हमने पग उठाए और शीघ्र २ चले आए।

काश्मीर कभी ऋषियों की भूमि था। आज भी पुराने पंडितों के मस्तिष्क का निचोड़ समय २ पर प्राचीन पुस्तकों के रूप में उपलब्ध होता रहता है। यूरोप के पुस्तक-खोजियों ने कई अनमोल ग्रन्थ-रत्न यहां से प्राप्त किये हैं। कई शताब्दियों का यहां आया हुआ

सलाम अपना अलग साहित्य नहीं बना
का। आज भी काश्मीर का अभिमान संस्कृत
हित्य से है। हृदय फटता है जब यह देखा
ता है कि पुराने पण्डितों की बस्ती में आज
हित्य के घोर शत्रुओं का डेरा है। इसलाम का
अत्याचार अक्षन्तव्य है कि धुरंधर पंडितों
९५ प्रतिशतक सन्तति को अपने पूर्वजों
सभ्यता, साहित्य, आचार, विचार सब
विच्छिन्न कर दिया है। आज काश्मीर में
स्कृत तो क्या, आर्य भाषा को भी स्थान नहीं
लता। रावलपिंडी से श्रीनगर जाते हुए
वल एक संकेत-पट्टिका ऐसी मिली जिसपर
गरी अक्षरों में '**खबरदार**' लिखा था, और वह
ट्टिका भी टूटी फूटी तथा टूटे फूटे अक्षरों में
खी हुई थी। यह मानो काश्मीर राज्य में आर्य
ाषा की अवस्था का संक्षिप्त चित्र था। एक
न्दू राज्य में उर्दू का प्राधान्य, और वह भी
हां जहां संस्कृत के प्रकाण्ड पंडितों की आत्मा
ई शताब्दियों से उन के ग्रन्थों में बोल रही हो,
नके पांडित्य का अपमान नहीं तो क्या है।
ाखिर इस अपमान का उपाय क्या? हमतो
हते हैं और फिर२ कहते हैं:—"आर्यसमाज।
क मात्र आर्यसमाज"

श्रीनगर में आर्यसमाज के सभासदों की
ख्या केवल १८ है जो अत्यन्त उत्साह-
भंजक है। जनता की सहानुभूति का पता
कुछ उत्सव की उपस्थिति से लगता था कुछ
इस बात से कि चन्दा साढे चार हजार हुआ।
समाज के प्रायः सभासद पंजाबी हैं।
काश्मीरी गिने चुने हैं। एक काश्मीरी भाई
के हां भोजन करने से यहां के आहार का
पता लगा। प्रायः चावल और करम का शाक
(तेल में तला हुआ) खाते हैं। और भी बहुत
प्रकार के शाक मिलते हैं जो धनी लोगों का
आहार हैं। पानी की बहुतायत के कारण
शाक में पानी की अधिकता होती है। यही
अवस्था फलों की है। आलूबुखारा कई प्रकार
का पाया जाता है। नाशपाती, बटगं, बग्गू,
सेब, सब पानी से पूर्ण होते हैं। कुछ इनके
कारण से, और कुछ इसलिये कि पसीना कम
आता है, लघुशंका के लिये बार २ जाना
पड़ता है। यहां बद्ध-कोष्ठ नहीं होता परन्तु जल
की अधिकता से अजीर्ण का रोग बहुत रहता है।
काश्मीरियों के मुखों पर लालिमा नहीं पाई
जाती। संग्रहास का वर्णन हम ऊपर करही
चुके हैं।

हम तो काश्मीर में आर्य समाज की स्थिति
का विचार कर रहे थे। आहार की बात प्रसंग
वश बीच में आगई। काश्मीरी और पंजाबी
आपस में ओपरे २ से रहते हैं। पंजाबियों

को शिकायत है कि काश्मीरी उनके साथ खाते पीते नहीं। काश्मीरी कहते हैं कि पंजाबी हमारे हां खा तो लेते हैं परन्तु इनके संबन्ध और संस्कार पंजाब में होने से इन्हें स्वयं खिलाने का अवसर नहीं होता। सब से घनिष्ट संबन्ध रक्त का संबन्ध है। यदि आर्य समाज भिन्न २ प्रान्तों में यह संबन्ध स्थापित कर सके तो आर्य जाति की एक अत्यन्त कड़ी कठिनाई का निवारण हो जाए। दूर २ के आर्य भाई २ होकर मिल जाएं।

काश्मीर में प्रचार काश्मीरी भाषा द्वारा ही हो सक्ता है। शुद्धि का काम भी इसी भाषा द्वारा होगा। स्वयं काश्मीरियों को इस कार्य के लिये उद्यत करना होगा। या फिर ऐसे आत्मत्यागी उपदेशक हों जो काश्मीर को अपना घर बनाएं। यहां की मट्टी में मट्टी हों। यहां के होजाएं। ब्रह्मचारी लोग जिन्हें घर का पाश न हो, इधर आएं, जैसे पं० धर्मदेव मद्रास गए हुए हैं। यहां रहें, यहां की भाषा सीखें। यहां के लोगों में मिलें जुलें। अन्ततः यहीं विवाह करें, यहीं उनकी सन्तति हो। तब आर्यधर्म की पोद यहां दृढ़ता से लग सक्ती है।

इस समय सनातनियों और समाजियों को मिलाकर शुद्धि-संघ बनाने की आवश्यकता है। संगठन का काम पंजाबियों के हाथ में है और प्रचार का कार्य काश्मीरियों के हाथ में। देहली और अमृतसर के काश्मीरी पंडितों ने शुद्धि संबन्धी प्रस्ताव स्वीकार कर यहां भेजे हैं। यहां के सनातन धर्मियों ने वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिये हैं। इस से पूर्व भी यहां शुद्ध हुए भाइयों को सनातनियों ने अपने साथ मिलाने में पूरी उदारता से काम लिया है। देखें! इन आटे में नमक के तुल्य काश्मीरी पंडितों का भाग्य-भविष्य आगे क्या दिखाता है।

काश्मीर भूमि में उलटी सीधी शाखा भी डाल दीजाए तो वह सहसा फूट उठती है और थोड़े ही समय में अंकुर और फिर उस से वृक्ष बन जाता है। देखना यह है कि धर्म का बीज इस उर्वरा भूमि-माता की गोदी में पड़ा हुआ फूलता फलता है या उसके साथ इस के विपरीत व्यवहार होता है। काश्मीर की कन्दराओ! बोलो। पुरातन पंडितों की भाषा में बोलो और हमें आश्वासन दो कि तुम अभी सजीव हो, सबल हो, सोत्साह हो।

चमूपति।

संपादकीय ।

पं० पूर्णानन्दजी का देहान्त ।

आर्य समाज के वृद्ध महोपदेशक पं० पूर्णानन्दजी चल बसे । पण्डितजी ने आर्य समाज की कितनी सेवा की है, इसका पूरा अनुमान आर्य समाज के वृद्ध कार्य-कर्ता ही लगा सकते हैं जिन्होंने पण्डित जी का आर्य समाज में प्रवेश और उस समय से लेकर अब तक की सारी स्थितियां देखी हैं । पण्डित जी बाल-काल में सन्यासी हो गए थे । किस प्रकार हुए—यह बताना उनके जीवनी-संपादक का काम है । काशी में विद्याभ्यास कर रहे थे । उनके साथ उन्हीं के गुरु एक सन्यासी महात्मा के पास एक उदासी भी पढ़ने जाता था । पूर्णानन्द जी उसे पढ़ाने का विरोध करते कि यह अन्य पन्थ का है । दैव संयोग से काशी में विषूचिका का कोप हुआ । पूर्णानन्द रुग्ण हो गए और उसी उदासी न जिसके पाठ में यह विघ्नरूप होरहे थे, विना उपकार जिताए इनकी सेवा की । अब तो उदासी इनको आत्मवत् होगया । वह उदासी आर्य समाज में आता जाता था। उसके संग यह भी आर्य समाज में जाने लगे और अन्त को ऐसे गए कि वहीं के हो रहे ।

स्वामीजी सिन्ध के थे । सिन्ध जाने में इन्हें संकोच था परन्तु सभा वालों ने आग्रह कर इन्हें सिन्ध भेज दिया । वहां पहिचाने गए और सम्बन्धियों के हठ तथा आर्य भक्तों के संमन्त्रण से गृहस्थ होना स्वीकार कर लिया । इस प्रकार स्वामी से पंडित हुए ।

पंडितजी ने कई धडल्ले के शास्त्रार्थ किये हैं । बड़े २ वाग्विशारदों को इस महरथी ने अवाक् किया है ।

पंडितजी में वीरता कूट कूट कर भरी थी । वृद्ध होने पर भी उत्साह युवकों का सा था । गाड़ी में यात्रा कर रहे हैं और पठानों से पल्ला अड़ा है । दे चपत मारते हैं, और लाल हुए खड़े हैं कि अभी और प्रहार करेंगे ।

पंडित जी की प्रचार संबंधी लगन के क्या कहने ? इस कार्य के लिए तन मन धन अर्पण था। नवां शहर की घटना है कि वहां पहुंचते ही एक दिन किसी अज्ञात स्थान पर अपना व्याख्यान आरम्भ कर दिया । श्रोताओं में सब विरोधी । फिर यह ठहरे खंडन के धनी । थोड़ी ही देर में कंकरों की वर्षा होने लगी । व्याख्यान चालू रहा । धूर्तों ने चारों ओर से धूलि वर्षाई यहां तक कि यह अपना मुहं शिर लपेट कर नीचे बैठ रहे । दूसरे दिन फिर वही पंडितजी और वही व्याख्यान !

कहीं प्रचारार्थ गए हुए थे कि लड़के के रुग्ण होने की सूचना मिली। कहा शास्त्रार्थ पूरा हो जाए तो लौट जायंगे। शास्त्रार्थ के अनन्तर समाचार मिला कि पुत्र का देहान्त हो चुका है। कहा, अब क्या जाना है? वहां से प्रचार पर चले गए और कई दिन पीछे प्रोग्राम पूरा कर के ही घर लौटे। धर्मपत्नी ने उलाहना दिया तो कहा "जब मृत्यु हो ली थी, मैं क्या करता?" संस्कार तो आपने कर ही दिया होगा।

पंडित जी अपना अन्तिम रोग अफ्रिका से लाए थे। पहिले भी अफ्रिका जा चुके थे परन्तु इस वार का जाना जगत् से जाना हुआ। लौटे सही पर केवल मरने के लिये।

स्वीकार-पत्र तक में जो पंडित जी अपनी दाय के संबंध में छोड़ गए हैं, वही प्रचार की लगन ही झलक रही है। पंडित जी की कन्या और उसका पति उस समय उनकी दाय के भागी हो सकते हैं, यदि वह आर्य धर्म के प्रेमी हों। धर्म के लिये कैसा अविच्छेद्य प्रेम है!

हमने बटाले में पंडित जी के अन्तिम दर्शन किये थे। उनका देहान्त लाहौर में हुआ जब हम काश्मीर के उत्सव में सम्मिलित थे। पंडित जी अन्त समय तक धैर्य धारे रहे। रोग का कोप ही बता रहा था कि इस व्याधि का अवसान मृत्यु है। जानने वाले जानते थे कि आर्य समाज का यह वृद्ध महारथी अब कोई दिन का ही मेहमान है। सो वही हुआ।

हम पंडित जी की स्मृति को अपनी श्रद्धा की भेंट समर्पण करते हैं और उनके परिवार से हार्दिक सहानुभूति का प्रकाश करते हैं। परमात्मा पंडित जी का सा धैर्य उन के उत्तराधिकारियों को दें।

जानकार लोग पंडित जी की जीवनी संपादित करदें तो अच्छा हो। यदि सब अपना २ अनुभव और परिचय लेखबद्ध कर 'आर्य' में भेजते जाएं तो हम उसे पुस्तक का रूप दे देंगे। या सामग्री मिल जाने पर हम स्वयं भी लेख-कार्य करने को उद्यत हैं।

हा! पंडित रामभजदत्त!

हम एक मृत्यु का मातम मना ही रहे थे कि ठीक एक दिन के अन्तर पर एक और मृत्यु हुई। यह मृत्यु पं० पूर्णानन्द जी के पुराने साथी पं० रामभजदत्त जी की है। पंडित जी प्रतिनिधि सभा के प्रधान रहे हैं। सियालकोट और जम्मू के प्रथम शुद्धि-आन्दोलन के कर्ता धर्ता आप थे। इनका जीवन भी आर्यसमाज के लिये उत्साह और उमंग का जीवन था। बुड्ढे होगये। सारे अंग शिथिल पड़ चुके। परन्तु अब भी आर्यसमाज की बात छेड़ दो, वही पुराना जोश का स्रोत उबलता और फूट २ कर बहता देखलो। हमें फरीदकोट के आर्य वीर तुलसीराम के विषय में इनसे कुछ पूछना था। परन्तु अब तुलसीराम का वृत्तान्त इनसे पूछें या इनका तुलसीराम से?

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, लाहौर ।

उपदेशक भजनीकों के प्रचार का व्योरा ।

बाबत माह श्रावण १९८०

१ प्रचार—निम्न स्थानों पर प्रचार किया:—

श्रीनगर, कुल्लू, बहलोलपुर, वैरोवाल, नारोवाल, मीरोवाल, ऊधमपुर, रामबन, बटोत, रामसू, जालंधर, बैजनाथ, खानकाडोगरां, चूहड़काना, गुजरात, शादीवाल, कुंजाह, मंगोवाल, मियांवाली, कुंदियां, पत्तोकी, मिंटगुमरी, बटेड़ा, भक्खर, करोड़, लैया, जलालपुरपरिवाल, कोटली, सियालकोट सदर, लाहौर मुगलपुर, चीचावतनी, चन्नु, मखदूमपुर, सराय सिधु, कांगड़ा, सिसरना, सिलाना, बरोणा, गोपालपुर, खरखोदा, जंडयाला कलसा, अहमदपुर लमा, अहमदपुर शर्की, उच, फुलरवन, भलवाल, सरगोधा, सिलांवाली जटोवाल, लखनपाल, सिरकियां, तालबपुर, मुकेरियां, रसूल, कालाखताई, त्रांडी, कंसाला बेशई, कोठा, दीनानगर, मदरास प्रांत, नरवाना, माड़ी इंडस, हरिपुर, तलगंग, जींद स्टेशन, सुनाम, डसका भूपालवाला, दुरंग, ठंठु, बसौली, भैंसरु, रोहना, सुलतानपुर, टीकरी, लीलवार, बकरवाल, समालका, सांपला रोहतक, निजामपुर, नरवाला, मुडके, नागलोई, भोवा, मुड़का, हसनगढ़, गढ़ी जोरा, देसावर खेडी, भरगांव, करतारपुर, कपूरथला, फीरोजपुर, लीलवाड़ा, बुआरना, अनंतनाग ।

२ शास्त्रार्थ—

आर्य समाज रामनगर (जम्मू) में शुद्धि पर पं० पूर्णचन्द जी का पं० दुर्गादत्त सनातनी उपदेशक के साथ हुआ जिस में आर्य समाज को विजय प्राप्त हुई ।

३ नई समाजें—

निम्न स्थानों में श्रावण में नई आर्य समाजें स्थापित हुईं:—

१ चनार्थल (निकट सरहिंद) २ तुरखेडी (निकट सरहिंद) ३ छिकागली (कोहमरी) ४ ठंठु (जम्मू) ५ जटोवाल (गुरदासपुर) ६ कोटली लोहारां पश्चमी (सियाल कोट) ७ खजियां (गुरदासपुर)

४ उत्सव—

जुलाई मास में निम्न उत्सव हुए :—

पुत्री पाठशाला कमालिया, कुमार सभा शिमला, आर्यसमाज सुजानपुर, दीनानगर, जटोवाल, कुल्लू, साडी, श्रीनगर ।

अगस्त मास में निम्न उत्सव नियत हुए—

सरस सिदृधू १०, ११, १२ अगस्त २३

कोहमरी २४—२७ अगस्त २३

डलहौजी २४-२६ अगस्त २३

अहमदपुर शर्किया २५-२६-२७ अगस्त २३

५ शुद्धि——

यूं तो पंजाब प्रान्त में कई स्थानों पर शुद्धियां हुई हैं किन्तु जम्मू की शुद्धि विशे[illegible] महत्व की है। बटेहरा रियासत जम्मू में ज[illegible] [illegible] का [illegible] हुआ [illegible] के १४ ग्रामों के २००[illegible] [illegible] शुद्ध हुए। अभी २५ ग्रामों की अ[illegible] शुद्धि होने वाली है। बटेहरा में एक आ[illegible] पाठशाला भी जारी की गई है जिसमें ३[illegible] विद्यार्थी पढते हैं।

आर्यों को सब कार्य-व्यवहार, वैयक्तिक तथा सामाजिक आर्य्य भाषा ही में करने चाहियें। इसी में धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति है।

Registered No. L. 1424. रजिस्टर्ड नं० एल १४२४

ओ३म्

भाग ४ कार्तिक १९८०
अङ्क ७ नवम्बर १९२३

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मासिक पत्र

सम्पादक--चमूपति ।

प्रार्थना ।

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । अपघ्नन्तोऽराव्णः ॥
ऋग्वेद ।

हे प्रभु ! हम तुम से वर पावें ।
विश्व जगत् को आर्य बनावें ॥
फैलें, सुख सम्पत् फैलावें ।
आप बढ़ें, तव राज्य बढ़ावें ॥
वैर-विघ्न को मार मिटावें ।
प्रीति-नीति की रीति चलावें ॥

वार्षिक मूल्य २) रु० पेशगी

"अमृत प्रेस" अमृतधारा भवन लाहौर द्वारा ला० नन्दलाल उपमंत्री आ० प्र० सभा ने मुद्रित वा प्रकाशित किया ।

विषय सूची ।

'आर्य' के नियम ।

१—यह पत्र अंग्रेज़ी मास की १५ तारीख को प्रकाशित होता है। डाकखाना में चूंकि अंग्रेज़ी तारीख़ देनी होती है, इसलिये अंग्रेजी तारीख़ का हिसाब रक्खा गया है।

२—इसका वार्षिक मूल्य २) है ≡) डाक महसूल निकाल कर केवल १।।।-) में यह पत्र देना घाटे का काम है, तथापि सभा ने वैदिक धर्म तथा नागरी प्रचार के लिये इसे जारी किया है।

३—इस पत्र में धर्मोपदेश, धर्म जिज्ञासा वैदिक धर्म संरक्षण, धर्म प्रचार विषयक बातोंके अतिरिक्त आर्य सामाजिक समाचार तथा प्रतिनिधि सभा की सूचनायें दर्ज होती हैं।

४—पत्र के प्रकाशित होने के समाचार तथा लेख प्रत्येक अंग्रेजी मास १ तारीख के पूर्व आजाने चाहियें।

५—यदि डाक की गलती से कोई अंक न पहुंचे तो १५ दिन के भीतर सूचना देने से वह अंक भेज दिया जायगा, लेकिन अवधि के पश्चात् मंगवाने पर प्रति अंक मूल्य देना पड़ेगा ॥

॥ ओ३म् ॥

भाग ४] लाहौर—कार्तिक १९८० तदनुसार नवम्बर १९२३ [अंक ७

वेदामृत ।

अभय प्रार्थना ।

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरोयः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥

अथर्व १९. १५. ६.

(भावार्थ)

भय न गुप्त का औ' न ज्ञात का ।
डर न दिवस का औ' न रात का ॥
अभय मुझे हो शत्रु मित्र से ।
हों दिशायँ सब मित्र सम मुझे ॥

———

ईशोपानिषद् का स्वरूप ।

(पं० यशःपाल सिद्धान्तालङ्कार वैदिक धर्म प्रचारक)

९–अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूति मुपासते । ततोभूयइव ते तमो य उ संभू त्याꣳरताः ।

अर्थ–(ये) जो लोग (असम्भूतिं) केवल असत्कर्मों के त्याग को (उपासते) श्रेय मानते हैं वे (अन्ध) गाढ़ (तमः) अन्धकार को (प्रविशन्ति) प्राप्त होते हैं (ततः) उन से (भूयः) अधिक (ते) वे (तमः) अन्धकार को प्राप्त होते हैं जो (सम्भूत्यां) सत्कर्मों के संग्रह मात्र में (रताः) लगे हुये हैं ॥

भावार्थ–सत्कर्म दो प्रकार के होते हैं (१) विध्यात्मक (२) निषेधात्मक (जो केवल सत्कर्मों का संग्रह नहीं करते । ये दोनों ही प्रकार के मनुष्य उत्तम उपाय के अवलम्बन करने वाले नहीं । यदि एक किसान अपनी भूमि को साफ करके तय्यार तो करदे परन्तु उस में बीज का वपन न करे तो उसको अनाज की आशा न करनी चाहिये तथा च यदि वही किसान अपने खेत की जड़ी बूटियों को बिना उखाड़े नये बीज फेंक दे तो उसका यह कार्य और भी मूर्खता का होगा ॥

१०–अन्यदेवाहुः संभवादन्य दाहुर-सम्भवात् । इति शुश्रुमधीराणां येनस्तद्वि चचक्षिरे ॥

अर्थ–(सम्भवात्) केवल सत्कर्मों के संग्रह का (अन्यत्) कुच्छ और (एव) ही फल (आहुः) कहते हैं (असम्भवात्) और असत्कर्मों के त्याग का (अन्यत्) कुच्छ और (एव) ही फल (आहुः) कहते हैं (धीराणां) बुद्धिमान् तथा ज्ञानी लोगों से (इति) यही (शुश्रुम) हम सुनते आये हैं (ये) जिन्हों ने (नः) हमें (तत्) उस सिद्धान्त की (विचचक्षिरे) व्याख्या की है।

नोट–"इति शुश्रुम धीराणं येनस्तद्वि चचक्षिरे" ॥

ज्ञान की प्राप्ति गुरु शिष्य परम्परा के आधीन है और यह गुरु शिष्य परम्परा अनादि है । सृष्टि के व्यवच्छेद के काल में परमात्मा ही परम गुरु है । यह बात योग दर्शन में भी है । " सपूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" । इसी सिद्धान्त को दर्शाने के लिये इस मन्त्र में उपरोक्त वाक्य रचना की गई है।

सम्भूतिं च विनाशंचयस्तद्वेदोऽभयꣳसह । बिनाशेनमृत्युंतीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥

११अर्थ—(यः) जो (सम्भूतिं) सत्कर्मों का संग्रह (च) और (विनाश) असत्कर्मों का नाश (उभय॑ सह) दोनों का साथ ही साथ (वेद) अनुष्ठान करता है। वह (विनाशेन) असत्कर्मों के त्याग से (मृत्युं) मृत्यु को (तीर्त्वा) तैर कर (सम्भूत्या) सत्कर्मों के संग्रह से (अमृतं) अमृतत्व को (अश्नुते) प्राप्त करता है।

नोट—इससे हमें वैदिक मुक्ति का आदर्श तथा स्वरूप पता लग गया। संसार से छुटने मात्र का नाम मुक्ति तथा परमात्मा को पहुंचने या प्राप्त करने का नाम अमृत है। इसी का दूसरा नाम "अयन है"॥

अभिप्राय—य ४०।१ में असत्कर्मों के त्याग तथा ४०।२ में सत्कर्मों के अनुष्ठान का उपदेश है। तीसरे मन्त्र में आत्मघाती को मृत्यु के बाद जो फल मिलता है उसका वर्णन है। परन्तु उस मन्त्र में आत्मघाती का कोई लक्षण नहीं किया। अतः प्रकरणानुसार हम यही समझ सकते हैं कि सम्भवतः आत्मघाती वे जन हैं जो असत्कर्मों का त्याग और सत्कर्मों का अनुष्टान नहीं करते। चौथे, पांचवें मन्त्रों में ब्रह्म की महिमा के साथ ब्रह्म की विभुता तथा इन्द्रियागोचरत्व का वर्णन है छटे मन्त्र में जगत् में ब्रह्म की व्याप्ति तथा ब्रह्म में जगत् के आश्रयपन का वर्णन है। इस से ब्रह्म को जगत् का शासक कहा है। अतः असत्कर्मों के त्याग और सत्कर्मों के अनुष्टान में पूर्ण श्रद्धा का उपदेश दिया है। और परमात्मा को शासक मान कर्मों के फल विषयक सन्देह का उच्छेद किया गया है। अतः उपरोक्त कर्म विषयक आज्ञा में अधिक विश्वास और श्रद्धा पैदा की गई है सातवें मन्त्र में अनुचित राग द्वेश की वजह से मनुष्यों को जो मोह और शोक हुआ करते हैं उनके ध्वंस के लिये उपाय बतलाया गया है। जिससे लोग मोह शोक को छोड़ कर कर्म योग पर आरूढ़ हों। गीता में भी श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन को शोक मोह छोड़ कर कर्म मार्ग पर आरूढ़ होने का उपदेश दिया है। अतः सातवां मन्त्र भी शोक और मोह के जाल से मनुष्य को मुक्त करा उसे कर्म पथ पर अधिक वेग से चलाने में ही तात्पर्य रखता है इस प्रकार सातवें मन्त्र तक मनुष्य को कर्म मार्ग में दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न कर प्राप्य लक्ष्य का वर्णन ८वें मन्त्र में किया है। नवें मन्त्र में असम्भूति और सम्भूति के पृथक् पृथक् सेवन के दोष बताये हैं। असम्भूतिका अर्थ है-इकठा न करना अर्थात् अलग अलग करना या हटाना। अतः असम्भूति का अभि-

प्राय है असत्कर्मों का संचय न करना परन्तु परन्तु उनका त्याग करना । सम्भूति का अर्थ है-इकठ्ठा, करना, सञ्चय करना । अतः सम्भूति का अभिप्राय है सत्कर्मों का संचय । वह मनुष्य जो केवल असत्कर्मों के त्याग में लगा रहता है और विधि रूप धर्म कार्य नहीं करता वह अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं हो सकता । तथा वह मनुष्य जो विधि रूप धर्म का अनुष्टान तो करता है परन्तु निषिद्ध कर्मों से परे नहीं रहता वह भी निर्दिष्ट लक्ष्य को नहीं पा सकता । कर्मयोग के सिद्धान्त में विकर्म और अकर्म का त्याग तथा कर्म का अनुष्टान साथ २ होना चाहिये । इसी लिये नवें मन्त्र में एक एक के अनुष्टान की निन्दा की है । दसवें में दोनों विधियों के मिश्र फल कहे हैं । ग्यारहवें में कर्म और विकर्म की सहकर्त्तव्यता पर बल देकर उनके पृथक २ फल कहे हैं । ११वें में असम्भूति के स्थान में विनाश शब्द पड़ा है । यतः असम्भूति का अर्थ असत्कर्मों का विनाश अर्थात् त्याग ही करना पड़ता है । वैदिक सिद्धान्त में मोक्ष परमात्मा प्राप्ति है । परमात्मा असत्कर्मों से रहित और सत्कर्मों से युक्त है उस को प्राप्त होने के लिये जीव को भी असत्कर्मों से रहित और सत्कर्मों से युक्त होना चाहिये । असत्कर्मों के विनाश मात्र से तो जीव केवल देह रूपी कारागार से छूट जाता है परन्तु परमात्मप्राप्ति रूप उच्च पद का वह तब तक अधिकारी नहीं हो सकता जबतक वह सत्कर्मों के अनुष्टान से धर्म न कमाले ॥

१२–अन्धतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते । ततो भूय इवते तमो य उ विद्यायाᳪरताः ।

अर्थ–(ये) जो जन (अविद्यामुपासते) केवल प्राकृत जगत् के ज्ञान को ही श्रेय समझते हैं (ते) वे (अन्ध) गाढ (तमः) अन्धकार को (प्रविशन्ति) प्राप्त होते हैं (ततः) उनसे (भूयः) अधिक (ते) वे (तमो) अज्ञानलक्षण तम को प्राप्त करते हैं" (यउ) जोकि (विद्यायाᳪरताः) परमात्म ज्ञान में ही रत हैं ॥

नोट–इस मन्त्र में विद्या तथा अविद्या के अर्थ के विषय में प्रायः सब भाष्यकार एक मत हैं ॥

१३–अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया । इति शुश्रुमधीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥

अर्थ–(अविद्यायाः) अविद्या का (अन्यत्) दूसरा (एव) ही फल (आहुः) कहते हैं (विद्यायाः) विद्या का (अन्यत्) अन्य (एव) ही (फलं) फल (आहुः) कहते हैं (धीराणां)

धीर और ज्ञानी पुरुषों से (इति) यही (शुश्रुम) हम सुनते आये हैं (ये) जिन्हों ने (नः) हमें (तत्) उस सिद्धान्त की (विचचक्षिरे) व्याख्या की है।

विद्यां चाविद्यांच यस्तद्वेदो भय़ꣳसह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥

१४–(यः) जो मनुष्य (विद्यां) ब्रह्म ज्ञान (अविद्यां) तथा प्राकृत ज्ञान (तदुभयꣳवेद) दोनो को ही जानता है (अविद्यया) प्रकृति के ज्ञान से (मृत्युं) मृत्यु को (तीर्त्वा) तैर कर (विद्यया) ब्रह्मज्ञान से (अमृतं) अमरत्व को (अश्नुते) प्राप्त होता है ॥

भावार्थ–ब्रह्मज्ञान का साधन प्राकृत ज्ञान है बिना प्रकृति के ज्ञान के तथा बिना ब्रह्मचर्य्यादि साधनानुष्ठान के अमृतत्व की प्राप्ति दुर्लभ है।

इन चारों मन्त्रों के अर्थ को मिला कर देखने से हमारी उपरोक्त स्थापना युक्ति सङ्गत प्रतीत होती हैं। असम्भूति+अविद्या से मृत्यु को जीत कर जन्ममरण के बन्धन से छुटकारा तथा सम्भूति+विद्या से उस अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

(ख) इस प्रकार करने से "**तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**" इस वेद मन्त्र के साथ सङ्गति भी हो जाती है।

१५–वायुरनिल ममृतमथेदं भस्मान्तꣳशरीरम्। ॐ क्रतोस्मर क्लिबेस्मर कृतꣳस्मर ॥

अर्थ–(अमृतं) अमरजीव (वायुः) शरीर में गति देने वाला (अनिलं) और प्राण शक्ति देने वाला है (अथ) और (इदं शरीरं) यह शरीर (भस्मान्तꣳ) अन्त में भस्म होने वाला नश्वर है। हे (क्रतो)कर्मशील जीव (ओम्स्मर) ओम् का स्मरण कर (क्लिबेस्मर) सामर्थ्य के लिये ओम् का स्मरण कर (कृतꣳस्मर) कृत का स्मरण कर।

नोट–"भस्मतान्ꣳशरीरम्" इस शरीर का दाहकर्म करना चाहिये। क्रतुः=जीव कर्मशील है ॥

३–यह मन्त्र मृत्यु समय का नहीं (इससे यह भी पता लगता है कि मनुष्य को प्रति दिन परमात्म ध्यान करते हुये अपने कृतकर्मों पर विचार करना चाहिये)

१६-अग्ने नयसुपथाराये अस्मान् विश्वानिदेव वयुनानिविद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम।

अर्थ–हे (अग्ने) अग्रणी परमात्मन् (राये) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (अस्मान्) हमें (सुपथा)

अच्छे मार्ग से (नय) लेजा (देव) हे दिव्य गुणों वाले प्रभू तू (विश्वानि) सम्पूर्ण (वायुनानि) ज्ञानों को (विद्वान्) जानता है (जुहुराणं) कुटिलता पैदा करने वाले (एनः) पाप को (अस्मत्) हमसे (युयोधि) विल्कुल पृथक् कीजिये।

भावार्थ–प्रत्येक पाप मनुष्य को कुटिल बनाने वाला है। पापं का पता न लग जावे इस लिये पापी कई प्रकार के कुटिल रूपों में से गुजरता है। अतः पापों का त्याग अवश्य करना चाहिये। यह असत्कर्मों का त्याग है। और इसी मन्त्र में "नयसुपथा" अर्थात् हमें उत्तम रास्ते पर ले चलिये यह प्रार्थना सत्कर्मों के अनुष्ठान की सूचक है।

१७–हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। योऽसावादित्येपुरुषः सोऽसावहम्। ओं खं ब्रह्म।

अर्थ–(हिरण्मयेन पात्रेण) प्रकृति के चमकीले ढकने से (सत्यस्य) सत्यस्वरूप परमात्मा का मुख (पिहितं) आच्छादित है (योऽसौ आदित्ये पुरुषः) जो यह सूर्य में परमात्मा है (सोऽसौहं) वह मैं (अत्रापीति) इस भूमि में भी हूं। मेरे ये तीन नाम हैं खं, ब्रह्म, ओम्॥

नोट– प्रकृति का वर्णन हिरण्मय पात्र से किया है। हिरण्य पद का अर्थ है चमकीला। इससे प्रकृति में लेप का भाव सूचित किया है।

२–दर्शन मुख का किया जाता है। इस लिये इस मन्त्र में मुख का अर्थ रूप है।

गीता के अन्दर भी भगवान् कृष्ण ने कहा है॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्। मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥

अर्थात् प्राकृतिक सौन्दर्य्य से मोहित हो कर इन्सान उसीमें रम जाता है और उस से परे स्थित परमात्मा को नहीं देखता॥

हिन्दू धर्म्म का विचित्र लक्षण ।

(लेखक श्रीयुत वंशीधर विद्यालङ्कार)

आज जिस समय भारत वर्ष में 'हिन्दू सङ्गठन' की लहर चली है तो इस बात पर भी विचार होना प्रारम्भ हुआ है कि 'हिन्दू' किसे कहते हैं । सच मुच हिन्दू-जाति के सन्मुख यह बड़ा भारी प्रश्न है । यदि यह प्रश्न हल हो जाय तो हिन्दू-सङ्गठन होना कुछ भी कठिन नहीं है । बहुत से विचारकों की सम्मति में हिन्दू एक प्रकार की समाज (community) है । वह कोई धर्म्म नहीं है । 'हिन्दू' ही एक इस प्रकार का नाम है जिसमें भिन्न२ सम्प्रदाय, मत, मज़हब एक होकर रह सकते हैं ।; क्योंकि यह तो एक प्रकार की कम्यूनिटी है । दूसरे लोग जो 'हिन्दू'धर्म' को भी कुछ समझते हैं, उनके लक्षण का सारांश यह है कि हिन्दू-धर्म एक नाना मत मतान्तरों का समुदाय है । यह आवश्यक नहीं कि वे सब मत परस्पर एकमत हों-वे सब उत्तर दक्षिण की तरह विरोधी हो सकते हैं किन्तु उन सबको हिन्दू कहा जाना चाहिये । इस प्रकार के विचारक अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिये एक यह भी युक्ति देते हैं कि यही कारण है कि हिन्दू-धर्म प्रचारक-धर्म (missionary religi on) नहीं है । भारत बर्ष में अन्य धम्मा के प्रति यदि उदासीनता तथा सहिष्णुता देखी जाती है, तो इसका भी यही कारण है कि 'हिन्दू-धर्म' कोई एक धर्म नहीं है । प्रथम पक्ष के मानने वाले अपने पक्ष को पुष्ट करत हुये बड़े बल पूर्वक कहा करते हैं कि संसार भर में यदि भिन्न२ मतों में, सम्प्रदायों में किसी ने एकता स्थापन की है तो वह एक मात्र हिन्दू धर्म ने । अपने को न छोड़ते हुये यदि अपने अन्दर सब को मिला लिया है तो हिन्दू-धर्म ने' । वह तो एक मात्र ऐक्यता की ही स्थापना करता है ।

अब विचार करना है कि क्या भिन्न २ सम्प्रदाय वालों में जो आपको एक मात्र हिन्दू नाम से कहते हैं कुछ एकता भी स्थापित हुई है या यह एक मात्र कविता के ही शब्द हैं । हमें इन भिन्न २ सम्प्रदायों के 'हिन्दू-नाम' रखने में एक रहस्य मालूम होता है । और वह यह है कि जो प्रचीन-तम धर्म था उसका नाम आर्य-धर्म या हिन्दू धर्म था । जब २ इस धर्म में मनुष्यों के दोषों से कुरीतियां आदि घुस आईं, तब इसके सुधारकों ने यह बताया

कि प्राचीन सच्चा यह धर्म नहीं है अपितु यह है । पुरानी कुरीतियों पर चलने वाले अपनी बत पर स्थिर रह कर अपने को हिन्दू कहते रहे और दूसरे परिशोधक—ठीक मार्ग पर आ जाने वाले भी अपने आप को हिन्दू कहते गये । इसी प्रकार एक हिन्दू नाम से भिन्न २ सम्प्रदाय चलते चले गये । इस प्रकार से इन भिन्न २ मतों में जो एकता दिखती है वह एक मात्र हिन्दू नाम के अन्दर ही है । यदि सच मुच 'हिन्दू' इन भिन्न २ मतों की समाज (community) होती, यदि यह नाम इन सभों के अन्दर 'एकता' स्थापित करने वाला होता तो आज 'हिन्दू-सङ्गठन' इतना कठिन कार्य न होता । विचित्र बात तो यही है कि ये हिन्दू-नाम से अपने आप को कहते हुये एक होने में नहीं आते। जिनकी रीतियों में भेद हैं, जिन मतों के सिद्धान्तों में पारस्परिक उत्तर-दक्षिण का विरोध है, वे एक हो भी कैसे सकते हैं । किसी समाज (community) में अन्ततः किसी बात की आधार भूत समानता होनी ही चाहिये । यहां तो एक मात्र भिन्नता ही भिन्नता दिखाई पड़ती है । पिछला धार्मिक इतिहास तो यह भी बताता है कि जब इस हिन्दू-धर्म में परिशोध करके कुछ अन्य बातें चलाई गईं तो उनके मानने वालों ने अपने आप को 'हिन्दू' कहना भी छोड़ दिया । यदि 'हिन्दू' नाम में सचमुच मोहिनी शक्ति थी तो पिछले अर्वाचीन कई सम्प्रदायों ने अपने आपको इस नाम से क्यों अलग कर लिया । हिन्दू समाज में होते हुये-उन्ही रीति-रिवाजों के ऊपर चलते हुये भी उन्हें 'हिन्दू' नाम से घृणा क्यों उत्पन्न होने लगी । हिन्दू-समाज उनको अपना नहीं सका । हम मानते हैं कि हिन्दू एक समाज भी है किन्तु कोई भी समाज विना किसी एक समानता के बन ही नहीं सकता । समाज के व्यक्तियों को एक करने वाला अन्ततः कोई सूत्र तो होना चाहिये । आज हिन्दू-समाज में इतने भिन्न २ मत हैं जिनके अपने भिन्न २ उद्देश्य हैं भिन्न २ सिद्धान्त हैं, कि उनमें एकता की स्थापना करना कठिन ही नहीं असम्भव सा भी प्रतीत होता है । हमें इस पक्ष के मानने वालों की यह बात सच मुच समझ में नहीं आती-चाहे तुम कुछ भी मानो किन्तु अपने आप को हिन्दू कहो-इस प्रकार तुम हिन्दू समाज में ही रहोगे । हमारा यह विश्वास है कि इस प्रकार ही यदि हिन्दू समाज की कलेवर वृद्धि होगी तो कभी भी एकता की स्थापना नहीं हो सकती ।

दूसरा मत इन विचारों से बहुत भेद नहीं रखता । हिन्दू धर्म नाना सम्प्रदायों का समुदाय है । यहां यदि "समुदाय" को हिन्दू नाम से कहा जाता है तो वही बात है जिसको कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं । किन्तु यदि इस समुदाय में प्रत्येक धर्म अलग अलग भी हिन्दू धर्म कहाता है तो यह बड़ी विचित्र बात है । परस्पर विरोधी धर्म एक नाम होने से ही एक नहीं हो सकते । वास्तव में हम लोग हिन्दु नाम के पर्दे में से इन सब भिन्न २ धर्मों को एक हुआ देखते हैं किन्तु वास्तव में ये सब भिन्न २ हैं । हमारा यह पूर्ण विश्वास है कि जब तक इनमें कुछ आन्तरिक एकता का सन्बन्ध दिखाई नहीं देता तब तक इन धर्मों में परस्पर एक संगठन पैदा करना भी अत्यन्त कठिन होगा । हम इस बात को स्वीकार नहीं कर सकते कि हिन्दु धर्म प्रचारक-धर्म (missionary religion) नहीं है ॥

हिन्दु धर्म में जो इतने सम्प्रदाय हैं क्या वे पहिले से ही थे ? यदि नहीं थे तो जो उन की संख्या बनाई गई है, क्या वह बिना प्रचार के ही बनाई गई थी । बुद्ध-धर्म, जैनी, कबीर पन्थ आदि जो जो भी सम्प्रदाय हिन्दु-धर्म में दिखलाई पड़ते हैं सब का प्रचार किया गया है । बिना प्रचार के यह संख्या बढ़ कैसे गई ? ॥

सहिष्णुता की बात तो यह है कि हिन्दुओं ने "बौद्धों" को क्या कुछ नहीं कहा । इतिहास तो इस बात की साक्षी भी देता है कि हिन्दुओं ने बौद्धों और जैनियों पर अत्याचार भी बहुत किया । अन्त में जब शान्ति हो गई तो महात्मा बुद्धदेव भी अवतार बन बैठे और महावीर भी एक महा पुरुष बन गये । ये अवस्था परस्पर मिलाप (compromise) की प्रतीत होती है ॥

भविष्य पुराण में से ऐसे बहुत से प्रमाण दिये जा सकते हैं कि प्राचीन आर्यों ने व हिन्दुओं ने मिश्र के निवासियों को अपने देश में लाकर उनको अपना धर्म सिखाया । किसी को ब्राह्मण, किसी को क्षत्रिय, किसी को वैश्य तथा किसी को शूद्र बनाया । ये सब बातें भी सिद्ध करती हैं कि हिन्दु धर्म अवश्यमेव प्रचारक धर्म रहा है । आजकल की अवस्थाओं को देखकर प्राचीन काल की अवस्थाओं का निर्णय नहीं हो सकता । हिन्दु धर्म का नाश तभी से प्रारंभ हुआ है जब से यह प्रचारक धर्म नहीं रहा ।

उपर्युक्त हिन्दु-धर्म के लक्षण में कितनी सचाई है इस बात की हमने समीक्षा अपनी बुद्धि के अनुसार कर रहा है। इस दृष्टि से यदि एक मुसलमान व इसाई अपनी धर्म पुस्तकों को मानता हुआ एक मात्र अपने को (हिन्दु) कहना प्रारम्भ करदे तो वह हिन्दु-धर्म का ही समझा जायगा। यदि इसी प्रकार के हिन्दु-धर्म के लक्षण होते तो हिन्दुओं की वास्तविकता को समझना अत्यन्त कठिन होगा।

हमें तो यह एक ही बात मालूम है कि ये सब मत जो हिन्दुओं में प्रचलित हो रहे हैं उन सब का स्रोत कोई एक ही है। बीच २ में बहुत कुरीतियां फैलीं और उनके परिशोधन भी हुये किन्तु वह प्रामाणिक नाम का स्रोत नहीं टूटा और हम समझते हैं कि यदि आज भी उसी स्रोत को पकड़ा जाय जाना जाय, तो हिन्दु धर्म के महत्व को समझा जा सकता है। वह स्रोत कौनसा है? **वह स्रोत एक मात्र "वेद" ही है।** वेदों से पुरानी पुस्तक संसार भर में और कोई नहीं है और इ पुराना कोई धर्म नहीं है। यही वास्तव सत्य सनातन धर्म है, यही वैदिक धर्म है इसी एकता के ऊपर स्थिर रह कर ही अ महत्व को समझा जा सकता है और "हिन्दु संगठन" भी हो सकता है। हर्ष की बा है कि अब यह बात भी हिन्दु प्लेटफार्मों धीमे २ उठने लगी है कि हिन्दु वही है वेद को मानने वाला हो। आज से ५० वर्ष स्वामी दयानन्द भी इसी सचाई का प्रति दन सत्यार्थ-प्रकाश में कर गये थे। उन ने लिखा है कि यदि कोई तुम से पूछे तुम्हारा क्या धर्म है? तो कहो हमारा वेद है। हम समझते हैं कि प्रत्येक सच्चे हि का धर्म "वेद" है। यही हिन्दु धर्म लक्षण होसकता है। और कोई नहीं। यदि प्रकार के विचित्र लक्षण होते रहे तो श हममें कुछ समय के लिये कुछ संगठन हो जाय किन्तु इससे वास्तव में कोई बड़ा स्थायी लाभ नहीं होगा॥

वर्ण व्यवस्था ।

(लेखक-श्रीयुत रामेश्वर सिद्धान्तालङ्कार)

समाज में वर्ण व्यवस्था की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि व्यक्ति के लिए आश्रम व्यवस्था की । जिस प्रकार आश्रम विभाग व्यक्ति के जीवन को बांटता है, उसी प्रकार वर्ण-विभाग समाज के जीवन को बांटता है । वर्ण व्यवस्था के आधार पर व्यक्ति समाज में यथायोग्य स्थान पाता है । अपनी कुछ स्वतन्त्रता को तिलाञ्जलि भी देता है और यह इस लिये कि वह सामाजिक रूप में अधिक से अधिक स्वतन्त्रता को भोग सके । अकेला व्यक्तिवाद या समाजवाद व्यक्ति या समाज को पूर्ण शान्ति तथा सुख का उपभोग नहीं करा सकता । इस उद्देश्य को पूर्ण करने का साधन व्यक्तिवाद और समाजवाद का मिश्रण रूप वैदिक वर्ण व्यवस्था ही है। पाश्चात्य विद्वानों का अनुभव भी शनैः शनैः व्यक्तिवाद और समाजवाद की अपूर्णताओं को अनुभव करता हुआ इसी वर्ण व्यवस्था की ओर झुक रहा है । कुछ काल के अनन्तर सब को पूर्ण रूप से इसी की शरण आना होगा । पाश्चात्य विचारकों में से ग्रीस तथा रोम की कल्पना के अनुसार मनुष्य केवल समाज के लिये ही है । एक शब्द में समाज ही उन देशों का मुख्य उद्देश्य था । ग्रीस का प्रसिद्ध विद्वान अफलातून Plato समाजवादी था । अब तक संसार के इतिहास में उसके मुख्य २ सामाजिक नियम काम करते रहे हैं । इसके बाद भी ग्रीस में ऐसे २ विद्वान् हुए हैं जो व्यक्ति को समाज की सम्पत्ति मानते थे। इस सिद्धान्त का दूसरा नाम समाजवाद है । इसी प्रकार स्पार्टा में भी समाजवाद का प्रचारथा, जिसका परिणाम यह हुआ कि वहां १. निर्बल बच्चे मार दिये जाते थे। २. प्रत्येक बालक माता पिता से अलग कर समाज के अधीन किया जाता था. ३ सब शहरों में भण्डारे खुले थे जिनका प्रयोजन यह था कि व्यक्ति व्यर्थ में पृथक भोजन पकाने में समय न गंवा कर सामाजिक उन्नति में लग सके. ४ प्रतिदिन प्रातः तथा सायंकाल लड़कों को खुला छोड़ दिया जाता था ताकि वह अपने बाहुबल द्वारा भोजन प्राप्त कर सकें ५ कोई भी स्पार्टा निवासी भारी से भारी आपत्ति आने पर भी आह नहीं भर सकता था । एवं रूस में बोलशेविज्म के कारण समाजवाद का बहुत प्रचार

हुआ, जिसका फल यह हुआ कि आज वहां उपज के अभाव के कारण आधे से अधिक लोग मृत्यु के ग्रास हो रहे हैं। इस सारे कथन का सार यह है कि अकेला समाजवाद सामाजिक उन्नति या वैयक्तिक सुख को नहीं बढ़ा सकता ॥

इसके विरुद्ध इग्लैण्ड में व्यक्तिवाद की बहुत काल तक प्रधानता रही। इस देश के विचारकों के मत में समाज का काम व्यक्ति के सुख बढ़ाना ही है। मेकाले के शब्दों में Societies and laws exist only for the object of increasing the sum of private happiness. अर्थात् समाजों और नियमों की सत्ता केवल वैयक्तिक सुख बढ़ाने के लिए ही है। मिल, स्पेन्सर और एडम स्मिथ जैसे बड़े २ विद्वान् भी struggle for existence के सिद्धान्त को मानते थे जिसका परिणाम Whig party और Liberal party के प्रतिद्वन्द्व के रूप में निकला। स्पेन्सर तथा बेन्जामिन किड जैसे बुद्धिमान् भी वैयक्तिक सुख रूप स्वार्थ में अन्धे होकर Red Indians को मारने के विचार की पुष्टि करते हैं। परन्तु जर्मनी के बढ़ते हुए व्यापार को न सहता हुआ इग्लैण्ड जर्मनी के लिये इस सिद्धान्त को अयुक्त बताता है। कथन का सार यह है कि व्यक्तिवाद भी व्यक्ति [illegible] पूर्ण सुख नहीं दे सका ॥

इस प्रकार दोनों सिद्धान्तों के परिणामों [illegible] हानियों को देखते हुए हमें इस प्रकार से [illegible] विभाग करना चाहिये, जिससे कि समा[ज] और व्यक्ति दोनों सुखमय जीवन बि[ता] सकें। इसमें समाज का यह कर्तव्य होगा [कि] वह अपने नियमों द्वारा व्यक्ति के स्वार्थों [का] सर्वथा प्रतिघात न करे। इस के विपरी[त] उसे अपने सुख और अभ्युदय का पूरा अवस[र] दे। इसके साथ२ व्यक्ति का कर्तव्य यह हो[गा] कि वह अपने आपको समाज के सर्व-हितकार[ी] नियमों के आधीन कर देवे, तथा समाज के सु[ख] की रक्षार्थ अपने सुख की कुछ मात्रा कम कर[ने] के लिये उद्यत रहे। जिस प्रकार शारीरिक अ[ङ्ग] अपने लिये तथा शरीर के लिये हैं, उसी प्रका[र] व्यक्ति अपने लिये तथा समाज के लिये है। य[ह] अङ्गाङ्गि भाव वैदिक वर्ण व्यवस्था में दिखा[या] गया है। यजुर्वेद अध्याय ३१ में समष्टि पुरुष का वर्णन किया गया है, और इ[स] समष्टि पुरुष के आधार पर समाज का विभा[ग] किया गया है। इस विभाग में एक और विशेषता यह है कि इस में कर्म विभाग [का] सिद्धान्त कूट २ कर भरा हुआ है।

इससे कार्य कुशलता की वृद्धि, समय का बचाव, आविष्कार तथा शिक्षणालयों की वृद्धि आदि लाभ स्पष्टतया प्रतीत होते हैं ॥ शरीर के आधार पर जो विभाग किया गया है उसकी सत्यता हर्बर्ट स्पेन्सर ने Social Organism, नाम निबन्ध में भली प्रकार प्रतिपादित की है । स्पेसंर ने लिखा है कि जिस प्रकार हमारे शरीरमें भिन्न २ कार्यों के लिए अङ्ग विभागहैं उसी प्रकार समाज में उन २ कार्यों के लिए समाज विभाग करना चाहिये। शरीरके विभाग शिर,बाहु, पेट तथा पांव आदि ४ भाग हैं । एवं समाज के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ४ विभाग किये जाने चाहियें। यजुर्वेद ३१ अध्याय में "सहस्रशीर्षा" पुरुषा का वर्णन किया है, तदनन्तर सृष्टि क्रम बताते हुए समष्टि पुरुष के विषय में प्रश्न किया गयाहै "यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् मुखं किमस्यासीत् किंबाहू किमूरू पादा उच्येते" । अर्थात् इस समष्टि पुरुष की कितनी प्रकारसे कल्पना कीगई है ? मुख क्या है ? बाहू, ऊरू और पैरों को क्या कहागया है ? इसमें 'उच्येते' और 'अकल्पयन्' ये दो शब्द ध्यान देने योग्य हैं जो अगले मन्त्रसे सम्बद्ध हैं । प्रश्नके उत्तर में कहा गयाहै कि "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहूराजन्यः कृतः ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽअजायत" ब्राह्मण को मुखरूप, क्षत्रिय को बाहूरूप वैश्यको उरूरूप और शूद्रको पांवरूप, बताया है । इस मंत्र के शब्दार्थ पर विचार करते हुए बहुतसे विद्वान् **अजायत** से 'पैदा हुआ' अर्थ लेकर जन्म से वर्णव्यवस्था मानते हैं, परन्तु इसमें विचारणीय यह है कि **अजायत पद्भ्याम्** पञ्चम्यन्त से सम्बद्ध है । सम्पूर्ण मन्त्रमें और कहीं पञ्चमी विभक्ति नहीं आई। इसलिए एक वार की पञ्चमी से सबको पञ्चम्यन्त क्यों मानाजाय, परञ्च बहुत जगह पञ्चमी के अभावके कारण उसका अर्थभी पूर्वोक्त पदोंके अनुसार क्यों न किया जाय ? तथा **"पद्भ्यां शूद्रोऽजायत"** इस प्रश्न के बलसे तथा प्रथम तीनपदों के प्रभावसे प्रकरण प्रतिपन्न यही अर्थ किया जासकता है कि **'पद्भ्यां समानः शूद्रोऽजायत"** पैरके समान शूद्र उत्पन्न हुआ। इससे भी स्पष्टतया अथर्व वेद १९ काण्ड ६ सूक्त में यही भाव वर्णन किया गया है ।

गुणकर्मानुसार वर्ण विभाग में जिस प्रकार समष्टि पुरुषका वर्णन कियागया है उसमें प्रमाण शतपथ ब्राह्मणका यह वाक्यभी है **"यस्मादेते मुख्याः तस्मान्मुखतो ऽसृज्यन्त"** क्योंकि

ब्राह्मण समाज में प्रधान है इसलिये शरीर के प्रधान अंग से इसकी सृष्टि बताई गई है ।

वर्ण व्यवस्था में 'वर्ण' शब्दका धात्वर्थ निरुक्त अध्याय २ खण्ड ३ में यह बताया गया है कि **"वर्णः—वृणोतेः वर्णीया वरितुमर्हा गुणकर्माणिच दृष्ट्वा यथा-योग्यं व्रियन्ते ये ते वर्णाः"** अर्थात वर्ण वृञ् वरणे धातुसे बनता है जिसका अर्थ वरण करना व चुनाव करनाहै । चुनाव करनेसे स्पष्ट है कि गुण और कर्मको देखा जायगा । यदि वर्ण जन्मसे माना जाय तो चुनाव करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, और वर्ण शब्द की उत्पत्ति वृञ् धातु से नहीं हो सकती । इस व्याख्यानुसार जन्म से वर्ण विभाग करना निर्मूल सिद्ध होता है ।

स्वामी जी प्रदर्शित वर्ण व्यवस्था पर, जो कि गुण कर्मानुसार मानी गई है, कईयों का आक्षेप है कि इसमें स्वभावको क्यों मिलाया गया है । उनको इस सिद्धान्त का मूल समझना आवश्यक है । मनुष्य के अन्दर प्रवृत्ति और व्यवहार ये दो भिन्न कार्य होते हैं प्रवृत्ति स्वाभाविक चेष्टा है और व्यवहार अवस्था के आधीन होकर किया जाता है । प्रवृत्ति कई जन्मोंका परिणाम है जिसका क्रम यह है कि कई कर्मोंके करनेसे गुण आता है और एक गुण के कई बार प्रयुक्त करने से उस गुणकी प्रवृत्ति पैदा होती है । और यह प्रवृत्ति ही प्राणीका स्वभाव बन जाती है और उस के गुणों को स्पष्टतया प्रगट करती है । इस लिए स्वभावका होना भी आवश्यक है ।

इसके अतिरिक्त सूत्रकारों, स्मृतिकारों और नीतिकारों का स्थान २ पर कर्मानुसार वर्णों का परिवर्तन प्रतिपादित करना हमारे सिद्धान्त को और भी स्पष्टतया सिद्ध करता है । नीतिकार शुक्राचार्य ने निम्न श्लोक से स्पष्ट बता दिया है कि जन्मानुसार ब्राह्मणादि नहीं हो सकते किन्तु गुण कर्मानुसार ही होते हैं ।

"न जात्या ब्राह्मणः कश्चिन् न वैश्यो न च क्षत्रियः । न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिताः गुणकर्मभिः ॥ अध्याय प्रथम ॥

जन्म को प्रधान मानने वाले कितने ही महानुभाव अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिए भगवद् गीता का निम्न श्लोक उद्धृत किया करते हैं और कहा करते हैं कि भगवान् ने गुण कर्म के अनुसार जन्म से वर्ण विभाग कर दिया है । प्रचारार्थ भ्रमण करते हुए स्थान २ पर यह श्लोक मेरे सामने उद्धृता किया गया है । इस लिए इसका अर्थ स्पष्टतया लिखना आवश्यक है

चातुर्वर्ण्यं मयासृष्टं गुणकर्म विभागशः"

तस्य कर्त्तार मपि मां विध्य कर्त्तारमव्ययम् ॥ गीता।

मैने गुण कर्म विभागानुसार चारों वर्णों को सृजा है। मुझ अविनाशी को उस का कर्त्ता (विभाग करने वाला) भी जान और अकर्त्ता (न करने वाला) भी जान ॥

इस श्लोक के अनुसार परमात्मा को एक साथ वर्ण विभाग करने वाला और न करने वाला मानना पड़ता है। यह दो विरोधी गुण एक में हो नहीं सकते। अतएव इसकी संगति इस प्रकार है कि चारों वर्णों में क्रम से कौन २ से गुण तथा कर्म होने चाहिये इस क्रम को बनाने अर्थात् सिद्धान्त का निश्चय करने वाला तो परमात्मा है क्योंकि परमात्मा द्वारा बताए हुए प्रत्येक वर्ण के गुणों तथा कर्मों में हम परिवर्त्तन नहीं कर सकते। जैसे यह कहना कि ब्राह्मण के लिए कृषि कर्म भी आवश्यक है, समाज के लिए असम्भव है। इस लिए समाज वर्ण विभाग के इस अंश में अकर्ता है और परमात्मा कर्त्ता है, परन्तु उन २ गुण कर्मों को देख२ कर ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्रादि की उपाधि देना समाज ही का काम है। इस लिए यहां समाज वर्ण विभाग का कर्त्ता है। परमात्मा अकर्त्ता है। इस प्रकार से परमात्मा तथा समाज में भिन्न २ दृष्टियों से विरोधी गुण आजाते हैं। और श्लोक का तात्पर्य भी ठीक निकल आता है।

यज्ञ मीमांसा।

(ले० श्रीयुत नरोत्तम दत्त शर्म्मा आर्योपदेशक)

सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा का अत्यन्त धन्यवाद है, कि जिस की अपार दया से आर्य्य जगत में प्रायः प्राचीन रीत्यनुसार यत्र-तत्र पुनीत यज्ञों का आरम्भ हो चला है।

परन्तु जहां २ यज्ञ होते देखे गये, उनमें पद्धति का प्रायः अभाव देखा जाता है। इसलिये सब आर्य विद्वानों के समक्ष अपने विचार जो कि शास्त्रों से संग्रह किये हैं उपस्थित कर निवेदन करता हूं कि आर्य्य विद्वान् अपनी २ शुभ अनुमति प्रदान करें जिस से कि एक पद्धति बन जाय, और उसीके अनुसार आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सवोंपर यज्ञ हुआ करें।

सम्पूर्ण यज्ञ समन्त्रक, सविधि, सविभक्तिक,

ससमय, और सश्रद्धाक होने चाहियें।

(प्रश्न) समंत्रक से आप क्या लेते हैं क्योंकि आर्य्य समाज में यज्ञ संहिताओं से हि होते हैं। (उत्तर) समंत्रक का प्रयोजन यह है कि यज्ञ विधायक मंत्रों से ही यज्ञ होना चाहिये, विपरीत नहीं।

(प्रश्न) क्या मंत्र भिन्न २ प्रकार के यज्ञ विषयकादि पृथक २ हैं।

(उत्तर) हां" मंत्र भिन्न प्रकार के हैं। (प्रश्न) कितने प्रकार के और कैसे २ हैं सप्रमाण बतलाओ। (उत्तर) मंत्र समूह ६ प्रकार। महर्षि यास्काचार्य्य ने निरुक्त के दैवत काण्ड में बतलाया है। स्तुति आत्मक यथा। (इन्द्रस्यनु वीर्याणि प्रवोचम्) आशीर्वादात्मक यथा (सुचक्ष अहमक्षीभ्याम् भूयासं सुवर्चा मुखेनेत्यादि। शपथाभिशापात्मक यथा अद्यामुरीय यदि यातुधानो अस्मि)। भावात्मक यथा नमृत्यु रासीद मृतं व तर्हि) परिवेदनात्मक (सुदेवो अद्य प्रयतेदनावृत्) निन्दा प्रशंसात्मक (केवलाघो भवति केवलादी)

इन ६ प्रकार के मंत्रों में से मेरी अनुमति में वर्त्तमान सामयिक यज्ञों में स्तुति आत्मक, और आशीर्वादात्मकों से हि यज्ञ होने चाहियें, क्योंकि सूत्रादिक ग्रन्थों में मंत्रों के अर्थानुकूल विनियोग किये गये हैं।

इसी प्रकार वर्त्तमान सामयिक यज्ञों में दो ही प्रकार के मंत्र उपयुक्त हो सकते हैं संपूर्ण संहिता नहीं क्योंकि ऐसा प्रमाण अबतक मुझ नहीं मिला। यज्ञ केवल परोपकार के लिये ही होते हैं और उसी परोपकार में अपना भी उपकार होता है। अतः उस अर्थ को द्योतन करने वाले उपरोक्त दोनों प्रकार के मंत्र हो सकते हैं।

(प्रश्न) सविधिक का क्या प्रयोजन है, क्योंकि यज्ञों का मुख्य उद्देश वायु आदि पदार्थों की शुद्धि करना है। (उत्तर) आप का कथन बालकों के समान है, यदि आपसे पूछा जाये कि अन्न खाना केवल भूख की निवृत्ति है, पुनः आटाही क्यों नहीं फांक जाते? सबजी आदि में नमकादि और घृतादि क्यों डालते हो, कच्ची ही क्यों नहीं खाते? यहां यही कहोगे कि इस प्रकार के भोजन में स्वाद और पुष्टि आदि नहीं होती। इसी प्रकार विधि विहीन यज्ञ में समझो।

(प्रश्न) विधि विरुद्ध भोजन में प्रत्यक्ष रोगादिकों की उत्पत्ति देखी जाती है, परन्तु यज्ञों में डाला हुआ सुगन्धित पदार्थ तत्काल

ही सुगन्ध देने लगता है, पुनः आपके विधि वाद में पौराणिक झलक प्रतीत होती है ।

(उत्तर) मेरे विधि वाद में पौराणिक झलक नहीं, अपितु आपकी समझ का फेर है कि आप यज्ञ को केवल वायु आदि पदार्थों की शुद्धि के लिये मानते हैं। (प्रश्न) पुनः यज्ञ के कौन २ से प्रयोजन हैं। (उत्तर) यज्ञ के प्रयोजन चराचर का पोषण, आत्मा और अन्तः करण की शुद्धि और पुत्रेष्टि आदि हैं।

(प्रश्न) जिसप्रकार विरुद्ध भोजन में हानि देखी जाती है और वैद्यक शास्त्रों में उसके हानि लाभ लिखे हैं, क्या इसी प्रकार यज्ञ के सम्बन्ध में भी हानि और लाभ लिखे हैं ? (उत्तर) हां, बड़े विस्तार से लिखे हैं। देखो और सुनो। हम अन्य ग्रन्थों का प्रमाण न देते हुये केवल न्याय शास्त्र का प्रमाण उपस्थित करते हैं कि जिस शास्त्र का उद्देश केवल तर्क से सब बातों को सिद्ध करना है। देखो न्याय वात्स्यायनभाष्य जिस में यह पूर्वपक्ष किया गया कि (**पुत्रकामो यजेत**) (**स्वर्गकामो यजेत**) यहां पर कहते हैं कि बहुतसे लोगों ने यज्ञ किये परन्तु पुत्रोत्पत्ति और सुख नहीं देखा गया। अतः उक्त शब्द प्रमाण मिथ्या है इत्यादि ।

इस का समाधान करते हुये, **न कर्म-कर्तृ साधन वैगुण्यात्** । न्या० अ० २ । पा० १ सू० ५८ । के भाष्य से लिखा है कि, **यथा । नानृत दोषः पुत्र कामेष्टौ। कस्मात् । कर्म कर्तृ साधन वैगुण्यात् । इष्ट्या पितरौ संयुज्यमानौ पुत्रं जनयत इति । इष्टिः करणं साधनं पितरौ कर्तारौ संयोगः कर्म त्रयाणां गुणयोगात्पुत्रजन्म। वैगुण्याद्विपर्ययः । इष्ट्याश्रयं तावत्कर्म वैगुण्यं समीहा भ्रंशः । कर्तृ वैगुण्यम् अविद्वान्प्रयोक्ता कपूयाचरणं च । साधनवैगुण्यं हविरसंस्कृतमुपहृतमिति मंत्रा न्यूनाधिकाः स्वरवर्गहीना इतीत्यादि । वात्स्यायन भाष्यम् ।**

अर्थ—कर्म कर्ता और साधन की विगुणता से पुत्र-कामेष्टि में झूठा दोष नहीं दे सकते। क्योंकि पुत्रेष्टि यज्ञ में यज्ञ करण है अर्थात् साधन, माता और पिता कर्ता है और संयोग कर्म है, तीनों के ठीक होने से पुत्रोत्पत्ति होगी, विपरीत नहीं ।

चेष्टाका पतित होना (इस यज्ञ से पुत्र होगा वा न होगा इत्यादि भावना) कर्म की विगुणता है। इस विगुणता से सफलता न होगी। (इस से यह सिद्ध हुआ कि विश्वास पूर्वक

यज्ञ होना चाहिये।) अविद्वान् और दुराचारी यज्ञ कर्ता का होना कर्ता की विगुणता है। (इस से यह सिद्ध होता है कि धर्मात्मा और सदाचारी विद्वान् ही यज्ञ करा सकता है।) अशुद्ध और कालके विपरीत अर्थात जिस ऋतु में जिस प्रकार की हवि होनी चाहिये उस प्रकारकी न होना, अथवा मंत्रों का न्यूनाधिक और स्वर वर्ण हीन होना साधन की विगुणता है। (इस से यह सिद्ध होता है कि हवन सामग्री आदि पादार्थ शुद्ध और मंत्र जितने हों उतने ही होने चाहियें। अन्यथा फल सिद्धि कभी न होगी)

इस शास्त्र मर्य्यादा के विपरीत वर्तमान में जो कोई भी हिन्दी अक्षर बांच जानता है, वह भी यज्ञ में होता आदि बन जाता है। इस विषय में महाभाष्य कार पतंजलि महाराज का एक वाक्य उद्धृत किया जाता है।

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह। स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

अर्थ—स्वर और वर्ण से मिथ्या उच्चारण किया हुआ दुष्ट शब्द अपने अर्थ को छोड़ देता है, यही दुष्ट उच्चारण किया हुआ शब्द वज्ररूप होकर यजमान का नाश करने वाला होता है। इसलिये यज्ञ के अर्थ नियत मंत्रों को पहिले से ठीक कर के यज्ञ में उपस्थित होना चाहिये और विधिपूर्वक यज्ञ करना कराना चाहिये, ऐसा उपरोक्त शास्त्र प्रमाण का अभिप्राय है।

शेष आगे।

प्रियतम! तुमहो।

(१)

जल में थल में, पुर जंगल में।
अगम अचल में, नभ मंडल में॥
प्रियतम! तुमहो॥

(२)

झलक झपक में, चमक दमक में।
तड़क भड़क में, वन–दीपक में॥
प्रियतम! तुमहो॥

(३)

कंकर कंकर, में तुम शंकर।
तमकर तमहर, दिनकर निशिधर॥
प्रियतम! तुमहो॥

(४)

जल अंबुज में, दैत्य दनुज में।
देव मनुज में, इकले मुझ में॥
प्रियतम! तुमहो॥

'चातक'

श्री स्वामी शंकराचार्य और नवीन वेदान्त।

(श्री स्वामी अच्युतानन्द जी महाराज)

आर्य समाज में संन्यासियों के न आने के मुझे तीन कारण प्रतीत होते हैं:—

१. आर्य समाज में राजे महाराजे तथा सेठ साहूकार कम हैं।

२. प्रायः आर्य समाजी अश्रद्धालु होते हैं और साधुओं की सेवा नहीं करते।

३. सन्यासी महात्माओं की श्री स्वामी शंकराचार्य जी में अनन्य भक्ति है और कुछ आर्य समाजी श्री शंकराचार्य महाराज का पूरा मान नहीं करते।

पहिले दो कारणों पर तो अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि सर्वस्व त्यागी संन्यासी महात्माओं का धन धान्य के पाशों में फंसे रहने वाले धनाढ्य लोगों से क्या काम ? हमें निर्भीक और अलोलुप भाव से धर्म का प्रचार करना है और जो भी व्यक्ति या समुदाय सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करने पर उद्यत दृष्टिगोचर हो, उसे वेद का उपदेश करना हमारा धर्म है। सेवा शुश्रूषा की परवा भी हमें नहीं करनी चाहिये। आर्य समाजी अश्रद्धालु हैं तो उन में श्रद्धा का भाव पैदा करना हमारा अपना काम है।

विचार करने योग्य तीसरा कारण है। देखना यह है कि आर्य समाजी लोग—इन में से भी कुछ थोड़े से ही—प्रातः स्मरणीय श्री संकराचार्य जी महाराज का उचित मान क्यों नहीं करते ? प्रायः लोगों का यह विचार है कि नवीन वेदान्त के सिद्धान्तों की प्रवृत्ति श्री शंकराचार्य महाराज ने की है। परन्तु यह विचार भ्रम मूलक है।

नवीन वेदान्तियों का संप्रदाय श्रीशंकराचार्य महाराज के नाम से चलता है सही, परन्तु शंकराचार्य भी तो बहुत हुए हैं। इस समय भी कितने शंकराचार्य विद्यमान हैं। न जानें कौन से शंकराचार्य ने नवीन वेदान्त के भ्रान्त सिद्धान्तों को प्रचलित किया। आदिम श्रीशंकराचार्य का बनाया हुआ एक श्लोक पाठकों की भेट किया जाता है जिससे स्पष्ट सिद्ध हो जायगा कि नवीन वेदान्त की धारणा इन शंकराचार्य महाराज ने नहीं की। श्लोक यह है:—

अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषय तृष्णाम्। भूत दयां विस्तारय तारय संसार सागर तः।

अर्थः—हे सर्व व्यापक परमात्मन्! हमारे अविनय (अभिमान) को दूर करो। हमारे मन को दमन करो जिस से कि हमारा मन आपकी भक्ति में लगे। आप की भक्ति में विघ्नरूप विषयों की तृष्णा को शान्त करो। हम जो आप के प्यारे पुत्र हैं उन पर दया दृष्टि का विस्तार करो, जिस से हम संसार सागर (जन्म मरण) से तर जाएं।

इस श्लोक के देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस के रचयिता आदिम श्री शंकराचार्य न तो जीव ब्रह्म की एकता में विश्वास रखते थे न संसार को मिथ्या समझते थे। क्योंकि यदि जीव ही ब्रह्म हो तो फिर ब्रह्मसे प्रार्थना कैसी? और यदि संसार का सार ही कुछ नहीं तो उससे तरना कैसा?

वेद, शास्त्र, गुरु, माता, पिता, भाई, बन्धु सब को झूठा मानने वाला कोई और शंकराचार्य है।

जब यह बात है तो आर्य समाजी संन्यासियों के गुरु श्री शंकराचार्य महाराज का अपमान क्यों करने लगे? वह तो उलटा उन के गीत गाएंगे, क्योंकि बौद्ध तथा जैन नास्तिक मतों के प्रचार के समय वेद शास्त्र की मर्यादा की फिर से स्थापना इन्हीं महापुरुष श्रीशंकराचार्य ने की है। इन्हीं ने फिर से लोगों को यज्ञोपवित पहिनवाए, शिखा रखवाई, और अनार्य होती हुई जनता को आर्य बनाया।

हम आर्यों के महापुरुष ऋषि दयानन्द जी महाराज आदिम श्री शंकराचार्य महाराज की स्तुति करते हैं। निन्दा कहीं नहीं की। उन के अनुयायी आर्य समाजियों तथा आर्य समाज के उपदेशकों को भी इन महापुरुष श्री शंकराचार्य का नाम सदैव सत्कार पूर्वक लेना चाहिये जिस से संन्यासी मंडल आर्य समाज की ओर खिंचे।

हम अपने अगले लेख में यह सिद्ध करेंगे कि नविन वेदान्त के सिद्धान्त शास्त्रों के विरुद्ध हैं।

दफ्तर।

कभी अफ़सरों ही का दफ्तर होता था। आज वकीलों के, दूकानदारों के, वसीक़ान-वीसों के, स्कूल के मास्टरों के सब पढ़े लिखों के दफ्तर होते हैं।

इन बाबुओं की देखा देखी परमात्मा ने भी दफ्तर लगाना आरंभ कर दिया है। औरों का परमात्मा लगाए न लगाए, बाबुओं का तो अवश्य लगाता है।

मुल्ला को घर बैठने का अभ्यास था, उसने मसजिद को 'खुदा का घर' कहा। पंडित झरोखों से बाहर ताका करता था, उसने अपने देवी देवताओं केलिये भी झांकियों के झरोखे रखे। और अब युग है बाबू का। इस का घर न घाट। सारा दिन दफ्तर सिर पर सवार है। धर्म मन्दिर में भी उसी भूत को घुसेड़ लाया है।

मन्दिर का चपरासी इसी बाबू की उपज है। पहले मन्दिर के टहलुए आबाल वृद्ध सभी धर्म के श्रद्धालु लोग हुआ करते थे। अब धर्म की अन्तरग सभाएं हैं। प्रधान हैं, मंत्री हैं। वोट होते हैं। पोप पैसे लेकर पाप क्षमा करता था। यहां भी प्रार्थना पत्र लेते हैं, उपासक का हुलिया लिखा जाता है। मंत्री उसपर हस्ताक्षर करता है, प्रधान के विचार के साथ सभा में रखता है। अन्तरंग सभा स्वीकार करे तो परमात्मा की भक्ति की छुट्टी हो। वेदका भक्त वैदिक धर्मी कहलाए।

और राज्य प्रजातंत्र हुए ही थे, अब के परमात्मा की भी लिमिटिड मानर्की होगई है—प्रधान, मंत्री इत्यादि ये सब परमात्मा की कैबिनिट हैं।

इस खुदाई फ़ौजदार को देखना! मज़े से टहल रहा है। और इधर हवन सन्ध्या समाप्त होने को है। यह समाज का मंत्री है। पूछो, क्या करते हो? प्रबन्ध। विना प्रबन्ध के भी परमात्मा का काम चल ही रहा था। पर नहीं। जब तक परमात्मा में स्वयं प्रबन्ध की शक्ति नहीं, यह परोपकारी महापुरुष उस अशक्त के शासन को अपना शासन बनाकर चलाएंगे।

सचमुच दफ्तर हैं। धर्म के सभी मन्दिर—और अब तो मसजिदें भी—परमात्मा का दफ्तर हैं? कवि ने सच कहा है:—

अलग मिलना है तो हृदेश में अपने लगा आसन।
खुदा का घर नहीं दफ्तर है मन्दिर और मस-जिद में॥

(ठठोली)

क्या मांस मनुष्य की खुराक है ?

(श्रीयुत भगवानदास शास्त्री संस्कृताध्यापक हाईस्कूल शुजाबाद)

प्रिय पाठकगण! आज मैं ऐसे विषय पर आपके सन्मुख विचार करने लगा हूं जिस पर मनुष्य जीवन की उन्नति तथा अधोगति निर्भर है।

जो आर्य जाति प्राचीन समय में मांस खाना जानती ही नहीं थी, उसी में आज ८० फी सदी ने मांस खाना आरंभ कर दिया है, जिसका परिणाम आज हमें यह भोगना पड़ा है कि हमारे दिमागों की सत्ता प्रतिदिन क्षीण हो रही है। यही कारण है कि प्राचीन गौतम, कणाद, व्यास, मनु, जैसे दूरदर्शी विचक्षण हममें उत्पन्न नहीं होते। और नाही अर्जुन तथा कर्ण जैसे महाबीर क्षत्रिय संसार में दिखाई देते हैं। क्योंकि यह नियम है:— **"यथान्नं तथैव मनः"**। जैसी खुराक होगी तदनुसार मन, बुद्धि उत्पन्न होगी। जैसे **"दीपो हि भक्ष्यते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते- यदन्नं भक्ष्यते नित्यं जायते तादृशी प्रजा"** जैसे दीपक की खुराक काला धुआं है उससे काला कज्जल ही पैदा होता है न कि शुभ्र, इसी तरह गीता में सात्विकी, राजसी, तामसी तीन मानसिक वृत्तियां अन्न से बनती हैं ऐसा कहा गया है:—

अब विचारना यह है कि मांस मनुष्य की खुराक है या नहीं ? इसकी परीक्षा के लिये छोटे बच्चे को जिसने कभी मांस न खाया हो- मांस का टुकड़ा और एक आम का फल दे दीजिये। यह अनुभव सिद्ध बात है कि छोटा बच्चा मांस के स्थान में आम को अधिक सहर्ष ले लेगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि मांस मनुष्य की स्वाभाविक खुराक नहीं है किन्तु कृत्रिम है। यदि स्वाभाविक होती तो बच्चा मांस को अधिक पसंद करता।

२—अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि कृत्रिम खुराक मानने पर इसके सेवन करने से क्या हानि होती है ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका हल होने से मनुष्य शारीरिक, मानसिक, तथा आत्मिक रूप से सांसारिक मलों से निवृत्त होकर अत्यन्त सुख का भागी बन सकता है।

मांस के सेवन करने से मन, बुद्धि, आत्मा तथा शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है ? परमात्मा ने मन एक ऐसी वस्तु दी है जिससे शरीर की सारी कलायें हर समय अपने २ कार्य में प्रवृत्त होती रहती हैं। यदि यह नष्ट हो जाय

तो समझो कि गाड़ी का इंजन टूट गया। इन जैक्सन जो संयुक्त प्रान्त अमेरिका के एक प्रसिद्ध डाक्टर तथा खाद्य पदार्थों के तत्व वेत्ता हैं वह लिखते हैं कि मांस खाने पर दिल पहिले से १ मिण्ट में दस बार अधिक धड़कने लग जाता है अर्थात् मांस खाने वाले मनुष्य की धडकन की दिन में १४४०० बार गति हो जाती है। इतनी धडकन ४ औंस शराब पीने से नहीं होती। पर मार्कस साहिब शराब के प्रयोग को अधिकतया हानिकारक समझते हैं। वह लिखते हैं कि चार औंस शराब पीने से १२००० बार अधिक दिल धड़कता है। यह एक अनुभव सिद्ध उदाहरण है कि जितनी रस्सी अधिक रगड़ी जायगी उतनी शीघ्र टूटेगी। यही हृदय की धड़कन के विषय में समझ लो।

२—अब ज़रा शरीर पर आइये। मांस खाने वाले मनुष्य अधिकतया खून के रोगों में फंसते हैं जैसा कि डा. अनाकंगसफोर्ड एम. डी. अपने एक व्याख्यान में एक वार कहते हैं:- जिस रोग के किरम (कीड़े) हमें दूरबीन से भी दिखाई नहीं देते उनके विषय में से मांस हमें धोखा देता है। इसीसे यह रोग पैदा होते हैं। डा. जे. ऐम. प्लेस. ऐम. डी. मांस के विरुद्ध एक युक्ति पेश करते हैं कि जो गन्दा मादा और खून कतल किये हुए पशुओं के मांस से पैदा होता है वह खाने के योग्य नहीं होती। फल मेवा आदि खाने की वस्तु बहुत अछी हैं। इसी से रक्त, मज्जा, मांस, तथा वीर्य बनता है। डा. रहीम प्रोफेसर मेडीकल कालिज़ लाहौर अपनी किताब तिब्र रहीमी पृ. ५१६ में लिखते हैं कि "गरम देश में मांस खाना अपने जिगर के फ़ेल में फ़तूर बढाना है। फिर ५१७ पृष्ठ में लिखते हैं कि जो मनुष्य यह कहते हैं कि मांस खानेसे बल बढ़ता है उनका यह कहना सर्वथा असत्य है। बिना मांस खाने वाले संसार में अधिक बलवान् दिखाई देते हैं। हां यह विशेषता मांस खाने वालों में पाई जाती है कि प्रातः उठते ही अपने जिगर में गर्मी अधिक हो जाने से मुक्कियां मारते हैं।

३—आत्मा पर प्रभाव—यह एक आत्मिक सिद्धान्त है कि जिसको तुम पैदा नहीं कर सकते उसके मारने का अधिकार तुम्हारा नहीं है। बड़े २ डाक्टर किसी मनुष्य तथा पशु के टूटे हुये अंग को पूर्ववत् बनाने का यत्न करते हैं पर उनका यत्न अपने लक्ष्य तक पहुंचनेमें सफल नहीं होता। ऐसी अवस्था में परमात्मा की सृष्टि को अपने हाथों से

नष्ट करना ईश्वर के दरबार में एक बड़ा भारी पाप करना है, जिसका फल भोगे विना छुटकारा नहीं हो सकता। वृक्षादि तुम पैदा कर सकते हो अतः उसके फल को खाने का सब मनुष्य मात्र को अधिकार है। बाइबल में लिखा है कि जिस जान को तुम दे नहीं सकते उस को मत मारो। पर शोक कि अपने धर्म पुस्तक की आज्ञा को न मानते हुए ईसाई प्रति दिन हजारों की संख्यामें प्राणियोंको निर्जीव कर देते हैं। मनुष्य डाकाजनी तथा और दोषों में क्यों फंस जाते हैं डा० काल्डनकेटर लिखते हैं कि यह उनके माता पिता का दोष है जो उनको मांस तथा मद्य की खुराक देते हैं। डा. सीजैक्सन ऐम. डी. न्यूपार्क ने १०० से अधिक मनुष्यों को शराब मांस छुड़ाया। वह लिखते हैं कि मेरे लिये शराबियों का इलाज केवल मांस छुडाना है।

४—बुद्धि पर प्रभाव-मुसलमानों का हिन्दुस्तान में मांस खाना और गणित विद्या में सब से कमजोर रहना—यह इस में सब से अधिक प्रत्यक्ष प्रमाण है। डा. कुक स्विटजरलैण्ड में एक स्कूल के इंचार्ज हैं। उनके स्कूल के विद्यार्थी सब से अधिक चतुर तथा गणित विद्या में तीक्ष्ण बुद्धिवाले इसी वास्ते हैं कि वह मांसादि का सेवन नहीं करते। इसके अतिरिक्त जो महापुरुष हुए हैं जिन के पीछे सारी दुनिया माथा झुकाती है, वह मांस नहीं खाते थे। भगवान् कृष्ण, राम, महाराणा प्रताप, अर्जुन, शंकर, बुद्ध, प्लेटो, अपोलोनियस, आफ टाटा, शैले, स्वामी दयानन्द जी, प्रो० राममूर्ति, स्वामी रामतीर्थ, लोकमान्य तिलक, महा० गान्धी इत्यादि सब शाकाहारी हैं।

बन्दा विरागी जो, कि अपने समय में सबसे बहादुर नेता हो चुका है, मांस न खाता था। अकबर का अधिक समय तक राज्य इस लिये रहा कि उस ने मांस खाना छोड़ दिया था। गैंडा और अरना भैंसा शाकादि पदार्थ खाने वाले इतने बलवान् हैं कि मांस खाने वाले शेर उन के सन्मुख नहीं आ सकते।

इस सारे लेख से यह सिद्ध है कि मांस न खाने वाले अधिक बलवान् होते हैं, क्योंकि मनुष्य की प्राकृतिक खुराक अन्नादि पदार्थ हैं।

जब कि हमारे ईसाई भाई प्रातः उठते ही खुदा से यही प्रार्थना करते हैं :—हे खुदा! आज हमें हमारी नित्य की रोटियां हमें दे, क्यों प्रति दिन सहस्रों की संख्या मे पशु कतल कर

अपने बक्स में डाल देते हैं ।

सूरत ४ हज्ज में लिखा है " कि खुदा तुम्हारी कुर्बानी के गोश्त की इच्छा नहीं करता और न पशुओं के खून की, किन्तु वह तुम्हारी पाकीज़गी चाहता है " शोक कि खुदा की इच्छा के विरुद्ध चलते हुए मुसल्मान प्रतिदिन हजारों की संख्या में पशुओं की हत्या कर अपने पेट को एक लम्बी चौड़ी क़बर बनाते हैं और अपने खुदा को नाराज करते हैं ।

हमारे भाई निम्न वाक्यों से शिक्षा लें । मि. डा. जोनवुड. वे. ऐम. डी एक अखबार में लिखते हैं "I maintain that flesh-eating is unnecessary, unnatural, and unwhole some.

बड़े हर्ष की बात है कि हमारे यूरोप के भाई वैदिक धर्म की सचाई को मान कर मांस न खाने के लिये लोगों को उपदेश करते हैं। वह ऐसा क्यों न करें जब कि उनके पूर्वज जब कि वह आर्य थे मांस न खाते थे इसका जिक्र चरक में आता है कि दुनियां में सब जातियों के पूर्वज मांस नहीं खाते थे। जो कोई खाता था केवल औषधि मात्र खाता था, न कि खाद्य समझ कर जैसे चरक में कहा है—

बलखबुखारा- पुराना फारस- चीन- सुलीक- यूनान- तिब्बत तातार ब्रह्मादि देशों में माषादि दाल तथा दूध पीने वाले मनुष्य थे। पर शोक कि आज हमारे भाइयों ने पूर्वजों की शिक्षा को छोड़ दिया है ।

अन्त में सब से यह प्रार्थना करता हूं कि ऐसी खुराक को जिससे मानसिक, शारीरिक तथा आत्मिक शक्तियां दुर्बल होती हैं, जिससे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, छोड़ दें। पाठकगण अब जान गये होंगे कि मांस मनुष्य की प्राकृतिक खुराक नहीं है और इसके सेवन करने से मनुष्य अधोगति को प्राप्त होता है ।

संपादकीय

जम्मू में शुद्धि--

जम्मू प्रान्त में शुद्धि का कार्य जो मेघ आदि दलित जातियों के कृषि आदि कामों में लगजाने के कारण शिथिल हो गया था, अब फिरसे चालू होगया है । ९, १०, ११ नवंबर को रियासी आर्यसमाज का उत्सव था। रियासी जम्मू से कोई ३६ मील की दूरी पर एक क़सबा है । जब काश्मीर प्रान्त जम्मू राज्य में सम्मिलित न हुआ था तो जम्मू के महाराज शीतकाल रियासी में काटते थे । आज भी वह भवन विद्यमान है जहां उन दिनों महाराज का दर्बार लगा करता था । जम्मू के वर्तमान महाराज प्रताप सिंह का जन्म भी रियासी में हुआ था । इस समय रियासी ज़िला है । वैष्णव देवी का मन्दिर रियासी के समीप है, उस की यात्रा का आजकल मौसिम है । और बाबा बन्दा की समाध भी जिन्हों ने गुरु गोविन्द सिंह के पीछे सिक्खों का नेतृत्व अपूर्व वीरता से किया था, रियासी के निकट है । इस से रियासी को एक विशेष माहात्म्य प्राप्त है ।

यह उत्सव रियासी आर्य समाज का प्रथम उत्सव था । दैव संयोग से उत्सव से थाड़ा समय पूर्व एक शिवलिंग पड़ा २ टूट गया । पुजारियों ने प्रसिद्ध कर दिया कि देवता का यह कोप आर्य समाज के उत्सव के कारण है । आर्यसमाजी यह कहते पाये गए कि अभी आर्य समाज का पहिला ही कदम आया है और एक शिवलिंग टूटा है । उर्दू कवि का कहना है, आगे आगे देखिये होता है क्या।

कोई सवा पांचसौ दिहार, मेघ और मौलगी इस अवसर पर शुद्ध हुए । प्रत्येक कुटम्ब के प्रतिनिधि उत्सव पर आए हुए थे। आर्य समाज की दीक्षा देकर उन की और उन के घर वालों की छूत हटाई गई ।

हर्ष का विषय यह है कि हिन्दू संगठन वालों ने ही इच्छा प्रकट की कि यह शुद्धि हमारी ओर से हो । हिन्दू संगठन के प्रधान महाशय को जो एक सनातनधर्मी सज्जन हैं शुद्धि संस्कार का प्रधान बनाया गया । इस का परिणाम यह हुआ कि शुद्ध होने वालों के साथ केवल आर्य समाजियों ने ही नहीं, किन्तु सनातन धर्मीयों ने भी भेद भाव छोड़ दिया । यह एक नया पग है जो जम्मू प्रान्त की शुद्धि में उठाया गया है ।

हम कार्य कर्ताओं को उन के यत्न की सफलता पर बधाई देते हैं ।

आगेकी आश्यकता—

जम्मू की सारी अछूत आबादी २ लाख के लग भग है। इन में से लगभग २२,००० शुद्ध हो चुके हैं। अर्थात् अभी कार्य आरम्भ ही हुआ है। केवल शुद्धि संस्कार कर देने के लिये ही बड़े परिश्रम और धन व्यय करने की आवश्कता है। फिर यह बात तो स्पष्ट है कि संस्कार शुद्धि की भूमिका मात्र है। वास्तविक शुद्धि इसके पीछे आरम्भ होती है। शुद्ध हुओं को आचार, विचार, व्यवहार, आहार सब में शुद्ध कर देने के लिये शिक्षा की आवश्यकता है। इस समय ७ पाठशालाएं इन दलितों को विना शुल्क पढ़ारही है, और और पाठशालाएं खोलने का विषय जम्मू आर्य समाज के सामने है। आवश्पकता यह है कि इन दलित भाइयों को अन्य आर्य जातियों में खपा दिया जाए। अनाचार में कोई और जाति भी दलितों से कम न होगी, परन्तु इन्हें अभी उठाना है। और उठते समय कुछ असाधारण महत्व का प्रदर्शन आवश्यक होता है।

शुद्धिसंस्कार से कुछ पूर्व एक मेघ आया और उसने खुले बाज़ार में घोषणा की कि यदि हिन्दु हमें नहीं अपनाएंगे तो हम शीघ्र मुसलमान हो जायंगे और फिर हिन्दुओं की ख़बर लेंगे।

आर्य जाति को आने वाले संकट से पूर्व सचेत होना चाहिये और उस के प्रतिबन्ध का पूरा प्रवन्ध कर देना चाहिये। ऐसा नहो कि आदमियों और रुपये की कमी से दलितोद्धार का काम बीच में रह जाए।

पुराने सत्यार्थ प्रकाश पर मुहम्मदियों के आक्षेप—

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज लिखते हैं:—

हिन्दू संगठन के लिये जब मैं दौरे पर था और उसके पश्चात भी जहां कहीं जाने का अवसर मिला, आर्य पुरुषों से यही सुना कि पुराने सत्यार्थ प्रकाश को लेकर कादियानी मौलवी मांस भक्षण विधि तथा अन्य विषयों के मानने का दोष ऋषि दयानन्द पर आरोपित करते हैं, और आर्य पुरुष कई स्थानों में उनका उत्तर नहीं दसकते। सात वर्ष हुए जब ऐसेही आक्षेपों का समाचार पाकर मैंने इस विषय पर विचार किया था और उन्हें निर्मूल सिद्ध करने के लिये **"आदिम सत्यार्थप्रकाश और आर्य समाज के सिद्धान्त"** नामी पुस्तक लिखी थी। उस पुस्तक को श्रीमान् पंडित विष्णुमित्र जी, आचार्य, गुरुकुल कुरुक्षेत्र, P. O. थानेसर, जिला करनाल, ने अपनी लागत से

छपवा दिया था। अबतक उनके पास उस पुस्तक की बहुत सी प्रतियां पड़ी हैं। यदि आर्य पुरुष चाहते हैं कि मुहम्मदी मौलवियों के एतराज़ों का जवाब ठीक प्रकार से दे सकें तो पंडितजी को लिखकर किताब मंगा लें। प्रति पुस्तक का मूल्य ॥) है। यदि महसूल डाक और अन्य व्यय के लिये ।) शामिल करके ॥।) के टिकट भेज दें तो पं० विष्णुमित्र जी किताबें भिजवा देंगे। जो सज्जन अधिक पुस्तकें मङ्गावाना चाहें वे पंडित जी के साथ पत्र व्यवहार करके कमीशन आदि का निश्चय कर लें।

२. आर्य समाजस्थ पुरुषों के अतिरिक्त जिन हिन्दू वा मुसलमान भाईयों को भी पुराने सत्यार्थ प्रकाश के लेखों के विषय में भ्रम हो उनके लिये भी यह पुस्तक लाभदायक होसकती है।

गुरुकुल प्रवेश की तिथियां—

श्री मुख्याधिष्ठाता 'गुरुकुल कांगड़ी' लिखते हैं:—

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी में नवीन प्रविष्ट होने वाले ब्रह्मचारियों के प्रवेशार्थ प्रार्थना पत्र दिसम्बर १९२३ के अन्त तक कार्य्यालय में पहुँच जाने चाहियें। प्रवेशार्थ प्रार्थना पत्र के फार्म तथा नियमावली गुरुकुल कार्य्यालय, डाक घर गुरुकुल कांगड़ी, ज़िला बिजनौर को लिखने पर मिल सकेंगे।

'प्रकाश' का ऋष्यंक—

इस वर्ष ऋष्युत्सव के अवसर पर सहयोगी 'प्रकाश' का हिन्दी में भी ऋष्यंक निकला है। इस भय से कि कहीं उर्दू ऋष्यंक के होते हिन्दी का संस्करण रह ही न जाए, हमारे सहयोगी ने इस संस्करण की कुल अढ़ाई हज़ार प्रतियां छपवाई थीं। हमें यह सुनकर बड़ा हर्ष हुआ कि इतनी प्रतियों के आर्डर तो प्रकाशित होने के पूर्व पहुंच गए और कई कृपार्थियों को अङ्क न मिलने से निराश रहना पड़ा। हम सहयोगी को इस सफलता पर बधाई देते हैं।

इस बार इस ऋष्यंक में और नूतनता यह थी कि यह पुस्तकाकार में निकाला गया। लेख सभी उपादेय हैं। हिन्दी संस्करण में कविताओं की कमी रही, जिस को पूरा करने का यत्न इसप्रकार किया गया कि उर्दू की कविताएं नागरी अक्षरों में छाप दी गईं। इस से केवल पृष्ठों की भर्ती हुई। नहीं तो उर्दू कविता को आर्य भाषा भाषी समझेगा कौन! और फिर कविताएं भी वह जिनमें भारी २ फ़ारसी और अरबी के शब्द हैं।

पहिला परीक्षण था। समय भी थोड़ा था। तो भी सफलता हुई। आशा है आगे

को ऋष्यंक का हिन्दी संस्करण स्थायी कर दिया जायगा । आर्य पत्रों की शोभा आर्य भाषा ही में निकलने में है । फिर आर्य पत्रों के भी ऋष्यंक । आर्य जनता पूरा उत्साह दिखाए तो इन्हें किसी और भाषा में निकलने ही न दिया जाए ।

ऋषि लंगर--

इस बार लाहौर आर्य समाज ने अपने वार्षिकोत्सव के अवसर पर बाहर से आए हुए भाइयों के भोजन का प्रबन्ध 'ऋषि-लङ्गर' द्वारा किया है । यह एक नया क़दम है जिसकी सफलता की सब को आकांक्षा है । ऋषि लंगर पर समाज की ओर से कुछ भी व्यय न करने का निश्चय हुआ है । जो खर्च होगा, वह आर्य पुरुष वा स्त्रियां अपने ऊपर लेंगी । किसी ने आटे का, किसी ने घी का, किसी ने शाक का, सार यह कि सब चीज़ों का व्यय आर्य सज्जनों ने अपने २ ऊपर ले लिया है । जने जने की लकड़ी, एक जने का बोझ । मुख्य उद्देश्य इस विधि के प्रचलित करने का यह है कि आर्यों में—व्यक्ति तथा समुदाय दोनों रूप में—अतिथि सत्कार का भाव जागृत हो । बाहर से आये हुये सज्जन लाहौर आर्य समाज के पाहुने हैं । उनके भोजन का प्रबन्ध लाहौर निवासी आर्यों को करना ही चाहिये । लङ्गर सामूहिक प्रीति पैदा करने का एक विशेष साधन है । इस को उपयोग में लाना आर्य प्रथाओं का पुनरुज्जीवित करना है ।

यज्ञ शेष--

इसी प्रकार यज्ञशेष । आर्य समाजों के साप्ताहिक सत्संगों में हवन होता है । उसमें मोहन भोग की आहुति डालने की विधि है । प्रत्येक समाज अपनी शक्ति के अनुसार कोई भोज्य पदार्थ हवि रूप में डाल लिया करे और यज्ञशेष उपस्थित लोगों में बांट दिया करे तो उत्तम हो । इस से छोटे परिमाण पर वही लाभ हुआ करेगा जो बड़े परिणाम पर लंगर से होगा । लोगों को भ्रम है कि यह सिक्खों की रीति है, यह पता नहीं कि प्रथा पुरातन आर्यों की है । यदि सिक्खों ने उसे अपनाया है तो क्या हम उसे छोड़ दें ? फिर सिक्खों में इसका प्रभाव भी तो देखते हो ।

यज्ञों को समाज का प्राइवेट कार्य न बनाओ । स्त्री पुरुषों को बड़ी संख्या में उन में सम्मिलित करो।लागों में यह प्रथा चलाओ कि यज्ञ के लिये हवि साथ लाया करें । इसी हवि में भोज्य पदार्थ हों । आर्य प्रथाओं की रक्षा भी होगी और लोगों की यज्ञों में श्रद्धा भी बढ़ेगी । यजमानों

की आपस में प्रीति होने से यज्ञ यथार्थ रूप में 'संगतिकरण' हो जाएंगे।

'आर्य' निकलने में देर--

इस वार 'आर्य' पाठकों को देर से मिल-रहा है। कारण है हमारी लाहौर से अनुपस्थिति। कई उत्सव ऐसे आगए थे जिन में हमारा सम्मिलित होना अनिवार्य था। पीछे जो संपादन का प्रवन्ध किया था, वह सफल न हुआ। हम १३ नवंबर को दौरे से लौटे और दिन रात के निरंतर परिश्रम से आज 'आर्य' निकाल दिया है। पाठक गण देरी क्षमा करें।

लॉर्ड हैडले का हज--

आर्य लोगों को स्यात् यह ज्ञात ही होगा कि क़ादियानी मिशन ख्वाजा कमालुद्दीन के नेतृत्व में लंदन में काम कर रहा है। इनकी वहां एक मसजिद भी है। कई आंगल सज्जन मुसलमान भी हुए हैं। सब से अधिक ध्यान देने योग्य लॉर्ड हैडले का मुसलमान होना है। यह महाशय लॉर्ड होने के अतिरिक्त अच्छे बुद्धिमान् हैं। इस वर्ष वह ख्वाजा कमालुद्दीन के साथ हज को गए। वहां मुसलमान रीत्यनुसार सारे कपड़े उतार कर एक चादर से शरीर को ढांका और एशियाई मुसलमानों के साथ मिल कर हज की सारी रीतियां पूरी कीं।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जो रूप इसलाम का इंगलैण्ड में पेश किया जाता है। वह भारतीय इसलाम से भिन्न है। तोभी क़ादियानी भाइयों का परिश्रम प्रशंसनीय है।

क्या यह आर्य समाजियों को चेतावनी नहीं ?

आर्यों की प्रतिज्ञा है कि देश देशान्तरों में वैदिक धर्म का प्रचार करेंगे। क़ादियानी और आर्य समाजी मिथुन (जोड़) हैं। इन का जन्म एक साथ हुआ था। दोनों ने अपने देश में इकट्ठा काम किया है, और यद्यपि यहां आर्य समाज को क़ादियनियों की अपेक्षा अधिक सफलता हुई है, (जिस के कारणों पर फिर कभी विचार किया जायगा), विदेश प्रचार में यह मानना ही पड़ेगा कि क़ादियानी बाज़ी ले गये हैं। वैदिक धर्म पुराने ढर्रे के सनातनी हिंदुओं की नाईं काले पानी के पार नहीं जा सका। इस में कमी है, हमारे उत्साह की, आत्म-विश्वास की, और स्यात् त्याग भाव की।

अच्छा! कभी हमारे स्वप्न भी सफल होंगे।

Registered No. L. 1424.

रजिस्टर्ड नं० एल १४२४

ओ३म्

भाग ४ — अगहन १९८०

अङ्क ८ — दिसम्बर १९२३

आर्य्य

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मासिक पत्र

सम्पादक—चमूपति ।

प्रार्थना ।

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । अपघ्नन्तोऽराव्णः ॥

ऋग्वेद ।

हे प्रभु ! हम तुम से वर पावें ।
विश्व जगत् को आर्य बनावें ॥
फैलें, सुख सम्पत् फैलावें ।
आप बढ़ें, तव राज्य बढ़ावें ॥
वैर-विघ्न को मार मिटावें ।
प्रीति-नीति की रीति चलावें ॥

वार्षिक मूल्य —०— २) रु० पेशगी

"अमृत प्रेस" अमृतधारा भवन लाहौर द्वारा ला० नन्दलाल उपमंत्री आ० प्र० स[भा]
मुद्रित वा प्रकाशित किया ।

विषय सूची ।

'आर्य' के नियम ।

१—यह पत्र अंग्रेज़ी मास की १५ तारीख को प्रकाशित होता है। डाकखाना में चूंकि अंग्रेज़ी तारीख़ देनी होती है, इसलिये अंग्रेज़ी तारीख़ का हिसाब रक्खा गया है।

२—इसका वार्षिक मूल्य २) है ≡) डाक महसूल निकाल कर केवल १।॥-) में यह पत्र देना घाटे का काम है, तथापि सभा ने वैदिक धर्म तथा नागरी प्रचार के लिये इसे जारी किया है।

३—इस पत्र में धर्मोपदेश, धर्म जिज्ञासा वैदिक धर्म संरक्षण धर्म प्रचार विषयक बातोंके अतिरिक्त आर्य सामाजिक समाचार तथा प्रतिनिधि सभा की सूचनायें दर्ज होती हैं।

४—पत्र के प्रकाशित होने के लिये समाचार तथा लेख प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख के पूर्व आजाने चाहियें।

५—यदि डाक की गलती से कोई अंक न पहुंचे तो १५ दिन के भीतर सूचना देने से वह अंक भेज दिया जायगा, लेकिन इस अवधि के पश्चात् मंगवाने पर प्रति अंक ≡) मूल्य देना पड़ेगा ॥

—०—

॥ ओ३म् ॥

भाग ४] लाहौर—मार्गशीर्ष १९८० तदनुसार दिसम्बर १९२३ [अंक ८

वेदामृत ।

अभय प्रार्थना ।

ओ३म् अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयंपश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ।

अथर्व १९. १५. ५.

(भावार्थ)

अन्तरिक्ष में हमें न भय हो ।
धरा गगन में हमें अभय हो ॥
हमें अभय हो आगे पीछे ।
हमें अभय हो ऊपर नीचे ॥

———

जिज्ञासा ।

(लेखक—श्रीयुत रघुनाथदत्त बन्धुः निरुक्तरत्न)

नवम्बर मास के आर्य को देखते २ मेरी दृष्टि उसके इक्कीसवें पृष्ठ पर पड़ी, वहां "श्री स्वामी शंकराचार्य और नवीन वेदान्त" नामक शीर्षक एक लेख है । उसके लेखक आर्य-समाज के सुप्रसिद्ध वक्ता श्रीस्वामी अच्युतानन्दजी महाराज हैं ।

इस लेख के साथ आपका नाम देखते ही मेरी उत्कण्ठा और भी बढ़ी। अतएव मैंने उसे तत्काल बड़ी ही श्रद्धा के साथ ध्यान पूर्वक इस लिये पढ़ना प्रारम्भ किया कि जगद् गुरु संन्यासी के विषय में एक विद्वान् और अनुभवी संन्यासी की गवेषणा से मुझे अवश्य लाभ होगा। परन्तु मैंने जिस विचार से लेख पढ़ाना आरम्भ किया था, वह पूरा न हो सका। कारण यह कि इस लेख में उक्त स्वामीजी ने लिखा है कि "न जाने कौन से शंकराचार्य ने नवीन वेदान्त के भ्रान्त सिद्धान्तों को प्रचलित किया"। आगे चलकर २२ वें पृष्ठ पर आप लिखते हैं कि "आदिम श्रीशंकराचार्य न तो जीव ब्रह्म की एकता में विश्वास रखते थे न संसार को मिथ्या समझते थे" ।

इस लेख के पढ़ने के अनन्तर जो शंका मेरे चित्त में हुई, मैं उचित समझता हूं कि वह श्री स्वामीजी की सेवा में बड़े ही विनीत भाव से निवेदन करूं। किन्तु इससे पूर्व मैं यह बात प्रकट कर देना भी अपना कर्तव्य समझता हूं, कि मैं यह विश्वास कदापि नहीं करता कि आप जैसे एक अनुभवी महा विद्वान् संन्यासी की कही हुई बात अन्यथा होगी । क्योंकि मैं समझता हूं कि हम लोगों की अपेक्षा संन्यासी—जगद्गुरु की बाबत संन्यासी महात्माओं को ही अधिक जानकारी होसकती है। पर क्या करूं, कई पुस्तकों के पढ़ने से मुझे विश्वास हो चुका है, कि भगवान् श्रीमदाद्य शंकराचार्यजी ने ही अद्वैत वाद का प्रचार किया है, जैसा कि उनके शारीरिक भाष्यादि से स्पष्ट ही है । किन्तु सम्भव है आप यह कहदें कि शाङ्कर भाष्य अद्वैतवाद का प्रतिपादन भले ही करे, परन्तु आदिम शङ्कराचार्यजी अद्वैतवादी न थे। अतएव मैं शाङ्कर भाष्यादि के प्रमाण न देकर, अपनी पुष्टि के लिये कुछ आधुनिक विद्वानों के ही प्रमाण दूंगा ।

अतः सबसे पहिले गुरुकुल वृन्दावन के भू. पू. मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य श्रीनारायण स्वामीजी का प्रमाण देता हूं क्योंकि वे भी एक लब्धप्रतिष्ठ संन्यासी हैं ।

(१) आपने 'आत्मदर्शन' के ३१९–२० पृष्ठ पर श्रीमदाद्य शङ्कराचार्य के विषय में यह लिखा है कि "अद्वैतवाद के पोषक श्रीशङ्कराचार्यजी जीव की स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानते; उनका मत है कि "जीवो ब्रह्मैव नापरः" ।

(२) आजकल अँग्रेज़ी पढ़े हुए विद्वान् अधिक खोज करते हैं, इस लिये यहां अंग्रेज़ी और संस्कृत दोनों भाषाओं के एक विद्वान् का प्रमाण देना भी अनुचित न होगा । आपका नाम है बाबू हीरेन्द्रनाथदत्त, एम०ए० बी० एल० वेदान्तरत्न — आप ने 'गीता में ईश्वरवाद' नामक पुस्तक के पृष्ठ १६२–३ में आद्य श्री शङ्कराचार्यजी के विषय में यह लिखा है:—

"शङ्कराचार्य ने शारीरिक भाष्य में लिखा है, कि वाक्य और मन से अतीत, विषय का विरोधी, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव ब्रह्म ही जीवरूप में अवस्थित है ।"

(३) अब मैं जगत् प्रसिद्ध लोकमान्य तिलक महाराज के गीता रहस्य का प्रमाण देता हूं—

गीता रहस्य पृष्ठ १२–१३ पर श्रीमदाद्य शङ्कराचार्य जी के जन्म आदि के विषय में लिख कर आप उन के सिद्धान्त के विषय में यों लिखते हैं:—" (१) मैं–तू यानी मनुष्य की आंख से दिखने वाला सारा जगत् अर्थात् सृष्टि के पदार्थों की अनेकता सत्य नहीं है । इन सब में एक ही शुद्ध और नित्य ब्रह्म भरा है और उसी की माया से मनुष्य की इन्द्रियों को भिन्नता का भास हुआ करता है । (२) मनुष्यका आत्मा भी मूलतः परब्रह्म रूप ही है, '···इसी को अद्वैतवाद कहते हैं"।

(४) अधिक से क्या? अब मैं वह प्रमाण दूंगा जो श्रीस्वामी अच्युतानन्दजी को भी परममान्य होगा ।

सत्यार्थ प्रकाश में श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने पृ० ३०२ पर— " बाईससौ वर्ष हुए एक शङ्कराचार्य द्रविड देशोत्पन्न······" इत्यादि शब्दों से आदि–शंकराचार्य जी का परिचय दिया है और फिर पृ० ३०३ पर लिखा है कि "शङ्कराचार्य का मत था कि अनादि परमात्मा ही जगत् का कर्त्ता है, यह जगत् और जीव झूठा है, क्यों कि उस परमेश्वर ने अपनी माया से जगत् बनाया, वही धारण और प्रलय करता है और यह जीव और प्रपञ्च स्वप्नवत् है । परमेश्वर आपही सब जगत्रूप होकर लीला कर रहा है"

श्री स्वामी जी इस बात को भी मानते थे कि शारीरिक भाष्य आदि ग्रन्थ आद्य श्री शङ्कराचार्य जी के ही बनाये हुए हैं, जैसा

कि सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ३०४ में उन्हों ने लिखा है कि "जो २ उन्होंने शारीरिक भाष्यादि बनाये थे, उनका प्रचार शङ्कराचार्य के शिष्य करने लगे"

श्रीस्वामी जी यह भी मानते थे कि श्रीशङ्कराचार्य जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करते थे जैसा कि उन्हों ने सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ३०४ पर लिखा है कि "जीव और ब्रह्म की एकता, जगत् मिथ्या शङ्कराचार्य का निजका मत था, तो वह अच्छा नहीं, और जो जैनियों के खण्डन के लिये उस मत का स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा है"

अब एक ओर तो श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज का उपर्युक्त वाक्य है और दूसरी ओर श्री स्वामी अच्युतानन्द जी महाराज का 'आर्य' पृष्ठ २२ में छपा हुआ यह वाक्य कि "आदिम श्री शङ्कराचार्य न तो जीव ब्रह्म की एकता में विश्वास रखते थे न संसार को मिथ्या समझते थे"। मैं श्रीस्वामी अच्युतानन्द जी महाराज की सेवा में बड़ी नम्रता से प्रार्थना करूंगा कि क्या श्रीमान् का लेख कहीं श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज के विचार के प्रतिकूल तो नहीं ?

और साथ ही मैं स्वामी अच्युतानन्द जी महाराज से प्रार्थना करता हूं कि अगले मास के 'आर्य' में इस बात के बतलाने की अवश्य कृपा करें कि इस विषय में मैं किस परिणाम पर पहुंचूं।

आर्य समाज के मित्र ।

मित्र किसे कहते हैं ?

उसे जो सेवा करे।

नहीं ! सेवा करने वाला सेवक होता है। सेवा ही करनी हो तो सेवक ही क्यों न कहाएं।

तब मित्र कहलाने का कारण ?

उसे जो किसी का अंग हो जाए।

यदि यह लक्षण सभाओं के मित्रों पर लगाएं तो ?

वह जो उस सभा में सम्मिलित हो जाए। क्योंकि वही तो सभा का अंग होगा।

हां ! अंग होगा, मित्र नहीं। ऐसे अंग को सभासद कहते हैं।

तो मित्र कौन हुआ ?

सभा का या व्यक्ति का ?

दोनों का।

लो ! दोनों के लिए एक ही लक्षण किए देते हैं । मित्र वह जो न तो सेवा करे । न अंग भाव से रहे, अर्थात् सभा का तो सभासद न हो और व्यक्ति के किसी काम काज न आए। तटस्थ भी रहे और पास भी हो। अपना भी बने और पराया भी रहे । सम्मति भी दे और उत्तरदाता भी न हो । भला चाहे भी और करे भी न । जो तुम करो, उसके दोष बताए. और स्वयं इष्ट करने की इच्छा न हो। ऐसे लोग होते हैं हितैषी—कोरे हितैषी । वही मित्र हैं ।

आर्य समाज को इस प्रकार के कई मित्र मिले हैं। इन की मांग आर्य समाज से यह है कि अब आर्य समाज सब कुछ छोड़ छाड़ कर हिन्दू संगठन की दुहाई मचाए। केवल दुहाई मचाए या कुछ करे भी ? हिन्दू संगठन तो नाम ही दुहाई का है ।

हिन्दू संगठन का कोई मत ?

कहते हैं, जो मत हिन्दुस्तान में पैदा हुआ हो उस का अनुयायी हिन्दू है ।

ठीक ! तब तो आर्य समाज हिन्दु ही नहीं ! इस का धर्म वेद है । और वेद का उत्पत्ति-स्थान है तिब्बत, जो आदिम काल में सारा संसार था—सारी पृथिवी थी ।

इस लक्षण से हिन्दुओं का संगठन आर्य समाज से न होगा ।

आर्य समाज का प्राण है वेद । यह *जातीय* संगठन उन लोगों से कर लेगा जो वेदों को न मानें, परन्तु *धार्मिक* संगठन नहीं कर सकता । यदि आर्य समाज के ढंग से संगठन करना हो तो वह आर्य समाज ही से हो गया, और हो रहा है । सारे हिन्दुओं को कह दो, आर्य समाज में सम्मिलित हो जाएं । हिन्दु संगठन हो गया ।

और किसी और ढंग से तो वही संगठन कर सकते हैं जिन का उस संगठन के लक्षणों में विश्वास हो ! जो 'हिन्दू' शब्द की इस परिभाषा को ही स्वीकार नहीं करते, उनसे यह दंभ क्यों कराते हो कि वह संगठन करें ?

अपने बल बूते से काम लो । आर्य समाज के नेताओं से जो बन पड़ता है वह तो उसे कर ही गुज़रते हैं । तुम भी तो हिन्दु हो और हिन्दु भी खरे—हिन्दु महासभा की मोहर से अंकित—सोलहों आने खरे । तुम्हीं क्यों न संगठन करो । हम कांग्रेस के नेताओं से कहते हैं, वह कांग्रेस का नेतृत्व कुछ समय छोड़ कर हिन्दुओं के नेता बन जाएं । उनके लिए यह क्षेत्र संकुचित है ? वह

देश क नेता हैं ? केवल हिन्दुओं के नेता क्यों बनें ? फिर आर्य समाज तो विश्व का नेता है, वह संकुचित क्यों हो ? हिन्दु, मुसल्मान, ईसाई, कोई आर्य समाज के मन्तव्य को मानले, वह आर्य, वह आर्य संगठन का सभासद।

सब का अपना २ क्षेत्र है और उस सब अपना २ काम कर रहे हैं। तुम जो सलाह औरों को देते हो, वह पहले आप आप को देखो। नहीं तो वह कहेंगे:—

परमात्मन्! हमें ऐसे मित्रों से बचा। (ठठोली)

एक चेतावनी।

(लेखक – श्रीयुत रघुनाथदत्त बन्धुः निरुक्तरत्न)

गत मास के 'आर्य' में श्रीयुत रामेश्वर सिद्धान्तालङ्कार का वर्ण व्यवस्था विषय पर एक लेख निकला है। वह लेख कैसा है ? इस समय इस बातपर हम विचार न करेंगे। किन्तु इसी लेख में आपने यास्काचार्य के नाम से जो उद्धरण दिया है, आज उसी के विषय में हमें कुछ कहना है।

आप ने 'आर्य' के १६ पृष्ठ पर लिखा कि "वर्ण-व्यवस्था में 'वर्ण' शब्द का धात्वार्थ निरुक्त अध्याय २ खण्ड ३ में यह बताया गया है कि "वर्णः—वृणोतेः वर्णीया वरितुमर्हा गुण कर्माणि च दृष्ट्वा यथा योग्यं व्रियन्ते ये ते वर्णाः"। अर्थात् आपने वर्णः—यहां से लेकर —वर्णाः, यहां तक का पाठ अवतरण-चिह्न में लिखकर निरुक्त का बतलाया है। इस से प्रतीत होता है कि आपने निरुक्त देखे बिना ही यह लेख लिख दिया है। पर यदि सिद्धांतालंकार महाशय ने केवल निरुक्त न देखा होता तो हमें इतना आश्चर्य न था, जितना इस बात से हुआ कि आपने आर्य समाज के ग्रन्थों को भी भली भांति नहीं देखा। क्योंकि " वर्णीया वरितुमर्हा गुण कर्माणि च दृष्ट्वा यथा योग्यं व्रियन्ते ये ते वर्णाः" इस पाठ का निरुक्त में तो कहीं नामो निशान तक भी नहीं है; वहां तो "वर्णो वृणोतेः" केवल इतना ही पाठ लिखा है।

वर्णीया इत्यादि पाठ जो लेखक महाशय ने निरुक्त के नाम से लिखा है, यह पाठ निरुक्त का तो नहीं, किन्तु ऋग्वेद भाष्य भूमिका के २४७ पृष्ठ का है।

हम लेखक महानुभाव से प्रार्थना करेंगे कि वह लेख लिखने के पूर्व पुस्तक देखने की अवश्य कृपा किया करें। क्योंकि इस प्रकार कई बातों में भ्रम हो जाने की सम्भावना है।

आर्यसमाज लाहौर के वार्षिक महोत्सव की कुछ विशेषतायें।

(लेखक—श्रीयुत परमानन्द आर्य्योपदेशक)

लाहौर का वार्षिक आर्य मेला आया और चला गया। इस महोत्सव को जो अपूर्व सफलता प्राप्त हुई उसे मित्र और शत्रु सभी स्वीकार करेंगे। आर्य जनता को बधाई ! आर्य समाज लाहौर के अधिकारियों को बधाई ! पाठक ! आओ इसकी कुछ विशेषताओं पर विचार करें; यह विशेषतायें चिर स्मरणीय रहेंगी।

१. इस महायज्ञ की घोषणा का विज्ञापन पहिली बार आर्य भाषा में निकला। शुक्र है, अन्त को पंजाब के आर्य समाज ने मातृभाषा की सुन ली। यह आर्यसमाज जालंधर का अनुकरण था। अनुकरण ही सही, शिरोमणि समाज ने एक उत्तम उदाहरण जनता के आगे रख दिया। आर्य समाज ने एक पग अपने उद्देश्य की ओर बढाया, ४० वर्ष से ठुकराई हुई भाषा को उसके ऊँचे सिंहासन पर बिठाया। मातृभाषा की हत्या का पाप कुछ धो डाला। आशा है बाहर की आर्य जनता यह शिक्षा यहां से अवश्य लेकर गई होगी।

२. नगर कीर्त्तन में स्त्रियों का भाग बड़ा सराहनीय था। ४ मंडलियों में विभक्त देवियां किस प्रेम से संकीर्तन करती चली जा रही थीं ! देवताओं के देखने योग्य दृश्य था। प्रत्येक धर्म की शोभा उसके पुरुषों के साथ साथ उस धर्म के रंग में रंगी हुई स्त्रियों से है। हर्ष का स्थान है कि यह परीक्षण यद्यपि लाहौर के लिए पहिला था तथापि बड़ा कृतकार्य रहा। प्रबन्ध भी बड़ा उत्तम था। अब वेदपाठी पंडितों की मंडली पर क्या कहूं ?

३. खुले शास्त्रार्थ बहुत वर्षों के पश्चात् हुए। तीनों दिन मुसलमान सज्जन ही आगे बढ़े और वह भी अहमदी। एक पादरी साहब आये तो सही, परन्तु शास्त्रार्थ से इतने घबराते थे कि प्रारम्भिक वक्तृता में ही आपने कह दिया कि मैं शास्त्रार्थ करने नहीं आया हूँ। जब उत्पत्ति की पुस्तक में से प्रमाण दिया गया तो आप Old Testament की प्रमाणिकता से ही इन्कार कर बैठे, समय का फेर ! जब आपको चैलंज किया

गया कि आप उत्पत्ति की पुस्तक को ईश्वरोक्त मानते हैं या नहीं ? तो आप मूक हो गए। पादरी साहब के साथ वार्त्तालाप में कुछ समय तक अहमदी सज्जन बगलें बजाते रहे, परन्तु जब इस चैलंज का उनसे कोई उत्तर न बन सका तो मुसलमान भी अपना सा मुँह लेकर रह गये।

मुसलमान प्रचारक हाफ़िज़ रौशन अली और अब्दुल हक विद्यार्थी की संस्कृत की योग्यता तो जो थी सो थी, (विद्यार्थी जी को अपनी संस्कृतज्ञता का बड़ा अभिमान है), परन्तु उनका परिश्रम सराहनीय है, इस बार वह ऋषि के ऋग्भाष्य तक में से एक स्थल ले आये थे। इससे स्पष्ट है कि अहमदी लोग किस प्रकार दिन रात आर्य समाज के पीछे पड़े रहते हैं। इसी प्रकार नियोग प्रकरण के कुछ स्थलों पर जब सत्यार्थप्रकाश की भूमिका के कतिपय शब्द सुना कर यह कहा गया कि यह मनु का मत है तो झट ही स्वामी जी का प्रश्नोत्तर पढ़ दिया गया। वास्तव में नियोग विषय को अभी बहुत कुछ साफ़ करने की आवश्यकता है। क्या कोई सज्जन म० रौनक राम के अभियोग की समाचार पत्रों की फ़ाइल को देख कर इस पर अपनी लेखनी उठायगा ? उस में कई आर्य विद्वानों की सम्मिलित खोज के पश्चा नियोग प्रकरण की बड़ी उत्तम संगति ल गई थी। इसी प्रकार सोम औषधि स्वामी जी के लक्षणानुसार निश्चित रूप अवगत करने की बड़ी आवश्यकता है।

इन शास्त्रार्थों में दो बातें उत्साहवर्ध भी हैं। एक तो यह कि जो शुद्ध उच्चार हमारे पंडितों का अरबी भाषा का था वह मौल साहबों का संस्कृत में अभी कई वर्षों त न होगा। संस्कृत तो क्या स्वयम् अरबी भी हमारे पंडित मौलवियों के उच्चारण कई अशुद्धियां दिखला सक्ते थे। पं० रामचं जी को तो कई स्थानों पर इस शुद्धोच्चार के लिए स्वयम् मुसलमानों से प्रशंसा औ पारितोषिक मिल चुके हैं। देहली में ज फव्वारे पर पं० जी गायन करके आयतें पढ़ करते हैं तो कई मुसलमान झूमने ल पड़ते हैं और कहते सुनाई देते हैं कि कुरा यह है जो यह सुना रहा है। फ़ीरोज़पु में एक मुसलमान महिला ने १०)रु० उच्चारण सुनकर पंडित जी को भेंट किये थे। इस प्रकार पं० धर्मभिक्षु जी की भी आज त कोई उच्चारण की अशुद्धि नहीं पकड़ी ज सकी। जब कभी कोई आपत्ति उठाई भी गई है तो वह इस कारण कि पंजाबी मौलवी

स्वयम् ठीक उच्चारण नहीं जानते। परिणाम यह होता है कि मौलवी महाशयों को स्वयं लज्जित होना पड़ता है ।

परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि हमारे पंडितों का यह गर्व इस कारण है कि वह युक्त प्रान्त के रहने वाले हैं । इस के साथ ही क्या यह दुःख का स्थान नहीं है कि हम पंजाब निवासी इन्हीं दो महानुभावों पर तकिया लगाये बैठे हैं। कोई समय था जब स्वामी योगेन्द्रपाल, स्वा० दर्शनानन्दादि कई सज्जन पञ्जाब में अवसर पड़ने पर सब कुछ कर लेते थे । ला० काशी राम जी वैद्य, मा० बखशीश राम, ला० साहब दयाल, म० मुंशीराम जी भी अपने २ समय में इस्लाम के आक्रमणों का उत्तर देते रहे हैं । परन्तु आज सब अपने २ कामों में लगे हुए हैं और इस विषय का स्वाध्याय ही छोड़ बैठे हैं । परिणाम यह है कि जहां हाफिज रोशन अली जैसे पुरुष स्मृति से ही सब कुछ कह सक्ते हैं, वहां हमें अपने ही प्रमाण निकालते देर लग जाती है और reference पूछना पड़ता है । क्या उस समय आर्य पुरुषों को लज्जा नहीं उठानी पड़ी थी जब मुसलमानों की ओर से पूछा गया कि आर्य समाज में कितने वेद-पाठी पाये जाते हैं ? आर्य पुरुषो ! सोचो और अपने कर्त्तव्य का स्मरण करते हुए उसका पालन करो—वेद विद्यालय बनाओ, कुरान के ज्ञानी उत्पन्न करो ।

दूसरा आनन्ददायक दृश्य वह था जब तीसरे दिन आर्य समाज की ओर से पंडित धर्मभिक्षु कुर्सी पर बैठे हुये थे और मुसलमानों ने यह समझ कर कि पहिले दो दिनों की नाईं आज भी यही शास्त्रार्थ करेंगे, इस बात पर बल दिया कि पं० जी नियोग विषय पर अपनी स्थिति पेश करें । परन्तु तब उनके आश्चर्य की कोई सीमा न रही जब चुपके से पं० रामचन्द जी खड़े हो गए । उस समय एक ओर तो जयघोष हो रहे थे और दूसरी ओर कुछ शोक और आतङ्क छाया हुआ था । पं० जी ने अपनी विद्वत्ता के आश्रय से नियोग विषय पर वह वैज्ञानिक प्रकाश डाला कि सुनने वाले देखते के देखते रह गये ।

४. समय विभाग का जैसा इस वर्ष पालन हुआ वैसा कभी ही हुआ होगा । इसका कारण यह था कि श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज को छोड़ कर शेष

सब महानुभाव उत्सव पर पधारे हुए थे। श्री स्वामी जी रोग-विवशता के कारण न पधार सके परन्तु उनके स्थान पर श्री स्वा० विश्वेश्वरानन्द जी महाराज तथा श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी महाराज का शुभागमन उत्सव को चार चांद लगा गया। और यह परिवर्तन जनता को बहुत भाया। गत वर्ष पहला विज्ञापन उत्सव के दिनों में सर्वथा बदल गया था, दूसरी बार के छपे समय विभाग का भी पूरा २ पालन न हुआ था, अतः बहुत गडबड रही थी। ५ गेरूई मूर्त्तियों का वेदी पर प्रायः हर समय विराजमान रहना भी एक दिव्य दृश्य और आकर्षण था।

५. शनिवार प्रातःकाल की कार्यवाही गतवर्ष की नाईं इस बार नीरस नहीं होने पाई। यह एक और हर्ष का विषय है। श्री पूज्यपाद स्वा० अच्युतानन्द जी महाराज के वेदामृत के साथ प्रो० रामदेव जी के भाषण ने लोगों को स्तब्ध कर दिया। अतः भूमिका बहुत अच्छी बँध गई। फिर दोपहर को जातपात तोड़क सम्मेलन के कारण जो ठीक १२॥ बजे आरम्भ हो गया और जिस का सभापति पद सुशोभित करने को ही श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी महाराज इस बार लाहौर पधारे थे, दूसरी बैठक (sitting) तक बड़ी भारी उपस्थिति हो गई। इस सम्मेलन में श्री भाई परमानन्द जी के मर्मस्पर्शी भाषण के कारण जनता ३। बजे तक चित्रलिखित सी बैठी रही। तिस पर ३॥ बजे पण्डित रामचन्द्र जी के भाषण ने सोने में सुगन्ध डाल दी। अतः सायंकाल की बैठक में बड़ी रोचकता बनी रही। रात्रि को श्री स्वा० सत्यानन्द जी का व्याख्यान था। उस समय तो मण्डप भरना था ही। बीच में थोड़े समय के लिये बहुत से लोग गायक मोहन के भजन सुनने चले गए, परन्तु गम्भीर प्रकृति के लोग श्री स्वा० स्वतंत्रानन्द जी महाराज का व्याख्यान सुनते रहे।

गम्भीरता की पूर्ण विजय का दृश्य वह था जब विज्ञापन की सूचना के अनुसार गायक मोहन को वेदी पर लाया गया। उधर त्यागमूर्ति भाई परमानन्द जी को व्याख्यान के लिए बुलाया गया। भाई जी ने अपने विचार में समझा कि जनता व्याख्यान के स्थान पर संगीत सुनना चाहती है। आपने निश्चय कर लिया कि आप लोगों की इस इच्छा के मार्ग में खड़े न होंगे। अतः आप उलटे पाओं पण्डाल से बाहर जाने लगे, परन्तु जनता ने बड़े ऊँचे स्वर

से चारों ओर से उद्घोषित किया कि वह भजन नहीं सुनना चाहती, वह व्याख्यान सुनना चाहती है । श्री भाई जी को विवश होकर लौटना पड़ा । भाई जी ने व्याख्यान के आरम्भ में ही कह दिया कि उनके व्याख्यान के पीछे संगीत हो सकेगा, परन्तु जब व्याख्यान समाप्त हो गया तो भी किसी एक भी सज्जन या देवी ने यह नहीं कहा कि अब भजन कराये जायें। लोगों ने बालक मोहन की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा। और स्मरण रहे यह वह बैठक थी जिसमें २ से २॥ बजे तक तो चाहे भजन हुए हों परन्तु उस के पश्चात् व्याख्यान पर व्याख्यान ही होते रहे । पं० चमूपति और पं० बुद्धदेव जी के व्याख्यानों में भी पंडाल भरा हुआ था और बाहर भी एक मेला सा लगा हुआ था । सारे उत्सव में या तो भक्त मंगतराम जी के भक्ति-भाव से भरे भजन होते रहे या कुछ पंजाबी संकीर्तन के भजन थे, जिन्हें सब मिल कर गाते थे । जनता इन्हीं पर संतुष्ट रही । आशा है कि बाहर की आर्य जनता इस दृश्य से भी प्रभावित होकर गई होगी और अब भजनीकों की समस्या सुलझाने में सहायता किया करेगी ।

६. श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी महाराज और श्री उपाध्याय रामदेव जी के विचारों में जनता को कुछ मतभेद दिखाई दिया । इसी प्रकार श्री भाई जी के व्याख्यान में लोगों को कुछ शंकायें उत्पन्न हुईं । यह दोनों बातें स्पष्टीकरण की अपेक्षा रखती हैं । मैं श्री भाई जी से इस सम्बन्ध में मिल चुका हूँ । अतः मैं बड़े बल से कह सकता हूँ कि श्री भाई जी अपने विचारों को व्याख्यान में शायद स्पष्ट नहीं कर सके, अन्यथा उन के विचार बिलकुल आर्य समाज के विचार हैं । एक शब्द में वह dogma सिद्धान्त और सदाचार से अधिक आवश्यक वस्तु वर्णाश्रम धर्मपालन, (जाति सेवा और देश सेवा) को समझते हैं । और जो लोग स्कूल और कालिज खोलते चले जाते हैं उनको विदेशी राज्य के अधीन दास बढ़ाने वाले समझते हैं । उनके विचार में यह वैदिक धर्म का अपमान है कि विदेशियों के दास उत्पन्न किए जाएं, जो न ब्राह्मण हैं न क्षत्रिय, न वैश्य हैं न शूद्र । वह इस बात पर शोक प्रकट करते हैं कि गुरुकुल क स्नातकों का जनता उचित मान नहीं कर सकती ॥

अस्तु, इन बातों पर विचार करना आर्य समाज के नेताओं का काम है । मैं आर्य्य समाज लाहौर के अधिकारियों को फिर एक बार बधाई देता हुआ लेखनी को विराम देता हूं ।

मृतक श्राद्ध ।

[लेखक-श्रीयुत बुद्धदेव जी विद्यालंकार]

आर्य्यसमाज को पौराणिक दल के बहुत से अन्ध विश्वास दूर करने पड़े हैं और अब भी करने पड़ते हैं। उन अन्ध विश्वासों में से जिन के विरुद्ध आर्य्यसमाज को शस्त्र उठाना पड़ा है मृतक श्राद्ध एक है। यद्यपि इतर जातीय लोगों का अपने में प्रवेश, स्त्री शिक्षादि बहुत से विषयों में आर्य्यसमाज ने विजय प्राप्त की है, और यद्यपि मृतक श्राद्ध की कुप्रथा देश के सौभाग्य से बहुत कुछ दूर होती जाती है, तथापि बहुत बार सुनने में आया है कि इस विषय में पौराणिक दल को बड़ा अभिमान है। उनके अभिमान का मूल यह है कि वह इस पक्ष को वेद के मंत्रों से परिपुष्ट समझते हैं। यद्यपि इस छोटे से लेख में उन सब मन्त्र भागों तथा स्मृति वाक्यों की विवेचना नहीं हो सकती, जिन से लोग मृतक श्राद्ध सिद्ध करने का यत्न कर सकते हैं, तथापि प्रधान-मल्ल-निबर्हण न्यायेन हम यहां मुख्य मुख्य शब्दों तथा वाक्यों की विवेचना करेंगे। सबसे पहिली बात जिस की ओर हम जनता को ध्यान दिलाना चाहतेहैं यह है कि जिन जिन श्रुति स्मृति वाक्यों से पौराणिक लोग मृतक श्राद्ध सिद्ध करने की चेष्टा भी करते हैं, उनमें भी व[?] आश्विन मास के कृष्ण पक्ष का श्राद्ध कहीं नहीं दिखा सकते। हां! अमावस्या [?] श्राद्ध दिखाते हैं। आश्विन के कृष्ण पक्ष [?] श्राद्ध यदि कहीं है तो पुराणों में, इस लि[ये] वर्त्तमान मृतक श्राद्ध तो श्रुति स्मृति किसी [में] भी नहीं है—यह स्पष्ट हुआ।

अब रहा मनुस्मृति का वह श्राद्ध जो निम्न श्लोक में वर्णन किया गया है—

पितृ यज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान् । पिण्डान्वाहार्य्यकं श्राद्धं कुर्य्यान्मासानुमासिकम् ॥ मनु० ३. १२२.

सो प्रथम तो इस श्लोक से भी मरे पितरों का श्राद्ध सिद्ध नहीं होता, किन्तु इसका अर्थ यही है कि जो सदा अपने बड़ों की सेवा नहीं कर सकते, वे मास में एक वार अमावस्या के दिन उन्हें बुलाकर पितृयज्ञ करलें। किन्तु फिर भी हम यह स्वीकार कर लेते हैं, कि मनुस्मृति में कई स्थानों पर मृतक श्राद्ध का वर्णन है, जैसे निम्न श्लोक में, जो किसी किसी मनुस्मृति में मिलता है:—

न निर्वपति यः श्राद्धं प्रमीत पितृको द्विजः। इन्दुक्षये मासिमासि प्रायश्चित्ती भवेत्तुसः॥

अब यह स्वीकार करके कि वर्तमान मनुस्मृति में मृतक श्राद्ध का विधान किया गया है, इस विषय की विवेचना कर देखा चाहिये कि इस विवेचना में क्या क्या गुल खिलते हैं। यद्यपि हम मासिक श्राद्ध को स्वीकार करते हैं, तथा उसके लिये प्रशस्त तिथि भी अमावस्या की मानते हैं, किन्तु वह श्राद्ध जीतों का होता है मरों का नहीं—इसका रहस्य हम लेख में अन्यत्र खोलेंगे। पहिले हम मनुस्मृति की पड़ताल करलें। मासिक जीवित श्राद्ध को स्वीकार करते हुए भी हमारा यह पक्ष है कि मनुस्मृति में दैनिक पितृ यज्ञ के अतिरिक्त जो कुछ भी श्राद्ध विषय में कहा है सब प्रक्षिप्त है। इसी बात को अब हम युक्ति तथा प्रमाण द्वारा सिद्ध करेंगे।

यह बात कुछ दुस्साध्य नहीं है। निम्न श्लोकों को देखिये—

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्व्वीत गृह्यंकर्म्मयथा विधि। पञ्च यज्ञ विधानञ्च पक्तिं चान्वाहिकींगृही॥ पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः। कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते तास्तु वाहयन्॥ तासां क्रमेण सर्व्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः। पञ्चक्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥ अध्यापनं ब्रह्म यज्ञः पितृ यज्ञस्तुतर्पणम्। होमोदैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनम्॥

मनु० ३. ६७ से ७० तक।

इन श्लोकों से स्पष्ट है कि यहां से पञ्च यज्ञ विधान चला। अब ज़रा इस श्लोक को भी देखिये—

एतद्वोऽभिहितं सर्व्वं विधानं पाञ्च यज्ञिकम्। द्विजाति मुख्य वृत्तीनां विधानं श्रूयता मिति॥ मनु० ३. २८६.

यह अध्याय का अन्तिम श्लोक है जिसमें लिखा है कि इस अध्याय में हमने पञ्चयज्ञों का वर्णन किया है। इस प्रकार उपक्रम और उपसंहार से स्पष्ट है कि इस अध्याय में पञ्चयज्ञों का वर्णन है। अब भला "पितृयज्ञं तु निर्व्वर्त्य" पितृ यज्ञ करने के पश्चात् यह छटा श्राद्ध कहां से आ कूदा?

अब पितृ यज्ञ क्या है सो भी देख लीजिये। ऊपर उद्धृत श्लोक द्वारा स्पष्ट है कि पितृ यज्ञस्तु तर्पणम्—अर्थात् अपने बड़ों को तृप्त करना—यही पितृ यज्ञ है। अब यदि यह कहा जाय कि यहां तर्पण मरे हुओं का लेना, तो फिर अध्यापन और अतिथि पूजन भी मरे हुओं का क्यों नहीं लेते? यदि कहो कि

अनुपपत्तेः, अर्थात् युक्ति विरुद्ध होने से, तो फिर तर्पण भी मरे हुओं का नहीं। 'क्यों?' का उत्तर वही 'अनुपपत्तेः'। यदि कुछ सन्देह रहा हो तो मनु के शब्दों में ही सुनिये—

कुर्य्यादहरहः श्राद्ध मन्नाद्येनोदकेन वा। पयोमूल फलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्॥

यह प्रतिदिन फल मूल जल अन्नादि द्वारा पितरों का श्राद्ध आर्य्यसमाज का स्वीकृत जीवित श्राद्ध ही है, क्योंकि मरों का न यह हो सकता है न पौराणिक लोग ही मानते हैं।

परन्तु अब एक प्रश्न यह खड़ा होता है कि किसी को क्या आवश्यकता थी कि मनुस्मृति में यह मिलावट करे? उसका उत्तर यह है कि मांस भोजन के विरुद्ध प्रबल खण्डन की विद्यमानता में सब कर्मों में तो मांस का विधान असम्भव था, इसलिए मांस भक्षियों ने प्रति प्रसव (exception) की आड़ लेकर श्राद्ध में मांस की न केवल अनुज्ञा दी किन्तु इस का विधान किया, जैसा कि इस श्लोक से स्पष्ट है।

पितॄणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्य्यं विदुर्बुधाः। तच्चामिषेण कर्त्तव्यं प्रशस्तेन समंततः॥ ३. १२. ३

अर्थात् पितरों के मासिक श्राद्ध को विद्वान् लोग अन्वाहार्य जानते हैं और वह अवश्य प्रशस्त मांस से करना चाहिए।

इस के पश्चात् श्लोक ३ अध्याय २६८ से श्लोक २७२ तक एक सूची दी गई है जिस में बताया गया है कि अमुक पशु के मांस से इतने दिन, मास वा वर्ष अथवा अनन्त काल तक पितरों की तृप्ति होती है। उदाहरण के लिए एक श्लोक यहां पर उद्धृत करते हैं:—

काल शाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु। आनन्त्यायैवकल्पन्ते मुन्यन्नानिचसर्व्वशः।

इस श्लोक में गेंडे तथा लाल कान के बकरे के मांस से अनन्त काल की तृप्ति बताई गई है। यह पिशाच इतने ही से सन्तुष्ट नहीं हुए, किन्तु इन्हों ने इस मांस के निषेध करने पर क्या दण्ड लिखा है सो भी सुनियेः—

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः। स प्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेकविंशतिम्।

अर्थात् श्राद्ध में परोसे मांस को निषेध करने से मनुष्य २१ जन्म पशु बनता है।

अब स्पष्ट है कि यह मृतक श्राद्ध लीला किसी मांसाहारी की चलाई हुई है। औ

यह मट्टी पलीद पितृ यज्ञ की ही क्यों हुई, इस पर ध्यान देने से मामला और भी स्पष्ट हो जायगा । अध्यापन में भोजन नहीं, अग्नि होत्र में भोजन नहीं, वैश्व देव में प्राणियों तथा पतितों का भोजन है, अतिथियों में भी सब किसी का भोजन है—ब्राह्मणों का विशेष नहीं । एक पितृ यज्ञ ही है जहां भोजन मुख्य है । सो वहीं इन मांस-रसास्वाद-लोलुप भोजन-भट्टों की भोजन लीला चली ।

परन्तु हम पूर्व्वापर प्रसङ्ग तक ही सन्तुष्ट होने वाले नहीं । अब हम एक ऐसा प्रमाण उपस्थित करते हैं जिस से इन के इस पाखण्ड का बिलकुल ही भण्डा फूट जाय । अब हम एक प्रमाण उपस्थित करते हैं कि जिस में स्पष्ट शब्दों में लिखा हो कि यह मिलावट है । महाभारत शान्ति पर्व में भीष्म युधिष्ठिर को उपदेश करते हुए प्राचीन इतिहास सुनाते हैं । एक स्थान पर यही पिशाच लोग जो अपने आप को ब्राह्मण कहते हैं लम्बे २ छुरे लेकर गौओं को काट कर यज्ञ में डाल रहे थे। इतने में परम विद्वान् महाराज विचख्नु उधर आ निकले । इस अनर्थ को देखकर उन से रहा न गया । वह चिल्ला उठे "स्वास्ति गोभ्यो ऽस्तु" । इस पर पाखण्डियों ने उन्हें वेद तथा मनुस्मृति के प्रमाण सुनाने आरम्भ किए । इस पर महाराज ने कहा:—

मद्यं मत्स्यान् सुराम्मांसमासवंकृशरौदनम् । धूर्त्तैः प्रकल्पितं चक्रं नैतद्वेदेषुकल्पितम् ॥ सर्वे कर्म्मस्वहिंसांहिधर्मात्मा मनुरब्रवीत् ॥ कामकाराद्विहिंसन्ति बहिर्व्वेद्यां पशून्नराः । कामात्क्रोधाच्च लोभाच्च लौल्य मेतत् प्रवर्त्तितम्॥ महाभारत शान्ति पर्व २६४ अ० ।

अर्थात् मद्य मांस मछली सुरादिक यह सब धूर्त्तों की कल्पना है । यह वेद प्रतिपादित नहीं । धर्म्मात्मा मनु ने किसी कर्म में भी हिंसा की इजाज़त नहीं दी । यह जो बाहर वेदी पर खड़े पशु हत्या कर रहे हैं, यह मन मानी कर रहे हैं। और यह सब चञ्चलता उन्हों ने काम, क्रोध तथा लोभ के वश हो कर की हैं ।

अब कहिये, इस से स्पष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है ? यह महाभारत के शब्द हैं, ऋषि दयानन्द के नहीं । मनुस्मृति में एक ओर अनुमन्ता विशसिता आदि ५ अध्याय ४५ श्लोक से ५५ श्लोक तक मांस का प्रबल खण्डन देख कर, तथा दूसरी ओर तीसरे अध्याय में श्राद्ध में विधान देख कर मिलावट का सन्देह होता है । पञ्च यज्ञ विषयक उपक्रम तथा उपसंहार देखने से वह सन्देह और भी

दृढ़ हो जाता है किन्तु महाभारत के इस प्रमाण से तो मांसाहारियों का दुर्ग बिलकुल भूमि सात् हो जाता है और साथ ही मृतक श्राद्ध की भी सफ़ाई हो जाती है ।

यह हुआ मनुस्मृति का विषय, अब श्रुति भाग की ओर आईये ।

सुनिये श्रुति क्या कहती है :—

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु-निधिषुप्रियेषु । त आगमन्तु त इहश्रव-न्त्वधि ब्रुवन्तुतेऽवन्त्वस्मान् ॥

य० अ० १९ मं ५७

पितर लोग आएं, इन आसनों पर बैठें, हमारी बात सुनें, हमें उपदेश दें, और हमारी रक्षा करें । कहिये क्या इन मन्त्रों में मृत पितरों का वर्णन है ?

अच्छा अब हम तीन मन्त्र ऐसे उपस्थित करते हैं जिन के बल पर पौराणिक लोग गर्ज कर कहते हैं कि इन में मृत-पितरों का ही वर्णन हो सकता है दूसरों का नहीं ।

आयन्तुनः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वा-त्ताः पथिभिर्देवयानैः । अस्मिन् यज्ञे स्व-धया मदन्तोऽधिब्रुवन्तुतेऽवन्त्वस्मान् ॥

य० १९. मं० ५८

येनिखाता येपरोप्ता येदग्धा येचो-द्धिताः । सर्व्वांस्तानग्न आवह पितृन्हविषे अत्तवे ॥ ये अग्नि दग्धा ये अनग्निदग्धा मध्येदिवः स्वधया मादयन्ते । त्वंतान् वेत्थ यदिते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्व-धितिं जुषन्ताम् ॥

अथर्व १८ कांड २ सू० मं० ३४. ३५

इन मन्त्रों में अग्निष्वात्त, दग्ध तथा, अग्नि दग्ध तीन शब्द हैं जो पौराणिक दुर्ग के आधार स्तम्भ हैं । वह कहते हैं, देखो इन मन्त्रों में स्पष्ट लिखा है कि जो पितर अग्नि-ष्वात्त—अग्निद्वारा स्वादे हुए अर्थात् खाये हुए हैं वह आकर हमें उपदेश करें, जो गाड़े हुए, फेंके वा जलाये हुए हैं वे हमारा भोजन स्वीकार करें । जो अग्निदग्ध वा अनग्निदग्ध हैं, हे अग्नि ! यदि आप उन्हें जानते हो तो बुला लाओ । वे हमारे यज्ञ की शोभा बढ़ाएं।

हमने यहां मन्त्रों के प्रत्येक शब्द का अर्थ देने की आवश्यकता नहीं समझी । केवल विवा-दास्पद शब्दों की ओर निर्देश किया है। विवादास्पद शब्द इतने हैं:—अग्निष्वात्त, निखात्त, परोप्त, दग्ध, उद्धित, अग्निदग्ध, अनग्नि-दग्ध । अब ज़रा इन शब्दों की समीक्षा करनी चाहिये । प्रथम तो हमारा कथन यह है कि यदि इस विषय में कोई प्रमाणान्तर न भी हो, तोभी गौण वृत्त्या अग्निष्वात्तादि शब्दों का अर्थ अग्नि विद्या के जानने वाले—ऐसा

लेना चाहिये, क्योंकि मुख्यार्थ के स्वीकार करने पर अग्नि में जलाये हुओं द्वारा उपदेश आदि का होना अनुपपन्न है, आर मुख्यार्थ की अनुपपत्ति में ही लक्षणा का आश्रय करना पड़ता है, किन्तु नहीं, हम आज यह सिद्ध करेंगे कि इन शब्दों का मुख्यर्थ लेने पर भी मृतक श्राद्ध सिद्ध नहीं होता जोभी हो इन शब्दों का मुख्यार्थ लें वा गौणार्थ, यह तो सिद्ध हो ही जायगा कि वह शब्द मृतपितरों के विशेषण नहीं हैं ।

सब से प्रथम 'आग्निष्वात्त' शब्द को लीजिये देखिये शतपथ इस विषय में क्या कहता है ।

स पितृभ्यः सोमवद्भ्यः षट्कपालं पुरोडाशं निर्वपति सोमायवापितृमते षट्वाऋतवः पितर स्तस्मात् षट्कपालो भवति ।

अथ पितृभ्योबर्हिषद्भ्यः । अन्वाहार्य्यपचने धानाः कुर्वन्ति ततोऽर्धाः पिंᳯषन्त्यर्धा अत्येवधाना अपिष्टा भवन्ति ता धानाः पितृभ्योबर्हिषद्भ्यः । अथ पितृभ्योऽग्निष्वात्तभ्यः निवान्यायै दुग्धे सकृदुपमथित एक शलाकया मन्थो भवति सकृदुह्येव पराञ्चः पितरस्तस्मात्सकृ दुपमाथितो भवत्येतानि हवीᳯषिभवन्ति ॥ ६ ॥ १७० ॥ शतम् १३०० ॥ तद्ये सोमेनेजानाः ते पितरः सोमवन्तोऽथये दत्तेन पक्वेन लोकं जयन्ति ते पितरो बार्हिषदोऽथयेतता नान्यद्दन यानग्निरेवदहन्त्स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ता एतऽउते ये पितरः ।

सोमवन्तः सोमेनेजानाः बर्हिषदः ये पक्वेन दत्तेन लोकं जयन्ति ।

जो सोम यज्ञ करते हैं, जो अन्न पका कर दान करते हैं, और उस प्रकार लोक के हृदय को जीत लेते हैं, अर्थात् अन्नक्षेत्र खोलने वाले ।

अग्निष्वात्ताः यानग्निदेवदहन्त् स्वदयति ।

जिन्हें दाहकारी अग्नि आनन्द पहुंचाता है ।

ऊपर के लक्षणों में "ईजानाः" "जयन्ति" और "स्वदयति" इन तीन पदों में पड़ा हुआ वर्तमान काल और विशेषकर ईजानाः का शानच् मृतक श्राद्ध मानने वालों को किस प्रकार पचेगा, यह कहना कठिन है । **हां लज्जामेकाम्परित्यज्य त्रिलोक विजयी भवेत्** का आश्रय लेलो तो कोई उपाय नहीं !

अब अग्निष्वात्ता के लक्षण को देखिये यहां भी "स्वदयति" पद पड़ा है। यह ण्यन्त पद है । जिसका अर्थ है स्वाद देना । इस

प्रकार अर्थ यह हुआ कि अग्नि जो प्राकृत लोगों के लिये दाहकारक है, वह जिनको आनन्द देता है, न कि खाता है। यद्यपि यहां कहा जासकता है कि स्वद् धातु के चुरादि गण वर्त्ती होने से खाना भी अर्थ हो सकता है किन्तु वह अर्थ वर्त्तमान काल के विपरीत होने से असङ्गत है तथापि इस में जो सन्देह लेश शेष रह गया उसे हम अन्त में अच्छी प्रकार दूर करेंगे ।

अगले मन्त्र को लीजिये । इस में हमारा मूल से ही मतभेद है । हम इसका अर्थ यों करते हैं:—

हे (अग्ने) अग्निशालाध्यक्ष (तान्) उन पदार्थों को (पितॄन्) पितरों को (आवह) लाकर दे अब प्रश्न होता है किन को उत्तर देते हैं (येनिखाताः) जो गाडे, हुए हैं (ये परोप्ताः) जो बोए हुए हैं (येदग्धा) जो आग में भूने हुए हैं (येचोद्धिताः) जो सिंघाड़े आदि की तरह पानी में से उखाड़े गए हैं अब प्रश्न है किसलिये उत्तर है हविषे अत्तवे हवि बनाकर खिलाने के लिये अब देखिये कि वह धातु द्विकर्म्मक है ही दुहियाचि आदि कारिका में उसका पाठ है अब प्रश्न यह है कि इस अर्थ में प्रमाण क्या है इसका उत्तर है परोप्ताः । इस

परोप्ताः पद में वपधातु पड़ी हुई है जिस[...] अर्थ, है बोना, अब मृतक श्राद्ध के पक्षपा[...] बतएं कि पितर बोये कौनसे जाते हैं वे[...] अपना अर्थ कितना स्पष्ट करादिया है य[...] पदार्थ किस लिये लाए जाएं उत्तर देते [...] हवि बनाने के लिये पूछते हैं क्या आग[...] डालोगे उत्तर देते हैं नहीं (अत्तवे) खा[...] के लिये, इस यज्ञ में बड़ों को बुलाकर ता[...] तरह के पदार्थ खिलाना ही हवि बनाना [...] इस मन्त्र के प्रसङ्ग को हम इस श्लोक [...] समाप्त करते हैं ।

अग्निदग्धादि भोज्यान्नं । पितरोऽश्[...]न्तु सोमपाः इत्थम्परोप्तेति पदे वपतिर्हन्त[...] गर्जति ।

अब आइये अग्निदग्ध शब्द की ओर इ[...] मन्त्र का भी यही अर्थ है (हे जातवेदः) सब समाचार जानने वाले दूत, इस नगर[...] में जो भी (अग्निदग्धाः) अग्नि विद्[...] के जानने वाले (अग्निदग्धाः) इस विद्[...] के न जानने वाले भी (दिवःमध्ये) विज्ञान[...] रूप प्रकाश के बीच में (स्वधया) प्रेम[...] पूर्वक दिये हुये अन्नादि द्वारा (मादयन्ते) आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं (यदित्वं तान्वेत्थ) यदि आप उन्हें जानते हों अर्थात् उन में से जिस जिस का आप[...]

को पता लग उन्हें कहिये कि (स्वधया इमं स्वधितिं यज्ञं जुषन्ताम्) अपने धारण शक्ति युक्त उपदेशादि द्वारा, इस आत्मीय जन पूजा युक्त यज्ञ की शोभा बढ़ावें। इस मन्त्र में प्रभु ने उपदेश किया है कि समय समय पर सामर्थ्यवान् लोग इस प्रकार दूर दूर के वृद्ध विद्वान् लोगों को इकट्ठा करके उनका सत्कार करें। अब प्रश्न यह है कि यहां स्पष्ट अग्निदग्ध शब्द पड़ा है। फिर ऐसा साहस क्यों करते हो? इसके उत्तर में हम दो युक्तियें देते हैं—

(१) यह मन्त्रार्ध थोड़े से पाठ भेद से यजुर्वेद में भी आया है (यजु. अ. १९. मं. ६०) वहां अग्निदग्धाः के स्थान में अग्निष्वान्ताः पाठ है, हम ऊपर दिखा आए हैं कि—अग्निष्वात्ताः का अर्थ अग्नि विद्या पण्डित है। बस वही अर्थ अग्निदग्धाः का भी मानना चाहिये।

(२) संस्कृत साहित्य में विदग्ध शब्द अब भी पण्डित के लिये आता है और वही दह धातु यहां भी पड़ा है।

अब हम यहां एक प्रमाण ऐसा उपस्थित करते हैं जो इन सब मन्त्रों में रहे सहे संदेह को एक दम जड़ से उखाड़ फेंकेगा और जिस से निश्चय हो जायगा कि अग्निष्वात्तादि शब्दों का अग्नि विद्या युक्त जो अर्थ ऋषि दयानन्द ने किया है न केवल वह भी हो सकता, किंतु वह ही हो सकता है। इस अकेले प्रमाण में इन सब शब्दों का एक ही वार उत्तर आगया है। प्रमाण यह है—

अग्निदग्धानग्निदग्धान् काव्यान् बर्हिषदस्तथा अग्निष्वात्तांश्चसोम्यांश्च विप्राणामेव निर्दिशेत्॥ मनु. ३, १९९

अर्थ—अग्निदग्ध, अनग्निदग्ध काव्य बर्हिषद् अग्निष्वात्त तथा सोम्य इतने प्रकार के पितर केवल ब्राह्मणों के ही बताने चाहियें।

अब प्रश्न यह है कि यदि अग्निष्वात्त तथा अग्निदग्ध शब्दों का अर्थ आग का खाया तथा आग में जलाया किया जाय तो क्या अग्नि संस्कार केवल ब्राह्मणों का ही होता है। वाहजी वाह! पोपजी मालपुओं के लोभ में क्षत्रियें वैश्य शूद्र सब को मुसलमान ही बना डाला। इतनी कृतघ्नता! इस प्रकरण को हम इस श्लोक के साथ समाप्त करते हैं।

दहधातोर्हिसम्पर्के मात्रा चेदाह इष्यते निराश्रया हन्त हता ततोनूनं विदग्धता॥

अब हम पितृ शब्द पर विचार करना चाहते हैं कि पितर हैं कौन? यदि कहो विद्वान्, तो विद्वानों के लिये तो देव शब्द है। फिर पितर शब्द निरवकाश हो गया बताओ पितर किन का नाम है? इसका उत्तर

यह है कि पितर उनका नाम है जो चाहे देव भी कहला सकते हों किन्तु अब उन में कार्य करने की शक्ति नहीं रही है । इसी लिए वह देव योनि होते हुए भी हीन श्रेणी के लोग हैं, क्यों कि वह अब अपनी पिछली की हुई सेवा के कारण हमारे द्वारा सेवा कराने के अधिकारी हैं। देव वह लोग हैं जिन की कार्य शक्ति अभी बनी हुइ है, किन्तु कार्य शक्ति के क्षीण होने पर वे ही देव लोग पितृ श्रेणी में चले जाते हैं अर्थात पितृ श्रेणी के अधिकारी वे लोग हैं जिन्हें आज कल के लोग पेन्शन का अधिकारी कहते हैं । अब यदि दुर्जन तोष न्याय से अग्निदग्ध का अर्थ आग में समूचे भस्म हुआ—ऐसा नहीं होगा, किन्तु जिन का कोई अङ्ग आग से जल गया हो वे अग्निदग्ध और जो अग्नि द्वारा जले न हों किन्तु अवस्था के कारण कार्य में अशक्त हो गए हों पर अपनी विद्या द्वारा समाज सेवा करते रहे हों, वह अनग्निदग्ध पितर कहलाते हैं ।

अमावास्या ।

ऊपर के प्रकरण के समझ लेने से, अमावास्या पितरों की तिथि है, यह भी खूब स्पष्ट हो जायगा। जिस प्रकार नान्दी पद्य में नाटक का भाव सूचन कर देने से नाटक की रोचकता बढ़ जाती है (कहा भी है मनाक्काव्यार्थ सूचनम्) इसी प्रकार ऋषि लोग यज्ञ के लि[illegible] समय भी ऐसा रखते हैं कि जिस में उस य[illegible] का भाव सूचन हो जाने से सौन्दर्योत्पादि[illegible] अनुरूपता आजाती है । जैसे विवाह के लि[illegible] पहिले सूर्य दर्शन फिर ध्रुव दर्शन द्वारा दि[illegible] रात के विवाह का समय अनुरूप समझा ग[illegible] है, इसी प्रकार जो अपने बालक को ब्राह्म[illegible] बनाना चाहे वह अग्न्याधान उपनयनादि[illegible] समशीतोष्ण वसन्त काल में करे, जो क्षत्रि[illegible] चाहे वह ग्रीष्म में और जो वैश्य बनाना चा[illegible] वह सस्य-परिपाक पिङ्गलस्वण वर्णा शरद [illegible] या हरियाली भरी वर्षा में, यहां हम ए[illegible] प्रमाण देते हैं:—

ब्रह्मैव बसन्तः क्षत्रं ग्रीष्मो विडे[illegible] वर्षा स्तस्माद् ब्राह्मणो बसन्त आदधीत ब्रह्म[illegible] हिवसन्त स्तस्मात् क्षत्रियो ग्रीष्म आदधीत[illegible] क्षत्र ँ हि ग्रीष्म स्तस्माद्वैश्यो वर्षा स्वाधीत[illegible] विड्विवर्षाः ।

अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य क्रम से बस-न्त ग्रीष्म और वर्षा में अग्न्याधान करें, क्योंकि[illegible] यह तीन ऋतु क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य[illegible] हैं। अब यदि किसी को सन्देह हो कि ब्राह्मण[illegible] से क्या मतलब? जो जन्म का ब्रह्मण हो ? तो[illegible] उत्तर देते हैं:—

सयः कामयेत ब्रह्मवर्चसी स्यामिति[illegible]

वसन्ते स आदधीत ब्रह्महि वसन्तो ब्रह्म-वर्चसी हैव भवति अथ यः कामयेत क्षत्र ँ श्रिया यशसा स्यामिति ग्रीष्मे स आदधीत क्षत्रं वै ग्रीष्मः क्षत्रँ है व भवति । अथ यः कामयेत । बहुप्रजया पशुभिः स्यामिति वर्षासु स आदधीत वि ड्वैव वर्षा अन्नं विशो बहु हवै प्रजयापशुभि-र्भवति य एवं विद्वान् वर्षास्वाधत्ते । शतपथ २. १. २. १९ पा० ७८. ।

अर्थात् जो ब्रह्मवर्चसी बनना चाहे वह वसन्त में, जो श्री तथा यश वाला होना चाहे वह ग्रीष्म में और जो प्रजा पशु धन धान्य चाहे, वह वर्षा में अग्न्याधान करे, क्योंकि वर्षा अन्न भरी होने से वैश्य ऋतु है । इस से स्पष्ट हुआ कि जिस प्रकार का यज्ञ हो उस के भाव सूचन करने वाला ही उस का समय रक्खा गया है, पितर कौन है वह देव (विद्वान) लोग जिन का क्षय पक्ष आगया है जिन के जीवन चन्द्र की अमावस्या आ पहुंची है। इसी लिए जो और दिन पितरों की सेवा न कर सके वह अमावास्या में करे, जिस से याद रहे कि अपने बड़े चाहे वह जन्म के दाता होने के कारण बड़े हों, चाहे विद्यादि द्वारा, उन की जब अमावास्या के दिन हों, जब उन की क्षीण दशा हो, तब भी उन की सेवा करो । इस में प्रमाण भी लीजिए:—

वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः । ते देवा ऋतवः शरद्धेमन्तः शिशिरस्ते पितरो य एवापूर्य-तेऽर्धमासः स देवा योऽपक्षीयते स पितरो ऽहरेव देवा रात्रिः पितरः पुनरह्नः पूर्वा-ह्णो देवा अपराह्णः पितरः ॥ शतपथ २. १. २. १९ पा० ७८ ।

अर्थात वसन्त ग्रीष्म वर्षा देव ऋतु हैं, शरद हेमन्त शिशिर, यह पितर ऋतु हैं, जो चन्द्र का उदय पक्ष है वह देव अर्धमास है, जो क्षय पक्ष है यह पितर अर्धमास है । दिन देव, रात्रि पितर है । दिनका पूर्वार्ध देव, उत्त-रार्ध पितर है, क्यों जी ! अब कुछ सन्देह रहा ? स्पष्ट है कि उदय पक्ष देव पक्ष और क्षय पक्ष पितृ पक्ष है। अर्थ स्पष्ट है कि क्षय काल में बडों की सेवा करना धर्म है, यही पितृ यज्ञ है । अब मृतक श्राद्ध के पक्षपाती बतायें कि मृतक श्राद्ध के साथ अमावास्या का क्या विशेष सम्बन्ध है ? क्या सब बूढ़े लोग सलाह करके अमावास्या के दिन ही मरते हैं ?

स्वधा ।

अब स्वधा शब्द की ओर दृष्टि डालिये इस शब्द की पौराणिक दल ने क्या दुर्दशा की है ।

ब्रह्मा च मानसीं कन्यां ससृजे च मनो-

हराम् । रूप यौवन सम्पन्नां शत चन्द्रनिभाननाम् ॥ इत्यादि

स्वधाभिधाञ्च सुदतीं लक्ष्मीं लक्षणसंयुताम् । पितृभ्यश्च ददौब्रह्मातुष्टेभ्य स्तुष्टिरूपिणीम् ॥

देवी भागवत नवम स्कन्ध ४४ अ. १–१५ ।

अर्थ–तदनन्तर ब्रह्माजी ने परम सुन्दरी रूप यौवन सम्पन्ना शतचन्द्र निभानना एक मानसी कन्या रची, उसका नाम स्वधा रक्खा जो सर्व लक्षणयुक्ता थी। उस कन्या को उत्पन्न कर प्रसन्न मूर्ति पितरों के साथ व्याह दिया। वाहजी वाहजी वाह ! पोपजी ! एक आध दो चार पितरों के साथ नहीं, पितरों के गणों के साथ। अभी लोग द्रौपदी के पांच पति होने का कलङ्क धोने में लगे हैं कि यह लाखों की पत्नी आ पहुँची। देखी पाठकवर्ग! आपने पुराणों की लीला? अब हम दिखाते हैं कि स्वधा पितरों की पत्नी क्यों कही है? वेद में भी पितरों को स्वधा वाला कहा है और उनके लिये स्वधा देना लिखा है—

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ॥

यजु० १९. ३६

अब हम स्वधा का पितरों से सम्बन्ध दिखाएंगे, जिस से पुराणों की पितृ पत्नी स्वधा की भी व्याख्या हो जायगी। स्वधा शब्द का अर्थ है इमे अस्माकं स्वा इति निमित्तकं यद्धारणं तत्स्वधा, अर्थात् अपने जानकर अपने बड़ों का जो धारण करना है वह स्वधा है। स्वाहा से तुलना करने से भाव और स्पष्ट हो जायगा। देवों के लिये स्वाहा और पितरों के लिये स्वधा है। हम विद्वान् लोगों का पालन करते हैं क्यों? क्योंकि वह सुआह अर्थात् उत्तम विद्यादि का अध्यापन कर रहे हैं। जब वह उत्तम विद्या पढ़ाते हैं तो हम सुआह, उत्तम उपदेश कर रहे हैं—यह कहकर उन के उपकार के वेतन रूप उनको यथा सामर्थ्य दान करते हैं। किन्तु यह दान दक्षिणा वेतन जो कुछ कह लीजिये हम उन्हें कुछ अपना समझकर नहीं देते। विद्या पढ़ते, हैं बदले में जो बनता है सो देते हैं। किन्तु धीरे धीरे अध्यापनादि कार्य्य करते हुए वे बूढ़े हो गये। अब हम उनकी सेवा क्यों करते हैं? क्योंकि इतने दिन की उनकी कृपा से हम में उनके प्रति आत्मीयता उत्पन्न हो गई है। अब हम उनकी कार्य-शक्ति क्षीण हो जाने पर भी उनके धारणार्थ जो कुछ देते हैं वह स्वधा है। इसी प्रकार हम बाल्यकाल में माता पितादि की सेवा करते हैं। क्यों? क्योंकि वे हमारा पालन करते हैं किन्तु अब वह बूढे हो गए, क्या अब उन का पालन छोड़ दें? नहीं! वे

तुम्हारे अपने हैं यह अकेला कारण भी सेवा के लिए पर्याप्त है। उन का कृष्ण पक्ष आया। उन की अमावास्या समीप आई। वे तुम्हारे स्व हैं इस लिए स्वधा के अधिकारी हैं। संक्षेप में स्वधा वही चीज़ है जिसे आज कल पेन्शन कहते हैं। हां! स्वधा का शब्द प्रेम भरा होने के कारण कुछ अधिक मधुर है। इसी लिए किसी दल चले ने उसे पितरों का पत्नी बना डाला, क्योंकि जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री दुःख में भी पति का साथ नहीं छोड़ती, इस प्रकार पेन्शन ही है जो बुढापे में बूढ़े लोगों का साथ देती है।

पिण्ड

अब लोगों ने श्राद्ध को पिण्ड पितृ यज्ञ का नाम देकर भी अनर्थ फैलाना आरम्भ किया है। पिण्ड पितृ यज्ञ का शब्द प्रथम तो वैदिक नहीं है, किन्तु यदि कहीं किसी ग्रन्थ में पिण्ड शब्द आजाए तो इतने मात्र से श्राद्ध की सिद्धि नहीं होती। उदाहरण के लिए यह गीता का वाक्य ले लीजिए कि "पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्त पिण्डोदक क्रियाः" इसका कितना सीधा अर्थ है किन्तु पौराणिक दल ने इसकी कैसी दुर्गति की? यहां क्या प्रकरण है? अर्जुन युद्ध से विमुख हो कर कृष्ण महराज के सामने युद्ध की हानि वर्णन कर रहा है। वह कहता है महाराज मैं युद्ध नहीं करना चाहता युद्ध में लोगों के मारे जाने से पितरों को पिण्डोदक देने वाला कोई नहीं रहता। इस लिए वह पतित हो जाते हैं। अब देखिए कि युद्ध में वही लोग मारे जाते हैं, जो शक्ति-सम्पन्न हैं। एक कुल का भूषण नौजवान बेटा युद्ध में मारा गया। पिता क्षीण शक्ति थे, वानप्रस्थ में गए हुए थे, अब परिवार को क्षीण दशा में देख कर आपत् काल जान कर फिर गृहस्थ संभालने का बोझा उठाना पड़ा अथवा बूढे क्षत्रिय पिता को अति बल साध्य क्षत्रिय कर्म में अशक्त होने के कारण छोटी सी दूकान खोलनी पडी। वे अपने आश्रम तथा वर्ण से पतित हुए कि नहीं? सारी आयु क्षत्रिय कर्म किया, अब दूकान दारी करनी पडी। इस प्रकार वर्ण सङ्कर उत्पन्न हो गया। यही उनका पतन है। पिण्ड उदक का अर्थ सीधा अन्न जल है, और यह अर्थ प्रकरण सङ्गत भी है। अब मृतक श्राद्ध के पक्षपाती बताएं कि लड़ाई में मारे हुओं का मरे हुए पितरों के साथ क्या विशेष सम्बन्ध है, यहां हम एक नीतिशतक का श्लोक उद्धृत करके पूछते हैं कि यहां पिण्ड शब्द का अर्थ मरे हुए पितरों का पिण्ड कैसे करोगे? श्लोक यों है:—

लांगूलचालन मधश्चरणावपातं भूमौ निपत्य वदनोदर दर्शनञ्च । श्वा पिण्ड-दस्य कुरुते गज पुङ्गवस्तु, धीरं विलोकयति चाटुशतश्च भुंक्ते ॥

हाथी तथा कुत्ते की अन्योक्तिद्वारा भर्तृह-रिजी गम्भीर तथा ओछे आदमी की तुलना करते हुए कहते हैं, कुत्ता अपने पिण्डदाता के सामने पूंछ हिलाता, पैरों में लोटता, पेट और मुँह दिखाता है, किन्तु गजराज को देखिये कि कितनी खुशामद करने पर भोजन करता है और फिर किस शान से देखता है ! अब कहिये कि क्या कुत्ता मालिक का पितर है ? खूब रही। अब कुत्ते और हाथी भी पितर हो गये । यहां सब ही टीकाकारों ने पिण्डदाता का अर्थ अन्नदाता किया है, इसी प्रकार अन्यत्र भी पिण्डदान का शब्द भोजन द्वारा जीवित लोगों की सेवा में ही संगत होता है उदाहरण के लिए निरुक्त में भी यही शब्द आया है:—

अभ्रातृकेव पुंस एति प्रतीची गर्त्तारुग मिवसनयेधनानाम् । अभ्रातृकेव पुंसः पितॄनभिमुखी सन्तानकर्मणे पिण्डदा-नाय न पतिम्,

शास्त्र कह रहा है कि बिनाभाई वाली लड़की से सोच समझ कर विवाह करना चाहिए क्योंकि उसका रुख़ पितृ-कुल की ओर अधिक रहता है । मेरे पिता के कुल में कोई भाई पिण्डदान करने वाला अर्थात् बुढ़ापे में अन्नादि द्वारा सेवा करने वाला नहीं है इस लिए उसे अपने पति कुल के साथ ही पितृ कुल की भी चिन्ता लगी रहती है। इसी लिए वह पुंसः अपने पति से कुछ हट कर लौटी हुई पितृ कुल की ओर आती है, अर्थात् उसे उधर का अधिक ध्यान रहता है, कथन का सार यह है कि जिस किसी से अभ्रातृका से विवाह करना हो, वह या तो स्वयं इतना सामर्थ्यवान् हो कि अपने माता पिता के अतिरिक्त पत्नी के पितरों की भी सन्तान के कर्त्तव्य पिण्ड दान अर्थात् पालन पोषणादि द्वारा सेवा कर सके, अथवा उसके सुसराल के लोग इतने समृद्ध हों कि उन्हें जामाता के आश्रय न बैठना पड़े। अन्यथा अति कष्ट होगा । अब यहां पिण्ड दान शब्द को जीवित परक मानने से अर्थ कितना युक्ति सङ्गत होगया । मृतक श्राद्ध वाले बताएं कि मरों के साथ इस पिण्ड दान का क्या विशेष संबन्ध है ?

दक्षिण दिशा ।

इसी प्रकार समावर्त्तन संस्कार के विषय में बहुत वार प्रश्न होता है, कि देखो यहां स्वामी जी ने भी लिखा है कि दक्षिणाभिमुख

हो अप सव्य हो के जल गिरा कर कहे 'पितरः शुन्धध्वम्'। बस यहां मृतक श्राद्ध सिद्ध होगया। इस से अधिक उपहसनीय और क्या बात होसकती है? बात तो बिलकुल स्पष्ट है। यज्ञ वेदि में सामने पूर्व की ओर विद्वान् लोग बैठे हैं। शतपथ में लिखा है—

प्राची हि देवानां दिक्।

शतपथ का० १. ८. ३. ४० पृ० ६५

अब बड़ बूढ़े लोग कहां बैठें? वे दहिने हाथ बैठेंगे। यजमान के पूर्वाभिमुख होने से वह दक्षिण दिशा हुई। ब्रह्मचारी घर को लौटकर आया है। वह घर के बड़े बूढ़ों के आगे जल अर्पण कर के कहता है कि हे पितरो! जिस प्रकार यह जल शान्ति तथा शुद्धि द्वारा हमें पवित्र करता है, इसी प्रकार मुझे सदा उपदेशादि द्वारा शुंधध्वम् अर्थात् शुद्ध निर्मल करते रहो। नई विद्या पाए हुए स्नातक का नवयौवन सुलभ गर्व्व इस प्रकार दूर किया गया है। इस में मृतक श्राद्ध का लेश भी नहीं।

इस प्रकार हमने अग्निष्वात्त अग्निदग्धादि शब्दों की व्याख्या, अमावस्या का पितरों से संबंध, पितरों की पत्नी स्वधा, दाक्षिण दिशा, पिंडदान आदि प्रायः सब ही बातों पर इस छोटे से लेख में यथा सम्भव प्रकाश डाला है। समय मिला तो कभी वेद के उन सब मंत्रों की एक एक करके व्याख्या करेंगे जिन में पितृयज्ञ के अथवा पितरों के विषय में कुछ भी वर्णन किया गया है। हम समझते हैं प्रतिवादियों का मुख मुद्रण करने के लिए इतने प्रमाण भी पर्याप्त हैं। शेष रही धृष्ठता। सो जान बूझ कर सोये हुए को कोई नहीं जगा सकता। अन्त में प्रभु से प्रार्थना है कि वह शीघ्र इस पृथिवी के अज्ञानान्धकार को दूर करे और लोग इस पाखण्ड जाल से छूट कर आनन्द के भागी बनें।

सम्पादकीय

पंजाब यूनिवर्सिटी और वेद—

पंजाब यूनिवर्सिटी ने यह नियम सा बना लिया है कि प्रतिवर्ष किसी पाश्चात्य वक्ता को बुला कर आर्यों के पुरातन धर्म पर व्याख्यान कराना। पिछले वर्ष आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के प्रो० मैकडानल आए थे। इस वार न्यूयार्क के Theological Seminary के प्रो० ह्यूम आये हैं। प्रो० ह्यूम तो अपने विषय के—अपने ही ढंग के सही—विद्वान् भी प्रतीति नहीं होते। वेद पर, ब्राह्मण

ग्रन्थों पर, मनुस्मृति पर, भगवद्गीता पर, वे अपने उथले ज्ञान के आधार पर टीका टिप्पणि कर चुके हैं। उनका मत है कि वेद प्रकृति पूजा सिखाता है। भला जिस वेद में स्पष्ट लिखा हो—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते। ततो भूय इ वते तमो य उसंभूत्याꣳरताः॥ य० ४०९

अर्थात् जो सूक्ष्म प्रकृति की उपासना करते हैं, वे अन्धकार को प्राप्त होते हैं और जो स्थूल प्रकृति में रत हैं, वे उस से भी अधिक अन्धकार में रहते हैं—

उस वेद पर प्रकृति पूजा के विधान का आरोप करना या तो अज्ञान है या धृष्ठता। वेद मंत्र का जो अनुवाद हमने किया है, वही श्री शंकराचार्य ने—वही महाशय ग्रिफ्फिथ ने भी—किया है।

पाश्चात्य विद्वानों को धोखा इस लिए होता है कि वेद में सूर्य, इन्द्र, अग्नि इत्यादि २ नामों से परमात्मा की उपासना का विधान है। यह शब्द वस्तुतः विशेषण होते हैं ओ३म् के जो प्रत्येक मन्त्र के पूर्व लगाया जाता है। स्वयम् वेद में कहा है :—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

उस एक को ज्ञानी बहुत प्रकार से कहते हैं।

यहां आकर मैक्स मूलर सरीखे पाश्चात्य विचारकों को भी स्वीकार करना पड़ा है कि वेद के ऋषियों को परमात्मा के एक अद्वितीय होने का ज्ञान था।

परन्तु ह्यूम को इससे क्या? यह प्रथम तो पढ़े ही कम हैं, फिर व्याख्यान का दृष्टिकोण ही कुछ और है। अच्छा होता यदि किसी ईसाई चर्च की वेदि से व्याख्यान दे देते। मुफ्त में यूनिवर्सिटी की भद्द न उड़ती। सुना है, इन के भाई स्थानीय Y. M. C. A. के सेक्रिटरी हैं। उन्हीं के प्रबंध से उन्हीं के हां व्याख्यान दे देते तो यह राम रौला क्यों होता?

विद्वत्ता की शान देखना! जब यूनिवर्सिटी पर चारों ओर से क्रूर प्रतिवादियों की बौछार पड़ी तो इन महाशय से क्षमा प्रार्थना करा गई। और इन्होंने कर दी। सत्य निष्ठा की बलिहारी है!

दोष ह्यूम का नहीं। यह तो के साधारण से व्यक्ति लगते हैं। सारे उपद्रव की मूल यूनिवर्सिटी है। भला यह लैक्चर पब्लिक थे। इस लिए जनता ने सुन लि

और वक्ता तथा प्रबन्धकर्ताओं को धतकार बता दी। नित्यप्रति यूनिवर्सिटी के कालेजों में और क्या हो रहा है? चाहे डी० ए० वी० कालेज हो चाहे सनातन धर्म कालेज, जहां भी उच्च कक्षाओं को संस्कृत पढाई जाती है, वहां पाणिनि का स्थान मैकडानल को और यास्क का मैक्समूलर को सहसा प्राप्त है।

हमें आश्चर्य है कि कुरान यूनिवर्सिटी के कोर्स में नहो, बाइबल न हो, वेद हो! भला क्यों? क्या इसका वली वारिस कोई नहीं? अनार्य भड़क उठते हैं, आर्य सह लेते हैं। आवश्यकता यह है कि सारी आर्य जाति एक स्वर हो कर घोर आन्दोलन करे कि वेद यूनिवर्सिटी के कोर्स से हटा दिए जाएं। जैसे मुसलमान स्वयम् कुरान की शिक्षा का प्रबन्ध करते हैं, वैसे ही आर्य स्वयं वेद विद्यालयों का प्रबन्ध करें। कम से कम वेद की निन्दा तो न हुआ करे। जब तक यह नहीं होता तब तक जाति के नव युवकों के हृदयों में, ऐसे समय जब कि उन पर जो संस्कार चाहो दृढ कर सकते हो, जिन दिनों स्वतंत्रता—उच्छृंखलता—मनुष्य के स्वभाव में होती है, उन दिनों वेदों से अश्रद्धा का बीज बोया जाता रहेगा।

डी. ए. वी. कालेज का यूनिवर्सिटी पर बड़ा प्रभाव बताया जाता है। भला वह प्रभाव किस काम आयगा? वेद की निन्दा में? कहा जाता है कि कालेज का लक्ष्य आर्य समाज की सेवा है। क्या यही सेवा है कि आर्य समाज के मूल वेद का ही उन्मूलन? क्या 'वैदिक कालेज' यह नाम इसी बात से सार्थक हो रहा है कि वेद पर जो प्रहार हम दूसरों के हाथों न सहें, वह अपनों से करायें?

हम कटाक्ष के लिए नहीं कहते। हमारा हृदय जलता है जब हम अपने ही भाइयों की यह भयंकर स्थिति देखते हैं। हमें आशा है कि हमारे कालेजी मित्र अब भी अपने कर्तव्य को पहिचानेंगे और भूत प्रमाद का भावी परिश्रम से संशोधन करेंगे।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका एम. ए. का कोर्स—

इधर पंजाब में यह घोर पाप हो रहा है, उधर अलाहाबद यूनिवर्सिटी ने ऋषिदयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका को एम. ए. की पाठ विधि में लेना स्वकािर कर लिया है। यह पग सुमार्ग पर है, यद्यपि 'आर्य मित्र' की भांति हम इस घटना को कुछ बहुत गर्व का कारण नहीं समझते। और सारा कोर्स विष-पूर्ण है, एक शहद का बिन्दु

उसका संशोधन क्योंकर करेगा ? यदि यूनिवर्सिटी की नीति ही बदल गई हो कि वेद पर पाश्चात्य टिप्पणियां पढ़ानी ही नहीं, या पढ़ानी हैं तो गौण रूप में, तब बधाइयों और साधुवादों का समय हो सकता है। कुछ हो हमें इतने का भी हर्ष अवश्य है।

वृन्दावन गुरुकुल का उत्सव—

वृन्दावन गुरुकुल का वार्षिकोत्सव १ पौष से ५ पौष तक होगा। समाचार पत्रों के पढ़ने से ज्ञात होता है कि पं० धर्मेंद्रनाथ जी आचार्य बड़े प्रयत्न से गुरुकुल को सफल करने की चेष्टा कर रहे हैं। श्री मुख्याधिष्ठाता जी का निवेदन है कि आर्य जनता उत्सव पर दर्शन दे।

श्री दयानन्द जन्म शताब्दी समिति—

श्री दयानन्द जन्म शताब्दी समिति का अधिवेशन १० मार्गशीर्ष को हुआ था। उस में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार हुए :—

१. निश्चय हुआ कि वेद संग्रह का मुख्य सम्पादक श्री पंडित सातवलेकरजी को नियुक्त किया जावे। और आर्य प्रतिनिधि सभा से प्रार्थना की जाए कि इस कार्य में जो उचित व्यय हो, वह कृपया समय पर पंडितजी को भेज दिया करे।

२. निश्चय हुआ कि उक्त पुस्तक की भाषा का परिष्कर्त्ता पं० देवशर्माजी उपाध्याय गुरुकुल कांगड़ी को नियत किया जावे।

३. निश्चय हुआ कि उक्त पुस्तक का नाम "वेदामृत" रखा जाए। इस विषय में श्री मुख्य सम्पादकजी से परामर्श लिया जाए।

४. निश्चय हुआ कि पुस्तक का आकार सत्यार्थप्रकाश का सा हो।

५. निश्चय हुआ कि दयानंद पक्ष के अवसर पर यज्ञार्थ पढ़े जाने के लिये कुछ विशेष मन्त्र पण्डितों के परामर्श से नियत किये जाएं। इस कार्य का प्रबन्ध प्रो० रामदेवजी करेंगे।

६. निश्चय हुआ कि दयानन्द पक्ष मनाने के लिये आर्य समाजों तथा स्त्री समाजों से प्रार्थना की जाए कि स्त्रियों में प्रचार का विशेष प्रबन्ध करें।

७. निश्चय हुआ कि पक्ष के अवसर पर कार्य करने के लिये समिति का मंत्री प्रचारकों की सूची बनाकर उनकी सेवा प्राप्त करने का यत्न करे।

कन्या गुरुकुल, इन्द्रप्रस्थ—

गुरुकुल कांगड़ी ने बालकों की शिक्षा के सम्बन्ध में एक नया—और हमारी दृष्टि से अतीव पुराना—आदर्श संसार के सामने रखा

है। अब उसी ढंग का एक गुरुकुल कन्याओं के लिये भी खोला गया है। दोनों गुरुकुलों की स्वामिनी तथा प्रबन्धकर्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा (पंजाब) है। कन्या गुरुकुल को कन्याओं के लिये उपयोगी बनाने का पूरा प्रबन्ध किया जा रहा है। सरलता और सादगी का जीवन और इसके साथ २ स्त्री कर्त्तव्य के लिये पर्याप्त विद्वत्ता इस गुरुकुल के लक्ष्य हैं। कुमारी विद्यावती सेठ बी० ए० इस गुरुकुल की अवैतनिक आचार्या हैं। खुलते ही इस संस्था में पचास से अधिक ब्रह्मचारिणियां आ गई हैं। लक्षण अच्छे हैं। इनसे स्पष्ट सिद्ध है कि एक ऐसी संस्था की आवश्यकता लोग अनुभव करते हैं। यदि आर्य जनता ने इस गुरुकुल की यथेष्ट सहायता की तो इसकी सफलता में कोई सन्देह नहीं हो सकता।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की शिरोमणि आदि परीक्षायें

हम परीक्षाओं के लिए पाठन का प्रबन्ध सार्वदेशिक सभा की तरफ से किया गया है, जिसमें सुयोग्य दो पण्डित हरलाल शास्त्री तथा काशीनाथ शास्त्री अत्युत्साह से अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। अतः संस्कृत के छात्र शीघ्र निम्नलिखित पते पर निवेदन पत्र भेजें जिससे फिर न लेने से निराश न होना पड़े। (निर्धन छात्रों के लिए भोजन का प्रबन्ध भी किया जा सकता है)।

हेडमास्टर डी० एन० हाई स्कूल
पौदी हौस देहली।

दयानन्द पक्ष—

गत शिवरात्रि के अवसर पर आर्य समाजों में दयानन्द सप्ताह मनाया गया था। इस वार ऋषि बोधोत्सव से पूर्व का पक्ष दयानन्द पक्ष होगा। इसका कार्य-क्रम दयानन्द शताब्दी समिति का मन्त्री प्रकाशित करेगा ही। आवश्यकता है कार्यकर्त्ताओं की जो पूरा पक्ष या उसका कुछ भाग अपनी सेवाएं ऋषि के मिशन के अर्पण करें। लक्ष्य यह है कि पंजाब के सब समाजों में इन दिनों एक नए जीवन की ज्योति जग जाय। इस कार्य के लिये आर्यसमाज के उपदेशक पर्याप्त न होंगे। आर्य जगत् के सब गण्य मान्य सज्जन जो वक्तृता दे सकते हैं, इस समय समिति के मंत्री का हाथ बटाएं, जभी यह बेल मंढे चढ़ेगी। यदि किसी विशेष ज़िले में काम करने की इच्छा हो तो उससे सूचित करें। कार्य क्रम निश्चित किये जाने से पूर्व आर्य प्रतिनिधि सभा अथवा शताब्दी समिति के

मन्त्री को इन स्वयंसेवकों के नाम आ जाने चाहियें।

आर्य मन्तव्य मण्डन माला—

म० राजपाल प्रबन्धकर्ता, सरस्वती आश्रम व आर्य पुस्तकालय, लाहोर सूचना देते हैं:—

अहमदियों की ओर से जो ट्रैक्ट आर्य समाज के मन्तव्यों के विरुद्ध निकल चुके और निकल रहे हैं, उन का तथा और भी किसी विधर्मी की ओर से किये गए आक्षेपों का उत्तर देने के लिये 'आर्य मन्तव्य मण्डल माला' नामक पुस्तकावली लिखवाने का प्रबन्ध किया गया है। प्रथम तीन ट्रैक्ट पंजाब आर्य्य प्रतिनिधि सभा ने पं० चमूपती जी एम से लिखवाए हैं जो प्रकाशित हो चुके हैं। प्रति पुस्तक एक पैसा है। हम चाहते हैं कि माला की आर्य समाजें स्थायी ग्राहक बन जा प्रत्येक समाज की ओर से यह सूचना आ कि जिस समय जो पुस्तक प्रकाशित उस की इतनी प्रतियां उस समाज भेजदी जाएं।

इस के अतिरिक्त एक और पुस्तक म अनार्य मतों के खण्डन परक भी निक जाएगी। परन्तु इस में सफलता उसी स हो सक्ती है कि आर्य जनता हमारे परिश्रम का मान करे।

दयानन्द पक्ष की तयारी करो।

उपदेशक परिक्षाओं की तिथियां।

आर्यप्रतिनिधिसभा की उपदेशक परीक्षाएं ६ मार्च से १२ मार्च १९२४ तक होंगी प क्षार्थियों के निवेदक पत्र पौष मास के अन्त अर्थात् १३ जनवरी तक आजाने चाहियें। में परीक्षार्थी का नाम, पिता का नाम, निवासस्थान, व्यवसाय, आयु, पूरा पता तथा आर्य स से सम्बन्ध और जो परीक्षा देनी हो उसका नाम—इन बातों की सूचना देनी चाहिये। नि दक पत्र आ० प्र० नि० स० के मन्त्री महाशय के नाम भेजने चाहियें।

Registered No. L. 1424 | रजिस्टर्ड नं० एल १४२४

॥ ओ३म् ॥

मूल्य वार्षिक २) महसूल डाक समेत पेशगी

आर्य्य

हर अंग्रेज़ी मास के आरंभ में प्रकाशित होता है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मासिक पत्र

सम्पादक—चमूपति

भाग ३ } लाहौर-श्रावण १९७९ तदनुसार अगस्त १९२२ { अंक ४

प्रार्थना ।

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । अपघ्नन्तोऽराव्णः ॥

ऋग्वेद ॥

हे प्रभु ! हम तुम से वर पावें ।
विश्व जगत् को आर्य बनावें ॥
फैले सुख सम्पत् फैलावें ।
आप बढ़ें तव राज्य बढ़ावें ॥
वैर-विघ्न को मार मिटावें ।
प्रीति—नीति की रीति चलावें ॥

"अमृत प्रेस" अमृतधारा भवन लाहौर द्वारा ला० नन्दलाल उपमंत्री अ० ... मुद्रित वा प्रकाशित किया ।

विषय सूची।

'आर्य' के नियम।

१—यह पत्र अंग्रेजी मास के आरम्भ में प्रकाशित होता है। डाकखाना में चूंकि अंग्रेजी तारीख देनी होती है, इसलिये अंग्रेजी तारीख का हिसाब रक्खा गया है।

२—इस का वार्षिक मूल्य २) है ≡) डाक महसूल निकाल कर केवल १।।।-) में आर्यभाषा का पत्र देना घाटे का काम है। सभा ने प्रचारार्थ इसको जारी किया है। षण्मासिक तथा त्रैमासिक का कोई हिसाब नहीं है।

३—इस पत्र में धर्मोपदेश, धर्म जिज्ञासा वैदिकधर्म और धर्म प्रचार विषयक बातों के अतिरिक्त आर्य सामाजिक समाचार तथा आर्य प्रतिनिधि सभा की सूचनायें दर्ज होती हैं।

४—पत्र के प्रकाशित होने के लिये समाचार तथा लेख प्रत्येक अंग्रेज़ी मास की १५ तारीख के पूर्व आजाने चाहियें।

५—यदि डाक की ग़लती से कोइ अंक न पहुंचे तो १५ दिन के भीतर सूचना देने से वह अंक भेज दिया जायगा, लेकिन इस अवधि के पश्चात् मंगवाने पर प्रति अंक ≡) मूल्य देना पड़ेगा।

॥ ओ३म् ॥

भाग ३] लाहौर-श्रावण १९७९ तदनुसार अगस्त १९२२ [अंक ४

वेदामृत ।

ओ३म् शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शमिन्द्रा--सोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रा॰पूषणा वाजसातौ ॥

प्रभु ! ताप हमें निस्ताप करे ।
कर ताप तपन[1] सन्ताप हरे ॥
सुख बरसे सुख-निधि सुखकर से ।
जल बनकर सुखकर, सुख बरसे ॥
नित सोम-सुधा[2] सुखकारी हो ।
जग--जीवन की रखवारी हो ॥
ला अन्न सुपवन[3] सुपुष्ट करे ।
सुख दे, दुख हर, सन्तुष्ट करे ॥
हो सर्व सुखों में इन्द्र-कला ।
सम्पद--शाली हों सम्पद--दा ॥

१ आग २ वनस्पति रूपी अमृत ३ सुखकारी वायु ।

ओ३म्

आर्य समाज और महात्मा गान्धी ।

(चमूपति)

पतंजलि महामुनि का तीसरा महाव्रत अस्तेय है, जिसका अर्थ है 'चोरी न करना'। साधक की सिद्धि इसी में नहीं कि किसी के घर में सन्धि न लगाए, जाते २ पथिक की जेब न कतर ले, पड़े माल को अपना न बनाले। यदि इसी में योगाङ्गों का पालन हो जाता तो योगी टके सेर गलियों में मिला करते। चोरी से मुनि का अभिप्राय विशाल है। आठ प्रकार के चोर तो स्वामी दयानन्द जी महाराज अपने वेद-भाष्य में गिनाते हैं—जिन में से एक वकील लोग हैं। दुकानों पर बैठे ग्राहकों की अक़ल की आंख मूंदने वाले, घूसखोर, सट्टा करके माल मंहगा करने वाले, राजनीति के फेर में फंसाकर जातियों और देशों पर अनधिकार से अधिकार करने वाले, इत्यादि २ अगण्य चोर हैं। मुकुटधारी डाकू, लेकचरार डाकू, लेखनी के बली डाकू, औषध के धनी डाकू—यह सब टट्टी की ओट में अखेट करने वाले हैं डाकू ही। महात्मा गांधी के कथनानुसार जो अपने देश भाइयों को भूखा देखकर भी दोनों समय पेट भर लेता है, नहीं, आवश्यकता से अधिक भोग विलास तक में धन खपाता है, वह चोर ही तो है। इसी भाव से प्रेरित होकर महात्मा जहां खाते परिमित हैं, वहां पहिनने को एक लंगोट के सिवा और कुछ ग्रहण नहीं करते। स्वामी दयानन्द जी महाराज का पहरावा इतना ही था तो लोग आक्षेप करते थे। आज उसी आदर्श को लोक-प्रिय करा महात्मा ने आर्यसमाज के नेता का महत्व सर्व-साधारण के हृदयों में बिठाया है। इसी का फल है कि श्रीयुत दास तथा महाशय नहरू सरीखों ने यूरोपीय भोग को तिलांजलि दे तपस्वियों का सा वेष धारण किया है। कालेजों के बाबुओं तक को आज गाढा पहनते झझक नहीं। कहां हैं वह टाई और कालर? बूट भी धीरे २ पांव से खिसक जाएगा। सार यह कि 'केवलाघो भवति केवलादी' इस वेद-वाक्य की पूर्ति जितनी मनुष्य से होना संभव है, वह गांधी में पाई जाती है।

गांधी ब्रह्मचर्य के पक्के हैं। शोक है कि आरम्भ से वह इस व्रत का पालन नहीं कर सके। यदि बाल--काल से संयमी होते

तो आज भारतवर्ष के इतिहास में अब की अपेक्षा भी कुछ और अद्वितीय द्युति पाई जाती। जब से चेते हैं, दृढ़ हैं। उसी का परिणाम गांधी का धैर्य, गांधी का उद्यम, गांधी का सहनादि सब गुण हैं। इस सूक्ष्म से शरीर पर भारत का बोझा न लद सकता यदि उस में ब्रह्मचर्य का विशेष बल न होता। एक दिन में ११ व्याख्यान, देशभर का भ्रमण, रात दिन का चिन्ता-चक्र, और फिर भी न रोग है न सोग है। जेल हो, खेल हो, बराबर है। अब तो प्रमाणित हो गया कि कोई बूढ़ा हो कर भी ब्रह्मचर्य धारण करे तो यह शक्ति उपलब्ध कर सकता है।

अपरिग्रह योग के यमों में अन्तिम है। यह नाम है निर्लोभता का। गान्धी महाराज के इन्द्रिय सब संयत हैं। फिर लोभ कैसा? जिसने सर्वस्व देश, जाति, नहीं, नहीं, मनुष्य मात्र पर वार दिया, वह और लोभी काहे का रहेगा?

यमों की भांति ५ नियमों की गणना भी महाव्रतों में की गई है। यह भी सार्वभौम सार्व-कालिक व्रत हैं।

शौच प्रथम बाहर का है। सो तो वैष्णव होने से महात्मा में होना ही हुआ। खाना, पीना, रहना, सहना, पहनना, ओढना सब शुद्ध होना आवश्यक है। गांधी सरल तो हैं, मलिन नहीं। विशेषता यह है कि गांधी की शुद्धि चौके में परिमित नहीं हुई। संसार मात्र गांधी का चौका हो गया है। सब से अधिक गौरव की बात यह है कि गांधी की शुद्धि डरपोक शुद्धि नहीं जो अपनी रक्षा के लिये किसी बिल में घुसी रहे। यह शुद्धि अशुद्ध को शुद्ध करती है। भंगी के साथ लगने से इस शुद्धि का भंग नहीं होता। अछूत की छूत हटाना इसका पहला उद्देश्य है। लाज, भय, संकोच, यह आत्मा के मल हैं। इनकी निवृत्ति ही अन्तिम शौच है जो महात्माओं में पाया जाता है।

संतोष और तप महात्मा के प्रसिद्ध ही हैं। गर्मियों सर्दियों में साधारण सरल वस्त्रों में समय काट दिया है। उपवास और निराहार-व्रत तो गान्धी जीवन का एक अंग ही बन गए हैं। अपराध कोई और करे, उसका प्रायश्चित गान्धी कर रहे हैं। सप्ताहों पर सप्ताह भूखे बीत गए हैं फिर भी काम की लगन यह है कि घड़ीभर विश्राम का नाम नहीं लेते।

स्वाध्याय नाम वेद-पाठ का है। इसमें गान्धी में शिथिलता है। वेदवाणी तो कहां

रही, ऋषियों के पुस्तकों का भी गान्धी जी ने अध्ययन नहीं किया। वह स्वयं मानते हैं कि अपने धर्म के पुस्तकों में उन्होंने गीता और तुलसी-कृत रामायण के अतिरिक्त और किसी ग्रन्थ का पठन नहीं किया। महात्मा की लेखनी में ओज है। विचार विशद है। बुद्धि तीव्र है और साथ ही तत्वग्राहिणी। मिठास जो वाणी में है वही लेखशैली में है। जो लिखते हैं, परिमार्जित होता है। तो भी यह कहने में महात्मा का अपमान नहीं कि अभी महात्मा के मस्तिष्क पर ऋषियों का ठप्पा लगना शेष है। इसी त्रुटि के कारण कहीं२ महात्मा तथ्य के विचार से च्युत हो जाते हैं। महात्मा का "हिन्दू धर्म" विषयक लेख इस विषय में उदाहरण है। महात्मा के वर्ण-व्यवस्था और ईश्वरीय-ज्ञान सम्बन्धी विचार इसी कारण अव्यवस्थित से ही रह गए हैं।

हमें महात्मा की एक वक्तृता का यह भाग कभी नहीं भूलता कि "जो एक ईश्वर से डरता है, उसे किसी पार्थिव राज्य से डरने से क्या काम ?" स्वामी दयानन्द के जीवन की उदयपुर वाली घटना इन्हीं वाक्यों का मूर्त रूप है। स्वामी राजा की आज्ञा टाल सकते हैं, राजाधिराज परमात्मा की नहीं। इसी को महामुनि पतंजलि 'ईश्वर प्रणिधान' का पुण्य नाम देते हैं। जो करना, ईश्वर सहारे जो पाना, ईश्वरार्पण। यह सब महाव्रतों का एक महाव्रत है। ईश्वर-प्रेमी ईश्वर की रचना से प्रेम करता है, ईश्वर के प्रेम--पुत्रों को प्रीति-पात्र समझता है। उन के लिये जीता और उन्हीं के लिये मरता है।

उपर्युक्त यम नियम योग का प्रथमांग है। शेष विशेष क्रियाएं हैं। हम ने इस अं[ग] की ज्योति में महात्मा के जीवन की समीक्षा की है। प्रायः पूर्णता पाई गई है। आर्य समा[ज] इन्हीं आदर्शों का प्रतिनिधि है। महात्मा के जीवन में यह आदर्श मूर्तरूप पाए जाते हैं। यही कारण है कि महात्मा का नाम और का[म] प्रत्येक आर्यसमाजी के हृदय में विशेष आह्ला[द] की जागृति करते हैं। जहां अपूर्णता प्रतीत हुई है, हम ने उस पर भी परदा नहीं डाला। सच यह है कि महात्मा का जीवन बिना इ[स] विचार के कि महात्मा का राजनैतिक प[क्ष] क्या है एक सार्वभौम और सार्वकालि[क] सुन्दरता रखता है। यही सुन्दरता वैदिक ध[र्म] की है। जभी तो वैदिक धर्मानुयायी इनके गी[त] गाते, महिमा मनाते, नाम तथा काम [की] सराहते हैं। यह गीत-गान, यह महिमामा[न] यह सुनाम-सराहण सुपात्र का है। परमा[त्मा] यह पात्रता हमें दें।

ओ३म्

धार्मिक एकता ।

[ले०—श्रीयुत बंशीधर विद्यालंकार]

(१)

यूरोप में ज्यों २ विज्ञान की उन्नति होती जा रही है, त्यों २ लोगों की धर्म के प्रति अश्रद्धा एवं अरुचि उत्पन्न होती जाती है। धर्म के प्रति यह असन्तोष और भी अधिक बढ़ जाता है जब धर्म--मन्दिरों के पुजारी अपने कर्तव्य से विमुख होकर निरंतर राग द्वेष की अग्नि में न केवल अपने को, न केवल अपने अनुयायियों को, किन्तु समस्त जगत् को भस्म करने के लिये तैयार बैठे हैं। यदि आज हरेक धर्मयाजक को अपनी २ चलानी मिल जाय--यदि इन धर्म--मन्दिरों में इन धर्म-देवताओं की राजगद्दी स्थापित हो जाए तो फिर देखियेगा कि संसार में कितने उत्पात होते हैं।

आर्य जाति के धर्म के इतिहास को छोड़कर अन्य जातियों के धर्मों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब २ इस संसार में किसी मज़हब का राज्य--अभिषेक हुआ है तभी वह अन्य मज़हबों के लिये तथा अन्य जातियों के लिये एकमात्र आकाश में पुच्छल तारे के समान ही सिद्ध हुआ है। जिस प्रकार एक नदी अपने स्रोत में विशुद्ध, मीठी और सुशीतल होती है, और ज्यों २ आगे बढ़ती हुई समुद्र के निकट आती जाती है, वह अत्यन्त मलीन, खारी और उष्ण हो जाती है, उसी प्रकार प्रत्येक धर्म अपने प्रारम्भ में मधुर, अमृतमय और उत्तप्त मानव हृदय को शान्त करनेवाला होता है। किन्तु ज्यों २ उसका विस्तार होता जाता है, ज्यों २ वह बढता जाता है, त्यों २ वह अत्यन्त मलीन, कड़वा और उष्ण हो जाता है। विद्वानों से उतर कर साधारण जनता में धर्म की यही दशा हो जाती है। धर्म के मन्दिर भी साधारण जनता को उठाने के लिये ही खुलते हैं, किन्तु इनके बीच में धर्म का विकृत रूप ही प्रकट होता है। यही कारण है कि धर्म और धर्म के अनुयायियों में आकाश और पाताल का अन्तर हो जाता है। धर्म-भक्त विद्वानों को आम जनता के मन की तह की बातें कहनी पड़ती हैं क्योंकि उस से ऊंची बातें सर्व-साधारण के लिये समझना असंभव नहीं तो अत्यन्त दुष्कर अवश्य होता है। रहस्य की बातें पूर्णतया निश्चित न कर सकने पर भी लोक को सन्दिग्धावस्था में भी रक्खा नहीं

जा सकता। फलतः धर्म उसी रूप तक पहुंचता है जिस प्रकार की जनता उस को मिल जाती है। साधारण पुरुष राग द्वेष से ऊपर नहीं उठ सकते। इसलिये जब वे किसी धर्म के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं तो उस में भी राग द्वेष को भरे विना नहीं रह सकते। सर्व-साधारण के साथ धर्म का सम्बन्ध होने के कारण धर्मों की यह दशा हो जाना स्वाभाविक है। इस में कुछ आश्चर्य नहीं।

(२)

सब बातों के होते हुए भी हम को यह स्वीकार करना पड़ता है कि सब धर्म संसार में कोई न कोई संगठन तैयार करते हैं, जिस का लक्ष्य एक होता है, प्रथायें एक होती हैं, सिद्धान्त एक होते हैं और कार्य एक होते हैं। यही वस्तुएं समाज को एकता के सूत्र में पिरो देती हैं। समान बन्धन समान समाज को बना देते हैं। पीढ़ी पर पीढ़ी में उन्हीं रीतियों के उतरने के कारण वही बातें एक समाज में घर कर जाती हैं, और फिर आनुवंशिकता के कारण बिरादरियां बनती हैं और बिरादरियों के बाद यह जाति-बंधन के रूप में बदल जाती है। जैसे २ इस विस्तृति का इतिहास तैयार होता है, वैसे वैसे इस रीति-रिवाज के समुदाय की पृथक् सत्ता बनती जाती है और दिन आता है जब कि अन्य मानव समाज से इन की पृथकता हो जाती है। आज इस प्रकार न जाने कितने प्रकार के सांप्रदायिक समाज मानव समुदाय से अलग होकर अपनी २ हांक रहे हैं।

जैसे २ समाज की वृद्धि होती जाती है वैसे २ धर्म के प्रधान अंग शिथिल होते जाते हैं और बाह्य अंगों की प्रधानता होती जाती है। कोई हमारी बात को हृदय से स्वीकार करे या न करे किन्तु संख्या--वृद्धि अवश्य होनी चाहिये क्योंकि इसके बिना लोकोद्धार असम्भव है। यदि एक स्वतंत्र जाति दूसरी जाति पर इसीलिये शासन करती है कि वह उसे स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाने आई है तो एक धर्म के नेता इसलिये अपने समुदाय को निरन्तर वृद्धि करते हैं, चाहे वह बलात्कार ही क्यों न हो, क्योंकि उसके विना लोगों का उद्धार असंभव है। इसका फल यह होता है कि लोग एक कार्य करते हैं किन्तु उनको पता ही नहीं होता कि वे उसे क्यों कर रहे हैं। धर्म रीति-रिवाज के रूप में परिणत होजाता है। वह धीरे २ एक ऐसी पक्की लकीर बन जाती है कि जिस के बाहर कोई क़दम नहीं रख सकता। धीरे २ धर्म-पुस्तकों पर ताले लग

जाते हैं--विचार-स्रोत बंद हो जाता है और धर्म जब गलने सड़ने लगता है तो लोगों में विद्वेषाग्नि भड़क उठती है और धर्म ही लोगों में अशांति का स्थिर कारण बन जाता है।

(३)

तो इसका क्या उपाय है ? स्वामी दयानंद प्रथम पुरुष था जिस ने आकर धार्मिक श्रद्धा के साथ तर्क को जोड़ दिया। इतिहास के पन्ने इस बात के साक्षी हैं कि उस के आने से पहिले कम से कम भारतवर्षीय लोगों को, चाहे वह किसी मज़हब के हों, अपने धर्म की सुध न थी, और यही कारण था कि लोगों का आचार दिन बदिन गिरता जा रहा था। जिस धर्म ने कभी लोगों के अंदर जान फूंकी थी--उसी धर्म के अनुयायी उसी धर्म के मरे हुए रीति रिवाजों में फंसकर निरंतर दिन बदिन क्षीण और बलहीन होरहे थे। और इस पर विज्ञान की टक्कर ऐसी लगती थी कि पता नहीं फिर विचारशील लोग किसी धर्म को माननेवाले रह जाते या नहीं। तर्क-बल से ऋषि ने सचाई के मंदिर में प्रवेश किया और धार्मिक आत्मा को जागृत कर दिया। रीति रिवाज टूटे। बाह्य अंग फिर गौण होगये।

धार्मिक एकता कभी सम्भव नहीं जब तक सब धर्मावलम्बी अपने आनुवंशिक हठ को छोड़कर गौण और मुख्य बातों में भेद करना नहीं सीखते, जब तक सचाई की सच्चे हृदय से खोज नहीं करते। संसार में एक आत्मा दूसरे आत्मा से कभी नहीं मिल सकता जब तक आत्म का भाव ही परस्पर जागृत न हो। इसी प्रकार जब तक धर्मों का आत्मा नहीं जागृत होता, तब तक धार्मिक एकता असम्भव है। जब धर्मों के कट्टर अनुयायी सचाई पर दृढ़ रहकर 'सच्चे शिव' की खोज करना प्रारम्भ कर देंगे, तो हमें पूरा विश्वास है कि वे उस अनन्त तक जा पहुंचेंगे उस अनन्त स्रोत से धर्म की प्यास बुझाएंगे जहां पर ऋषि दयानन्द पहुंचा था और तब वे एक ही धर्म पर विश्वास करने लगेंगे जो परमात्मा का है। तब संसार में एक ही धर्म होगा, एक ही समाज होगा, एक ही अनन्त की प्रतिध्वनि हरेक दिशा में गूंजेगी। द्वेश का नाम मिट जायगा और समस्त जगत् एक आर्यों का समाज बन जायगा॥

मनोविनोद।

नारायण—आप आगए ? घरबार कुशल था ?

प्रेम—हां भाई ! इसी गाड़ी से उतरा हूं। सब आनन्द पूर्वक थे।

नारायण—आप की वाइफ़ भी तो साथ आई होंगी ? आप को अकेले रहते कष्ट ही तो था।

प्रेम—मेरी तो वाइफ़ कोई नहीं ?

नारायण—हैं ? कुमार कब से हुए ? आप को पता नहीं कि वाइफ़ को मरा हुआ कहना भी वैसा ही निन्द्य है जैसा माता पिता को। यदि आप की वाइफ़ को पता लग जाए कि आप उन के अस्तित्व से ही मुकरे जाते हैं तो दो दिन तो चूल्हा ही न तपेगा।

प्रेम—भैया ! तुम अपनी भावज का नाम ही कहते होगे। चलो उस भोली स्त्री से तुम्हीं पूछलो। क्या वह मेरी वाइफ़ है ;

नारायण-लो ! अब शब्दों पर उतर आए। वह तो अंग्रेज़ी नहीं पढ़ी। आप पढ़े हैं इसलिये आप से "वाइफ़" कहा, उन से "स्त्री" कहूंगा।

प्रेम–तो शब्दों का भेद कोई भेद नहीं।

नारायण–क्या भेद है ? स्त्री या पत्नी कहते लज्जा होती है। गंवारू शब्द है। वाइफ़ शब्द निस्संकोच जिह्वा पर आता है। यह शिक्षित लोगों की भाषा है।

प्रेम—कुछ समझ कर बात करो। शिक्षित और गंवारू की बात नहीं। भाषा जाति की सभ्यता का फ़ोटो है। वाइफ़ कहते तो स्त्री ही को हैं परन्तु अंग्रेज़ी स्त्री को। एक साहब लोग अपनी मेम साहबा को साथ लिये हाथ से हाथ मिलाए चलता है। अपनी सभ्यता के अनुकूल उसके नंगे बाहुओं अथवा छाती के भी एक नग्न भाग से लजाता नहीं, इत्यादि। इन्हीं भावों का समावेश वाइफ़ शब्द में है। इस के विरुद्ध पत्नी गृह की स्वामिनी है। न खाना पकाने से लजाती है न बच्चों के पालन पोषण से घबराती है। उसका रहन सहन, पहनावा इत्यादि सब भारतीय है। मेरे धर में पत्नी तो है, वाइफ़ नहीं।

नारायण—यह व्याख्या हम ने आज आप से सुनी।

प्रेम–वास्तव में जिन लोगों पर अंग्रेज़ी सभ्यता का भूत इतना चढ़ा है कि अंग्रेज़ी रहन सहन में रहना चाहते हैं, परन्तु सामा

जिक बन्धन उन्हें ऐसा करने नहीं देते, वह अंग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग से रूठे मन को मनाते हैं। काल्पनिक चित्रों में मनोरथ-पूर्ति का सुख ढूंढते हैं।

नारायण—आप तो अच्छे ख़ासे उपदेशक बन गए।

प्रेम—बात सुनलो फिर टीका टिप्पणी करना। जब मैं किसी युवक को पिता के स्थान नें फ़ादर कहते सुनता हूं, मेरा मन भांप जाता है कि यह महाशय पिता के पांव पड़ने और अन्यथा उनको सन्मान--भाव दर्शाने से लजाते हैं। हाथ मिलाने से उन्हें मित्र बनाने और लोगों को दिखाने की इच्छा रखते हैं। जब कोई पत्नी को वाइफ़ कहते हैं तो मैं समझता हूं, यह कुर्सी के साथ कुर्सी टकरामे के शौक़ीन हैं। भला! सच्ची बात कहो, तुम्हारा इन शब्दों को कहते समय क्या भाव होता है?

नारायण—अपनी इच्छाएं दूसरों पर मढ़ते हो। हमारा कभी यह भाव नहीं हुआ।

प्रेम—तो आर्य भाषा बोलते हुए फ़ादर कहने का और क्या अभिप्राय है?

नारायण—अभिप्राय क्या हो? अभ्यास है।

प्रेम-अच्छा अभ्यास है। फिर न पूरी अंग्रेज़ी न आर्य-भाषा। न हंस न कौवा।

नारायण--भाई हम आर्य समाज से सुफ़ारिश करेंगे तुम्हें उपदेशक रख ले।

प्रेम—आर्य समाज तो कहता ही है कि विदेशी भाषा विद्या--ग्रहण के लिये भले ही पढ़ो। उस में वार्तालाप करने का क्या अर्थ?

नारायण—अच्छा भाई! वाइफ़ न सही, पत्नी सही। आगई हैं?

प्रेम---हां! तुम्हें तो वह सारा रास्ता पूछती आई हैं। आना मिल जाना।

(ठठोली)

सूचनाएं।

आर्यों को सब पत्र-व्यवहार आर्य भाषा में करना चाहिये।

आर्य समाजों की सब कार्यवाही आर्य भाषा में होनी चाहिये।

व्यापारिक धंधे तथा पारिवारिक संभाषण में आर्य भाषा का प्रयोग करो।

आदर्श आर्य ।

आर्य है किस मनुष्य का नाम ?

जिस में भरे विशुद्ध भाव हों, होवे चरित ललाम ॥

जो है नहीं भूलकर करता कभी अवैदिक कर्म ।
जो है लाभ--लोभ से तजता नहीं कभी निज धर्म ॥

जो नहिं धर्म कार्य में करता प्राणों की परवाह ।
जो निष्काम कर्म करता है, जिसे न यश की चाह ॥

जो है नहीं अकड़ कर चलता, रखता भाव विनीत ।
कठिन विघ्न बाधाओं से भी होता नहिं भयभीत ॥

जो है नहीं भूलकर करता कभी कपट-व्यवहार ।
नहीं किसी भी प्राणी पर है करता अत्याचार ॥

स्वयं उठाकर कष्ट और का हरता है जो क्लेश ।
जो है सुनता और सुनाता वेदों का उपदेश ॥

दुखी दीन जन की जो सेवा करता है भरपूर ।
पाप कर्म से जो डरता है, रहता इस से दूर ॥

माणिराम गुप्त--

वैदिक सन्ध्या और बौद्ध उपासना ।

[लेखक—श्रीयुत रघुवीर]

सन १९१२ के फ़रवरी मास में अमेरीका के शिकागो नगर के प्रसिद्ध पत्र Open Court में स्वामी मज्ज़ीनियानन्द ने बौद्ध धर्म के विषय में बहुत कुछ लिखा था। उन्होंने उसी पत्र में अपना परिचय इस प्रकार था। "मेरा पिता इस्फ़हान नगर (फ़ारस) का एक पारसी था और मेरी माता ब[illegible] की निवासिनी बंगदेशीय युवती थी।

वर्ष की आयु में मैं भारतवर्ष में आया और तत्पश्चात् मुझ को लासा (तिब्बत) में ले जाया गया । मैं १६ वर्ष पर्यन्त दलाई लामा के चरणों में मौन धारण किये बौद्ध भिक्षु बना रहा । तत्पश्चात् आक्सफ़ोर्ड युनिवार्सिटी से मैंने M. A., M. D,, D. Lit. D. Sc. तथा पेरिस और लण्डन से भी M. A., Ph. D,. M. D., L. L. *D.* की उपाधियां प्राप्त कीं । और पुनः १४ वर्ष तिब्बत में व्यतीत कर के बौद्ध--धर्म--प्रचारार्थ अमेरीका देश में आया।" अब स्वामी म० का वय ८५ वर्ष का है। इन सब बातों से पता लग सकता है कि आप कितने योग्य पुरुष हैं ।

स्वामीजी ने बौद्ध धर्म का मंदिर बनाकर प्रति आदित्यवार सन्ध्या प्रार्थना अग्निहोत्र और बलिवैश्व देव आरम्भ किया हुआ है । वह कहते हैं कि जो संध्या लासा नगर के दलाई लामा के भवन में की जाती है तथा जो हिमिस और लेह (लद्दाख़) के बौद्ध भिक्षु करते हैं, वही संध्या उन्होंने प्रारम्भ की है। उन्हों ने प्रत्येक मन्त्र का अर्थ भी आंगल भाषा में किया है । हमारे आश्चर्य और हर्ष की सीमा नहीं रहती जब हम देखते हैं कि यह वही मन्त्र हैं जिनका सायं प्रातः आर्यसमाजी सन्ध्या और हवन में पाठ करते हैं। इतना ही नहीं, मंत्रों का क्रम भी वही है। और इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि मंत्रों के अर्थ भी अक्षरशः ऋषि दयानन्द की व्याख्यासे मिलते हैं। हमारी और उन की संध्या में भेद केवल इतना है कि उन की संध्या में अघमर्षण और मनसा परिक्रमण के मंत्र नहीं हैं और उनके स्थान में "शन्नो देवी०" और 'ओं वाक् वाक्०' मंत्रों के मध्य में बौद्ध प्रार्थना के वाक्य मिला दिये गये हैं । शेष सारी की सारी संध्या वैदिक ही है। आदि और अन्त के मंत्र भी हमारे वाले ही हैं । अब हम पाठकों को कुछ इस बातका दिग्दर्शन कराएंगे कि जिन स्थानों पर सारा आधुनिक संसार ऋषि दयानन्द के मन्त्रार्थों को नहीं मानता, वहां स्वामी मज़ीनियानन्द जी के अर्थ ऋषि का अनुवाद प्रतीत होते हैं । हम प्रत्येक मंत्र को लेकर ऋषि की "पंच-महायज्ञ-विधि" और स्वामी मज़ीनियानन्द के अर्थों की तुलना करेंगे ।

(१) ओं शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयो रभिस्रवन्तु नः ॥

(देवीआपः) सर्व प्रकाशकः सर्वानन्द-प्रदः सर्व व्यापकः ईश्वरः—May the Illuminator of all, the Light of the

world, the Dispenser of happiness to all, the All-pervading Divine Being, (नः शं भवन्तु) अस्यभ्यं कल्याणं प्रयच्छतु be gracious unto us (पीतये) पूर्णानन्द-भोगेन तृप्तये so that we may have perfect contentment of mind (अभीष्टये) इष्टानन्द-प्राप्तये and for the attainment of perfect happiness. स एव ईश्वरः May the Same Being (नः शंयोः अभिस्रवन्तु) सुखस्य सर्वतः वृष्टिं करोतु shover blessings upon us from all quarters.

इसी प्रकार 'ओं वाक् वाक्' इस मंत्र के पूर्व वह लिखते हैं 'During the recital of this mantra the organs of the various senses should be touched reverently with the hand. अर्थात् श्रद्धा से इन्द्रियों का स्पर्श करता हुआ मंत्र को पढ़े। प्रथम मंत्रके समान इसके अर्थ भी स्वामी दयानंदके अर्थसे अक्षरशः मिलते हैं। उदाहरणार्थ "वाक् वाक्" के अर्थ वह ' Speech and organ cf Speech' वाणी और वागिन्द्रिय करते हैं। इससे अगले मन्त्र का नाम मार्जन मंत्र ऋषि ने लिखा है और मज़ीनियानन्द जी ने भी मंत्र के ऊपर for purity अर्थात् 'पवित्र करने के लिये' ऐसा लिखा है। इस मन्त्र में व्याहृतियों के अर्थ तुलना करने के योग्य हैं।

सत्यार्थ प्रकाश के ३४ पृष्ठ पर ऋषि दयानन्द 'भूर्भुवः स्वः' के इस प्रकार अर्थ करते हैं और मजीनियानन्द का आंगल अनुवाद ऋषि का अक्षरशः भाषान्तर प्रतीत होता है। देखिये—

(भूः) जो सब जगत् के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय, और स्वयम्भू है।

"The stay and support of the Universe, Self-existent, and dearer than life"

(भुवः) जो सब दुःखों से रहित, जिसके संग से जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं— "free from all phases of pain and the human soul is freed from all trouble by coming in contact with thee"

(स्वः) जो नानाविध जगत् में व्यापक हो सब का धारण करता है। 'thou pervadest and sustainest all (जनः) सर्वेषां जनकत्वाज्जनः the cause of all. अग्रेपिः—

ओं उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरं। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।

(सूर्य) हे परमात्मन् ! चराचरात्मानं त्वां Lord ! thou art the soul of the animate and inanimate creation. (ज्योतिः) स्व-प्रकाशं the self-effulgent (देवत्रा देवं) सर्वेषु दिव्यगुणवत्सु पदार्थेषु ह्यनन्तादिव्यगुणैर्युक्तं धर्मात्मनां मुमुक्षूणां युक्तानां च सर्वानन्दस्य दातारं मोदयितारं च the holiest of the holy, the most luminous among luminous objects, the giver of peace and happiness to the righteous and to those longing for happiness. (उत्तरं) जगत्प्रलयानन्तरं नित्यस्वरूपत्वाद्विराजमानम् Eternal, or spirit existed when there was no vestige of creation. (तमसस्परि) अज्ञानान्धकारात्पृथग्भूतं beyond all darkness and ignorance. इस स्थान पर उत्तरं के अर्थ देखने योग्य हैं कि किस प्रकार ग़ज़ीनियानन्द ऋषि से सहमत हैं। इस से अगले मन्त्र में भी दो शब्दों के अर्थों की हम तुलना करेंगे। (केतवः उ) किरणा विविधजगतः पृथक् पृथग्रचनादिनियामका ज्ञापकाः प्रकाशका ईश्वरस्य गुणाः (उ) इति तर्के नैव पृथक् पृथक् विविधनियमान् दृष्ट्वा नास्तिका अपीश्वरं त्यक्तुं समर्था भवन्तीत्यभिप्रायः The exquisite design and arrangement in nature lead to an idea of the attributes of God. (जातवेदसः) जाता वेदा यस्मात् the the Giver of all Knowledge, जातं सकलं जगत् यस्मात the cause of the universe..........

'चित्रं देवानां..........' इस मंत्र में भी एक दो शब्दों के अर्थ दर्शाते हैं। (वरुणस्य अग्नेः चक्षुः) श्रेष्ठेषु गुणेषु वर्त्तमानस्य शिल्पविद्याहेतो रूपगुणदाहप्रकाशकस्य विद्युतो भ्राजमानस्यापि चक्षुः सर्व सत्योपदेष्टा प्रकाशकश्च the light of virtuous people, mechanicians and the discoverers of the porperties of electricity. (देवानां उदगात्) दिव्यगुणवतां विदुषामेव हृदये प्राप्तोऽस्ति attainable unto the wise. (अनीकं) सर्वदुःखनाशार्थं बलमस्ति the destroyer of all phases of inharmony. (स्वाहा) सत्यार्थ प्रकाश के ३८ पृष्ठ पर ऋषि 'स्वाहा' के अर्थ इस प्रकार लिखते हैं "जैसा ज्ञान आत्मा में हो, वैसा ही जीभ से बोले, विपरीत नहीं। जैसे परमेश्वर ने सब प्राणियों के सुख के अर्थ इस सब जगत् के पदार्थ रचे हैं वैसे मनुष्यों को परोपकार करना चाहिये।" पंचमहायज्ञविधि में स्वाहा के अर्थों में लिखते

हैं, "सुष्ठु कोमलं मधुरं कल्याणकरं प्रियं वचनं" Svaha is a comprehensive term for purity of speech, truthfulness and altruistic action.

इसी प्रकार शेष तीन मंत्रार्थ भी ऋषि दयानन्द से प्रायः अक्षरशः ही मिलते हैं।

इस पारस्परिक समानता को देखकर हम केवल दो ही परिणाम निकाल सकते हैं। १—स्वा० मज़ीनियानन्द ने ऋषि से यह मंत्र और मंत्रार्थ लिये हैं। प्रो० रामदेव जी ने इस विषय में उक्त स्वामी जी को एक पत्र लिखा था। जिस के उत्तर में स्वामी जी ने इन मंत्रों के वेद मंत्र होने पर ही अत्यन्त आश्चर्य दिखाया था और ऋषि दयानन्द के नाम से भी अज्ञता प्रकट की थी। अस्तु

तथापि यदि यह सिद्ध भी हो जाए कि ऋषि से ही यह सब कुछ लिया गया है तब भी हमारी ही जयपताका संसार में फहराएगी कि ऋषि कहां तक संसार को प्रभावित कर सकता है और वेद किस प्रकार सर्वप्रिय बन सकता है।

(२) अथवा ऋषि और उक्त स्वामी का स्रोत एक ही है और वैदिक समय का यह एक चिन्ह तिब्बत में शेष रह गया है। यदि अर्थ भी तिब्बत में यही किये जाते हैं तो हम बौद्धों को कभी नास्तिक न कह सकेंगे। कुछ हो, ऋषि की दोनों प्रकार से विजय ही है। अन्य विद्वानों का गौरव तो इस बात में होता है कि वह कुछ नई बातें अपने मस्तिष्क से निकालें। किन्तु ऋषि का गौरव तो इसी बात में है कि उस ने कोई भी बात अपनी ओर से नहीं लिखी।

ओ३म् शम्

सम्मेलन और आर्यसमाज

[लेखक—श्री० परमानन्द जी बी० ए० आर्योपदेशक]

आर्य सज्जनों के कान अनेक धार्मिक समाज-सुधार-सम्बन्धी तथा राजनैतिक सम्मेलनों के अभ्यस्त हो चुके हैं। हमारे अंग्रेज़ी पढ़े लिखे और उस विदेशी भाषा पर लट्टू महानुभावों ने उन को कान्फ्रेंस का नाम दे रक्खा है, परन्तु हमारे विलक्षणता-प्रिय तथा स्वदेशियों में भी स्वदेशी ख़ालसा भाइयों ने इन्हें 'दीवान' कहना आरम्भ किया है। आज यह शब्द पंजाब में इतना गूंजता है कि साधारण नामश्रुति पर ही बड़े २ राज्याधिकारी उस में विद्रोह की गन्ध सूंघते

और भयभीत हो जाते हैं । 'सम्मेलन' या 'कान्फ्रेंस' शब्दों के स्थान पर आजकल इसी शब्द का अधिक प्रचार है और राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रायः सभी सम्मेलन पोलिटिकल दीवान कहे जाते हैं ।

इन सम्मेलनों का कोई लाभ भी है या नहीं ? यह प्रश्न बड़ा जटिल है और इसका सहसा उत्तर देना कठिन है । परन्तु इस में भी कोई संदेह नहीं कि आन्दोलन करने के लिये यह सम्मेलन, कान्फ्रेंस या दीवान बड़े उत्तम साधन हैं । सम्मेलनों में प्रायः एक ही विचार के मनुष्य एकत्र होते हैं और वहां किसी प्रयोजन के लिये एकमत होकर किसी बात का उठाना बहुत सुगम होता है । सिख कान्फ्रेंसों का तो पहले यह प्रभाव होता रहा है कि जहां २ यह सम्मेलन होता था वहां २ एक हाई स्कूल खुल जाता था । अब पोलिटिकल दीवानों का मूल्य भी सब को प्रकट ही है । इन सम्मेलनों का उद्देश्य उतना नए आदमियों में प्रचार नहीं होता जितना पुराने सभासदों में उत्साह का संचार या किसी आवश्यक विषय पर आन्दोलन होता है । भारतभर की धार्मिक तथा अन्य संस्थाओं में एक आर्य समाज ही है जिस ने सम्मेलनों का महत्व नहीं समझा । ईसाइयों और मुसलमानों के और आजकल राष्ट्रीय महासभा के सम्मेलनों का समारोह देखकर आर्यसमाजों के सम्मेलन बड़े फीके और अल्पोपयोगी प्रतीत होते ह । वार्षिकोत्सवों के तंग समय-विभाग में किसी कोने पर और अनुपयुक्त समय में रसम पूरी करने के लिये एक सम्मेलन रख दिया जाता है । उस में भी पारस्परिक झगड़ों के कारण बहुत कम निर्माणात्मिक कार्य हो पाता है । निम्न लिखित पंक्तियों में कुछ अन्य प्रकार के सम्मेलनों का वर्णन किया जाता है जिन का प्रबन्ध करने से आर्य समाजों को बड़ा लाभ पहुंच सकता है । इन का परीक्षण एक दो स्थानों पर किया जा चुका है और उन में सफलता भी हुई है । आर्य सज्जनों और समाजों के अधिकारियों से प्रार्थना है कि वह यथाशक्ति इनका प्रबन्ध कर के लेखक के अनुभव से लाभ उठावें ।

नीचे लिखे सम्मेलनों का मुख्यतया यह उद्देश्य था कि भिन्न २ विचारों के महानुभावों को एक वेदी पर लाकर जो २ बातें उन की आर्य समाज के साथ साझी हैं, उन पर उन्हीं के मन्तव्यानुसार उन की अनुकूल सम्मति प्राप्त की जाय और इस प्रकार व्यष्टि-

रूपेण वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार किया जाय । इन में यह आवश्यक नहीं कि सब लोग आर्य विचारों के हों, अपितु यत्न यह किया जाना चाहिये कि अच्छे आचार के लोग, जो दूसरे मतों में हों, उन को हमारे सिद्धान्तों के पक्ष में भाषण करने का अवसर मिले ।

फ़ीरोज़पुर में यह सम्मेलन कुछ दिनों से चल रहे हैं । सब से प्रथम सम्मेलन ३ आषाढ़ को हुआ । उसका नाम शुद्धाहार सम्मेलन था । मांस-भोजन अमानुषीय है तथा धर्म-ग्रंथों द्वारा निषिद्ध और स्वास्थ्य के लिये हानिप्रद है––यह उस सम्मेलन का विषय था । इस सम्मेलन में स्थानीय देव-समाज कालिज के प्रिंसिपल म० परशुराम कनल जो एक सिंध-प्रान्तीय देवसमाजी सज्जन हैं उन्होंने उपर्युक्त स्थापना की थी । और इसकी पुष्टि में एक सनातनधर्मी विद्वान् पं० दीनानाथ शास्त्री, एक आर्य समाज (कालिज पक्ष) के प्रसिद्ध सज्जन राय बर्कत राम तथा कुछ अन्य प्रसिद्ध आर्य समाजियों के व्याख्यान हुए । अंत को शंका-समाधान का समय रक्खा गया, जिस से एक अहमदी सज्जन ने लाभ उठाया । बड़े आनन्द का विषय यह हुआ कि राय बर्कतराम ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि जो मनुष्य मां[illegible] भक्षण करता है वह अपनी निर्बलता [illegible] कारण ऐसा करता है, कोई भी धर्म पुस्तक [illegible] निंद्य कार्य की आज्ञा नहीं देती । और आ[illegible] समाज और ऋषि दयानन्द के ग्रंथ तो मां[illegible] भक्षण का सर्वथा निषेध करते हैं । ([illegible] साहब ने स्वयं कई दिनों से यह अभक्ष्य-भक्ष[illegible] छोड़ दिया है ।) पीछे श्राद्धों में मांस वि[illegible] पर मनु के प्रमाण से जब अहम[illegible] महाशय ने आक्षेप किया तब आर्य समा[illegible] तो मौन रहा और पं० दीनानाथ जी उ[illegible] देने खड़े हुए, वह दृश्य भी बड़ा अनुपम था[illegible] आर्य समाज तटस्थ था परन्तु मनु के श्राद्ध[illegible] प्रकरण की मट्टी पलीद हो रही थी ।

दूसरा सम्मेलन मद्य--निवारक सम्मे[illegible]लन था । यह एक सप्ताह पश्चात् हुआ, इस का विज्ञापन तो स्थानीय मद्य[illegible] निवारक समिति Temperance Societ[illegible] के प्रधान और मंत्री के नाम से निकला, औ[illegible] व्यय भी उन्हीं का हुआ । परन्तु सम्मेलन का स्थान और प्रबन्ध आर्य समाज का था[illegible] सभापति मद्य--निवारक समिति (टैम्पर[illegible] सोसाइटी) के प्रधान महाशय थे, जिन्होंने प्रारम्भ में एक लम्बी वक्तृता की, और अपनी शिथिलता के लिये क्षमा मांगी, और आ[illegible]

समाज का धन्यवाद किया जिस की कृपा से उन्हें यह सम्मेलन बुलाने की प्रेरणा हुई। आप के पीछे एक ईसाइ पादरी महाशय, एक सिक्ख सज्जन, एक आर्य देवी, एक आर्योपदेशक और अन्त में प्रसिद्ध राजनैतिक कार्यकर्ता सैयद बर्नास के भाषण हुए। और यह विचार किया गया कि इस सम्मेलन को स्थाई रूप दिया जाय और प्रति वर्ष अथवा उस से भी शीघ्र २ यह सम्मेलन हुआ करे।

तीसरी बार अछूत सम्मेलन किया गया। इस में भी भिन्न २ विचारों के प्रतिनिधि स्त्री पुरुष सम्मिलित हुए और अछूतोद्धार पर भाषण दिये गये।

चौथा और सब से आवश्यक सम्मेलन ९ श्रावण को ज़िला सम्मेलन के नाम से हुआ। इस में ज़िला भर के और रियासत फ़रीदकोट के आर्य पुरुषों को निमंत्रण दिया गया था, जिन में से अबोहर समाज से ३, गीदड़बहा से १, फ़ाज़िल्का से २, कोट कपूरा से १, फ़रीदकोट से २, फ़ीरोजपुर छावनी समाज से १, शहर की कालिज समाज से २, तथा स्थानीय समाज के सब सभासद सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन के सभापति बहुत औचित्य के साथ म० कन्हैया लाल जी गीदड़बहा निवासी बनाए गए। उपस्थिति अच्छी थी। विषय-निर्द्धारिणी सभा में लगभग १५ प्रस्ताव उपस्थित हुए और वहीं खुले अधिवेशन में स्वीकृत हुए। इस प्रान्त के लिये एक वैदिक--धर्म--प्रचार--मंडल बनाया गया। जिस के सभासद समाजों के प्रधान और मंत्री होंगे और उन के साथ प्रति १० सभासदों के पीछे एक प्रतिनिधि इस मंडल में लिया जायगा। इन मंडल-सदस्यों के लिये कई बातें आवश्यक होंगी। प्रस्ताव एक से एक बढ़कर उपयोगी हैं और दूसरे ज़िला सम्मेलनों के लिये मार्ग--दर्शक का कार्य कर सकते हैं। अतः उन्हें अक्षरशः यहां दिया जाता है।

१—ज़िला फ़ीरोज़पुर और रियासत फ़रीदकोट का यह सम्मेलन श्री भक्त रैमल जी उपाध्याय कन्यामहा--विद्यालय जालंधर की अकाल मृत्यु पर शोक प्रकट करता है और उन के संबंधियों से इस शोकजनक घटना पर सहानुभूति प्रकाशित करता है। इस प्रस्ताव की एक २ प्रति उन के संबंधियों तथा समाचार पत्रों में भेजी जाय।

२—डाक्टर सलामत राय जी एम० बी० पूर्व सभासद आर्य समाज फ़ीरोज़पुर की

मृत्यु तथा ला० काशीराम प्रधान आर्य समाजकालिज विभाग फीरोजपुर की मृत्यु पर भी शोक प्रकट करता है और उन के संबधियों से भी यह सम्मेलन सहानुभूति प्रकट करता है । इस निश्चय की सूचना भी उन के संबधियों और समाचार-पत्रों में भेजी जाय ।

३—सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि इस प्रांत के प्रत्येक आर्य समाज को प्रेरणा की जाय कि वह अपना २ वार्षिकोत्सव करें। विशेष करके वार्षिकोत्सव उन दिनों में किया जाय जब सभा के उपदेशक महोदय का दौरा इस ओर हो ।

४—निश्चय हुआ कि प्रत्येक आर्य समाज का पत्रव्यवहार और कार्यवाही आर्य भाषा में हुआ करे और यत्न किया जाय कि आगामी दो मास के पश्चात् कोई आर्य सभासद आर्य भाषा के ज्ञान से शून्य न रहे ।

५—निश्चय हुआ कि प्रत्येक आर्यसमाज मंदिर में न्यून से न्यून एक काल प्रतिदिन संध्या और अग्निहोत्र हुआ करे और मंदिर के ऊपर ओ३म् का झंडा लगाया जाए ।

६—निश्चय हुआ कि आर्य समाजों के सभासदों के सदाचार की ओर विशेष ध्यान दिया जाय और कोई सभास[द] मांस-भोजी तथा मादक-द्रव्य-सेवी न हो[।]

७—निश्चय हुआ कि ज़िला फ़ीरोज़पुर औ[र] रियासत फ़रीदकोट में वैदिक धर्म के प्रचार करने और आर्य समाजों के संगठन दृढ़ करने के लिये एक मंड[ल] स्थापित किया जाय जिस का ना[म] वैदिक धर्म प्रचार मंडल जिला फ़ीरोज़-पुर व रियासत फ़रीदकोट हो ।

८—निश्चय हुआ कि इस मंडल के म० आ[र्य] मुनि जी मंत्री हों और म० काशीरा[म] जी फाजिल्का निवासी कोषाध्यक्ष हों[।] यदि म० आर्य मुनि जी यह पद ग्रह[ण] करने से इन्कार करें तो म० गौरीशं[कर] जी फ़ाज़िल्का निवासी अथवा म० क[...] चंद जी अबोहर निवासी इस पद [पर] नियत हों ।

९—यह मंडल आर्य सज्जनों का ध्यान गु[ण] कर्मानुसार ही विवाहादि करने के सिद्धा[न्त] की ओर दिलाता है ।

१०—इस सम्मेलन की सम्मति में अब सम[य] आगया है कि मृतपत्नीक पुरुषों [का] कुमारियों के साथ विवाह का घोर विरो[ध] किया जाय और आगे ऐसा करनेवा[ले] पुरुषों को अधिकारी न बनाया जावे[।]

११--सर्व सज्जनों को सम्मति दी जाती है कि देवियों को भी आर्य समाजों की सभासदा बनाया जाय और व्यक्तियों के स्थान में परिवारों को समाज में सम्मिलित किया जावे ।

१२--सब आर्यों का ध्यान ऋषिकृत ग्रंथों के स्वाध्याय की ओर विशेष रीति से दिलाया जाता है ।

१३--इस सम्मेलन की दृष्टि में प्रत्येक समाज को पुरोहित रखने का यत्न करना चाहिये ।

१४--यह सम्मेलन आर्य जनता से अनुरोध करता है कि वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रचारार्थ वर्णों के निश्चयार्थ पद्धति बनने के लिये आन्दोलन करे और अभी जन्मानुसार प्रचलित शर्मा, वर्मा, गुप्त, पंडित और लाला आदि शब्दों का व्यवहार छोड़कर **महाशय** शब्द का सामान्यतया प्रयोग किया जाय ।

१५--इस सम्मेलन की सम्मति में संस्कारों के अवसर पर एक थाली में मिश्री और इलायची रखकर ही सब उपस्थित सज्जनों के सामने सत्कारार्थ पेश कर दिया जाय और वे इस में से यथारुचि थोड़ा २ उठा लेवें ।

अब यहां देव नागरी सम्मेलन, आस्तिक सम्मेलन, संगीत सम्मेलन, स्त्री सम्मेलन, धर्म सम्मेलन करने का विचार है ।

प्रेम-कुटीर ।

प्रभु ! छम छम बरसत नीर[1] । टेक

इन बुंदियन[2] सों । मम नयनन सों । गौर[3] गगन सों ।
टपकत प्रेम अधीर ॥

गगन घनावृत[4] । पवन सुवासित । धरणी धापित[5] ।
अद्भुत प्रेम--कुटीर ॥

पेड़ है, पाते हैं, । पुलकित गात हैं । झूमत जात हैं ।
सरसत सरस समीर[6] ॥

कण-कण-आगम । छेड़त सरगम । स्वाति-बिन्दु-सम ।
चातक--हिय हरि[7] पीर ॥

(चातक)

१ जल २ इन बूंदों से ३ श्वेत आकाश से ४ आकाश बादल से ढका हुआ है । ५ पृथिवी धुल गई है ६ वायु ७ मिटाई ।

सम्पादकीय टिप्पणियां

श्रावणी—इस बार का 'आर्य' श्रावणी त्यौहार के आस पास प्रकाशित होगा। यदि त्यौहार से पूर्व निकल गया तो हमारी यह ठिप्पणी समय पर पाठकों के पास पहुंच जाएगी। पीछे निकला तो भी नक़द न सही, उधार के चुकाने में वृथा विलंब न होगा।

आर्य समाजों में चर्चा रहती है कि यह त्यौहार क्या है? सनातनी भाई इसे विविध प्रकार से मनाते हैं। पंजाब में इस दिन रक्षा-बन्धन किया जाता है। यह रीति कब से चली—इस प्रश्न पर इतिहास मौन साधे है। राजपूताने में यह दिन वीरांगनाओं का विशेष प्रीति-दिन था। किसी पुरुष के पास किसी महिला की 'राखी' पहुंच जाए सही, उस महिला की रक्षा और आशा सिर से अधिक प्यारी हो जाती है। राखी राजपूतों के देवि सम्मान का इतिहास है। यह विस्तृत भाई-बहिन भाव का भक्ति-सूत्र है। इस प्रथा को ध्यान में रखते हुए जगत् भर की महिलाओं को 'आर्य' भ्रातृत्व का संदेश भेंट करता है।

अन्य प्रान्तों में इस दिन यज्ञोपवीत बदले जाते हैं। संभव है, इस रीति का कोई शास्त्रीय आधार हो। परन्तु हमें नहीं मिला चौमासा इस तिथि को आरम्भ होता है और गुरुकुलों के विद्यार्थी आचार्य की पू का यज्ञ करते हैं। यह गुरुकुल के नए स का आदि दिवस है। गुरु-शिष्यों को इ दिन हमारी बधाई हो। इनका पुनीत सम्ब सदा बना रहे। शिष्य पूजें गुरु पुजें। दो अपने २ मान और कर्तव्य के अधिकारी हों

कुछ गृह्य सूत्रों में गृहस्थों के लिये यज्ञ का विधान मिलता है। यह यज्ञ सं चौमासे में चालू रहता है और उस विशेष अभिप्राय सर्पों से मनुष्यों की रक्षा साधन करना प्रतीत होता है। आर्य मात्र हमारा इस त्यौहार पर बर्धापन हो।

आर्य समाज फ़ीरोज़पुर का समाचार कि वहां इस दिन स्त्रियों को यज्ञोपवीत धार कराने का विशेष प्रबन्ध किया जायगा काम पवित्र है यद्यपि इस दिन के साथ उ का संबंध हो या न। नव उपनीता बहि को द्विजता के क्षेत्र में हमारा हार्दिक स्व गत हो।

सम्मेलन—पाठक अन्यत्र पं० परम नन्द जी का लेख 'सम्मेलन और आर्यसमा इस शीर्षक के नीचे पढ़ेंगे। आर्य समाज

प्रचार की यह अनुपम विधि है । सारे सम्मेलन अपने २ स्थान पर उपयोगी हैं और जहां जिस की सामग्री मिल जाए, वहां उस का प्रबन्ध करना चाहिये । सारे सिद्धान्तों से नहीं, आर्य समाज के किसी २ सिद्धान्त से सहमत आर्य समाज के बाहर लाखों पुरुष हैं। उन की सहानुभूति उन विषयों में प्राप्त कर आर्य समाज आन्दोलन कार्य में विशेष पुष्टि प्राप्त कर सकता है । ज़िला सम्मेलन के विशेषतया लाभकर होने की संभावना है। यह आर्य समाज की बिखरी शक्तियों का आन्तरिक संगठन है । यदि ज़िलावार आर्य समाज का काम संभल जाए तो प्रचार में बहुत उन्नति हो सकती है । हमें हर्ष है कि फ़ीरोज़पुर ज़िले के आर्यों का ध्यान केवल मौखिक प्रचार की ओर ही नहीं खिंचा, आर्याचरण पर भी पर्याप्त बल दिया गया है जैसा कि सम्मेलनों के प्रस्तावों से प्रकट होता है । श्रीयुत विष्णुदत्त जी तथा पं० परमानंद जी का उद्योग सराहणीय है । इस बार के सम्मेलन के प्रधान म० कन्हैया लाल जी गिदड़बाह निवासी एक 'वृद्ध युवक' हैं । वय बड़ी होने से अनुभव बहुत रखते हैं और साहस की दृष्टि से युवकों को पीछे छोड़ते हैं। इन महनुभावों के पारस्परिक सहयोग से हमें फ़ीरोज़पुर ज़िले तथा रियासत फ़रीदकोट के अच्छे दिन आए प्रतीत होते हैं ।

दूसरे स्थानों में भी इस नवीन जागृति का अनुकरण किया जाए तो लाभकारी होगा।

जेल में यज्ञोपवीत--पिछले दिनों 'भारतमित्र' ने समाचार छापा था कि एक रामरक्षा नामी सर्कार का अपराधी राजदंड से काले पानी भेजा गया था । वहां उस का यज्ञोपवीत उतार लिया गया । उस ने हठ किया कि बिना यज्ञोपवीत मैं खाना न खाऊंगा ९० दिन भूखा रहकर अन्ततः वह धर्मवीर वीर गति को प्राप्त हुआ । सरकार ने इस समाचार का खंडन कर दिया है कि असत्य है । हमारा हृदय फड़क उठा था कि देखो! आज के गए बीते समय में भी धर्म पर बलिदान होने वाले विद्यमान हैं । जो हो, कोई आर्य इस भाव से शून्य नहीं रहना चाहिये कि वह अन्न सेवन करने का अधिकारी नहीं जब तक कि यह आर्यत्व का पवित्र पाश उस की गर्दन में न हो । जेल से लौटों का कहना है कि जेलों में भी यज्ञोपवीत उतार लिया जाता है । वह प्रत्यक्ष धर्म क्षेत्र में हस्ताक्षेप है । यदि हमें यह विश्वास होता कि कारावास में इस समय सभी दुराचारी जाते हैं तो हम स्वयं उनके यज्ञोपवीत उतारे

जाने की सम्मति देते। परन्तु वर्तमान स्थिति इसके विरुद्ध है। जेलका दंड कई महात्माओं और सदाचार के स्तंभों को मिल रहा है। आचार की दृष्टि से कई धर्म के नेता जेलों में हैं और कई उठाईगिरे और डाकू खुले बन्दों जगत् पर दिन दहाड़े अत्याचार कर रहे हैं। आज किसी के जनेऊ पर हाथ डालना उसके धर्म पर हाथ डालना है। जहां हम सरकार को सम्मति देंगे कि इस व्यवहार से आगे को रुक जाए और सके रहे, वहां प्रजा को सम्मति देंगे कि रामरक्षा का उदाहरण (यदि यह सत्य है तो अन्यथा यह आदर्श ही) उन के लिये अनुकरणीय है। यज्ञोपवीत आत्महत्या का साधन बन सकता है—सरकार के इस हेतु पर, जो कोरा हेत्वाभास है, हमें हंसी आती है। किसी का मृत्यु पर दिल आया हो तो उसे यज्ञोपवीत के बिना कोई और वस्तु हाथ न आएगी जिससे इस की अपेक्षा भी तुरन्त आत्म हनन हो जाए। जेल में लाख ऐसी वस्तुएं विद्यमान हैं।

भगवान् गान्धी—महात्मा गान्धी का पत्र सहयोगी "नवजीवन" लिखता है:—

भारत भावुक भूमि है। हम भावुकता को आदर की दृष्टि से देखते हैं। भावना-हीन हृदय मरुस्थल है। पर सच्ची भावुकता वह है जो अपने आराध्य के उपदेशों का अनुसरण करती हो। अतिरेक बुरी चीज है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। भावुकता का अतिरेक अन्ध-भक्ति में परिणत हो सकता है। महात्मा गांधी अन्ध-भक्ति के घोर विरोधी हैं। वे अपने नाम के साथ 'महात्मा' शब्द का प्रयोग किये जाने से बहुत तंग रहा करते थे। अब 'भगवान गांधी' को देखकर उन के चित्त में क्या क्या भाव उदय होंगे इसका अनुमान करना कठिन नहीं है। 'भगवान गांधी' नाम का एक हिन्दी पाक्षिक पत्र अभी कलकते से निकला है। पत्र के सम्पादक महात्मा गांधी को "ईश्वर का सब से बडा अवतार" मानते हैं और वेद, शास्त्र, स्मृति, कुरान, बाइबिल के आधार पर वे इस बात को सिद्ध कर दिखाना चाहते हैं। निस्संदेह यह इस बात का दृढ प्रमाण है कि जनता के हृदय में महात्मा गांधी का आसन कितना ऊंचा है और कारागार-स्थित गांधी नेता गांधी से अधिक बलवान् होता जारहा है; पर प्रश्न और समय आराध्य के गुणानुवाद का नहीं, उन के उपदेश के अनुसरण का है। दूसरे ईश्वर के अवतार के अस्तित्व न तो धर्म ग्रन्थों में है और न तार्किक युक्तियों में ही। वह तो स्वयं प्रकाश्य हैं। सूर्य भगवान् उदय होते हैं और संसार जागृत होजाता है। हमें विश्वास

है कि भारत के खादीमय होजाने से महात्मा गांधी को जो सुख और आनन्द होगा वह उन के 'ईश्वर का सब से बड़ा अवतार' सिद्ध हो जाने से न होगा। उन की भगवत्ता सिद्ध करने का तो एक ही मन्त्र है खादी। उसके बल पर जब तक हम उन्हें जेल से छुड़ा नहीं लाते तब तक उन्हें 'भगवान्' 'और ईश्वर का सब से बड़ा अवतार' कहकर हम स्वयं चाहे भले ही खुश हो लें, पर संसार हमारी बातों पर हंसे बिना न रहेगा। स्वार्थ, द्वेष, हिंसा आदि मैले भावों के रहते हुए, विदेशी सूत का कपडा पहिनते हुए, देश-हित के लिए कष्ट-सहन से पग पीछे रखते हुए, यदि हम केवल महात्मा गांधी का गुण-गान करते रहे तो यह उनकी केवल विडम्बना है। हम 'भगवान् गांधी' के सम्पादक महाशय की भावुकता की तो कदर कर सकते हैं, पर इस असामयिक अतिरेक पर मत भेद प्रकट किये बिना नहीं रह सकते।"

'भगवान्' शब्द के प्रयोग से गान्धी परमात्मा नहीं बनते परन्तु जिस भाव से कलकत्ता के साप्ताहिक पत्र ने यह विशेषण उन्हें दिया है, उस पर 'नवजीवन' की सम्मति ही हमारी सम्मति है।

वीर तुलसीराम—आर्य जनता आर्यसमाज के इतिहास में एक धर्मवीर के नाम से तो परिचित हैं। औरों का उसे पता नहीं। साधारण लोग पं० लेखराम को दयानन्द के यज्ञ में अकेली रुधिर की आहुति समझते हैं। महाशय तुलसीराम एक और धर्म के दीवाने थे जो आर्य धर्म का प्रचार करते बलिदान होगए। रियासत फ़रीदकोट में इन महाशय का बध जैनियों के हाथों से हुआ था। लेखक ने कहीं कविता में लिखा था कि जैन दयानन्द से अहिंसा का पाठ पढ़ेंगे। यह घटना इस धारणा की प्रत्यक्ष पुष्टि है। कुछ हो आर्य समाज के माथे पर एक नहीं, दो रुधिर के तिलक हैं। यही तिलक धर्म तथा धर्मावलंबियों की शोभा होती है। वीरों का रक्त धर्म-क्षेत्रों का बीज है। हमें यह सुनकर खेद हुआ कि फ़रीदकोट रियासत में जहां आर्य समाज एक वीर की बलि दे चुका है आर्य समाज का प्रचार नहीं। वीरों का लहू शताब्दियां बीत जाने पर भी हरा रहता है। जब भी इस रियासत में काम किया जायगा, बीज फूटेगा और दयानन्द की खेती शीघ्र लहलहाती दीखेगी। शोक यह है कि आर्य जनता को अपने पर न्यौछावर होने वालों का ज्ञान ही नहीं। कम आर्य समाजी तुलसीराम के नाम

तक से अभिज्ञ हैं । हम अनुगृहीत होंगे यदि कोई महाशय इस वीर की जीवन--कथा पर प्रकाश डालेंगे। "आर्य" पृष्ठ इस अमर वृत्तांत के लिये लालायित रहेंगे । कोई महाशय आवश्यक सामग्री हमें देदें तो हम उसे पुस्तकाकार देने को भी उद्यत है ।

सपत्नीक यज्ञ---कोई यज्ञ पूरा नहीं होता जब तक उस में यजमान और यजमान पत्नी दोनों सम्मिलित न हों । वार्षिकोत्सव में यह देखकर हर्ष होता है कि कोई २ महाशय पत्नी-सहित यजमान होने लगे हैं । हमें पूरी प्रसन्नता तब होगी जब यजमान और यजमान की पत्नी दोनों के मुख से मन्त्रोच्चारण भी सुनेंगे । आर्य समाज की असफलता का एक कारण उस से स्त्रियों का असहयोग है । आवश्यक यह है कि आर्य सभासद केवल व्यक्ति रूपेण आर्य समाज के सभासद न हों किन्तु परिवार सहित 'आर्य' बनें । पुरुषों के साथ स्त्रियां भी समाज के साप्ताहिक सत्संग में आएं । हवन, संध्या, प्रार्थना, उपदेश आदि सब कृत्यों में इनका भाग हो । समाज में से स्त्री पुरुष का परदा उठा दिया जाए । जब तक धर्म घरका धर्म नहीं बनता तब तक उस की नींव कच्ची है । कवि ने कहा है:—

"घर का दिया जलाकर मंदिर का फिर जलाना" बाहर के प्रचार की लालसा रखने वाले एक दृष्टिपात अपने पर भी कर लिया करें तो "संसार का उपकार" पूरा उपकार हो ।

हम उस सामाजिक (बिरादरी के) विरोध से अनभिज्ञ नहीं जो इस शास्त्राज्ञा के पालन में रोड़े की भांति अटक पड़ता है। परन्तु एक स्थान पर एक आर्य पुरुष से अपनी पत्नी के नकार करने पर डेरा डंडा घर से उठा लाने और उसकी स्त्री के शीघ्र सामाजिक कर्तव्य पालन करने पर उद्यत हो जाने की घटना हमारे सामने होचुकी है। आर्यों का अटल साहस हमें चुपके २ विश्वास दिला जाता हैं कि परिस्थिति कैसी भी प्रतिकूल हो, आर्य अपनी मना, के रहेगा---अपनी अर्थात् धर्म की ।

प्रश्न

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी यह दो प्रश्न विद्वानों के विचारार्थ भेजते हैं:--

(१) श्री स्वामी जी ने शूद्रों के लिये विधवा विवाह की आज्ञा दी है। इसकी विधि क्या है?

(२) पतित सावित्री को अर्थात् ऐसे स्त्री पुरुषों के लिये जो २४ वर्ष के होकर यज्ञोपवीत रहित रहते हैं । उन के उपनयन की विधि क्या है ?

आर्य विद्वान् 'आर्य' आदि पत्रों द्वारा अथवा मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा उत्तर दें । ताकि विचार हो सके।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

प्रचार क्षेत्र के मण्डलों तथा मण्डलाधीशों और मण्डलाध्यक्षों का संशोधित व्योरा।

नाम मण्डल	ज़िले	मण्डलाधीश	मंडलाध्यक्ष	हैड क्वार्टर
हरयाना मंडल	देहली, गुड़गाओं, रोहतक, करनाल, हिसार	पं० ब्रह्मानंद उपदेशक म० मथुराप्रसाद प्रचारक (रोहतक हिसार)	म० नारायनदत्तजी	शाहदरा देहली
अम्बाला मंडल	अम्बाला, शिमला, पटियाला, नाभा, जींद, नाहन, लुध्याना	पं० विष्णुमित्र उपदेशक पं० उद्योगपाल ,, म० श्यामलाल भजनीक	म० अलख धारी जी	अम्बाला सदर
द्वाबा मंडल	जालन्धर, होशियारपुर, कपूरथला रियासत	पं० बुद्धदेव उपदेशक पं० लेखराम (होशियारपुर) म० दुलीचंद भजनीक	पं० चन्द्र मणि जी	जालंधर शहर
लाहौर मंडल	अमृतसर, लाहौर, गुरुदासपुर, कांगड़ा, चम्बा गुजरांवाला, फ़ीरोज़पुर, लायलपुर, शेखूपुर, फरीदकोट रियास्त	पं० परमानंद बी० ए० उपदेशक, पं० भक्त राम जी उपदेशक (पद्दलित जातियों में) पं० सोमदेव (कांगड़ा चम्बा साथ बालमुकंद भजनीक) म० मंगतराम भज० म० बलराम भज०	पं० विष्णु दत्त जी	फ़ीरोज़पुर शहर

नाम मण्डल	ज़िले	मण्डलाधीश	मंडलाध्यक्ष	हैड कार्टर
गुजरात मंडल	स्यालकोट, गुजरात, झेलम, शाहपुर, जम्मू मीरपुर रियासत	पं० नरोत्तमदास उप० म० केसरचंद भजनीक	म० गंगाराम जी	सियालकोट
सीमाप्रांत मंडल	रावलपिंडी, कैम्बलपुर, नौशहरा, पिशावर, ऐबटाबाद	पं० विश्वनाथ उपदेशक म० बिहारीलाल भज०	म० वज़ीर चन्द जी	डेरा बख़शिवा
काश्मीर मंडल	काशमीर, पूंछ रियासत	पं० बंशीधर उपदेशक	म० गोविंद सहाय जी	श्रीनगर
डेहरा मंडल	डेरा इस्माईलखां, डेरा गाज़ीखां, बन्नु, मियांवाली	पं० हरदयालु उपदेशक म० इन्द्रजीत भजनीक	म० सुख राम दासजी	मियांवाली
मुलतान मंडल	झंग, मंटगुमरी, मुलतान मुज़फ्फ़रगढ़, बहावलपुर	पं० सत्यपाल उपदेशक पं० शालिगराम ,, म० गिरधारीलाल भज०	म० मदन मोहन जी	मुलतान शहर
सिंध बलोचिस्तान मंडल	सिंध, बलोचिस्तान	पं० युधिष्ठिरजी उप० म० तेजसिंह भजनीक	म० ठाकर दास जी	क्वेटा ग्रीष्म में, सक्खर शरद

इन के अतिरिक्त पं० चमूपति तथा पं० धर्म भिक्षु और अधिष्ठाता वेद--प्रचार भी आवश्यकतानुसार प्रचारार्थ जाएंगे। इन तीनों का मुख्य स्थान लाहौर है। पं० धर्म भिक्षु मुसलमान मत की पर्यालोचना पर लगाए गए हैं और यत्न किया जारहा है कि प्रत्येक धर्म सम्प्रदाय के विशेष पंडित तैयार किये जाएं जिस से शास्त्रार्थ में सुभीता रहे।

नोट—मण्डलधीशों के कोष्ट में प्रथम नाम मण्डलधीश का है शेष उपदेशक, भजनीक उस के सहकारी हैं।
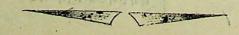
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

प्रचार-समाचार

श्री प्रो० रामदेव जी अधिष्ठाता प्रचार-विभाग निम्न समाचार भेजते हैं:—

मंडल विभाग—मंडल विभाग का संशोधित ब्योरा आगे दिया गया है। प्रचार की यह प्रथा लोक-प्रिय हो रही है। परन्तु इस में सफलता उसी अवस्था में सम्भव है कि समाजें सभा के साथ सहयोग करें। इस समय मंडल १० हैं। यदि प्रत्येक मंडल में एक समय एक से अधिक उत्सव न हों तो प्रबन्ध भली भांति चल सकता है। अधिक उत्सव आ पड़ने से प्रबन्ध में कठिनाई होती हैं। प्रत्येक समाज अपने उत्सवों की तिथियां सभा से समंत्रण्णा करके नियत करे तो उत्तम होगा सभा यथा सम्भव सहायता देगी। उत्सवों के समय विभाग भी बहुत लंबे नहीं रखने चाहियें प्रातःकाल एक उपदेश और सायंकाल एक या दो व्याख्यान पर्याप्त हैं। शेष समय धार्मिक वार्तालाप में लगाना बहुत लाभकर होगा। यह लोभ भी समाजों को त्याग देना चाहिये कि सभा के सब चुने हुए उपदेशक तथा भजनीक उनके उत्सव पर पहुंचे।

विशेष प्रचार—उपदेशक महाशयों के प्रचार वृत्तान्तों से ज्ञात होता है कि पं० परमानन्द जी तथा पं० युधिष्ठिर जी बड़े उत्साह से अपने काम को निबाह रहे हैं। पं० परमानन्द जी ने अबोहर, फाजिल्का तथा गीदड़बाह की समाजों को पुनर्जीवित किया है। कई स्थानों पर पंडित जी की धर्मपत्नी भी पंडित जी की सहायका होकर काम करती हैं जिस से बड़ा लाभ होता है। पं० युधिष्ठिर जी का कार्य-क्षेत्र बिलोचिस्तान है। वहां की कठिनाइयां विशेष हैं। परन्तु पंडित जी की बुद्धिमत्ता इन कठिनाइयों का अति क्रमण करती जाती है।

पुरोहित—प्रचार सम्मेलन का स्वीकृत किया प्रस्ताव, कि समाजें पुरोहित रखें, क्रियात्मिक रूप धारण करता प्रतीत होता है लाहौर, लायलपुर, गुजरात तथा भूपालवाला समाजों ने पुरोहित रख लिये हैं। मुल्तान समाज में भी यह विषय पेश है। और समाजों को भी इस ओर ध्यान देना चाहिये। सभा यथासम्भव सहायता करेगी।

अवैतनिक उपदेशक—आर्य समाज के अवैतनिक उपदेशों से प्रचार कार्य में बहुत सहायता मिला करती थी। कुछ वर्षों

से यह सहायता कम होगई । अब फिर मिलनी आरम्भ हुई है । पं० विष्णुदत्त जी वकील फीरोजपुर, पं० वैसाखीराम जी अमृतसर, पं० लक्ष्मणदत्त जी नवांशहर, पं० चन्द्रमणिजी जालन्धर, म० श्रीराम जी कर्तारपुर आदि सज्जन विशेषकर सहायता देरहे हैं । इसी प्रकार मास्टर रामलाल जी म० सत्यपाल जी लुध्याना से भी बहुत सहायता मिलती रहती है । सन्यासी महात्मा जो सर्वत्र भ्रमण से धर्म प्रचार का कार्य करते हैं वह बहुत अ[illegible] सहायता है पिछले दिनों श्री स्वा० गं[illegible] जी ने पटयाला तथा रोपड़ में कथा [illegible] आर्य समाज में अनेक विद्वान योग्य [illegible] सज्जन हैं जो प्रचार कार्य कर सहा[illegible] दे सकते हैं सभा के पास एक सौ से [illegible] ऐसे सज्जनों की सूची है । यह सब स[illegible] यदि सहायता देना आरम्भ करदें तो [illegible] ही लाभ हो ।

उपदेशकों भजनीकों के प्रचार कार्य का संक्षिप्त ब्योरा ।

बाबत मास आषाढ़ १९७९

१ प्रचार—आषाढ़ मास में निम्न स्थानों पर प्रचार किया:—

जम्मू, अखनूर, घरनी, सुषल, पिंगपाड़ी हमीरपुर सिधड़, गढ़ी हिम्मतसिंह लूरणा, कसौली, शाहदरा, कतलुपुर, भक्खर, मुज़फर गढ, शहर सुलतान, जतोई, झुगीवाला, खैरपुर सीतपुर, अलीपुर, अहमदपुर, उच्च, कोट खलीफ़ा, चनीगांठ, जालंधर, हुशयारपुर, हरयाना, शेरपुर, देरा गोपीपुर, ज्वालामुखी, नादौन, हमीरपुर, नारग, धर्मपुरा, बढौत, कोली सोलन, पटियाला, विलासपुर, साढौरा, नारायन गढ़, करोड़, दायरादीनपनाह, अहमदपुर, फीरोजपुर, दातारपुर, खतघरा, उकाड़ा, [illegible] गुमरी, चीचावत्नी, मियाचन्नु खानेवाल, [illegible] गढ, हसरसा, लोनी, सीहानी, बकर[illegible] मभाड़ा, फाज़लका, अबोहर, [illegible] बाहा, करतारपुर, सियालकोट, वम्बांवा[illegible] कपूर्थला, जालंधर, जालंधरसदर, फगवा[illegible] लुध्याना, सरहिंद, लकीमत्रेत खानगढ, [illegible] पुरा, भूपालवाला, भटिंडा, रामामंडी, नारो[illegible] कलासवाला, पठानकोट, दीनानगर, ज[illegible] पण्डोरी ।

२ संस्कार—१ यज्ञोपवीत, २ [illegible] करण, ३ मुण्डन, ६ विवाह ।

३ शास्त्रार्थ--पं० पूर्णचन्द उपदेशक ने पौराणिकों से अवतार तथा श्राद्ध विषय पर शास्त्रार्थ किये ।

४ उत्सव--जुलाई मास में निम्न आर्य समाजों के उत्सव हुए:—

दीनानगर, सुलतानपुर, बटाला ।

अगस्त मास में निम्न उत्सव नियत हुए:—

कुमार सभा शिमला—	४—५—६
वम्बांवाला	११—१३
दाजल मेलाप्रचार—	१५—१६
अहमदपुर शर्किया—	१८—२०
श्रीनगर (कश्मीर)	१९—२३
कैटा—-	२५—२७
कुल्लु—	”

५ राधा-स्वामि मत--पिछले दिनों सभा को सूचना मिली कि कर्तारपुर तथा कपूर्थला में राधा-स्वामि मत का ज़ोर होरहा है और स्त्रियों में यह मत फैल रहा है । सभा ने तुरन्त वहां पं० बुद्धदेव जी उपदेशक तथा पं० द्रौपदी देवी जी उपदेशिका को भेजा जिन्होंने बड़ी उत्तमता से प्रचार किया जिस का परिणाम बहुत अच्छा निकला और स्त्रियों ने वैदिक धर्म को ग्रहण किया । ऐसे प्रचार का कार्य स्थानीय आर्य समाज को स्वयं करना चाहिये, लोकल प्रचार की अधिक ज़िम्मेवारी उन्हीं पर होती है और समाज की स्थापना का उद्देश्य भी यही है कि उस २ स्थान पर जहां आर्य समाज स्थापित है वैदिक धर्म का प्रचार करे और उस नगर की सारी जनता को आर्य बनावे । यदि कुछ विद्वान योग्य आर्य सभासद सत्यार्थ प्रकाश तथा स्वामि जी के अन्य ग्रन्थ और पं० लेखराम जी की कुल्यात आदि ग्रन्थ पढते रहा करें तो छोटे मोटे शास्त्रार्थ तथा प्रचार के कार्य को बड़ी सुगमता से निभाह सकते हैं । आर्य समाजों को इस ओर ध्यान देना चाहिये । और अपने आर्य सभासदों को इस के लिये प्रेरणा करनी चाहिये । राधा-स्वामि मत के विषय में सभा के पास "राधा-स्वामि मत दर्पन" एक पुस्तक मौजूद है जिसका मूल्य ।≈) है । इस पुस्तक में उक्त मत की पूरी समालोचना की गई है। आर्य समाजों को इसे मंगवाकर लाभ उठाना चाहिये जहां कहीं इस मत का प्रभाव हो वहां तो अवश्य ही इस की बहुत कापियां मंगवा कर बांटनी चाहियें ।

"आर्य [illegible]षा" का प्रचार कीजिये ।

"आर्य" के ग्राहक बढ़ाइये ।

विशेष सूचना

शास्त्रार्थ—आर्य समाजों की ओर से कभी २ पत्र आते हैं कि यहां अमुक पंडित आये हुए हैं अमुक सभा का उत्सव है उन से शास्त्रार्थ होना है पंडित भेज दें । तजरुबा से देखा गया है वहां शास्त्रार्थ होने की कम सम्भावना होती है । सभा पंडित भेजती है परन्तु दूसरी ओर का पंडित चला जाता है और सभा का व्यर्थ में धन तथा समय नष्ट होजाता है । सभा शास्त्रार्थ करने के विरुद्ध नहीं है प्रत्युत सभा तो चाहती है कि लोग परस्पर मिलकर सत्य असत्य का निर्णय किया करें और सत्य का ग्रहण तथा असत्य का परित्याग करें । शास्त्रार्थ किसी तरीका से होने चाहिये । इसलिये आर्य समाजों को यह सूचना दी जाती है कि यदि शास्त्रार्थ का आवाहन हो तो शास्त्रार्थ का विषय, नियम, मध्यस्थ तथा प्रबंधादि का निश्चय करके सभा को पंडित भेजने के लिये लिखा करें । शास्त्रार्थ की तिथि ऐसी नियत करें जिस से सभा को १५ दिन पूर्व सूचना मिल सके । इस अवस्था में सभा पंडितों का उचित प्रबन्ध कर देगी ।

विवाह संस्कार—विवाह संस्कारों पर पंडित तथा भजनीक भेजने के लिये प्रायः सभा में पत्र आते रहते हैं सभा के पास इतने उपदेशक नहीं जो संस्कारों पर भेजने की गुंजाइश हो, भजनीक भेजने की तो और भी गुंजाइश है, संस्कारों का कार्य तो स्थानीय आर्य समाजों को स्वयं करना चाहिये किसी योग्य आर्य सभासद को संस्कार विधि को भली प्रकार पढ़ लेना चाहिये । यदि स्थान पर पंडित का प्रबन्ध न हो सके किसी निकट की समाज से कर लेना चाहिये सभा को पंडित के लिये लिखते समय सूचना साथ आनी चाहिये कि वर वधु की आयु क्या है ? क्या वह दोनो कुंवारे हैं क्या विवाह वैदिक रीत्यानुसार होगा । सभा के पास यदि गुंजाइश होगी तो पंडित भेज देगी । बुलानेवाले महाशय वेदप्रचार फंड के लिये दान तो अपनी श्रद्धा से देंगे ही इस के अलावा उपदेशक के आने जाने का मार्ग व्यय भी उन्हें देना होगा ।

५० वर्ष से ऊपर के आर्य पुरुष—गत वर्ष जो प्रचार सम्मेलन हुआ था उस में इस विषय का एक प्रस्ताव पास हुआ था कि ५० वर्ष के ऊपर आयु के जो आर्य पुरुष हैं उन को प्रेरणा की जावे कि वह गृहस्थ के धन्धों से पृथक होकर अपना समय तथा शक्ति आर्य समाज के अर्पण करें । बड़े हर्ष का समाचार है कि इस प्रस्ताव का प्रभाव पड़ा है पाकपटन के म० गैलाराम आर्य समाज की सेवा के लिये उद्यत होगये हैं । आशा है अन्य सज्जन भी इसका अनुकरण करेंगे ।

Registered No. L. 1424. रजिस्टर्ड नं० एल १४२४

* ओ३म् *

भाग ५ पौष १९८१
अङ्क ८ जनवरी १९२५

आर्य्य

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मासिक पत्र

सम्पादक—चमूपति

प्रार्थना।

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तोऽराव्णः

ऋग्वेद।

हे प्रभु! हम तुम से वर पावें।
विश्व जगत् को आर्य बनावें॥
फैलें, सुख सम्पत् फैलावें।
आप बढ़ें, तव राज्य बढ़ावें॥
वैर-विघ्न को मार मिटावें।
प्रीति-नीति की रीति चलावें॥

वार्षिक मूल्य ३) रु० पेशगी

शरत्चन्द्र लखनपाल प्रिन्टर व पब्लिशर के अधिकार से बाम्बे मैशीन प्रेस मोहनलाल रोड लाहौर में छप कर प्रकाशित हुवा।

विषय सूची ।

"आर्य्य" के नियम ।

१—यह पत्र अंग्रेज़ी मास की १५ तारीख़ को प्रकाशित होता है। (डाकख़ाना में चूंकि अंग्रेज़ी तारीख़ देनी होती है, इसलिये अंग्रेज़ी तारीख़ का हिसाब रक्खा गया है)।

२—इसका वार्षिक मूल्य ३) है। सभा ने वैदिक धर्म तथा नागरी प्रचार के लिये इसे जारी किया है।

३—इस पत्र में धर्मोपदेश, धर्म-जिज्ञासा, प्रतिनिधि सभा की सूचनाएं दर्ज होती हैं।

४—पत्र में प्रकाशित होने के लिये समाचार तथा लेख प्रत्येक अंग्रेज़ी मास की १ तारीख़ के पूर्व आजाने चाहियें।

५—यदि डाक की ग़लती से कोई अङ्क न पहुंचे, तो दिन के भीतर सूचना देने से वह अङ्क भेज दिया जायगा, लेकिन इस अवधि के पश्चात् मंगवाने पर प्रति अङ्क।=)

* ओ३म् *

आर्य्य

भाग ५] लाहौर–पौष १९८१, जनवरी १९२५ [अंक ८

वेदामृत।

आत्मबोध।

ओ३म् शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरासि ज्योतिरसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम॥

अथर्व २।११।५॥

शुद्ध तू है बुद्ध तू है तेज तू आनन्द तू।
शक्ति तू है भक्ति तू है आत्म ज्योति अमन्द तू॥
तू नहीं जचता जगत् में जब तलक सामान्य है।
तू सजग हो, यत्न कर, तेरे लिये प्राधान्य है॥

कतिपय प्रकीर्ण विचार।

(५) भागवत पुराण बोपदेव कृत है।

(श्री स्वा० वेदानन्द तीर्थ)

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में "भागवत पुराण" को बोपदेव की कृति माना है, इस पर पौराणिक बहुत ननुनच किया करते हैं। उन सब के समाधानार्थ एक अकाट्य प्रमाण उपस्थित करता हूं। आशा है, इस से वे शान्त हो जाएंगे। ईसा की सोलहवीं शताब्दी में सर्वविद्यानिधान कवीन्द्राचार्य्य सरस्वती नाम के एक अच्छे विद्वान् हुए हैं। वे काशी में रहा करते थे। बड़े विद्या-रसिक थे, उन्होंने एक सुवृहत् पुस्तकालय बनाया था। दुर्भाग्य से पुस्तकालय तो नहीं रहा—उनकी पुस्तकें तो इधर उधर हो गई हैं—किन्तु सौभाग्य से उनके पुस्तकालय की सूची मिल गई। और वह बड़ोदा के गायकवाड़ प्राच्य पुस्तकमाला (The Gaekwad Oriental Series) का १७ वां अंक स्वरूप प्रकाशित भी हो चुकी है। उसके पृष्ठ २३ पर सं० १४०१ 'बोपदेवकृत भागवत' लिखा है।

इस 'कवीन्द्राचार्य्य सूचीपत्रम्' की सम्पादक कृत अंग्रेजी भूमिका के पृष्ठ XIII पर निम्न लिखित पंक्तिएं विचारने योग्य हैं :—

1401....There is another भागवत by बोपदेव, which is also mentioned by Sridhar in his श्रीभागवत व्याख्या in the first verse. These are some MSS secured for the Baroda Library on आर्षानार्षत्वविचार on श्रीभागवत which may be interesting to those, who want to study this question. This list of course will strengthen the opinion of those who hold that at present विष्णुभागवत belongs either to उपपुराण or to that of बोपदेव" अर्थात्—"एक दूसरी भागवत बोपदेवकृत है, जिसकी चर्चा श्रीधर ने भी अपनी श्रीभागवत व्याख्या के प्रथम श्लोक में की है। बड़ोदा पुस्तकालय के लिए भागवत सम्बन्ध में "आर्षानार्षत्व विचार विषयक हस्तलेख प्राप्त किए गए हैं, जो इस प्रश्न के विचारकों के लिए रोचक होसकते हैं। यह सूचीपत्र

निस्सन्देह उन लोगों के विचारों को पुष्ट करेगा, जिनका यह विचार है कि वर्त्तमान विष्णु भागवत या तो उपपुराण है या बोपदेव की कृति है।"

(६) एक परमावश्यक प्रस्ताव।

सम्राट् अशोक के समय में त्यागि-शिरोमणि उपगुप्त की प्रेरणा से वीतराग-मूर्द्धन्य श्रीमान् मोग्गलीपुत्त तिस्स (मौद्गल्यपुत्र तिष्य) की अध्यक्षता में बौद्धभिक्षुओं एवं श्रावकों की एक महती परिषत् हुई थी। उस में बौद्धमत के लिए क्रान्तिकारी प्रस्ताव स्वीकृत हुए। उन में एक प्रस्ताव बड़ा विलक्षण था किन्तु वह प्रस्ताव बौद्ध समाज का अत्यन्त हितसाधक सिद्ध हुआ। भगवान् बुद्ध के अहिंसात्मक मत के प्रचारक भिक्षु, प्रायः हिंसक हो चले थे। वीतराग श्रमणों में राग इतना अधिक बढ़ा, कि उन में न समा कर उनके वस्त्रों से फूट फूट पड़ता था। तुच्छ तृण तक उनके राग से रञ्जित हो उठे। कहां तक वर्णन करें, महामना बुद्ध देख पाते, तो वे अवाक् रह जाते। इस भयङ्कर परिस्थिति को देखकर तात्कालिक बौद्ध नेताओं ने भिक्षु नाम को कलङ्कित करने वाले अनेक श्रमणाभासों से, पादुका, कमण्डलु काषायवस्त्रादि छीनने का आयोजन किया और उस में वे कृतकृत्य भी हुए। कदाचित् उस समय के इस उपयोगी प्रस्ताव का फल है, कि आज भी बौद्ध भिक्षुओं में से जब किसी का मन संन्यासाश्रम की उच्चावस्था के अनुकूल नहीं रहता, तब वह तूम्बा, वस्त्र उतार, मठ छोड़, घर की राह लेता है। आर्य्यसमाज में भी संन्यासाश्रम के कलङ्क स्वरूप कई ऐसे महामना हैं, किसी को सन्तान-मोह ने मुग्ध कर रखा है, किसी को बन्धुराग, किसी को द्रविण लालसा ने विदीर्ण कर रखा है, किसी किसी को विषय वासना ने त्रासित कर रखा है। क्या ही उत्तम हो, यदि ऐसे सब सज्जन ऋषि जन्म शताब्दी महोत्सव के समय जिस प्रकार कई वैराग्य सम्पन्न महाशय राग मूलक बन्धनों को काटकर प्रसन्नता पूर्वक तुरीयाश्रम की दीक्षा लेंगे, शान्ति पूर्वक नानापदापन्न, विविधक्लेशक्लिष्ट, तुरीयाश्रम का परित्याग कर स्वविचारानुसार गृहाश्रम को लौट आएं। आर्य्य समाज के लिए यह कोई नूतन बात नहीं होगी। अभी अभी एक घटना घटित हुई है। गृहाश्रमादि से सन्यासाश्रम में प्रवेश की भांति यह लोकानुमोदित न होने से ऐसे लोग लज्जित होते हैं। जब समाज इसके लिए अनुज्ञा देदेगा, तो किसी को लज्जित होने की आवश्यकता न रहेगी। यदि आर्य्य समाज में सुसंगठित संन्यास मण्डल होता, तो ऐसे

प्रस्ताव की आवश्यकता ही न पड़ती। जब मैंने पहले पहल इस प्रस्ताव को आर्य्यसमाज के शिरोभूषण, वीतराग महात्मा स्वामी श्रीविशुद्धानन्द सरस्वतीजी से चर्चा की, तो उन्हों ने भी इसका सर्व प्रकार से अनुमोदन किया। आशा है आर्य्यगण इस पर गम्भीरता से विचार करेंगे॥

(७) परोपकारिणी सभा का पापमय प्रमाद।

वेदादि सच्छास्त्रों के उद्धार एवं स्वलिखित ग्रन्थों के प्रचार आदि सत्कार्य्य सम्पादनार्थ महाराज श्रीस्वा० दयानन्द ने परोपकारिणी सभा का सङ्गठन किया। परन्तु शोक से इस बात का उल्लेख करना पड़ता है, कि वेदादि शास्त्रों के उद्धार के स्थान में परोपकारिणी सभा ने इनका संहार ही अधिक किया है। आर्य्य धर्म्म का प्राणस्वरूप वेद यदि कहीं अशुद्ध छप सकता है, तो परोपकारिणी सभा के वैदिक यन्त्रालय में। और फिर आश्चर्य्य यह कि इससे कोई पूछने वाला नहीं। और तो और, स्वयं स्वामी जी महाराज के ग्रन्थ कितने अशुद्ध छपते हैं, प्रत्येक संस्करण में नई अशुद्धियां सम्मिलित होती रहती हैं। कदाचित् सभा के अधिकारी कहें, कि बाहर के विद्वान् हमें सहायता नहीं देते, तो यह सर्वथा निर्मूल है, क्योंकि यह तो बाहर के विद्वानों से सहायता लेते ही नहीं। जब तक यह स्वयं बाहर के विद्वानों को आमन्त्रित न करें, वे कैसे इनकी सहायता कर सकते हैं। मुझे खूब स्मरण है, थोड़े वर्ष हुए जब परोपकारिणी सभा की यह घोषणा निकली थी कि सत्यार्थ प्रकाश का पुनर्मुद्रण होने वाला है, जिन २ महाशयों को जो अशुद्धियां ज्ञात हों, वे लिखकर भेजदें। मैंने स्वयं तृतीय और नवम समुल्लास के दो स्थलों का उल्लेख कर भेजा था। परन्तु किसी ने ध्यान न दिया, अपितु वह संस्करण भी "यथापूर्वमकल्पयत" ही था। अस्तु, अशुद्ध का तो मूल हस्तलिपि से मिलान करके शोधन कर दिया जासकता है। परन्तु परोपकारिणी सभा ने तो ऋषि कृत ऋग्वेद भाष्य का शेष भाग गुम कर दिया है, क्या इससे बढ़कर पाप होसकता है। आप लोग प्रमाण पूछेंगे। लीजिए, ऋषि स्वयं यजुर्वेद भाष्यके आरम्भमें लिखते हैं—

योजीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ञानं गुणैरीश्वर—
स्तं नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्यः सुबोधाय च।

ऋग्वेदस्य विधाय वै गुणगुणिज्ञानप्रदातुर्वरं—
भाष्यं काम्यमथो क्रियामयस्य यजुर्वेदस्य भाष्यंमया ॥१॥

अर्थात्—जो ईश्वर गुणों के साथ समस्तभले कर्मों का ज्ञान जीवों में धारण करता है (देता है) उसे नमस्कार करके गुण और गुणी का ज्ञान प्रदान करने वाले ऋग्वेद का अच्छा भाष्य करके क्रियामय यजुर्वेद का कमनीय भाष्य मैं परोपकार और शीघ्रता से ज्ञान के लिए करता हूं॥

पाठक महानुभाव ! जब ऋषि स्वयं लिखरहे हैं कि ऋग्वेद का भाष्य करके हम यजुर्वेद का भाष्य करते हैं तो फिर हम कैसे स्वीकार करें कि स्वामी जी महाराज ऋग्वेदभाष्य अधूरा छोड़ गए। मेरा दृढ़ विश्वास है, कि ऋषि-भाष्य ऋषि के अयोग्य, प्रमादी उत्तराधिकारियों की कर्त्तव्य पराङ्मुखता के कारण खण्डित हुआ है । क्या अब भी आर्य्य जनता ऋषि के महोपकारी लेखों की रक्षा का कोई प्रबन्ध सोचेगी ? आर्य्यसमाजी नेता जो आर्य्यसमाज को ऋषि का सुयोग्य उत्तराधिकारी होने का बार बार सार्टिफिकेट (Certificate) दिया करते हैं, तनिक सोचें क्या परोपकारिणीसभा के साथ साथ वे भी इस जघन्य महापाप के भागी हैं या नहीं ?

प्रस्तावित "ऋषिकृत वेद भाष्य के सम्पादन" पर विचार।

श्रीयुत प्रियरत्न विद्यार्थी आर्षविद्यासदन (लखीचबूतरा) काशी।

"ऋषिकृत वेदभाष्य का सम्पादन" नामक लेख अगस्त मास के 'आर्य्य' में श्री० स्वा० वेदानन्द जी का निकला था। लेखक महोदय ने ऋषिकृत वेदभाष्य के प्रचुर प्रचारार्थ प्रकाशन में कुछ लाघव बतलाया था जिससे कि संस्कृत के विद्यार्थियों और विद्वानों तक उसकी पहुंच सुगमता से होजावे अर्थात् वेद भाष्य में से भाषा भाग निकाल कर पदार्थ को अन्वयार्थ में सम्मिलित कर केवल संस्कृत भाष्य ही अलग छपवाया जावे। यह लेखक का

प्रस्तुत लाघव मुझे भी इष्ट है किन्तु संस्कृत भाग में भी पदपाठ को निकाल देने में मैं सहमत नहीं हूं क्योंकि ऋषि ने पदपाठ उदात्तादि स्वरों के विग्रह-सहित रखा है—इस में कुछ रहस्य है। स्वर प्रक्रिया के विद्यार्थियों व स्वर प्रक्रिया के द्वारा अर्थ की अन्वेषणा करने वालों के लिये ऋषि शैली का सौवर पदपाठ अत्यन्त उपयोगी है। अतः प्रस्तावक महाशय इस मेरी अनुमति के साथ अपने प्रस्ताव में सफलता प्राप्त करें और इस प्रकार वेद भाष्य के छापने का प्रवन्ध कोई सभा अवश्य करे। वरन् मैं भी इस विषय में विचार करूंगा।

दिन बीत गए।

दिन बीत गए बहुतेरे।

खेल कूद में बीता बचपन।
यौवन काज घनेरे ॥ १ ॥

वही भोग था वही रोग है।
भोग रोग के फेरे ॥ २ ॥

भोगों ने भोगी तरुणाई।
जरा लगाए डेरे ॥ ३ ॥

स्याही गई सफ़ेदी आई।
जाग जाग मन मेरे ॥ ४ ॥

सखियां गाएं गगन गुँजाएं।
इनके भाग्य भले रे ॥ ५ ॥

निपट अभागी मैं नहिं जागी।
सोई सांझ सवेरे ॥ ६ ॥

पुराण और वेदार्थ ।

(लेखक—श्रीयुत विश्वनाथ आर्योपदेशक)

भागवतादि वर्त्तमान पुराण ग्रन्थों की अश्लील कथाएं प्रसिद्ध ही हैं। इन में जहां जगद्विख्यात आर्य शिरोमणि महात्माओं के विमल जीवनों को कलङ्कित करने का दुष्प्रयत्न किया गया है, वहां सौन्दर्यमय प्राकृतिक घटनाओं के विचित्र चित्रों से अलंकृत वेद मन्त्रों पर भी अश्लीलता का कीच फैंकने का साहस किया है। परन्तु हमारे पौराणिक पण्डितों को दुराग्रह ने ऐसा विवश किया है कि वे इन कथाओं को वेद मन्त्रों का भाष्य समझते हैं। कदाचित् आर्य्य विद्वान् भी इस सन्देह में पड़ जाते हैं कि वेद मन्त्रों का आशय पुराणों तथा महाभारतादि इतिहास ग्रन्थों में ही जाकर खुलता है। अतएव वेदार्थ के लिये इन की सहायता आवश्यक है। यह सर्वथा भूल है। वास्तव में देखा जाये तो ये कथाएं वेद मन्त्रों पर ढकना हैं। इन ही की कृपा से आर्य जाति ने वेद के सत्य अर्थों को भुला दिया। और वेद में गवेषणा करने वाले विद्वज्जनों के लिए वेद भी पुराणों की तरह एक घृणास्पद इतिहास ग्रन्थ बन गये॥

निरुक्त में यास्कमुनि 'वृत्र' पद की निरुक्ति करते हुए लिखते हैं:—

तत्को वृत्रो मेघ इति नैरुक्तास्त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिका अपां ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति । नि०
नैघण्टुक कां० अ० २

अर्थ—वृत्र कौन है ? निरुक्त पक्ष में मेघ। परन्तु इतिहास के मानने वाले त्वष्टा का पुत्र वृत्र एक असुर का नाम बताते हैं (महाभारत तथा भागवतादि पुराणों में विस्तार पूर्वक वृत्र की कथा लिखी है) जल और ज्योति के संघर्ष से वर्षा होती है वहां उपमा अर्थ में युद्धों का वर्णन है।

निरुक्त के इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि यास्क मुनि को वेद के ऐसे स्थलों में यद्यपि अलंकार ही अभीष्ट था परन्तु उस समय में वेद में इतिहास मानने वालों का प्रादुर्भाव हो चुका था और सायण के भाष्य ने तो मानो वेदों को दूसरा महाभारत बना दिया। पुराण भी लगभग उसी समय बनाये गये। और उस समय वाममार्ग तथा बौद्ध जैनादि सम्प्रदायों के मेल से वैदिक धर्म

कुछ का कुछ बन चुका था । अतएव सायण महाभारत तथा पुराणों की ये कथाएं वेदों को वाममार्ग से प्रभावित इतिहास की दृष्टि से देखने का परिणाम ही हैं । इन से वेदार्थ की आशा रखना वृथा ही है ।

इन कथाओं का प्रादुर्भाव ऐसा ही समझना चाहिये जैसा कि कुरान की आयतों तथा बाबा नानक की बाणियों के लिये कथाएं घड़ी गई हैं । इनमें कई एक घटनाएं सत्य भी मानी जा सकती हैं । परन्तु वेद के साथ किसी ऐतिहासिक घटना का सम्बन्ध जोड़ना वेदों को वेदत्व से गिराना है ॥

अब दिग्दर्शन के लिये इस विषय का एक प्रमाण पाठकों के समक्ष रखा जाता है जिस से यह अच्छी तरह से अवगत होजावेगा कि क्या पुराणों की ये कथाएं वेदार्थ में कुछ सहायक हो सकती हैं अथवा इन का देश-निकाला ही अच्छा है ।

ऋग्वेद ३—३१—१ के आशय को ऐतरेय ब्राह्मण में इस प्रकार प्रकाशित किया है :—

प्रजापतिर्वैस्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये तामृष्यो रोहितभूतामभ्यैत तस्य यद्रेतसः प्रथममदीप्यत तदसावादित्योऽभवत् ॥

ऐ० ब्रा० पंचिका ३ कण्डिका ३३ वा ३४

अर्थ—सूर्य अपने से उत्पन्न होने से लालवर्ण की उषा कालरूपिणी कन्या से ऋष्य (एक मृग विशेष) होकर सम्बन्ध करता है जो उस के रेत से प्रकाशित होता है वही दिन रूपी सूर्य्य का पुत्र होता है ।

इस विषम दृष्टान्त से प्रकृति के सौन्दर्य को कैसा अच्छा अलंकृत किया है । मनुष्यों के लिये इस में उपदेश भी है कि प्रकृति तथा पशु जगत् में स्वसुतोपभोग का प्रमाण मिलता है । मनुष्य को इन के विरुद्ध असगोत्र में ही दारक्रिया का अधिकार है ॥

अब उस पौराणिक कथा को भी लिखा जाता है जिस का आधार यह मन्त्र बतलाया जाता है ।

(१) वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हरति मनः ।
अकामां चकमे क्षत्तः स काम इति नः श्रुतम् ॥

तमधर्मेकृतमतिं विलोक्य पितरं सुता।
मरीचि मुख्या मुनयो विश्रम्भात् प्रत्यबोधयन्॥
नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यन्ति चापरे।
यत्त्वं दुहितरं गच्छेर्निगृह्याङ्गजां प्रभुः॥ भा० ३।१२

अर्थ—वाक् नाम की अपनी पुत्री को देख ब्रह्मा को मोह हुआ और उस अकामा की ब्रह्मा ने इच्छा की। इसकी इस अधर्म की मति को देख कर मरीचि आदि ब्रह्मा के पुत्रों ने उसे विश्रम्भ पूर्वक जताया कि यह स्वपुत्री-ग्रहण रूप कर्म न किसी ने किया न आगे कोई करेगा॥

(२) तां दृष्ट्वाभिमतां ब्रह्मा मैथुनायाजुहाव ताम्।
तेन पापेन महता शिरोऽशीर्षत वेधसः॥ वामन पु० अ०४९

अर्थ—ब्रह्मा ने अपनी पुत्री को अभिमत देख मैथुन के लिये बुलाया। इस महापाप के कारण शिव ने उस का सिर काट दिया॥

(३) तत्सर्वं नाशमगमत स्वसुतोपगमेच्छया।
तेनोर्ध्वं वक्त्रमभवत्पञ्चमं तस्य धीमतः।
आविर्भवज्जटाभिश्च तद्वक्त्रश्चावृणोत्प्रभुः॥ मत्स्य पु०अ०२

अर्थ—अपनी पुत्री से गमनेच्छा के कारण ब्रह्मा का पांचवां सिर उत्पन्न हो गया। और उस की जटाओं से उत्पन्न होकर उसका वही सिर काट दिया॥

यह कथा शिवपुराण में भी आती है जहां ब्रह्मा की पुत्री उसे शाप देती है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लज्जा से ब्रह्मा अपने शरीर का त्याग कर देता है॥

इससे पाठकों को अच्छी प्रकार से विदित हो गया होगा कि इन पांचों पुराणों में से किसी ने भी सूर्य्य उषा अथवा मेघ पृथिवी के अलङ्कार की व्याख्या नहीं की प्रत्युत ब्रह्मा यहां पुराणों का माना हुआ ईश्वर-अवतार है कोई आलंकारिक व्यक्ति नहीं। और उसके इस कर्म को अधर्म और पाप कहा गया है। ऋषियों ने जो उस के पुत्र थे उस के इस कर्म की निन्दा की। शिव ने उस का सिर काट दिया। पुत्री ने शाप दिया। ब्रह्मा स्वयमेव लज्जा से अपना शरीर त्याग करता है तो ऐसी घृणित कथाओं से वेदार्थ की आशा रखना दुराशा मात्र है।

महाभारत तथा भागवतादि पुराणों में कुछ एक कथाओं में वेद मन्त्रों के अर्थ से मिलते जुलते श्लोक पाये जाते हैं। उन से यह तो सिद्ध होता है कि इन के सम्पादकों ने वेद के यह स्थल अवश्य देखे थे। परन्तु वेदार्थ के खोलने के स्थान में वेद मन्त्रों का सम्बन्ध ऐसी मिथ्या कथाओं के साथ कर दिया गया कि जिन का वेद में कुछ भी निशान नहीं॥

भागवत में ब्रह्मा की पुत्री का नाम वाक् आया है, जिसका शब्दार्थ वाणी है अतएव पौराणिक पण्डित इसको वाणी मात्र समझते हैं। परन्तु यह बात श्लोकार्थ तथा उपस्थित हेतुओं से वृथा और कल्पना मात्र ही सिद्ध होती है। और यदि पुराण के आशय के विरुद्ध यहां भी एक प्रकार का अलङ्कार ही मान लिया जावे तो इस अवस्था में ब्रह्मा आदि देवताओं का अस्तित्व भी कल्पना मात्र हो जावेगा। पुनः उनकी पूजा और तत्सम्बन्धी अन्य पौराणिक सिद्धान्त भी कल्पना ही होजावेंगे। इस से तो अच्छा यह है कि पुराणादि कल्पित ग्रन्थों का आश्रय छोड़कर वेद का स्वतन्त्र अवलम्बन करते हुए आर्य्य जाति को मृत्यु के मुख से बचाया जावे॥

मोहन पञ्चमी।

(१)

मुनि की आयु ६ वर्ष की थी। वह सदा पाठशाला जाता। एक दिन पाठ का शीर्षक था 'परमात्मा'। उस पाठ में लिखा था—परमात्मा तुम्हें खाने को देता है, पीने को देता है। हवा चलाता हैं। सुलाता है, जगाता है। उससे प्यार करो।

मुनि के सहाध्यायियों को आश्चर्य था-यह परमात्मा कौन है। न उसे खिलाते देखा, न पिलाते, न सुलाते, न जगाते, और न हवा ही चलाते। वह कौन है? कहां है? मुनि को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। पिता ने इसे एक नौकर दिया था मोहन। वह इसे बाज़ार लेजाता, लड्डू ले देता। इसे प्यास लगती, पानी ला देता। गर्मी होती, पंखा झलता। रात आती, उठा कर पलंग पर लेटाता।

प्रातःकाल होते जगा देता। मुनि ने निश्चय किया—यही मोहन परमात्मा है। यह उससे प्यार करता ही था। मुनि के लिये आजका पाठ कोई नई शिक्षा नहीं थी।

उस दिन जब मोहन इसे पाठशाला से लेने आया तो यह उसे विशेष प्यार से लिपट गया। जी कहता था, यह परमात्मा है।

मुनि अपने सहपाठियों के साथ सन्ध्या आदि याद किया करता था। एक दिन अध्यापक ने कहा—लो भाई! तुम्हें कुछ २ अर्थ भी बताते जाएं। प्राणायाम मन्त्र सब से सरल हैं, पहिले उन्हीं के अर्थ बताते हैं।

"ओ३म् भूः" अर्थात् प्राण से प्यारा परमात्मा। मुनिने झट इसे मोहन पर घटा लिया।

"ओ३म् भुवः" अर्थात् दुःख मिटाने वाला परमात्मा।

मुनि ने मन ही मन कहा—मेरे तो दुःख मिटाता ही मोहन है। मोहन के होते मुझे कष्ट नहीं होता।

"ओ३म् स्वः" सुखस्वरूप।
"ओ३म् महः" बड़ा परमात्मा।
"ओ३म् जनः" पैदा करने वाला।

यह बात मोहन की समझ में नहीं आई।

"ओ३म् तपः" सहने वाला प्रभु।

मोहन से बढ़ कर सहनशील कौन है? सरदी में, गर्मी में, सब से कम कपड़े पहिनता है। खाता अधिक नहीं, भोगता अधिक नहीं। जैसे होती है, निर्वाह करता है।

"ओ३म् सत्यं" सत्यस्वरूप।

मोहन ने कभी झूठ नहीं बोला।

अब तो अवस्था यह होने लगी है कि जहां सन्ध्या के लिये आंखें बन्द कीं और अध्यापक जी ने कहा, परमात्मा का ध्यान करो, मुनि के आगे मोहन का चित्र उपस्थित होगया।

(२)

मुनि वर्षों पढ़ता रहा। पहिले स्कूल का विद्यार्थी था, फिर कालेज का हुआ। ग्रेजुएट बना। एक उत्तम निबन्ध लिखा, जिससे इसे पी. एच. डी. की उपाधि मिली। तर्क शास्त्र इसका विशेष विषय था। आत्मा परमात्मा के संबन्ध में इसने बीसियों पुस्तकें पढ़ीं। अब इसे यह भ्रम काहे को रहना था कि मोहन परमात्मा है। परन्तु न जाने क्या बात है? जब भी यह सन्ध्या करने बैठता है और "ओ३म् भूः" कहता है, मोहन की मूर्ति अपने आगे से हटा नहीं सक्ता। इसी यत्न में, इसी विचार में, कि मोहन परमात्मा नहीं, मुनि की उपासना मोहन की उपासना हो जाती है।

पिता के देहान्त पर मुनि घरका स्वामी बना है। घर का काम काज करने को बहुत से सेवक रख लिये हैं। मोहन भी उनमें से एक है परन्तु उससे काम नहीं लिया जाता। बाबू जी को मैंने गोदो खिलाया है—यह मोहन की सबसे बड़ी डींग है। सब यही समझते हैं कि अब मोहन पैन्शन पर है। उसे वेतन दे दिया जाता है। समय २ पर विशेष पुरस्कार भी मिलते हैं। और काम केवल यह है कि कभी २ बाबू जी को उनके बचपन की कहानियां सुना जाना।

मोहन मर्यादा का पक्का है। कभी उद्दण्ड नहीं होता। प्रेम का कितना आवेश हो, "बाबू" जी कहता है, "मुनि बाबू" नहीं। बाबू जी की कई वार इच्छा हुई है कि फिर कभी मोहन की गोदी में बैठें, परन्तु लज्जा बाधक होती है।

मोहन जानता है—कुछ हो, हूं सेवक। वह अधिक समय सेवकों में ही बिताता है और उन सब के कार्यों की ख़ूब देख भाल रखता है। बाबू जी से कह कर कभी २ किसी २ की वेतन-वृद्धि भी करा देता है। सब सेवक जानते हैं कि बाबू जी की ज़ुबान और मोहन की ज़ुबान एक है।

किसी मित्र ने एक दिन मुनि बाबू की अनुपस्थिति में मोहन को झाड़ बतादी। जब मुनि बाबू लौटे और इन्हें यह क्रूर वृत्त सुनाया गया तो यह रो पड़े। मित्र दूसरे दिन आए तो उन्होंने मोहन से क्षमा मांगी। हृदय ने कहा:— बूढ़ा सेवक है, इसे पितृ सदृश समझते हैं।

(३)

मुनि बाबू हैं आर्य समाजी परन्तु कभी २ अपने सनातनी मित्रों के साथ उनके मन्दिरों में भी चले जाते हैं। एक दिन विशेष झांकी थी। इन्हें प्रेरणा की गई, चलो। इन्हें झांकी देखने का कौतूहल था। भक्तों की उत्सुकता की मनोवैज्ञानिक आलोचना करना चाहते थे।

मोहन बाबा भी इनके साथ गया। इन्हें स्मरण आया कि बालकाल में एक बार अपने सारे परिवार के साथ झांकी देखने गए थे। इन्हें मोहन की देख रेख में मन्दिर के बाहर छोड़ा गया था। मोहन इन्हें उठाए फिरा था। कभी वह दिन लौट न आएंगे? लोग ठाकुर जी की झांकी देख रहे थे, यह अपने चिर समय से विस्मृत बाल काल की। इनका ठाकुर मोहन था। परन्तु अब तो न उसके हाथ इन्हें उठाने को बढ़ते हैं, न इन के उससे उठाए जाने को।

इन्होंने ठाकुर जी का स्नान देखा, वेश-भूषा देखी। चन्दन लगता, भोग चढ़ता देखा। और इन सब क्रियाओं के साथ भक्तों के खिल खिल जाते हुए मुख-कमल देखे। जी में आई, पूजा का प्रसाद यही है। हमतो साकार परमात्मा से भी गए, निराकार से भी। हृदय का साकार स्वामी मोहन है। यदि एक बार उसे ही नहलालें, खिलालें, जी भरके उसकी सेवा शुश्रूषा करलें, तो मन की मुराद पूरी हो जाए। पर वह नौकर है। हा! नौकर! क्या परमात्मा नौकर भी हो सका है?

मुनि बाबू इन विचारों में डूबे खड़े थे कि किसी ने कोहनी हिलाई:—

क्यों? ठाकुर जी पर रीझ गए कि नहीं? वृथा आर्य समाजी बने हो। पूजन साकार का होता है, निराकार का नहीं।

मुनि चौंका, मुस्कराया और झट मन्दिर से बाहर आगया।

(४)

रात को अकस्मात् मोहन बाबू जी के कमरे में आया। बाबू जी अकेले थे।

मोहन—बाबू जी! आज जी चाहता है आपको मुनि कह कर पुकारूं। ऐसा प्रतीत होता है कि अगली रात आपको नहीं देखूंगा।

मुनि—मोहन बाबा! यह क्या?

मोहन—कुछ पता नहीं। मृत्यु सबको आती है। आज हमारी बारी प्रतीत होती है। जी चाहता है, आप से प्यार कर लूं—वही प्यार जो आपके छुटपने में करता था।

मुनि ने दरवाज़ा बन्द कर लिया और मोहन बाबा की छाती से चमट गये। मोहन बाबा ने मुनि को चूमा। इन्हों ने आंखें बन्द करलीं और मोहनके पांव पर सिर रख दिया।

प्रातःकाल नगर में घोषणा हुई कि मोहन बाबा की देहान्त होगया। दाह की तैयारियां होने लगीं। प्रेत के नहलाने धुलाने का समय हुआ। मुनिबाबू ने सेवक हटादिये और कहा यह सारा कर्म हम अपने हाथों करेंगे। (हृदय में) मरा हुआ मोहन तो पूजा जासक्ता है।

मुनि ने मोहन के मृत शरीर को न्हलाया। उसे चन्दन लगाया। कपड़े उढाये और फिर अर्थी को श्मशान में दाह के लिए लेगए। मुनि रोए नहीं, शान्तचित्त थे, और ख़ूब प्रसन्नवदन श्मशान की सारी क्रिया होचुकने के पीछे मुनिबाबू पण्डित ज्ञानस्वरूप को अपने साथ घर लेगए। ज्ञान स्वरूप आर्य्यसमाज के पुरोहित थे उन्हें अपने कमरे में जा बैठाया और अपने मन की सारी अवस्था उन्हें कह सुनाई। यह भी कहा कि मोहन बाबा के मरने पर मुझे दुःख नहीं, विशेष सन्तोष है। आज मैंने ठाकुर-पूजा की है। जो आह्लाद आयु भर नित्यंप्रति सन्ध्या करने से कभी नहीं मिला, आज मरे हुए मोहन बाबा के पांव धोने से सहसा प्राप्त हुआ है। रात मोहनबाबा फिर बाबा बन गए थे। मेरी परमात्म-शीर्षक पाठ पढते समय की बुद्धि फिर जाग उठी। मैंने अपने आपको परमात्मा की गोदी में पाया। आज उस लीला की समाप्ति हुई है। यह मेरी झांकी थी-मेरे जड़ ठाकुर की झांकी।

ज्ञानस्वरूपः—वेद भी तो कहता है, पद्भ्यां शूद्रो अजायत।

मुनि—हां।

ज्ञान—इसका अर्थ यही है, परमात्मा के पांवों से शूद्र बना।

मुनि—मेरा विचार है, मोहन बाबा की समाध बनाऊं। वहां उसका चित्र लटकाऊं।

ज्ञान—यह काहे को?

मुनि—भक्ति स्थिर रखने को।

ज्ञान—सीधे रास्ते पर पड़े फिर व्यर्थ भटकने लगे हो। जितने सेवक हैं, सभी मोहन हैं। वेद कहता है, सभी शूद्र परमात्मा के पांव हैं।

मुनि—और मेरे सेवकों में तो मोहन के आचरण की साक्षात् छाया पड़ चुकी है। आचार विचार सब उसी का सा है। तब तो, पण्डित जी! मोहन मेरे परमात्मा हैं और शेष सेवक लोग उसके प्रतिबिंब आत्मा। लीजिये! मैं शांकर हो गया।

ज्ञान—ऐसे शांकर होने में आपत्ति नहीं।

मुनि—पण्डित जी! मैं परमात्मा के चरणों तक तो पहुंच ही गया।

ज्ञान—हां! पर यह याद रखिये। काम करता जीव परमात्मा का अङ्ग है; आलसी पड़ा प्रकृति का पुंज।

मुनि—अच्छा! इस जन्म में चरण ही सही। कभी मुखारविन्द के दर्शन भी करलेंगे।

ज्ञान—आज कल परमात्मा की काय भग्नप्राय है। नहीं तो मुख आप को दिखा ही देते। ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्। अर्थात् ब्राह्मण प्रभु का मुख है और ब्राह्मण आजकल हैं नहीं। प्रभु के पांव हैं, उन्हें कोई पूजता नहीं और जो अङ्ग पुजते हैं, वह परमात्मा के नहीं।

मुनि—परमात्मा भग्नप्राय हैं? हम समझे थे, सनातनियों के साकार ठाकुर टूटते हैं। नहीं! समाजियों का निराकार भी भग्न होता है।

ज्ञानस्वरूप ने लम्बी श्वास ली। मुनिबाबू ने उसे दोहरा दिया।

(६)

पर क्या मुनिबाबू की सन्तुष्टि हो गई? समाध नहीं बनाई, श्राद्ध करते हैं। मोहन का देहान्त श्रावण सुदि पञ्चमी को हुआ था। यह पञ्चमी आई और मुनिबाबू के हां वृहद् भोज हुआ। सब सेवक और उनके सम्बन्धी, इधर उधर के नौकर चाकर, इकट्ठे कर उन सबके पांव धोते हैं और पूर्ण श्रद्धा से उन्हें भोजन कराते हैं। घर बार में इस उत्सव का नाम है मोहन-पञ्चमी। उस दिन मुनि बाबू की भक्ति का कुछ न पूछो। कोई आओ उस का नाम मोहनबाबा है।

लोगों ने मुनिबाबू का नाम रखा है नौकर-पूजक। कभी यह ठाकुरों की निन्दा करें तो कहा जाता है:–तुम्हारी नौकर-पूजा से अच्छी है। "दर्शक"

वेद में शालानिर्म्माण विधि।

(श्री पं० परमानन्द जी)

वेद विज्ञान के भण्डार हैं। आर्य्यसमाज के तीसरे नियम के शब्दों में वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं। श्री अरविन्द घोष कहते हैं कि दयानन्द की इस बात में कोई उच्छृंखलता नहीं। Schure महोदय लिखते हैं कि वेद में प्राकृतिक नियमों और शक्तियों की चर्चा है जिन्हें वर्तमान विज्ञान केवल नये सिरे से खोजने वाला है। देहरादून के एक अंग्रेज़ इञ्जिनियर अब तक सुनाते रहे हैं कि ऋषि दयानन्द ने वेद के प्रमाण से उन्हें Engineering के बहुत से उपकरणों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया था, जिन में से कई अभी तक नहीं बने।

जब यह अवस्था है तो कोई आश्चर्य्य नहीं यदि वेद में शालानिर्म्माण विधि का भी निरूपण हो। आज हम संस्कारविधिस्थ मन्त्रों और तदाश्रित-गृह्यसूत्रों आदि के विधि परक वचनों को छोड़कर ऋग्वेद के कुछ अन्य मन्त्रों का विचार करते हैं और वह भी पं० सत्यव्रतसामश्रमी की सहायता से—जिन पर दयानन्दी होने का दोष नहीं लग सकता। दयानन्दी तो इस बात के लिये बदनाम हैं कि यह वेद के सिर सब कुछ मढ देते हैं। सब से पहले हम तीसरे मण्डल का एक मन्त्र लेते हैं क्योंकि यूरोपिन विद्वानों और उनके अनुयायी कई भारतियों का मत है कि पहला और दसवां मण्डल पीछे से बने। यदि तीसरे मण्डल के किसी मन्त्र से यह सिद्ध हो जाय कि वेद में शाला निर्म्माण का बड़ा उत्तम विधान है तो न्यूनातिन्यून एक विज्ञान वेद में सिद्ध हो गया।

ऋग्वेद ३. १८. ८. २. का मन्त्र है:—

तपोष्वग्ने अन्तराँ अमित्रां तपा शंसमररुषः।
तपो वसो चिकितानो अचित्तान्वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः॥

इसका अन्वय इसप्रकार होगा:—

हे अग्ने! (त्वं) अन्तराँ अमित्रान् तपउ अररुषः परस्य शंसम् (अपि) तप। हे चिकितानो वसो अचित्तान् तप उ ते अजरा अयासःवितिष्ठन्तान्।

भाष्यः--हे अग्ने ! त्वम् अन्तरानमित्रान् गृहमध्यशत्रूभूतानार्द्रभावान् तप उ शोषय एव। अररुषः अप्रकाशस्य (अरुषीरारोचनात् निरुक्त १२.१.७.) परस्य शत्रुभूतस्य शंसं शंसनमस्तित्वं नाम तप नाशय। हे वसो ! सर्वस्य वासयितः चिकितानः प्रज्वलन् अचित्तान्=चित्तरहितान् दंशमशकादीन् तप उ नाशय एव। ते अजराः सखिभूताः अयासः पवमानाः (अत्र गृहे इति शेषः) वितिष्ठन्ताम्।

भावार्थः-तदेतेन मंत्रेण गृहस्य प्रकाशशून्यत्वं तन्निबन्धनमार्द्रत्वं तत एव वायुप्रवाहहीनत्वं तदाश्रितं दंशमशकादि जीवित्वं चेति चत्वारि दूषणानि विज्ञापितानि। तेषां चतुर्णां दूषणानां निवारणाय तादृशे गृहे अग्नेः प्रज्वालनं चोपदिष्टम्।

भाषार्थः-हे अग्ने ! (तू) (अन्तरान् अमित्रान्) घरके भीतर शत्रुभूत आर्द्र-भाव (नमी) को (तप उ) अवश्य सुखा दे। (परस्य) शत्रुरूप (अररुषः) अन्धकार का (शंसम्) अस्तित्व या नाम नाश करदे। हे (वसो) सबको (उत्तमघरों में) वास कराने वाले (चिकितानः) प्रज्वलित होकर (अचित्तान्) चित्तरहित पिस्सू मच्छरादि को (तप उ) नाश ही करदे। (ते) तेरा (अजराः) मित्ररूप (अयासः) आने जाने वाले वायु (इस घरमें) विशेषरूप से निवास करें।

भावार्थः—इस मन्त्र में घर का प्रकाशरहित होना, उसका परिणाम नमी, उसी से वायु के प्रवाह की हीनता, उसके आश्रित मक्खी, मच्छरादि जीवों का डेरा—यह चार दूषण बतलाए गये हैं। इन चारों दूषणों के निवारण के लिये उस प्रकार के घर में अग्नि जलाने का उपदेश किया है।

ऋग्वेद १०. ११०. ५. का मन्त्र है:—

व्यचस्वतीरुर्विया विश्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः।
देवीर्द्वारोबृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः॥

अन्वयः—द्वारः देवीः व्यचस्वत्यः उर्विया विश्रयन्ताम् जनयः न पतिभ्यो शुम्भमानाः विश्वमिन्वा बृहती सुप्रायणा भवत।

पदार्थः—द्वारः यज्ञगृहाणां विद्वद्गृहाणां वा देवीः दीप्तिमत्यः व्यचस्वत्यः बहुवायुप्रवेश योग्याः उर्विया उरुत्वेन विश्रयन्तां सुयोग्याधिकप्रस्थकपाट-युक्ता भवन्तु। पतिभ्यो जनयः न शुम्भमानाः कुलबध्व इव स्व पतितोषणाय

सुन्दरवसनभूषणधरा: शोभिताः, विश्वमिन्वाः विश्वमाभिरेतीति निरुक्तम् (८.२७.) बृहतीः दीर्घाः सुप्रायणाः सुखप्रवेशा भवत।

भावार्थः—तदेतेन विद्वद्भिः सुदैर्घ्यप्रस्थयुक्ताः प्रवहनयोग्यवायुप्रवेशाः सुचित्रिता दीप्तिमत्यो द्वार: कर्त्तव्या इति द्वारविज्ञानमुपदिष्टम्।

भाषार्थः—(द्वारः) यज्ञशाला के अथवा विद्वानों के (देवीः) दीप्ति, प्रकाश, सौन्दर्य्य वाले (व्यचस्वत्यः) बहुत वायु को ला सकने वाले (उर्विया) विस्तार के कारण (विश्रयन्ताम्) बहुत बड़े और खुले प्रस्थ और फाटक से युक्त होने चाहियें, (पतिभ्यो जनयः न शुम्भमानाः) जैसे कुलांगनाएं अपने पति को प्रसन्न करने के लिये सुन्दर वस्त्र और भूषण धारण करके सुशोभित होती हैं, (विश्वमिन्वाः) जिन से [सारे जगत् में अर्थात्] चारों ओर आ जा सकते हैं (बृहतीः) बड़े लम्बे चौड़े (सुप्रायणाः) प्रवेश के लिये सुगम हों।

भावार्थः—इस मन्त्र से यह द्वार का विज्ञान उपदेश किया गया है कि विद्वानों को अच्छे खुले और आंगन सहित, नानाप्रकार के चित्र वाले प्रकाश-युक्त, जिन में वायु एक ओर से दूसरी ओर तक खूब बेग से बह सकें ऐसे द्वार बनवाने चाहियें।

ऋग्वेद १. १५४, ६. का मन्त्र है:—

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि॥

अन्वयः—(हे पत्नी यजमानौ) वां तानि वास्तूनि गमध्यै उश्मसि यत्र भूरिशृंगा गावः अयासः। अत्र अह उरुगायस्य वृष्णः तत् परमं पदम् भूरि अवभाति।

पदार्थः—हे पत्नीयजमानौ! वां युष्मदर्थं तानि गन्तव्यत्वेन प्रसिद्धानि वास्तूनि सुखनिवासयोग्यानि स्थानानि गमध्ये युवयोर्गमनाय उश्मसि कामयामहे, यत्र येषु वास्तुषु गावो रश्मयो भूरिशृंगा अत्यन्तोन्नत्युपेता बहुभिराश्रयणीया वा अयासः अयनाः गन्तार अतिविस्तृताः, यद्वा यासो गन्तारः एतादृशा अत्यन्तप्रकाशयुक्ता इत्यर्थः। अत्राह अत्र खलु वास्त्वाधारभूते द्युलोके उरुगायस्य बहुभिर्महात्मभिर्गातव्यस्य स्तुत्यस्य वृष्णः विष्णोः (सूर्य्यस्य) तत् तादृशं

प्रसिद्धं परमं निरतिशयं (परार्द्ध्यस्थम्-निरुक्तम्) पदं स्थानं भूरि अतिप्रभूत-मवभाति स्वमहिम्ना स्फुरति,—इति सायणः ।

भावार्थः—येषां वास्तुषु मध्ये बहु आकाशं स्यात, यस्मिश्चाकाशे सूर्य्य-रश्मीनां वायुप्रेरितं गमनागमनं च प्रचुरं भवेत्, तादृशानि बहुवाय्वाकाशत-पालोकसमन्वितान्येव वास्तूनि विद्वद्भिर्वासाश्रयणीयानीत्युपदेशः फलितः।

भाषार्थः—जिन घरों के बीच बहुत खुला स्थान हो और उस खुले स्थान में सूर्य्य की किरणों का वायु के वेग से आना जाना बहुत हो, तथा ऐसे स्थान और मकान विद्वानों को अपने रहने के लिये बनाने चाहिये, जिन में वायु, आकाश, धूप, दृश्य, रौशनी खूब हो ॥

अग्निहोत्र और आर्य्य-समाज का कर्त्तव्य।

[ले०—म० श्यामसुन्दर लाल वकील मन्त्री आ० स० मैनपुरी]

उक्त शीर्षक का एक लेख श्री. डा. रामजी नारायण D. Sc. की लेखनी से "आर्य्य" के नवम्बर मास के अङ्क में मुद्रित हुआ है। मैं प्रशंसित महोदय से सर्वथा सहमत हूं कि इस विषय में आर्य्य सामाजिक पुरुषों तथा आर्य्य समाजों ने अपने कर्त्तव्य पालन से अबतक नितान्त उदासीनता प्रगट की है। मेरे विचार में विविध परीक्षणों से केवल यही सिद्ध नहीं करना है कि हवन में बहुत पदार्थों से उत्पन्न रासायनिक संघात (Chemical compounds) किस प्रकार कृमिनाशक और वायु—जल शोधक होते हैं किन्तु आजकल की बढ़ी चढ़ी रासायनिक विद्या के शब्दों में यह भी बतलाना है कि अमुक २ हुत पदार्थों के होम करने से अमुक २ परिस्थिति में अमुक २ रासायनिक संघात उत्पन्न होते हैं और वे अमुक २ परिस्थति में अमुक प्रकार से रोगनाशक और आरोग्यता प्रसारक होते हैं।

लिखने की आवश्यकता नहीं है कि Chemistry अर्थात् रसायन शास्त्र के दो विभागों में से अर्थात् एक आरगैनिक (जिसका सम्बन्ध उन पदार्थों से है जो किसी न किसी शरीर का भाग रहे हैं, चाहे वह घास का तृण हो

वा हस्ती आदि बड़े २ प्राणधारी हों) तथा द्वितीय इन-आरगैनिक (जो आर-गैनिक नहीं है) में से आरगैनिक कैमिस्ट्री अतिक्लिष्ट है। कारण यह, कि जो रासायनिक संघात इन-आरगैनिक (शरीरात्मक वा तन्वात्मक) पदार्थों से उत्पन्न होते हैं वे इतने अदृढ़ होते हैं अर्थात् इतनी शीघ्र २ किञ्चिन्मात्र परिस्थिति के अन्तर से रूपान्तरित हो जाते हैं कि रसायन शास्त्र के वेत्ताओं के लिये परीक्षण का करना अति कठिन हो जाता है। और इस वास्ते हवन में हुत पदार्थों की(जो लगभग सभी आरगैनिक होते हैं) रसायनिक मीमांसा अतिकठिन होजाती है। परन्तु जहां यह मीमांसा अति कठिन है वहां हवन की संस्था को वैज्ञानिक आधार पर आश्रय देने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक भी है। यदि आर्य्य-समाज यथेष्ट धन का इस कार्य्य के लिये व्यय नहीं कर सक्ता है तो उसको आजकल के वैज्ञानिक युग में हवन की महिमा के गान करने में संकोच से काम लेना पड़ेगा। जिसका दूसरे शब्दों में तात्पर्य्य यह निकलता है कि आर्य्य-समाज को बिना उपरोक्त प्रकार का वैज्ञानिक आश्रय बतलाये कोई अधिकार नहीं है कि हवन की संस्था का पञ्चमहायज्ञों में परिगणन कर शिक्षित समुदाय को आदेश बनाने के लिये प्रेरणा कर।

एक बात जो उपरोक्त लेख में मुझे बहुत खटकी है वह यह है कि उसमें न मालूम क्यों कारबोनिक ऐसिडगैस को विषैली वायु कहा गया है। रसायन शास्त्र की दृष्टि से यह गैस कदापि विषैली नहीं है। यदि कारबोनिक ऐसिडगैस में जलती हुई बत्ती बुझ जाती है, वा प्राणधारी के प्राण स्थिर नहीं रहते तो वह इस कारण से नहीं कि वह विषैली वायु है किन्तु इस कारण से कि वहां प्राणों के आधार औक्सीजन (प्राणप्रद वायु) की अनुपस्थिति होती है। वास्तव में बात यह है कि जब अग्नि अच्छे प्रकार प्रज्वलित होती है तो कारबोनिक ऐसिडगैस अर्थात् Carbon dioxide (Co_2) उत्पन्न होती है जो विषैली नहीं है किन्तु जड़ वा उपचर प्राणधारी सृष्टिका भोजन है। और जब अग्नि केवल मन्द मन्द धधकती है तो दूसरा रासायनिक संघात उत्पन्न होता है जिसका नाम कारबन मेनोक्साईड (Co) है। यह गैस निस्सन्देह विषैली है परन्तु यह हवन में उत्पन्न ही नहीं हो सक्ती यदि हवन को विधिवत् किया जाय। प्रश्न के इस पहलू पर दृष्टि डालने, और जो विधि हवन के करने के लिये समिधा-चयन व घृत आदि आहुतियों की रक्खी गई है उस पर दृष्टि

पात करने से समझदार पुरुष को यह बात भली भांति स्पष्ट हो जावेगी कि अविधिवत् हवन करने से शास्त्रों में क्यों नुकसान बतलाया गया है। यहां तक कि मुण्डकोपनिषत् में स्पष्ट शब्दों में बतलाया गया है कि "यस्यग्निहोत्रम् अदर्शम्...........अविधिना हुतम्.......आसप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति"। क्योंकि जो विधि हवन के लिये विधान की गई है वह इस सिद्धान्त पर निर्भर है कि कारबन मोनोक्सईड आदि विषैली गैसें उत्पन्न ही न हो पावें। इस से यह भी प्रत्यक्ष होता है कि हमारे पूर्वज उन वैज्ञानिक सिद्धान्तों से अपरिचित नहीं थे जिनका भय हवन के करने में उपस्थित किया जासका है॥

सत्यार्थ प्रकाश और मांस।

[ले०—श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज]

जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है हम इस लेख में यह दिखायेंगे कि महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ-प्रकाश में मांस खाने की विधि है वा निषेध? कई स्थानों पर कोई २ व्यक्ति ऐसे मिल जाते हैं जो यह प्रश्न कर देते है कि सत्यार्थ प्रकाश में मांस खाने की विधि है अथवा नहीं है। दुर्भाग्य से इस समय ऋषि दयानन्द के नाम लेवा कोई २ मांसाहारी भी हैं। किसी २ व्यक्ति को वे संदेह में डाल देते हैं।

इस लेख में हमें अपनी ओर से कोई टीका टिप्पणी नहीं करनी है, केवल सत्यार्थ प्रकाश से कुछ पाठ देने हैं।

इस समय हमारे पास जो सत्यार्थ प्रकाश है वह १४ वीं आवृत्ति का वैदिक यंत्रालय में छपा हुआ है इसलिये पृष्ठ संख्या उसी आवृत्ति की होगी।

(१) जितनी क्षुधा हो उस से कुछ न्यून भोजन करें, मद्य मांसादि के सेवन से अलग रहें। पृष्ठ ३१ पंक्ति ४।

(२) ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस, गंध, माला, किसी स्त्री और पुरुष का संग... ..सदा छोड़ देवें। पृ० ४८ पंक्ति १२-(यह मनु के आधार पर है)।

(३) जब मांस का निषेध है तो सर्वदा ही निषेध है। पृष्ठ १२४ पंक्ति ५—(यह वाक्य पाराशर स्मृति के श्लोक के खण्डन में लिखे गए हैं)।

(४) अपने आत्मा और परमात्मा में स्थिर अपेक्षा रहित मद्य मांसादि

वर्जित होकर आत्मा ही के सहाय से सुखार्थी होकर इस संसार में धर्म की विद्या के बढ़ाने में उपदेश के लिये सदा विचरता रहे। पृष्ठ १२३ पंक्ति १०- (यह पाठ मनु के आधार पर है)।

(५) जो लोग मांस भक्षण और मद्यपान करते हैं उनके शरीर और वीर्य्यादि धातु भी दुर्गंधादि से दूषित होते हैं इसलिये उनका संग करने से आर्य्यों को भी यह कुलक्षण न लग जाय। पृष्ठ २७७ पंक्ति २१—

(६) हां, इतना अवश्य चाहिये कि मद्यमांस का ग्रहण कदापि भूलकर भी न करें पृष्ठ २७८ पंक्ति १२—

(७) हां, मुसलमान ईसाई आदि मद्य मांसाहारियों के हाथ का खाने से आर्य्यों को भी मद्यमांसादि खाना पीना अपराध पीछे लग पड़ता है। पृष्ठ २८० पंक्ति ३—

(८) मद्यमांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्यमांस के परमाणुओं ही से पूरित है उनके हाथ का न खावें। पृष्ठ २८१ पंक्ति २—

(९) (प्रश्न) फिर क्या उनका मांस फैंकदें? (उत्तर) चाहे फैंकदें चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिलादेवें, वा जलादेवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है। पृष्ठ २८२ पंक्ति १०—

(१०) देश में सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़जाते हैं जैसे कि मद्यमांस सेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते है। पृष्ठ २९० पंक्ति १४—

(११) जब विषयासक्त हुए तो मांस मद्य का सेवन गुप्त २ करने लगे। पृष्ठ २९६ पंक्ति २५—

(१२) मांस भक्षण करने, मद्य पीने, परस्त्री गमन करने आदि में दोष नहीं है यह कहना छोकड़ापन है। क्योंकि बिना प्राणियों के पीड़ा दिये मांस प्राप्त नहीं होता और बिना अपराध के पीड़ा देना धर्म का काम नहीं। पृष्ठ ३०० पंक्ति १२—

(१३) दुष्ट पुजारियों को धन देते हैं वे उस धन को वेश्या, परस्त्रीगमन

मद्य मांसाहार, लड़ाई बखेड़ों में व्यय करते हैं जिससे दाता के सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है। पृष्ठ ३३१ पंक्ति १९—

(१४) वेद में कहीं मांस का खाना नहीं लिखा इसलिये हत्यादि मिथ्या बातों का पाप उन टीकाकारों को और जिन्होंने वेदों के जाने सुने बिना मनमानी निंदा की है निःसंदेह उनको लगेगा। पृ० ४२६ पंक्ति २५—

(१५) जो वाममार्गियों ने मिथ्या कपोल कल्पना करके वेदों के नाम से अपना प्रयोजन सिद्ध करना अर्थात् यथेष्ट मद्यपान, मांस खाने और परस्त्रीगमन करने आदि दुष्ट कामों की प्रवृति होने के अर्थ वेदों को कलङ्क लगाया इन्हीं बातों को देखकर चारवाक, बौद्ध तथा जैन लोग वेदों की निन्दा करने लगे। पृष्ठ ४२७ पंक्ति १—

(१६) ईश्वर कोटि में गिना कभी नहीं जासकता किन्तु मांसाहारी प्रपञ्ची मनुष्य के सदृश है। पृष्ठ ५१४ पंक्ति २३—

उपरोक्त १६ स्थानों के पाठ को पढ़ने से स्पष्टतया पता लगता है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी मांस के निषेधक थे। इसी कारण भिन्न २ प्रकरणों में उन्होंने वार २ मांस का निषेध किया है। अब आर्यों को भी यही उचित है कि अपने आचार्य की आज्ञा मान कर इस व्यसन से सर्वथा पृथक् रहें।

मद्रास में ईसाइयत।

[ले० श्रीयुत केशवदेव सिद्धान्तालङ्कार]

(२)

श्रेणी विभाग (Caste system)

आज शायद कोई भी ऐसा विचारवान् मनुष्य न होगा जिसे इस में तनिक भी सन्देह हो कि भारतीय वर्णविभाग या Caste-system का प्रारम्भ सारे समाज की भलाई को उद्देश्य में रखकर ही किया गया था—किसी विशेष जाति वा वर्ण की अनधिकार प्रबलता के लिये नहीं। जिस प्रकार इस बीसवीं शताब्दी के पश्चिमीय विकास-वादियों का मत है कि "यदि मनुष्य के किसी विशेष शारीरक अंश अथवा मानसिक गुण की उन्नति करना अभीष्ट हो तो

उस अंश और गुण में प्रवीण, अत्यन्त उत्कृष्टों का ही परस्पर 'संयोग-सम्बन्ध' करना चाहिये। इससे रुधिर के अन्दर वह 'गुण' विशेष उन्नति पाकर शीघ्र ही अपनी पराकाष्ठा तक पहुंचेगा", और जिस तरह यह विकासवाद का सिद्धान्त पशु सृष्टि अर्थात् घोड़े, बैल गायों और कुत्तों की बढ़िया नसलें तैयार करने में बर्ता जाता है, उसी प्रकार पश्चिमीय जीवनविद्या-विशारदों का कथन है कि हम इसी नियम के अनुसार मनुष्य सृष्टि में भी उत्तमोत्तम पहलवानों जिम्नैस्तस (Gymnasts) तैराक, कवि, दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यापारी तैयार कर सकते हैं। न केवल सिद्धान्त रूप में ही, अपितु हमारे सुनने में आया है कि, फ्रांस, जर्मनी तथा अन्य कई योरोपीय देशों में इस बात के परीक्षण भी किये जारहे हैं।

ऐसी अवस्था में हमारे मुख से स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि 'क्या इसी विचार को ही लक्ष्य में रख कर हमारा प्राचीन 'वर्ण-विभाग' नहीं किया गया था, ? क्या इस विभाग का उद्देश्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की बढ़िया नसलें पैदा करना नहीं था ? क्या आर्य्य-द्विजों की शिक्षाप्रणाली और विवाह मर्यादा स्पष्ट इस बात की साक्षी नहीं देती कि हमारे पूर्वज इस 'विकास-सिद्धान्त'से भली भांति परिचित थे,? और क्या हमारे उपनिषदों के कर्त्ता ब्राह्मण ऋषि और महाभारत के अपूर्व योद्धा इसी सिद्धान्त के क्रियात्मक ज्वलन्त उदाहरण न थे ?

चाहे किसी और को इसमें सन्देह हो, परन्तु हमें तो इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं। हां ! इसके साथ ही, इस बात के स्वीकार करने में भी हमें संकोच नहीं, कि हमारे भाग्य से, वह वर्ण विभाग जिसे मनु-आदि स्मृतिकारों (Law-givers) ने आर्य्य जाति की उन्नति के लिए निश्चित किया था, आज अपने उच्च उद्देश्य से गिर जाने के कारण से समस्त आर्य्य जाति को रसातल तक ले जारहा है, और हमारी सामाजिक अधोवस्था का प्रधान कारण बन रहा है।

साधारणतः महाभारत युद्ध के पश्चात्, और विशेषतः महाराज अशोक के प्रबल साम्राज्य के पीछे जब चालाक ब्राह्मणों ने मन्त्री पुष्पमित्र के पुत्र अग्नि-मित्र को राजा उद्घोषित करके, फिर से सारे भारत में अपनी सत्ता कायम की, तब से उन्होंने यह निश्चय किया कि हो न हो, आर्य्य-स्मृतियों और अन्य प्राचीन-धर्मशास्त्रों को इस प्रकार बनाना (या बिगाड़ना) चाहिये

कि जब तक यह जाति उनकी प्रामाणिकता स्वीकार करती रही तब तक ब्राह्मण ही सारे हिन्दुओं के पूज्य और शिरोमणि बने रहे। इसी बात का ही हम यह परिणाम देखते हैं कि आज कोई भी ऐसा हिन्दू धर्म-शास्त्र नहीं, जिसमें इस प्रकार ब्राह्मणों के स्वार्थ की थोड़ी बहुत मिलावट न पाई जाती हो। और इसी का ही यह फल है कि हम स्थान २ पर स्मृतियों में यह पढते हैं:—

ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिराजते।

* * * *

अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः॥

* * * *

पतितोऽपि द्विजः श्रेष्ठः न च शूद्रो जितेन्द्रियः।

* * * *

निर्दुग्धा चापि गौः पूज्या न च दुग्धवती खरी॥

* * * *

इस प्रकार जब ब्राह्मणों ने "अविद्यो वा सविद्यो वा" का पाठ शुरू किया, और अपने शरीर में ही ब्राह्मणत्व माना तभी से सब ब्राह्मण-धर्मों का लोप प्रारम्भ हुआ, और शिर (ब्राह्मण) के अव्यवस्थित हो जाने पर सारा शरीर (समाज) बीमार पड़ गया, जिसका अनुभव इस समय सारी हिन्दू-जाति कर रही है।

इसी समय से ही 'वर्ण विभाग' 'श्रेणी-विभाग' बना और वह ब्राह्मणादि वर्ण या डिग्री जो कि कभी 'गुण+कर्म' के अनुसार उसे मिलती थी, उसके स्थान में 'जन्म से जाति' के सिद्धान्त ने सारे हिन्दू-समाज को वर्त्तमान नानाविध विभागों में बांट दिया। हमें अपने धार्मिक-इतिहास से पता चलता है कि तभी से ही इस 'पञ्चम' वर्ण या अछूत-नामक एक नवीन जाति का भी प्रादुर्भाव हुआ।

परन्तु आज यह हर्ष का विषय है कि सदियों की सोई हुई हिन्दू जाति ने अपनी इस अधोवस्था का अनुभव किया है, और फिर से सारे हिन्दू-समाज को एक सूत्र में पिरोने के लिये स्कीमें सोची जा रही हैं। विशेषतया दक्षिण भारत में जहां कि यह जाति-विभाग अपनी भयानक चरम सीमा तक पहुंचा हुआ है, इस नवीन लहर का परिणाम मद्रास, महा-

राष्ट्र और बाम्बे की 'नान्-ब्राह्मण-पार्टी' (Non-Brahman party) 'वैकम' में थिया लोगों का सत्याग्रह और अभी 'पालाघाट' में 'इज़्हवा' लोगों को कलार्पात के अग्राहारम् में घुसना और अपने मानुषीय-अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना है।

यद्यपि कईयों को ये झगड़े और परस्पर वैर विरोध के चिन्ह प्रतीत होते हैं, परन्तु हमें तो ये केवल सोई हुई हिन्दू जाति के जागने के निशान दिखाई देते हैं, और हम समझते हैं कि जहां यह छोटी जातियों की अधिकार याचना, स्वयं उन्हें उन्नत करेगी, वहां उच्च जात्यभिमानी ब्राह्मणों के लिये भी एक चेतावनी होगी कि वे अपने को अधिक योग्य बनाएं, अन्यथा अब उनकी दाल न गलेगी।

जैसा हमने ऊपर दिखाया 'आर्य्य-जाति' के दुर्भाग्य से वर्ण विभाग Caste System जिसे इसने अपने समस्त अंगों की पुष्टि और विशेष विकास के लिये बनाया था, आज वर्त्तमान गिरावट की हालत में इसकी दासता का एक कारण बन रहा है। परन्तु आज हम इस सामाजिक अधःपात से अपरिचित नहीं। अब हमें यह ध्यान है कि बिना इसका सुधार किये हमारी परस्पर एकता नहीं हो सकती, जो कि 'स्वराज्य' प्राप्ति के लिये अत्यावश्यक है। और यही कारण है कि हमारे मान्य नेता लोग इस विजय पर इतना बल देते हैं और 'अस्पृश्यता-निवारण' को हमारी 'जातीय महासभा' ने भी अपने तीन उद्देश्यों में से एक उद्देश्य समझा है।

(शेष फिर)

जैन मत का समय।

[श्रीयुत विष्णुमित्र आर्योपदेशक]

इतिहास प्रेमियों को यह भली भांति ज्ञात है कि जिस समय वैदिक यज्ञ-विद्या का लोप होगया था तो वाम मार्ग के प्राबल्य से यज्ञों में पशु-हिंसा होने लग गई थी और ब्राह्मणों ने अन्य वर्णों पर अनुचित शासन करना आरंभ कर दिया था। गोमेध, अश्वमेध, अजामेध और नरमेध यज्ञों में जीवित प्राणियों को काट कर डाला जाने लगा और इस सारे पाप को धर्म का रूप देने के लिये "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" यह मनघड़न्त सिद्धान्त बना छोड़ा। फिर तमाशा यह कि यह सब प्रपंच वेद के नाम मढ़ा गया। इसका परिणाम यह हुआ कि साधारण मनुष्य जिनके दिल में धर्म के अंकुर विद्यमान थे और वेद के यथार्थ ज्ञानसे शून्य थे वेद के नाम पर यह हत्या होते देख कर वेद से ही विमुख हो गए। ऐसी परिस्थिति में भगवान् बुद्ध ने बौद्ध मत और महावीर ने जैन मत स्थापित किया।

किन्तु हमारे जैनी भाई यह कहते और लिखते नहीं थकते कि जैन-मत अनादि काल से चला आया है। यहीं तक बस नहीं करते वे तो यहां तक कहते हैं कि वैदिकधर्म भी जैन मत से पीछे चला है। इसी आशय से इनके पद्मपुराण में लिखा है कि जब ऋषभ देव साधु बने तो उनके साथ हजारों शिष्य थे। उन सब ने ६ मास का निराहार व्रत धारण किया उस व्रत को कुछ तो निभा सके, कुछ एक ने भूख प्यास से व्याकुल होकर अन्न जल ग्रहण कर लिया, जिस से वह पतित होगए और ब्राह्मण कहलाए और उन्हों ने वेद मत की स्थापना की। इस प्रकार वेद धर्म की उत्पत्ति जैन ग्रन्थों में लिखी है। इस लेख में यह दिखाने का यत्न किया जाएगा कि जैनियों का उपरोक्त लेख और कथन नितान्त असत्य और समस्त भूमण्डल के इतिहासज्ञों की दृष्टि में धूल डालने वाला है।

(१) जितने इतिहास वेत्ता हैं, उन सब का यही सिद्धान्त है कि जैन मत बौद्ध मत का समकालीन है और यह दोनों मत ब्राह्मणों के कुव्यवहार से तंग आकर स्थापित किए गए हैं। इस विषय में दो एक सम्मतियें अंग्रेज़ लेखकों की दी जाती हैं क्योंकि उनके लिये जैन मत और वैदिक धर्म समान हैं।

(क) These two systems, Buddhism and Jainism, both grew out of Brahmanical Hinduism, as modified by the teachings of reformers of noble Kshatriya, not Brahman birth, who failed to find in the doctrine of the Brahman schools satisfactory solutions of the problem of life. (Students' History of India by V. A. Smith p. 42.)

इसका यह आशय है कि यह दोनों मत अर्थात् बौद्ध और जैन मत ब्राह्मणों के हिन्दु धर्म में से ही निकले हैं ॥

(ख) Buddhism and Jainism are both branches of Hinduism. They are based on the Sankhya system of Hindu Philosophy........................... Jainism was not an entirely new growth, but a development of one particular aspect of Brahmanism. (History of India by C. A. Waten and H. L. O. Garret. H. 41 & 42.)

अर्थात् बौद्ध और जैन मत हिन्दु धर्म की शाखाएं हैं और इन का आधार सांख्य दर्शन पर है। जैन मत बिलकुल नया मत नहीं है किन्तु ब्राह्मणों के धर्म के किसी विशेष अंश का विस्तार है।

(ग) Jainism and Buddhism are, in a sense, a protest in favour of reason and morality against the intolerable burden and folly of the sacrificial cult. (History of India by E. W. Thompson).

अर्थः—वास्तव में जैन और बौद्धमत याज्ञिकों के असह्य अत्याचार और मूर्खता के विरुद्ध शिष्टाचार और बुद्धिमत्ता के पक्ष में एक प्रकार की प्रतिक्रियाएं हैं।

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि निष्पक्ष पाश्चात्य विद्वानों की सम्मति में जैन मत महावीर का चलाया हुआ है और हिन्दु धर्म की शाखा है।

(२) जैनियों के जितने ग्रन्थ हैं वे सब महावीर के पीछे के बने हुए हैं क्योंकि सब में चौबीस तीर्थंकरों की पूजा का विधान है और चौबीस में

महावीर की भी गिनती है। यदि यह मत महावीर से पहले का होता तो महावीर से पहले ही के ग्रन्थ होने चाहिए और उन ग्रन्थों में चौबीस से कम तीर्थंकरों की पूजा का विधान भी होना चाहिए। किसी में १५ किसी में १० और किसी में २ या १ तीर्थंकर का भी उल्लेख होना चाहिए क्योंकि सारे तीर्थंकर समकालीन नहीं थे। उनकी संख्या एक एक करके चौबीस तक पहुंची है।

(३) जैन ग्रन्थों के अध्ययन से यह स्पष्ट पता चलता है कि यह मत ब्राह्मणों के विरुद्ध चला है। इन ग्रन्थों में जहां तहां ब्राह्मणों को बुरा कहा है। एक स्थल पर तो यहां तक लिख दिया कि महावीर स्वामी किसी ब्राह्मणी के पेट में थे, उनको विचार आया कि यदि ब्राह्मणी के गर्भ से पैदा हुए तो ब्राह्मण कहावेंगे। उससे बड़ी निन्दा होगी। इस कारण से वह एक क्षत्राणी के गर्भ में चले गए और क्षत्रिय कहाए। इसी प्रकार वेद पुराण स्मृति आदि की भी निन्दा इन ग्रन्थों में पाई जाती है जैसे कि "मोक्षशास्त्र" के ५९ पृष्ट पर लिखा है:—"राग द्वेष काम क्रोध अभिमान के बढ़ाने वाले, हिंसा के पोषण करने वाले मिथ्यात्व के बढ़ाने वाले, और भण्ड-कथा तथा युद्ध-कथा के कहने वाले वेद पुराण स्मृत्यादि ग्रन्थों का श्रवण करना दुःश्रुतिनामक अनर्थ दण्ड है"। सारांश यह कि इनके सभी ग्रन्थों में वेदों स्मृतियों की निन्दा विद्यमान है जिस से सिद्ध होता है कि यह मत वेद के विरोध में चलाया गया है। किन्तु इस मत को प्राचीन और अनादि सिद्ध करने के लिए महावीर से पहले २३ तीर्थंकर कल्पना से बना लिए गए हैं और उनके बड़े बड़े शरीर और आयु लिख मारे हैं जिसके काल्पनिक होने का पता बड़ी आसानी से लग जाता है।

(४) स्थालि पुलाक न्याय से ४ तीर्थंकरों का शरीर परिमाण और आयु लिखी जाती हैं :—

१ ऋषभदेव	शरीर ५०० धनुष लंबा	आयु ८४००००० वर्ष
२ अजितनाथ	,, ४५० ,,	,, ७२००००० वर्ष
३ संभवनाथ	,, ४०० ,,	,, ६०००००० वर्ष
४ अभिनन्दन	,, ३५० ,,	,, ५०००००० वर्ष

जैन ग्रन्थों में धनुष की लम्बाई साढ़े तीन हाथ लिखी है अर्थात् कोहनी से उङ्गलियों के सिरे तक साढ़े तीन बार नापने से एक धनुष बनता है। और यह वर्ष भी साधारण नहीं हैं किन्तु एक वर्ष का बड़ा लम्बा चौड़ा विस्तार है।

तीर्थङ्करों की आयु और शरीर की लम्बाई किस क्रम (Arithmetical progression) से कम होती चली आई है, यह भी इनके काल्पनिक होने का पर्याप्त सबूत है, किन्तु दुर्जनतोष न्याय से इन संख्याओं को थोड़ी देर के लिये स्वीकार करने पर यह आपत्ति होगी, कि जो पुरुष लम्बा होता है, उसके हाथ पाओं भी उसी अनुपात (proportion) से लम्बे होते हैं, और यह अनुभव सिद्ध है, कि प्रत्येक पुरुष अपने साढ़े तीन हाथ अर्थात् एक धनुष लम्बा होता है। इस अवस्था में यदि ऋषभदेव एक सुडौल शरीर वाला मनुष्य था, तो कितना भी लम्बा क्यों न मानलें, केवल एक धनुष लम्बा होसकता है। क्योंकि जितना अधिक लम्बा मानेंगे, उसी अनुपात से हाथ भी लम्बे मानने पड़ेंगे, जब हाथ भी लम्बे मान लिए तो एक धनुष से अधिक लम्बाई कहां से आएगी। यदि ५०० धनुष लम्बा शरीर माना जावेगा तो ५०० को साढ़े तीन से गुणा करने पर १७५० हाथ लम्बा शरीर हुआ, इसका अभिप्राय यह हुआ, कि ऋषभदेव के शरीर की अपेक्षा हाथ बहुत ही छोटे थे, अर्थात् असली लम्बाई का $\frac{१}{५००}$ थे, या यों कहो कि किसी आदमी के हाथ के ५०० भागों में ४९९ अलग करदें और एक भाग शरीर के साथ लगा रहने दें, जैसा उस आदमी का शरीर होगा वैसा ही ऋषभदेवजी का था, ऐसी अवस्था में तो सिर में क्या डाढ़ी में भी खोज नहीं कर सकेंगे। फिर तमाशा यह कि इन्हीं छोटे छोटे हाथों से लाखों वर्ष तक राज्य किया बताते हैं, यदि यह कहें कि आज कल के साढ़े तीन हाथ का धनुष होता है, तो यह भी नहीं बन सकता, क्योंकि जिन पुस्तकों में यह नाप लिखा है, वह आज कल की नहीं हैं।

तीर्थङ्करों के विषय में और भी असङ्गत बातें लिखी हैं, जैसे कि—

(१) आहार करते थे किन्तु मल नहीं त्यागते थे। (२) उनके पसीना नहीं निकलता था। (३) शरीर में श्वेत रुधिर था। (४) नख और केश नहीं बढ़ते थे। (५) पलक से पलक नहीं लगते थे। (६) शरीर की छांह नहीं होती थी। (७) पृथिवी से अधर चलते थे। (८) बोलते समय जिह्वा और ओष्ठ नहीं लगते थे, इत्यादि।

सब तीर्थङ्करों के जन्म की कथा भी बड़ी विचित्र है, उनके गर्भ में आते ही रत्नों की वर्षा होती थी, और जन्म के समय देव लोग आकर सुमेरु

पर्वत पर जो कि ९९००० योजन ऊंचा है अनेक कलशों से स्नान कराते थे, प्रत्येक कलश ३२ कोश गहरा और १६ कोश चौड़ा होता था।

पाठकगण ! लगते हाथ इस स्नानक्रिया का तमाशा भी देख चलिये। यह बात भली भान्ति सिद्ध हो चुकी है, कि आकाशमें ५० मील से ऊपर जाकर वायु नहीं रहती और न वहां पर कोई प्राणी जीवित रह सकता है। किन्तु दम घुटने पर भी हमारे तीर्थङ्कर महाशयों को निनानवे हज़ार योजन की ऊंचाई पर लेजाकर स्नान कराने में ही उनकी शान समझी गई। इसको देवों का उपकार समझा जाय या अत्याचार, यह समझना कठिन है। अब रहा जल का हिसाब सो पहले गङ्गा का जल सम्भाललें, फिर कलश को देखेंगे। हरिद्वार से कलकत्ते तक गङ्गा की लम्बाई १५६० मील है और चौड़ाई की औसत $\frac{१}{२}$ मील और गहराई का माध्यम १० गज है, सो हरिद्वार से कलकत्ते तक की गङ्गा का जल $\frac{१×१०×१५६०}{१×१७६०} = ४\frac{१९}{४४}$ घन मील है। पाठक यह सुनकर आश्चर्य करेंगे कि इतने थोड़े से जल वाली नदी ने अबके वर्ष हमारे गुरुकुल को इतनी हानि पहुंचाई, इसको यह पता नहीं कि किसी तीर्थङ्कर के धक्के चढ़ गई तो न जाने अपने कलश के कौनसे कोने में छुपा लेगा, क्योंकि इनके एक घड़े में $\frac{६४×२२×३२×६४}{७×२७} = १४२५७\frac{११}{१८९}$ घन मील (cubic miles) जल है, अर्थात् उसके एक कलश में तीन हज़ार से अधिक गङ्गा समा सकती हैं। इतना बड़ा कलश हो तो एक ही क्यों हो, फिर तो संख्या भी मुंह मांगी होनी चाहिये। सो गङ्गा यमुना की बाढ़ों से सताए हुए लोगों पर दया के भाव से उस संख्या को छुपाए रखना ही अच्छा प्रतीत होता है।

पाठकगण ! तीर्थङ्करों के विचित्रस्वरूप, लम्बे २ आयु और शरीर और उनकी अनोखी स्नानक्रिया पुकार २ कर कह रही हैं, कि महाबीर के सिवाय सब मन की कल्पना है, और जैन मत को प्राचीन सिद्ध करने के लिये संख्याओं का खुले हाथों प्रयोग किया गया है। किन्तु शोक यह है कि पचास वर्ष के प्रचार में आर्य्य-समाज ने भी इन बड़े २ कलशों को तुड़वा कर अपटू डेट बीसवीं शताब्दी के योग्य छोटे २ कमण्डल बनवाने का बहुत यत्न नहीं किया। यह माना कि जैनी लोग इतनी बड़ी चीज़ों को बहुत छुपाकर रखते हैं, किन्तु स्वामीजी ने भी तो किसी प्रकार इनका दर्शन किया ही था।

(५) जैन मत के नवीन होने में एक और युक्ति है जिस को साधारण बुद्धि रखने वाला पुरुष भी मानने से इनकार नहीं कर सकता वह यह कि जैनियों में अब तक बहुत सी वैदिक धर्म की बातें मौजूद हैं। जिस प्रकार मलकाने राजपूतों ने मुसलमान बनकर भी राजपूती शान को बनाए रखा, गौ ब्राह्मण को मानते रहे, इसी प्रकार बहुत से जैनी भी प्राचीन आर्य्य धर्म की बहुत सी बातें मानते रहे। उदराहणार्थ जहां पर जैनियों में कट्टरता नहीं आई हैं वहां उनके विवाह उसी प्राचीन वैदिक रीति से होते हैं। मुझे याद है कि जैनी होते हुए मेरा विवाह उसी गणेश पूजा और वेद मन्त्रों ही से हुआ था। इसके अतिरिक्त जैन ग्रन्थों में ब्राह्मणों की इतनी निन्दा होते हुए भी बहुत से जैनी ब्राह्मणों को मानते हैं और दान दक्षिणा से उनका सत्कार करते हैं। यहीं तक नहीं, त्यौहारों के मनाने में इतनी एकता है कि जैनी और आर्य्य (हिन्दु) में पहचान करना कठिन हो जाता है। किन्तु जैन शास्त्रपाठी लोगों को यह एकता बिलकुल नहीं भाती, उन्होंने विवाह पद्धति भी प्रचलित कर दी है और ब्राह्मणों का टंटा भी अलग करते जाते हैं। परन्तु अभी इतना रूप नहीं बिगाड़ सके हैं कि पहिचान में न आवें। और सब कुछ छोड़ देंगे तो गोत्र को कहां छुपावेंगे ?

(६) कुछ वर्षों से जैन सम्प्रदाय वालों को यह धुन लगी है कि जैन धर्म की प्राचीनता वेदों से सिद्ध करें किन्तु ऐसा हो नहीं सका क्योंकि वह वेदों में से ऋषभ, नेमि, सुपार्श्व नग्न आदि शब्द दिखाकर यह दावा कर रहे हैं कि उपरोक्त तीर्थंकरों के नाम वेद में विद्यमान हैं अतः वह तीर्थंकर वेदों से पहले हुए होंगे। उपरोक्त कल्पना करने में जैनी लोग वेदार्थ के जानने में अपनी नितान्त शून्यता प्रकट करते हैं क्योंकि उनको यह पता नहीं कि वेद में सारे शब्द यौगिक होते हैं और उनका अर्थ धातु से लिया जाता है, ऐसा करने से नेमि, महावीरादि शब्दों के अर्थ प्रकरणानुसार धातु से ही किए जाएंगे। उस अवस्था में तीर्थंकरों की कल्पना मन मोदकों की अपेक्षा अधिक गौरव नहीं रख सकेगी। यदि थोड़ी देर के लिये उनके कथन को स्वीकार भी करलें तो वेदों में महावीर का ज़िकर होने से जैन मत की प्राचीनता सिद्ध नहीं होती क्योंकि वेदों में महावीर का वर्णन होने से वेद ही प्राचीन नहीं रहे फिर उनके आश्रय जैन मत प्राचीन कैसे हो सकेगा।

वेदों के साथ इस प्रकार की दिल्लगी देर से होती रही है। "ईशावास्यम्" इत्यादि से ईसामसीह और "अदीनाः स्याम" इत्यादि से मक्के मदीने के दर्शन अनेक मन चले लोगों ने वेदों में कि, किन्तु जैनी तो इस अंश में यहां तक गिरे कि झूठ छल करने में भी संकोच नहीं किया। टोडरमल जैनी अपने "मोक्षमार्ग प्रकाश" ग्रन्थ में जैन मत की प्राचीनता सिद्ध करने में ऋग्वेद का यह प्रमाण देते हैं:—

"ओ३म् त्रैलोक्या प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थंकरान् ऋषभाद्यावर्धमानान्तान् शरणं प्रपद्ये।" हमारी यह प्रतिज्ञा है कि उपरोक्त वचन जैन लोग कभी भी किसी वेद से नहीं दिखा सकेंगे और टोडरमल जी को असत्य रूपी पाप से कभी निर्मल नहीं कर सकेंगे। सारांश यह कि जैनमत प्राचीन नहीं है। इसको महावीर से पहले का सिद्ध करना इतना ही कठिन है जितना कि दो और दो सात सिद्ध करना।

——:o:——

शिवजी और कालिका देवी।

(श्रीयुत हंसराज पुस्तकाध्यक्ष)

पुराण वाले शिव अर्थात् रुद्र को शरीरधारी देवता तथा कालिका देवी अर्थात् काली को उस की धर्मपत्नी मानते हैं। हम इन दोनों का क्रम से विचार करते हैं कि ये वास्तव में क्या हैं॥ रुद्र का आध्यात्मिक अर्थ तो "दुष्टों का संहार करने वाला (निराकार) * ईश्वर" है ही किन्तु शेष अर्थों में इस का

* यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥
श्वेताश्वतरोपनिषद् ३। ४॥

घृतात्परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥
श्वे० उप० ४। १६॥

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति॥
श्वे० उप० ४। २०॥

मुख्य अर्थ "अग्नि" ही है। इस के लिये हमारे पास वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के बहुत से प्रमाण हैं जिन में से कुच्छ यहां नीचे देते हैं:—

१—शतपथ ब्राह्मण कां० ६। अ० १। ब्रा० ३। कं० १८ में अग्नि के यह आठ रूप गिनाए गए हैं:—

१ रुद्र २ सर्व=शर्व, ३ पशुपति, ४ उग्र, ५ अशनि, ६ भव, ७ महान्देव, ८ ईशान ॥

यह आठों ही शिव जी के नाम हैं इसी लिये ही उसे अमरकोष (Bombay Sanskrit Series, कां० १। वर्ग १। श्लोक ३६) में अष्टमूर्त्ति अर्थात् आठ रूपों वाला कहा गया है। अतः शिव या रुद्र अग्नि का ही नामान्तर है ॥

२—शतपथ ब्राह्मण में उसी स्थान पर अग्नि का नौवां रूप "कुमार" बताया है। उधर पुराणों तथा महाभारत (वनपर्व अ० २२५। श्लोक १५ से १९) में कुमार अर्थात् "स्कन्द" को अग्नि तथा रुद्र का पुत्र कथन किया गया है। पुत्र पिता का रूप ही होता है ॥

३—शतपथ १२। ७। ३। २० में "हेति" रुद्र का आयुध अर्थात् हथियार बताया गया है। Monier Williams की Dictionary में हेति को "अग्नि का हथियार" कहा है। तथा अमरकोष १। १। ६० में उसका अर्थ "अग्नि की ज्वाला" किया है जिसे अलङ्कार से रुद्र=अग्नि का हथियार माना गया है।

४—निम्नलिखित ब्राह्मण वाक्यों में तो स्पष्ट कहा है कि अग्नि ही रुद्र है :—

(१) अग्निर्वै रुद्रः। शतपथ ५। ३। १। १०॥ तथा ६। १। ३। १०॥

(२) रुद्रोऽग्निः। तांड्य महा ब्राह्मण १२। ४। २४॥

(३) यो वै रुद्रः सोऽग्निः। श० ५। २। ४। १३।

(४) "एष रुद्रः"। यदग्निः ॥ तैत्तिरीय ब्राह्मण १। १। ५। ८-९॥ १। १। ६। ६॥ १। १। ८। ४॥ १। ४। ३। ६॥ इत्यादि २

काली।

अब रुद्र की शक्ति अथवा पत्नी "काली" का विवेचन करते हैं। वाममार्गी लोग देवी * के यह दश रूप "महाविद्या" के नाम से मानते हैं:—

(१) काली (२) तारा महाविद्या (३) षोडशी (४) भुवनेश्वरी। (५) भैरवी (६) छिन्नमस्ता च विद्या (७) धूमावती तथा। (८) वगला सिद्धविद्या च (९) मातङ्गी (१०) कमलात्मिका॥ (वाचस्पत्य कोष—"महाविद्या" शब्द)॥

तथा अमर कोष कांड १, वर्ग १, श्लोक ३७ की महेश्वर कृत टीका में यह सात देवी गिनाई गई हैं:—(१) ब्राह्मी, (२) माहेश्वरी चैव (३) कौमारी (४) वैष्णवी तथा। (५) वाराही च (६) तथेन्द्राणी (७) चामुण्डा सप्त मातरः॥

पूर्वोक्त "काली" (=काले रङ्ग वाली), "भैरवी" (=भयानक), धूमावती (=धुएं वाली), इन तीन नामों से तथा कौमारी आदि सात देवियों के कथन से यह सिद्ध होता है कि निम्नलिखित उपनिषद्वाक्य न समझ कर ही काली आदि देवियों की मिथ्या कल्पना करली गई है। वह वाक्य यह है:—

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः॥

मुण्डकोपनिषद् १, २, ४,

अर्थात् अग्नि की ये सात जिह्वायें हैं:—

१—काली (=काले रङ्गवाली)
२—कराली (=भयानक)
३—मनोजवा (=मन जैसे वेग वाली)
४—सुलोहिता (=बहुत लाल रङ्ग की)
५—सुधूम्रवर्णी (=धूएं के रङ्ग वाली)
६—विस्फुलिङ्गिनी (चिंगारियों वाली)

---

* निम्नलिखित दो प्रमाणों से सिद्ध होता है कि वास्तव में दश दिशाएं ही १० देवियां हैं। इसी से ही १० निग्रहवती देवियों की कल्पना कर ली गई है:—

१—ता वा एता देव्यः। दिशो ह्येताः। शतपथ ब्रा० ६।५।१।३६॥
२—दश देव्यः=दश दिशः—हरिवंश पुराण २५।६॥

७—विश्वरुची (=सब को प्रकाश देने वाली)

इस वचन में जो "काली", "कराली" तथा "सुधूम्रवर्णा" यह तीन अग्नि की जिह्वा अलङ्कार से कही गई हैं उन ही से क्रमशः "काली", "भैरवी" तथा "धूमावती" नाम की शरीर धारिणी देवियों की कल्पना की गई है। काली शब्द तो दोनों जगह है और कराली तथा भैरवी दोनों का अर्थ भयानक है ऐसे ही सुधूम्रवर्णा तथा धूमावती शब्द भी समानार्थक हैं। कौन नहीं जानता कि अग्नि का स्वरूप घोर तथा भयानक है और उसमें धूआं होता है। "काली" शब्द अग्नि की उस शक्ति का द्योतक है जो कि काला कर देने वाली है इसी लिये अग्नि का नाम "कृष्णवर्त्मा" भी है।

देखो मनुस्मृति अ० २ श्लोक ९४:—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥

तथा अमर कोषः—कां० १, वर्ग १, श्लोक ५७ ॥ "कृष्णवर्त्मा शब्द का अर्थ है जिसका मार्ग काला हो अर्थात् जिस ओर अग्नि की ज्वाला जाती है वह स्थान धूएं से अथवा दाह से काला हो जाता है। *

ब्राह्मी आदि जो सात देवियां गिनाई हैं इस से भी सिद्ध होता है कि वास्तव में उन की कल्पना अग्नि की पूर्वोक्त सात जिह्वाओं से हो की गई है।

पूर्वोक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि रुद्र (शिव) अग्नि का नाम और "काली" जो रुद्र की शक्ति है वह अग्नि की काला कर देने वाली जिह्वा अथवा सामर्थ्य है।

वर्त्तमान युग में केवल श्रीस्वामी दयानन्द जी महाराज ही हुए हैं जिन्होंने सब से पूर्व बतलाया है कि किस प्रकार इन्द्र और वृत्रासुर, इन्द्र और अहल्या इत्यादि आलङ्कारिक कथाओं के तत्त्वार्थ को न समझकर इनको सत्य ऐतिहासिक घटनाएं माना गया है। उन स्वामी जी की कृपा से ही हम लोग आज कल ऐसी अनेक कथाओं के तत्त्व को जानने में समर्थ हो रहे हैं॥

* नोट—और भी देखिये—

कालिमा काल कूटस्य नापैतीश्वरसङ्गमात्—हितोपदेश ॥

अर्थात् शिव जी से कालकूट नामक विष का कालापन दूर नहीं होता॥ इसोलिये ही शिव का नीलकण्ठ भी नाम है॥

साहित्य-समीक्षा ।

तुलनात्मक विचार तथा उनका शास्त्रीय समर्थन—लेखक श्री धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार । प्रकाशक श्री राजपाल, आर्य्य-पुस्तकालय, अनारकली लाहौर । मूल्य ॥)

इस पुस्तक के दो भाग हैं । पहिले भाग में श्रीमध्वाचार्य्य के पुस्तकों से आर्य्य-समाज के सिद्धान्तों के समर्थक प्रमाण एकत्र किये गए हैं । दूसरे भाग में ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों की पुष्टि आर्य्य-साहित्य के प्रमाणों तथा उपयुक्त युक्तियों से कीगई है । लेखक का परिश्रम प्रशंसनीय है । पुस्तक संग्रह करने योग्य है ।

बच्चों के लिये मनोहर कहानियां—(हिन्दी) । लेखक श्री सुदर्शन । प्रकाशक श्री राजपाल, सरस्वती आश्रम, अनारकली लाहौर ।

अमृत—(उर्दू) । लेखक तथा प्रकाशक पूर्वोक्त ।

हमारे ऋषि की प्यारी बातें—(उर्दू) । पूर्ववत् ।

महाशय श्रीयुत सुदर्शन प्रसिद्ध लेखक हैं । इनकी कहानियां रोचक होने के साथ २ शिक्षाप्रद भी होती हैं । उपरिलिखित पुस्तकें सब कथाओं की हैं । ऋषि की प्यारी बातें ऋषि दयानन्द के जीवन की कुछ घटनाएं हैं । सरल भाषा में उपयोगी शिक्षा दीगई है । अच्छा होता यदि यह सब पुस्तकें पहिले हिन्दी में प्रकाशित होतीं ।

मुहम्मदी साज़िश का इनकिशफ—(उर्दू) लेखक श्रीस्वामी श्रद्धानन्द सन्यासी, देहली । मूल्य ।=)

इस पुस्तक में ख्वाजा हसननिजामी की दावत इसलाम और मौलाना अब्दुल्बारी के कत्ल के फतवे की पड़ताल कीगई है ।

मीर्ज़ाई दामफ़रेब—उर्दू, लेखक श्रीयुत लक्ष्मण, सम्पादक आर्य्य-मुसाफिर देहली । मूल्य ॥)

कादियानियों की पुस्तक "गुरु नानक का मजहब" का जवाब है ।

सर गुज़श्त क़ुरान—उर्दू, लेखक श्रीयुत नाथ जलालपुरी ।

मौलवी अब्दुलहक़ के पुस्तक "सरगुज़श्त वेद" के मुकाबिले में य[ह]
पुस्तक लिखा गया है। लेखक की खोज और पड़ताल सराहणीय है। कुरा[न]
पर विविध समयों में क्या बीती है, स्वयं इसलामी साहित्य के प्रमाणों [से]
स्पष्ट किया है। यह सिद्ध किया गया है, कि वर्तमान कुरान परिवर्तित कुरा[न]
है। पुस्तक पढ़ने योग्य है।

प्राप्त पुस्तक—
योग साधना ।~), पूर्ण योग ।)
दोनों पुस्तक श्रीयुत अरविन्द घोष कृत हैं। श्रीनिर्मलचन्द्रजी ने उर्दू [में]
अनुवाद किया है।

——०——

सम्पादकीय।
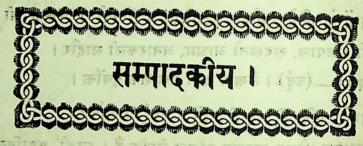
'आर्य्य' की शताब्दी संख्या—

'आर्य्य' की अगली संख्या ऋषि-शताब्दी संख्या होगी। यह अवसर
फिर हमारे जीवन में आए, इसकी सम्भावना कम है। हमारा विचार था, कि
इस अवसर के स्मारकरूप में 'आर्य्य' की एक विशेष संख्या निकालें, जो
शताब्दी के समय प्रचार तथा उपहार का काम दे और पीछे स्मरण कराती
रहे, कि यह महोत्सव हमारे जीवनकाल में हुआ था। आबाल वृद्ध आर्य्य इस
संख्या से वञ्चित नहीं रहने चाहियें।

लेखों की दृष्टि से तो हमने यत्न किया है, कि वह ऋषि के उदात्त
गुणों के प्रमाणपत्र ही न हों, किन्तु जहां उनमें ऋषि के चरणों में भक्तिभाव
का प्रकाशन हो, आर्य्य-समाज के कर्तव्य तथा मन्तव्य पर विचार हो, वहां
आर्य्य-सभ्यता के विविध अङ्गों पर ऐतिहासिक दृष्टि से आलोचना भी
कीजाए। इस यत्न में हम सफल होरहे हैं। हमारे लेखक विद्याव्यसनी लोग हैं।
पोलिटिकल नेताओं को हमने कम कष्ट दिया है। विद्या-विशारदों से प्रार्थना

की है। जो लेख प्राप्त होरहे हैं, उनमें ऋषि नम्बरोंके लेखों की केवल रीत ही पूरी नहीं हुई, किन्तु सारगर्भित विचार पेश किये गए हैं। चित्र भी एक तो तैयार होचुका है। वह तीन रंगा है। शेष के लिये प्रबन्ध हो रहा है। छपाई को प्रबन्ध कर लिया गया है। नया टाइप, उत्तम काग़ज़, स्वच्छ छपाई—यह इस अङ्क की विशेषताएं होंगी।

कठिनाई है तो यह कि आर्डर अभी नहीं आए। पिछले वर्ष ऋष्यङ्क कम होगया था। कारण यह कि आर्डर समय पर न आए थे। उर्दू वाले तो चर्बे आदि रखकर काम चला लेते हैं। हिन्दी में जितना एक बार छप गया, छप गया। आर्य्य समाज समय पर पर्याप्त आर्डर भेजदें, तो सभा का रुपया बचाएं और अपना काम चलाएं। शताब्दी का समय है, आर्डर जी खोलकर देना चाहिये।

शताब्दी आई !

शताब्दी आई! हां! वही शताब्दी जिसकी ओर कई वर्षों से आर्य्य मात्र की आंखें लग रही थीं। ऋषि के जन्म को सौ वर्ष हो लिये। अजमेर की देहान्त-लीला के पश्चात् क्या सचमुच ऋषि का प्राणावसान होगया। नहीं! ऋषियों के लिये मरना नहीं होता, वह तो अमर होते हैं। उनका प्राण एक शरीर से छूटता है, संसार भरके शरीरों को शरीरी करता है। उनमें नई स्फूर्ति लाता है—नया जीवन, नई उमङ्ग, नया उत्साह। आर्य्य-समाज! तू ऋषि का उत्तराधिकारी है। इस महत्व को पहिचान। यह छोटा सा आर्य्य-समाज और दयानन्द, जगद्गुरु दयानन्द का पदाधिकारी!! बात आश्चर्य्य-जनक है, पर बात है। इसमें सत्य है, सार है। यहां तो खड़ाओं ने श्रीराम का सिंहासन सँभाला है। हाय! हम दयानन्द की खड़ावें ही बन जाएं। ऐसे सौभाग्य कहां? ऋषि तो प्रत्येक दयानन्दी को दयानन्द बनाना चाहते थे। हमने ऋषि की कामना की असफलता में अपनी सफलता मानली।

शताब्दी-समिति ने एक कार्य-क्रम निकाला। इच्छा थी कि आर्य्यजन उस कार्य्य-क्रम को अपने जीवन में ढालें। वह यन्त्रणा थी, साधना थी। एक

बार उस कुठाली से आर्य्य निकल जाते, कुन्दन होते। यदि प्रत्येक आर्य्य आर्य्य-भाषा के प्रचार का व्रत ले लेता, आज प्रान्त भर की भाषा आर्य्य-भाषा होती, घर २ में ऋषि का सन्देश पहुंच जाता। जिन लोगों ने इस प्रणाली को क्रियात्मक रूप दिया, उन्होंने अनुभव किया कि ऋषि के नाम और सन्देश के सर्वसाधारण के हृदयों तक लेजाने का यह एक अनूठा प्रकार है।

प्रचार का एक प्रोग्राम अब भी प्रकाशित हुआ है। उसीको कार्य्यरूप में लाओ और ऋषि के उद्देश्य को सफल करने में सहायक हो।

कभी सोचो तो, हम "ऋषि" के नामलेवा हैं।

सूत-शुल्क—

इस बार की कांग्रेस ने चार आने वर्ष के स्थान में २००० गज़ सूत शुल्क नियत किया है। कांग्रेस की सभासदी के लिये अब या तो इतना सूत स्वयं कातना होगा या कतवा कर अथवा क्रय करके कांग्रेस कार्य्यालय में देना होगा। लोग हैं जो इस शुल्क के पक्ष में हैं; लोग हैं जो इसका विरोध करते है। कोई कहता है, अब कांग्रेस कार्य करने वालों का संघ होगा, बातूनियों का नहीं। कोई कहता है, कांग्रेस का वृत्त सङ्कुचित होजायगा। सब पूनियां लें, सब चर्खा कातें, या कतवाएं—शेषोक्त पक्ष की सम्मति में यह असम्भव है।

कुछ हो, कांग्रेस ने अनुभव किया है, कि खद्दर बिना मुक्ति (राजनैतिक मुक्ति अर्थात् स्वराज्य) नहीं। उसके लिये साधना करना प्रत्येक कांग्रेसमैन का कर्तव्य ठहरा दिया है। इसकी राजनैतिक सफलता असफलता पर राजनीतिज्ञों को विचार करना चाहिये।

हमें यह बात प्यारी लगती है, कि जिस सङ्घ का कोई है, वह उस सङ्घ में सिपाही-सदृश कार्य्य करे। आठों पहर बन्दूक़ कन्धे पर हो। आर्य्यों की बन्दूक़ है आर्य्य-भाषा। प्रत्येक आर्य्य यह स्मरण रक्खे कि आर्य्य-भाषा के बिना आर्य्य-समाज नहीं। व्रत हो कि इतना समय आर्य्य-भाषा पढ़ाकर और कार्य्य करेंगे। पढ़ने वाले स्वयं ढूंढो। अपने घर में किसीको पढ़ादो। अपने सेवक को सही, परन्तु पढ़ाओ। लाहौर में यह परीक्षण हुआ। मास भर में एक सहस्र के लगभग नए आर्य्य-भाषा भाषी हुए। समाज मन्दिर में दुकान मत खोलो। यहां यह सौदा न चलेगा। दुकानों में मन्दिर लेजाओ। किसी से १०

मिनट, किसीसे १५ मिनट लेलो और उसे नित्य प्रति नागरी गुणागरी का बोध करा दिया करो। देखो आर्य्य-समाज का कितना प्रचार होता है।

बाइबिल का प्रचार—

दिसम्बर १९२४ की 'सरस्वती' से निम्न उद्धरण पाठकों को लाभकारी होगा:—

"लन्दन में 'ब्रिटिश एण्ड फ़ारेन बाइबिल सोसायटी' नाम को एक पुरानी संस्था है। इसका उद्देश अँगरेज़ी साम्राज्य तथा संसार के दूसरे देशों में बाइबिल का प्रचार करना है। हाल में इसकी १२० वीं रिपोर्ट निकली है। इससे इसके विराट् आयोजन का पता लगता है। पाठकों के जानने के लिए उसके महान् कार्य का यहां कुछ परिचय दिया जाता है।

इस संस्था की स्थापना सन् १८०४ में हुई थी। तबसे इसने बाइबिल की ३४,५०,००,००० प्रतियां छापकर प्रकाशित की हैं। रिपोर्ट से प्रकट होता है, कि यह संस्था अब ५६६ भाषाओं में बाइबिल की पुस्तकें प्रकाशित करने लगी है। इनमें उसके आठ भाषाओं के अनुवादों की वृद्धि पिछले बारह महीनों में हुई है। उसकी सूची में पूरी बाइबिल की संख्या १३७ और न्यूटेस्टामेंट की १३८ है। उसके नये संस्करणों में तीन अफ्रीका के लिए हैं—इरीग्वी, चावी और उम्बन्दू, दो योरपीयों—कार्सिकन और लटगोलियन—के लिए; एक दक्षिणी समुद्रों के फ़्लोरिडा द्वीप के लिए; एक चीन के नोसू नामक मूलनिवासियों के लिए और एक दक्षिणी अमरीका के मकूची नामक इण्डियनों के लिए।

इरीग्वी और चावी भाषायें अफ्रीका के नायगेरिया प्रदेश में बोली जाती हैं। इस देश में कोई सौ से ऊपर भाषायें होंगी। उम्बन्दू अङ्गोला में बोली जाती है। यह बन्टू-भाषा है। लटवेलियन भाषा-भाषी लटविया के दक्षिण-पूर्व भाग में निवास करते हैं। इनकी संख्या छः लाख है। मकूची भाषा ब्रिटिश गायना में बोली जाती है।

बाइबिल या उसके कुछ भागों का अनुवाद उन ३६६ भाषाओं में हो चुका है, जो अँगरेज़ी-साम्राज्य के अन्तर्गत बोली जाती हैं। इसका विवरण

इस प्रकार है—योरप ६, एशिया १४, भारत १०२, अफ्रीका १४३, अमरीका २६, और आस्ट्रेलिया एवं ओशनिया ७२। रिपोर्ट के साल ८५,४०,६०१ प्रतियां छपीं। इनमें ७,००,००० योरप के भिन्न भिन्न लेटिन राष्ट्रों में, १,७८,००० मध्य-योरप की जर्मन और स्लाव-जातियों में, २,११,००० दक्षिण-पूर्वी योरप में, २,६६,००० दक्षिण-अमरीका में, ३,५०,००० कनाडा और न्यूफ़ाउंडलैंड में, ६,०२,००० भारत और लङ्का में, ८,१२,००० जापान-साम्राज्य में और १०,००,००० चीन में वितरित हुईं। सोवियट प्रजातन्त्रों के द्वार इस संस्था के लिए बन्द रहे। युद्ध के पहले ५ लाख प्रतियां रूस-साम्राज्य में बिकी थीं। परन्तु १९१३ में रूसी भाषा की केवल १८०० प्रतियां उत्तर-पूर्वी योरपियन एजेंसी में बिकी थीं। रूस-राज्य में प्रवेश करने के सभी प्रयत्न निष्फल हुए।

इस संस्था की पुस्तकों के मूल्य लागत के अनुसार निश्चित नहीं रहते। उनका जितना मूल्य देने में लोग समर्थ हों, वही उनका मूल्य होता है। गास्पेल की एक पोथी भारत में आधे पेंस में मिल जायगी और वही चीन में ⅙ पेनी में। जहां नक़द मूल्य नहीं मिलता वहाँ उसके बदले में वस्तु ही ले ली जाती है। कोरिया में गास्पेल की एक पोथी का मूल्य एक बार अन्न की दो बालें स्वीकार करली गई थीं। एक दूसरे व्यक्ति ने उन्हें आलुओं से ही बदल लिया था। एक आलू के बदले एक पोथी दे दीगई थी। भारत में एक अण्डे के ही बदले कभी कभी एक पोथी दे दीजाती है। इसके सिवा हज़ारों प्रतियां मुफ़्त भी बाँट दीजाती हैं।"

संसार में बाइबिल के प्रचार-कार्य्य के एक अंश का यह विवरण है। निस्सन्देह इसे कार्य करना कहते हैं।

आर्य्य लोग विचार करें, उनके धर्म-पुस्तकों के प्रचार की गति क्या है ?

पण्डित माधवराव सप्रे का हिन्दी-प्रेम—

देहरादून के हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के मनोतीत प्रधान श्रीराधा-चरण गोस्वामी की अनुपस्थिति में श्रीमाधवराव सप्रे सभापति निर्वाचित हुए। आपने कहाः—

"मुझे राष्ट्रभाषा हिन्दी से प्रेम है। मेरा जन्म शरीर से महाराष्ट्र में है। बचपन में मैंने भी मराठी का ही अभ्यास किया था। परन्तु आगे चलकर मित्रों की कृपा से मेरे हृदय में राष्ट्रभाषा का भाव पैदा हुआ। मैंने अनुभव किया, कि इस विशाल देश में एक ऐसी भाषा की आवश्यकता है, कि जिसको सब प्रान्तों के लोग अपनी राष्ट्र-भाषा मानें और वह भाषा हिन्दी को छोड़कर और कोई नहीं है। मैं महाराष्ट्र हूं, परन्तु हिन्दी के विषय में मुझे उतना ही अभिमान है, जितना किसी हिन्दी-भाषी को होसकता है। मैं चाहता हूं कि इस राष्ट्र-भाषा के सामने भारतवर्ष का प्रत्येक व्यक्ति इस बात को भूल जावे कि मैं महाराष्ट्र हूं, मैं बङ्गाली हूं, मैं गुजराती हूं या मद्रासी हूं। ये मेरे पैंतीस वर्ष के विचार हैं और तभी से मैंने इस बात का निश्चय कर लिया है कि मैं आजीवन हिन्दी-भाषा की सेवा करता रहूंगा।"

एक उपयोगी प्रस्ताव—

हिन्दी में पढ़ने के लिये इस समय उपन्यासों के अतिरिक्त साधारण-जन-रुचिकर साहित्य है ही नहीं। इतिहास और तर्क ऐसे विषय हैं, जो किसी भी भाषा के साहित्य को उत्कृष्ट और रसीला बना सकते हैं। हमें हर्ष है, कि उक्त सम्मेलन ने निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया:—

इस सम्मेलन की राय में यह परमावश्यक है, कि भारत का एक प्रामाणिक इतिहास तैयार किया जाय, इसके लिए न केवल प्राप्य ग्रन्थादि के विशेष अध्ययन की, बल्कि नवीन खोज की भी आवश्यकता है।

इस कार्य की योजना के लिए नीचे लिखे सज्जनों की एक कमिटि बनाई गई है—

१—श्रीशिवप्रसाद गुप्त।
२—श्रीनरेन्द्रदेव।
३—श्रीपुरुषोत्तमदास टण्डन।
४—श्रीरामनारायणसिंह।

भारत की भाषाएं—

म० ग्रियर्सन भारतीय भाषाओं के पण्डित हैं। उन्हों ने लन्दन में इस संबन्ध में एक व्याख्यान दिया। जिसका सार श्री डा० प्राणनाथ विद्यालंकार पी. एच. डी. ने नवंबर मास की 'प्रभा' में प्रकाशित कराया है। उसके कुछ उद्धरण पाठकों की भेट किये जाते हैं:—

"अनुसंधान ने इस बात को स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया है कि भारत में १७९ पृथक् पृथक् भाषाएं बोली जाती हैं और उनके ५४४ के लगभग उपभेद (dialect) हैं। उपभेदों की सूची अभी तक परिपूर्ण नहीं है, क्योंकि अनुसंधान की पहुंच अभी तक संपूर्ण भारत तक नहीं हुई। यह होते हुए भी भाषाओं की संख्या सर्वथा सत्य है, क्योंकि इनमें से बहुतों के उदाहरण तथा व्याकरण का संक्षेप से विवरण "अनुसंधान" के पृष्ठों में देखा जा सकता है। अनुसंधान इस बात को प्रगट करता है कि भाषा के विषय में भारत का संबन्ध संपूर्ण संसार तक पहुंचता है। पश्चिम में इसका संबन्ध इंडो-यूरोपीयन-भाषाओं के साथ है। यह सम्बन्ध एशिया, योरप तथा अमेरिका तक पहुंचता है। पंजाब में इंडोनेशिया तथा पोलीनीशिया के द्वारा पूर्वीय द्वीपों से भारत का भाषाविषयक सम्बन्ध होता है। इन द्वीपों का विस्तार दक्षिण अमेरिका तक फैला हुआ है।

यदि मैं 'अनुसंधान' के सम्बन्ध में इसका निचोड़ निकालूं तो यह है कि "भारतभूमि वह भूमि है जहां विभिन्नता का प्राधान्य है और यह किसी भी अन्य स्थल में इतना प्रत्यक्ष नहीं है जितना कि भाषा के सम्बन्ध में। कुछ एक ऐसी भाषाएं हैं जिनके उच्चारण सम्बन्धी नियम उन भाषाओं में कुछ सैंकड़े शब्दों से अधिक शब्दों का होना असम्भव प्रकट करते हैं और जो कि उन भावों को भी प्रकट करने में असमर्थ हैं जो कि हमारे लिए बहुत ही साधारण तथा तुच्छ हैं। इसके साथ ही साथ कुछ एक ऐसी भाषाएं भी हैं जो कि शब्दों की दृष्टि से बहुत ही समृद्ध और विस्तार तथा विचारों को उचित रूप से प्रकट करने में इंग्लिश के साथ स्पर्धा करती हैं। कुछ भाषाएं ऐसी हैं जिनमें केवल एक स्वर है और कुछ ऐसी हैं जिनमें स्वर के ऊपर स्वर इस हद्द तक इकट्ठे किये जाते हैं कि अन्त में यह एक वाक्य बन जाता है। ऐसी भी भाषाएं हैं जिनमें न तो नाम हैं और न क्रिया और जिनका एक मात्र व्याकरण 'संदर्भ" (syntax) है। इसके विपरीत कुछ एक ऐसी भाषाएं हैं जिनकी व्याकरण-पद्धति लैटिन तथा ग्रीक के सदृश परिपूर्ण है। यहाँ पर ही बस नहीं, पूर्वीय आसाम में एक ओर नग्न असभ्यों की अपरिपक्व भाषाएं हैं जिनको कि लेख में अभी तक परिणत नहीं किया गया और दूसरी ओर ऐसी भाषाएं हैं जो कि विस्तृत साहित्य तथा उत्तम कविता से सुशोभित तथा उच्च विचारों और भावों से परिपूर्ण हैं।"

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब लाहौर ।

ब्योरा आय व्यय बाबत मास मार्गशीर्ष संवत् १९८१

निधि	बजट आय	इस मासकी आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
	२७२२५)	१५०१॥≡)१०	१३६४३॥-)१०			
ार	२०००)	२०३≡)॥	११४४॥-)।			
	६८००)	१००।≠)	९७६॥-)	६८००)	१६५॥)।	१५२०॥≡)।
ानिधि	२०००)	१७६।।।≡)	५१८॥-)७			
ाय				६१००)	५८७॥≠)॥	३८२२=)११
पुस्तकालय	१००)	२३)	१०७।≠)	२५००)	२०३॥)॥	१८२६॥-)॥
तैयार कराई				१००)		१२०)
				७००)	६२॥-)	४६१॥-)।।।
ुपदेशकां				१५१४१)	१११५।)॥	६७३६≠)७
्यय				६६००)	४५९।-)।।।	४३२१।।।=)८
ीवन				५०)	—५।।।-)	५८=)
विभाग	२००)		१३२-)॥			
कोष				१४००)	१२५)	८८४=)।
ा माता				२४)	१२)	१२)
णपति शर्म्मा						
योग		२००८।)४	१६५६२।।।-)२		२७५५।-)॥	२२७६३॥=)११
स्मारक निधि	३००)		६७-)			
उपदेशकां				१४००)	३१॥)	५५६॥)
्यय				५००)	३४।।।-)	३५३≠)॥
विधवा पं० तुलसी राम				१२०)	१०)	८०)
,, पं०वज़ीरचंद				६६)	८)	६४)
योग			६७-)		८४।-)	१०७४॥=)॥
आर्य विद्यार्थी आश्रम		२८)	८४)			४२८)
अन्य संस्थायें		१०॥)	७६७५॥=)॥			६९६१।)४
आर्य समाजें			३२५५=)।			६१२)
दिक पुस्तकालय			७२)		१०)	१००)
ालेशाह			४६-)			५४०-)
म्बालाल दामोदरदास		४०००)	४०००)			
योग		४०३८॥)	१५४३५।।।-)।।।		१०)	८७११।-)४
						६९'=)५
ों		७१४≡)७	१८८५६।≡)११			
			२००६।≡)			
मकानात		२)	२४)		१०=)	१५६≡)॥
ाय व्यय			५५४॥)			२१८॥-)८
		७१६≡)७	२१४७१।=)११		१०=)	

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब लाहौर।

ब्यौरा आय व्यय बाबत मास मार्गशीर्ष सं० १९८१

निधि	बजट आय	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय
मिहालदेवी जींदाराम			७००)		
गुरुकुल मुलतान			५)		
अज्ञात निधि		२०)	१४६४-)।		५०)
दयानन्द-जन्म शताब्दि	१००००)	८६२॥।-)	७८६३।=)	१५०००)	६७।≡)
दलितोद्धार	१२०००)	५०)	२२८७=)	१२०००)	३०६।=)
राजपूतोद्धार			२६१॥=)		२१४॥=)
प्रोवीडेण्ट		८४॥)॥	७१७।≡)५		
बानस				१०००)	
आर्य्य विद्यार्थी आश्रम	२८७०)	२७५॥)	१८५६॥।=)	२८७०)	२८४॥=)॥
,, ,, ,, शाला		५००)	६३४४।-)४		
वसीयत पं० पूर्णानन्द			२६२५)		४०)
विदेश प्रचार	८०००)		५५)	८०००)	४॥।=)॥
कन्या गुरुकुल		९≡)	४६॥।)		
सभा के सेवकों की सहायता					८)
दयानन्द उपदेशक महा विद्यालय		१००७)	२५१३)		
आसाम प्रचार			१०७॥-)		
दयानन्द सेवा सदन			२)		
रामचन्द्र स्मारक निधि			३८०॥-)		
ईश्वरदास निधि					
अंडमन प्रचार		५)	७०)		
मदरास ,,		८७)	८७)		
वसीयत स्वामी विद्यानन्द जानकी बाई		७००)	७००)		
,, महाशय ओन्चीराम		५०००)	५०००)		
योग		६३३१)॥	३३०६१॥≡)१		९७६-)
गुरुकुल महानिधि		८१६६)५	८८८२७॥)११		१०४१८≡)
,, अस्थिर क्षात्रवृति		२००)	८८०२)		
,, स्थिर कोष			२१०)		
,, उपाध्याय वृति			—८०३५॥)		
,, स्थिर क्षात्रवृति			७०००)		
,, आयुर्वेद			१००३५॥)		
योग		८३६६)५	१०६८३९॥) ११		१०४१८≡)
सर्व योग		२४४६३)१०	१६३४६८॥=)१०		१४२५४)॥
गत शेष		१०००६७४॥।≡)	९५३६०१॥।)४		
योग		१०२५१६७॥।≡)१०	११४७०७०।≡)२		
व्यय		१४२५४)॥	१३६१५६।≡)१०		
वर्तमान शेष		१०१०६१३॥।≡)४	१०१०६१३॥।≡)४		

Registered. No. L. 1424. रजिस्टर्ड नं० एल १४२४

* ओ३म् *

भाग ५ फाल्गुन १९८१
अङ्क १० मार्च १९२५

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मासिक पत्र

सम्पादक—चमूपति

प्रार्थना ।

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । अपघ्नन्तोऽराव्णः

ऋग्वेद ।

हे प्रभु ! हम तुम से वर पावें ।
विश्व जगत् को आर्य बनावें ॥
फैलें, सुख सम्पत् फैलावें ।
आप बढ़ें, तव राज्य बढ़ावें ॥
वैर-विघ्न को मार मिटावें ।
प्रीति-नीति की रीति चलावें ॥

वार्षिक मूल्य ३) रु० पेशगी

भारतचन्द्र लखनपाल प्रिन्टर व पब्लिशर के अधिकार से बाम्बे मेशीन प्रेस मोहनलाल रोड लाहौर में छप कर प्रकाशित हुआ ।

विषय

विषय सूची ।

"आर्य्य" के नियम ।

१—यह पत्र अंग्रेज़ी मास की १५ तारीख़ को प्रकाशित होता है। (डाक ख़ाना में चूंकि अंग्रेज़ी तारीख़ देनी होती है, इसलिये अंग्रेज़ी तारीख़ का हिसाब रक्खा गया है) ।

२—इसका वार्षिक मूल्य ३) है। सभा ने वैदिक धर्म तथा नागरी प्रचार के लिये इसे जारी किया है ।

३—इस पत्र में धर्मोपदेश, धर्म-जिज्ञासा, प्रतिनिधि सभा की सूचनाएं दर्ज होती हैं ।

४—पत्र में प्रकाशित होने के लिये समाचार तथा लेख प्रत्येक अंग्रेज़ी मास की १ तारीख़ के पूर्व आजाने चाहियें ।

५—यदि डाक की ग़लती से कोई अङ्क न पहुंचे, तो दिन के भीतर सूचना देने से वह अङ्क भेज दिया जायगा, लेकिन इस अवधि के पश्चात् मंगवाने पर प्रति अङ्क ।≈)

* ओ३म् *

आर्य्य

भाग ५] लाहौर—फाल्गुण १९८१, मार्च १९२५ [अंक १०

वेदामृत।

वीर की भावना।

ओ३म् अनुच्छ्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथा पर्वसिना माऽभिमंस्थाः। माऽभिद्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाकेऽधि विश्रयैनम् ॥

अथर्व ९।५।४॥

घातक खूब चला तलवार ॥
अंग अंग परु परु के काली,
कर भुजंगिनी पार ॥१॥
सोच नहीं, संकोच द्रोह है,
जोड़ जोड़ संहार ॥२॥
कर तृतीय अध्यात्म धामका
भागी, कर उपकार ॥३॥

अद्भुत कुमार सम्भव।

(श्रीयुत बुद्धदेव विद्यालङ्कार)

कालिदासकवेर्व्वाणी दुर्व्याख्या विषमूर्छिता।
एषा सञ्जीवनी टीका तामद्योज्जीवयिष्यति ॥

मल्लिनाथ ने कालिदास के टीकाकारों पर बिगड़कर उपर्य्युक्त पद्य कहा है। आज मल्लिनाथ के चित्त कीसी अवस्था मेरे चित्त की भी है। मैं भी आज एक कुमारसम्भव की टीका 'आर्य्य' के पाठकों के सन्मुख लेकर उपस्थित हुआ हूं। इस कुमार सम्भव के साथ कालिदास के कुमारसंभव की अपेक्षा कुछ कम नहीं, अपितु सहस्रगुण अधिक अन्याय हुआ है। और अधिक दुःख की बात तो यह है कि मल्लिनाथ के प्रयत्न से कालिदास पर अत्याचार करनेवाले वह ग्रन्थ लुप्त होगए हैं जिनपर बिगड़कर मल्लिनाथ ने उक्त पद्य कहा है, परन्तु यहां तो उन अपभाष्यों का घोर प्रचार है और उनके विरुद्ध युद्ध की केवल घोषणा मात्र हुई है।

मैं जिस कुमारसम्भव को आज उपस्थित करने लगाहूं उसमें कई विचित्रताएं हैं। इन में एक विचित्रता तो यही है कि यह श्रव्यकाव्य नहीं किन्तु नाटक है। एक और बड़ी विचित्रता यह है कि इसका सम्बन्ध मीमांसा से है। इसके कर्त्ता याज्ञवल्क्य, ऐतरेय, कात्यायनादि महर्षि हैं और अलङ्कारसूत्रकार हैं जैमिनि। काव्य और मीमांसा इनका संबन्ध ! इससे बढ़कर धृष्टता क्या हो सकती है ? इसीलिये मैंने शीर्षक रक्खा है "अद्भुत" कुमारसम्भव।

अच्छा, प्रस्तावना को लम्बा न करके मैं स्पष्ट भाषा का आश्रय लिये लेता हूं। आज के लेख का विषय है यज्ञ। यज्ञ क्या हैं ? नाटक। किस रसके ? मुख्यतया शृङ्गाररस के यत्र तत्र और रसों के भी। यज्ञशाला क्या है ? नाटकशाला। अब तो धृष्टता की सीमा ही नहीं रही। ज़रा बचे रहना। कहीं श्रोत्रिय महाराज स्रुवा मारकर खोपड़ी का अवदान न करदें या स्फय के प्रहार से आप ही का आलम्भन न होजाय। ख़ैर आज तो घर से निकले ही हैं धृष्टता करने। जब सिरसे कफ़न बांधा है तो तलवार से डरना ही कैसा।

निस्सन्देह यज्ञ नाटक है—यह स्थापना "आर्य्य" के पाठकों को आश्चर्य में डाल देगी पर वास्तव में तथ्य यही है। ब्राह्मण ग्रन्थ के पाठकों के लिये यह

कुछ आश्चर्य्य की बात नहीं। जो हो, पर जब इस के प्रमाण उपस्थित हो जावें तो फिर आश्चर्य्य क्या ? प्रमाणों के लिये दूर भी नहीं जाना । ऐतरेय अथवा शतपथ का कोई पृष्ठ खोल लीजिये, इस बात के प्रमाण ही प्रमाण दृष्टिगोचर होंगे। हां, आप आंख ही मूंदने की शपथ खाए हों तो दूसरी बात है। तथापि सुगमता के लिये यहां दो एक प्रमाण उपस्थित करता हूं। यह लीजिये, सब से पहिले शतपथ ब्राह्मण के पहले पृष्ठ को ही पढ़ जाइये।

व्रत मुपैष्यन् । अन्तरेणाहवनीयञ्च गार्हपत्यञ्च प्राङ्तिष्ठन्नप उपस्पृशति तद्यदप ऽउपस्पृशत्यमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति तेन पूतिरन्तरतो मेध्या वाऽआपो मेध्यो भूत्वा व्रतमुपयानीति पवित्रं वाऽआपः पवित्रपूतो व्रतमुपयानीति तस्माद्वाऽअपउपस्पृशति ।

आज व्रत धारण करना है। सबसे पहिला काम यजमान पूर्व्वाभिमुख होकर आचमन करता है। तात्पर्य्य यह है कि पुरुष असत्य भाषण से अपवित्र हो जाता है, इसीलिये पवित्रता का चिन्ह जल अन्दर लेता है, जिससे स्मरण रहे कि आज व्रत धारण के समय तो मैं अपने अन्दर से असत्य निकाल दूं (जिससे नया जीवन बना सकूं) । जल पवित्र है यह सब जानते हैं इसीलिये इस पवित्रता के चिन्ह जल का व्रतारम्भ में आचमन किया जाता है।

देहली के लाल किले में बादशाह के न्यायासन के ऊपर एक समतोल तराज़ू बनी हुई है। लोग देखते हैं और कहते हैं,क्या नाज़ुक ख़याली है ! शोक है मीमांसा इतने दिन तक मोटे ख़यालवालों के हाथों ही पड़ी रही। जिस प्रकार कि नाटक के आरम्भ में नाट्यार्थ सूचक नान्दी होती है,इसी प्रकार यहाँ भी व्रत धारण के समय आत्मिक पवित्रता के अनुगुण आचमन की स्थूल क्रिया की जा रही है। सहृदय लोग इस आनुगुण्य का रसास्वाद करें। यह है शतपथ ब्राह्मण के पहिले पृष्ठ की पहिली पंक्ति। क्यों ? है न आरम्भ से ही नाटक !

अच्छा और सुनिये।

अथातोऽशनानशनस्यैव। तदुहाषाढः सावयसोऽनशनमेव व्रतं मेने मनोहवै देवा मनुष्यस्या जानन्ति तऽएन मेनद्व्रतमुपयन्तो विदुः प्रातर्नो यक्ष्यत इति तेऽस्य विश्वेदेवा गृहानागच्छन्ति तेऽस्य गृहेषूपवसन्ति स उपवसथः ।

तन्वेवानवक्लृप्तम् । यो मनुष्येष्वनश्नत्सु पूर्व्वोऽश्नीयादथ किमुयो देवे-ष्वनत्सु पूर्व्वोऽश्नीयात्तस्मादु नैवाऽश्नीयात् ।

आचमन की बात होली । अब व्रतधारण से पहिले खाने न खाने की कहो। लो अब खाने न खाने ही की कहते हैं । आषाढ सावयस आचार्य्य कहते हैं कि व्रतधारण से पहिले भोजन करना अच्छा नहीं । व्रतधारण करना सत्यादि दिव्य गुणों को मन में बुलाकर बैठाना है । जब दिव्यगुणों को पता लगता है कि कल इस यजमान को प्रातः व्रत धारण करना है तो वह निमन्त्रण पाकर उसके मनमें डेरा करने लगते हैं, सो यह कैसी अनुचित बात है । जब मनुष्यों को अपने घर में बुलाकर उन्हें बिना खिलाये भोजन करना ठीक नहीं तो देवताओं को बुलाकर उनको भोजन दिये बिना भोजन करना कैसे ठीक हो सकता है ? इसलिये जब तक अन्दर के देवता भोजन न करलें तब तक बाहर के ब्राह्मणदेवता (मुख) भी भोजन न करें ।

इसी प्रकार, सवै समिधो यजति । प्राणावै समिधः (शत पृ० ४०) सूर्य्योहवा अग्निहोत्रं (पृ० ८४) शिरो वै यज्ञस्यातिथ्यं (पृ० १५२) पुरुषो वै यज्ञः.........शिरएवास्यहविर्धानम् (पृ० १६४) अर्धोवा एष आत्मनो यज्जाया (पृ० २७५) तिष्ठन्समिध आदधाति । अस्थीनि वै समिध स्तिष्ठन्तीव वा अस्थीनि आहुतीर्जुहोति मांसानि वा आहुतय आसत इव वै मांसान्यन्तराः समिधो भवन्तिबाह्या आहुतयोऽन्तराणिह्यस्थीनि बाह्यानि मांसानि (पृ० ४८१) वायुरेव यजुः अयमेवाकाशोजूः । अथाध्यात्मम् प्राणएव यजुः........अयमेवाकाशोजू अन्नमेव यजुः (पृ० ५२३) अथ ब्रह्मयज्ञः । स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञस्तस्य वा एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य वागेवजूहूर्मन उपभृच्चक्षु ध्रुवा मेधास्रुवः सत्यमवभृथः स्वर्गो लोक उदयनम्......एताः एव आहुतयो वाएता देवानाम् यदृचः । आज्याहुतयो वा देवानाम् यद्यजूंषि सोमाहुतयो वा एता देवानाम् यत्सामानि मेद आहुतयो वा एता देवानाम् यदथर्व्वाङ्गिरसः (पृ० ५००) सत्रापष आत्मैव यत्सौत्रामणी ... योनिरेव वरुणः रेत इन्द्रः (पृ० ६३०) तस्या वेदिरुपस्थो लोमानि बर्हिश्चर्म्माधिषवणे समिद्धो मध्यतस्तौ मुष्कौ स यावान्ह वै वाजपेयेन यजमानस्य लोको भवति तावानस्य लोको भवति य एवं विद्वानधोपहासञ्चरति (पृ० ७४४)

वह समिधाओं का हवन करता है । प्राण ही समिधा हैं (शत पृ०४०)

सूर्य्य ही अग्निहोत्र है (पृ० ८४) आतिथ्य ही यज्ञ का सिर है (पृ० १२५) पत्नी आत्मा का आधाभाग है (पृ०२७१) खड़ा होकर समिदाधान करता है क्योंकि समिधाएं यज्ञकी हड्डियें हैं। हड्डियां भी खड़ी रहती हैं, समिधा भी। आहुतियें मांस है। क्योंकि मांस जिस प्रकार खड़ा नहीं रह सकता,इसी प्रकार आहुतियां भी बिना समिधाओं के सहारे नहीं खड़ी रह सकती। हड्डियां अन्दर रहती हैं, मांस बाहर होता है,इसी प्रकार समिधाएं अन्दर हो जाती हैं आहुतियां उन्हें ढक लेती हैं (पृ० ४८१), वायु यजु है,आकाश जू है। इसीको अध्यात्म में लो प्राण। यजु है अकाशजू है। (पृ० ५२३) अब ब्रह्मयज्ञ की महिमा कहते हैं। स्वाध्याय का नाम ब्रह्मयज्ञ है सो इस ब्रह्मयज्ञ की वाणी जुहू (यज्ञपात्र विशेष) है,मन उपभृत् है,चक्षु ध्रुवा है, और मेधा स्रुवा है, सत्य अवभृथ स्नान है, स्वर्ग उदयन है। ऋग्वेद पढ़ना इसमें दूध की आहुति करना है, यजुर्वेद पढ़ना घृताहुति है। सामवेद पढ़ना सोमाहुति है, अथर्व्व पढ़ना अन्य स्निग्ध पदार्थों की आहुति हैं। (पृ०५७७) यह आत्मा ही सौत्रामणी यज्ञ है। इस यज्ञ में स्त्री-योनि वरुण देवता है, पुरुष-वीर्य्य इन्द्रदेवता है। (पृ० ६३०) स्त्री की योनि यज्ञवेदि है, उस पर जो रोम हैं वह यज्ञ के आसन हैं, बीच में पुरुषाङ्ग प्रदीप्ताग्नि है। सो वह आदमी जो विपरीति रति आदि द्वारा वीर्य्यनाश न करके उससे उत्तम सन्तान उत्पन्न करता है वह वाजपेय यज्ञ का फल पाता है (पृ० ७३४)।

यह प्रमाण तो यों ही उपस्थित कर दिये गए हैं। सच पूछिये तो शत-पथ का पृष्ठ पृष्ठ पंक्ति पंक्ति यह कहरहा है कि यज्ञ नाटक है। हां, एक बात और है। कहीं कहीं यह नाटक अनेक कथाएं एक ही समय में सुनाते हैं। अथवा यों कहिये कि वस्तुतः तो प्रत्येक यज्ञ आध्यात्मिक आधि भौतिक अधिराष्ट्र न जाने कितनी घटनाओं का रूपक है पर कहीं कहीं ऋषियों ने यह भाव दिग्दर्शनार्थ स्पष्ट कर दिये हैं, जैसे पृ० ५२३ पर सौत्रामणी प्रकरण में जिस में से एक छोटा सा उद्धरण ऊपर भी दिया गया है।

शृङ्गार रस।

अब हम अपनी दूसरी स्थापना की ओर आते हैं। यज्ञों में मुख्यभाव क्या है ? मिलकर कार्य्य करना सिखाना अर्थात् सङ्गठन। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये याज्ञिक ऋषियों ने इस राग-माला की टेक बनाई है 'स्त्री पुरुष का जोड़ा।' बात है भी मार्म्मिक। ऋषिलोग वर्त्तमान मीमांसक पशुओं की भांति

नीरस न थे। इससे बढ़ कर सरस और सफल सङ्गठन और हो ही नहीं सकता। Home, sweet home के नाम से भी इसी सङ्गठन के गीत गाए गए हैं और न मालूम कितने ऋषियों ने इसका गान करके अपने काव्य को अमर बनाया है।

इस सङ्गठन में एक और बड़ी मौलिक विशेषता है, जिसकारण सङ्गठन मात्र का प्रतिनिधि इसे चुना गया है। संसार के अन्य सब कार्य्य शायद अकेले अकेले भी सिद्ध होसकते हैं, राबिन्सन क्रूसो अपना सब निर्वाह अकेला कर सकता है, पर यदि कोई एक कार्य्य ऐसा है जो बिना दो के हो ही नहीं सकता तो वह है यही गर्भाधान। यही नहीं, संसार को स्वर्ग और नरक बनाने का मूल आधार यदि कोई है तो यही मूलाधार। शतपथ कहता है :—

आत्मन्नग्निं गृह्णीते चेष्यन्। आत्मनो वा एतमधिजनयति याद्दृशाद्वै जायते ताद्दङ्ङेव भवति स यद् गृहीत्वाऽग्निं चिनुयात्मनुष्यादेव मनुष्यं जनयेन् मर्त्यान्मर्त्यं मनपहत पाप्मनोऽनपहत पाप्मान मथ यदग्निं गृहीत्वा चिनोति तदग्ने रेवाध्यग्निं जनयत्य मृतादमृतमप हतपाप्मनोऽपहत पाप्मानम् (पृ० ३२१)

यहां अग्निचयन की विद्या बताई गई है। उसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि यह बाहर जो अग्निचयन किया जाता है यह तो वस्तुतः नाटक है। इसे देखकर अपने अन्दर अग्निस्थापन करो, क्योंकि जो जैसा होकर सन्तान पैदा करता है सन्तान भी वैसी ही होती है। यदि मनुष्य सन्तान पैदा करेगा तो साधारण मनुष्य ही पैदा करेगा—मर्त्य से मर्त्य, पापयुक्त से पाप युक्त ही उत्पन्न होगा। पर हां यदि अपने अन्दर अग्निधारण करके सन्तान पैदा करेगा तो सन्तान भी अग्निरूप होगी। उस समय अमर से अमर, पापमुक्त से पापमुक्त का जन्म होगा। इसलिये सन्तान उत्पन्न करने से पहिले अपने अन्दर अग्नि धारण करे।

इसीलिये पृ० ७४४ में स्त्री-योनि को वेदि और पुरुषाङ्ग को समिद्धाग्नि कहा और बताया है। मनुष्य ने उत्तम सन्तान उत्पन्न करली, मानो वाजपेय यज्ञ कर लिया। यहीं तक नहीं, राष्ट्र में मनुष्य संख्या की वृद्धि के लिये भी शतपथ उसी प्रकार बल देता है, जैसे ऊपर उनके उत्कर्ष के लिये देचुका है।

यहां राष्ट्रभृत् आहुतियों का प्रकरण है। इन में जोड़े जोड़े के नाम पर आहुति दी गई हैं। इसका कारण सुनिये।

मिथुनानि जुहोति। मिथुनाद्वै प्रजायते सराष्ट्रं भवति अराष्ट्रं वै स भवति यो न प्रजायते तद्यन्मिथुनानि राष्ट्रं बिभ्रति मिथुनाउऽएते देवास्तस्मादेता राष्ट्र भृत आज्येन द्वादशगृहीतेन (पृ० ४८१)

बिना जोड़े के सन्तान नहीं। जहां सन्तान नहीं, वहां राज्य ही नहीं रह सकता। इसलिये यह स्त्री पुरुषों के जोड़ों की आहुतियें राष्ट्रभृत् कहलाती हैं। यह आहुतियें विवाह में पढ़ी जाती हैं। इन मन्त्रों में सृष्टि में अनेक परिवार दिखाए गए हैं जिन में आनन्द की धूम मची हुई है। साथ ही इन में यह भी बताया गया है कि पुरुष स्त्री की अपेक्षा अधिक बलवान् होना चाहिये। उस में इतनी सामर्थ्य होनी चाहिये कि अनेक स्त्रियों से विवाह कर सके, जब इतनी सामर्थ्य हो तब एक से विवाह करे। यह नहीं कि यज्ञ के नाम से केवल स्त्री पुरुष के सङ्गठन की ही व्याख्या की गई है। नहीं, जोड़े को सङ्गठन का उपलक्षण (Symbol , माना गया है, क्योंकि इस से बढ़कर प्रेममय सङ्गठन कोई नहीं जिसमें शासन का कार्य्य यथावत् चलता हो। माता पुत्र में प्रेम है, पर शासन नहीं। बहिन भाई में प्रेम है, शासन नहीं। किन्तु पति पत्नी में शासन और प्रेम दोनों का मेल है। शासक कौन किसका है ? इस में सन्देह नहीं कि जो जिस स्त्री का स्वयंवृत शासक है, वही उसका यथार्थ पति है। पर आदर्श पति पत्नी में शासन कौन किसका करता है,यह परमात्मा ही जाने। बस यही सङ्गठन (Organisation) का आदर्श है। शासक और शासनीय के बिना कोई सङ्गठन नहीं रह सकता। पर सङ्गठन ठीक वही है जहां प्रेम के कारण शासक की शासकता का कभी कोई अनुभव न करे। यज्ञ का सङ्गठन रूप शतपथ में यों कहा गया है।

द्वंद्वं पात्राण्युदाहरति शूर्पञ्चाग्निहोत्रहवणीं च स्फ्यं च कपालानि च शम्याश्च कृष्णाजिनश्चोलूखलमुसले दृषदुपले तद्दश दशाक्षरा वै विराड्विराड्वै यज्ञस्तद्विराजमेवैतद्यज्ञमभिसम्पादयत्यथ यद्द्वंद्वं द्वंद्वं वै वीर्य्यं यदा वै द्वौ संरभेतेऽ अथ तद्वीर्य्यं भवति द्वंद्वं वै प्रजननम् मिथुनमेवैतत्प्रजननम् क्रियते।

पात्रों के जोड़े रखता है। छाज और अग्निहोत्रहवनी, स्फ्य और कपाल, शम्या और कृष्णाजिन, ऊखल मूसल, सिल वट्टा, यह दस हुए, क्योंकि यहां विराट् छन्द है, विराट् के दस अक्षर होते हैं। यज्ञ भी विराट्रूप है, इसलिये दस पात्रों से यज्ञ का विराट्रूप किया। अब यह जो जोड़े रक्खे, सो उसका कारण यह है कि विराट् (प्रजा; इसीलिये Republic को विराट् कहा गया है) की शक्ति जोड़े से ही होती है। "यदा वै द्वौ संरभेतेऽथ तद्वीर्य्यं भवति" जब दो मिलकर कार्य्य करते हैं (सम्+रभेते) तब ही शक्ति पैदा होती है। इसीलिये कहा है, 'द्वद्वं वै वीर्य्यं' जोड़े में बल है। यहां तक कि संसार का सब से मुख्य कार्य्य प्रजनन (प्रकृष्टं जननम्) उत्तम सन्तान बिना जोड़े के नहीं हो सकती। इसलिये जोड़ा ही बल और जोड़ा ही सर्ग (प्रजनन Creation) है। ऊपर के जोड़ों को ध्यान पूर्वक देखने से पता लगेगा, कि सबके सब स्त्री पुरुष जोड़े नहीं, जैसे स्फ्य कपाल, ऊखल मूसल। किन्तु जहां तक सम्भव हुआ है जोड़े स्त्री पुरुष के ही बनाए गए हैं, जैसे शम्या कृष्णाजिन। यह है सङ्गठनशास्त्र।

स्त्री पुरुष के इस भाव से कोई यज्ञ ख़ाली नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को इसी सङ्गठन का उपदेश किया गया हो, साथ ही उस प्रकार की सन्तान का भाव अवश्य है। इसीलिये कहा जाता है, बिना पत्नी यज्ञ नहीं हो सकता। कारण स्पष्ट है, जहां ब्राह्मण को सच्चा उत्तम ब्राह्मण बनाना आवश्यक है, वहीं, उसी दशा में उसकी सन्तान भी उपकारक होसकती है। यही कारण है कि यज्ञ को मिथुनरूप बनाया गया है। जिस प्रकार छान्दोग्योपनिषद्कार ऋषि ने संसार के प्रत्येक सङ्गठन को सङ्गीत की भाषा में वर्णन किया है, उसी प्रकार शतपथकार याज्ञवल्क्य ने संसार-भर की घटनाओं को मैथुन (जोड़े) की भाषा में वर्णन किया है, क्योंकि यज्ञ का उद्देश्य ही है उत्तम सन्तान की उत्पत्ति। अन्य सब उद्देश्य उत्तम शब्द के पेट में समा जाते हैं। परिणाम यह है कि यज्ञशाला में छत और खम्भे का जोड़ा, यज्ञवेदियों में गार्हपत्य और आहवनीय का जोड़ा, यज्ञपात्रों में जोड़ा, सोम और जल का जोड़ा, जिधर भी देखो मिथुन ही मिथुन का दृश्य दिखाया है। याज्ञिक लोग चाहते हैं कि यज्ञ करने से पुरुष पत्नीमय और पत्नी पुरुषमय होजाय। ब्राह्मण उत्तम ब्राह्मण बने और ब्राह्मणीमय होजाय, ब्राह्मणी उत्तम ब्राह्मणी बने और ब्राह्मणमय होजाय, जितने दिन यज्ञ करें मैथुन न करें, क्योंकि यज्ञ में मैथुन का निषेध है। किन्तु स्वप्न, उठते, बैठते, सोते,

जागते एक दूसरे के अतिरिक्त किसीको न देखें। फिर अवभृथ स्नान के पश्चात् उनके सम्बन्ध से उत्तम सन्तान होगी। उस समय तक ऋत्विज् उनपर पहरा देंगे, यह उनके संयम का सबसे बड़ा कारण होगा। इसके अतिरिक्त दिन भर उपदेश भी मन्त्रों द्वारा मिलेगा। यज्ञक्रिया भी संयम में सहायक होगी, किन्तु ध्यान होगा जोड़े का। यह जोड़े का भाव शतपथ में इतना भरा हुआ है कि कोई पृष्ठ ही इससे खाली होगा। यद्यपि हमने अभी तक परिगणन नहीं किया, किन्तु तो भी इतना अवश्य कहा जासकता है कि यदि जोड़े के वाक्य शतपथ में हज़ारों में नहीं तो सैंकड़ों में अवश्य आए हैं। सच तो यह है कि जिस प्रकार सङ्गीत के कारण छान्दोग्योपनिषद् नाम रक्खा गया है, उसी प्रकार यदि हम शतपथ को मिथुनोपनिषद् कहदें तो कुछ अनुचित प्रतीत नहीं होता। पर एक बात साथ है, कहीं भी मिथुन का शब्द प्रजनन से अलग नहीं आया है। यह जोड़ा भी व्यापक है, इसको कहते हैं, 'काजल की कोठरी को स्वर्ग बनाना' कहां तो वेदान्तियों का कहना, "द्वारं किमेकं नरकस्य? नारी" और कहां यह, पर सच्चे दोनों हैं। है न शृङ्गार रस? सच पूछिये तो प्रजनन के साथ ही शृङ्गार रस है, नहीं तो वह शृङ्गार रस नहीं, वह है शृङ्गार विष।

अग्निहोत्र।

अब इसी प्रसङ्ग में अग्निहोत्र की व्याख्या करदें तो अनुचित नहीं। यह नित्य कर्म है। यों समझ लीजिये कि यह संक्षिप्त कुमारसम्भव नाटक है। नित्यपाठ की चीज़ होनी ही चाहिये संक्षिप्त, पर है यह भी नाटक। आइये इस नाटक का भी तत्त्व देखें। सबसे पहिले अग्निकुण्ड को देखिये, इसकी आकृति समचतुरस्र अर्थात् वर्गाकार (Square) है। तथा नीचे से बहुत छोटी पर धीरे धीरे ऊपर की ओर खुलती गई है। इन दोनों बातों का क्या कारण है! पहिले वर्गाकृति को लेलीजिये। इसका तत्त्व है समय बचाना। अग्निहोत्र-हीन भारतवासी समय का मूल्य क्या जानें। आजकल तो अग्निहोत्र के राष्ट्रीय-तत्त्व को यदि किसीने समझा है, तो योरोपियन लोगों ने। वे हरएक काम को वर्गाकार (Square) रूप में करना जानते हैं। कमसे कम समय जिससे लगे, वही काम वर्गाकार है, क्योंकि उसके प्रत्येक दो बिन्दुओं के बीच में

छोटी से छोटी रेखा अर्थात् सरल रेखा है । अभागे भारतवासियों के काम सब ही गोलमाल (Round about) हैं, उनका हवनकुण्ड विकृत होगया है ।

हवनकुण्ड के नीचे छोटे ऊपर खुले होने में भी इसी प्रकार तत्त्व भरा हुआ है । इसका तात्पर्य्य यह है, कि जो कार्य्य करो, पहिले थोड़ा आरम्भ करके धीरे धीरे बढ़ाओ । पहिले बड़ी धूम-धाम और ढोल ढमक्के के साथ काम आरम्भ करके फिर हाथ पर हाथ धर बैठना मूर्खता है । आरम्भ में शूर मत कहलाओ, परिणाम में बनो । इसी बात को वेद ने यों कहा है :—

आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धास उद्भिदः ।

(यजु० अ०२५ । मं० १४)

हमारे सब कर्म चारों ओर से अविकृत (Square) तथा उद्भिद् (growing upwards) हों, इसी आकृति के कारण वृक्ष भी उद्भिद् कहलाते हैं ॥

भारतवासियोंका हवनकुण्ड केवल विकृत ही नहीं औंधा भी पड़ा है ।

अब शतपथ तथा अन्य ग्रन्थों के वह वाक्य भी समझ में आसकते हैं, जिनमें लिखा है, जिसने अग्निहोत्र किया, उसने जगत् जीत लिया । जिसने यज्ञ में मात्रा-भर भी भूल की, वह मारा गया । यह सब वाक्य नाट्य-परक हैं, नाटक-परक नहीं । दृष्टविघात स्वयं साधारण बात है, पर अदृष्ट भाव में विघातक होने के कारण घोर हानिकारक है । यह है मीमांसा के अदृष्ट का तात्पर्य्य । हवनकुण्ड को उलटा करने से अन्धेर नहीं आता, पर वह जिस भाव का दर्शक है, उस अदृष्ट भाव को उलटा करने से क्या हानि होती है वह प्रत्यक्ष है । अग्न्याधान मन्त्र को लीजिये उसमें भी यही भाव है ।

भूः भुवः स्वः प्रभुः द्यौरिव भूम्ना पृथिवी व (च) वरिम्णा तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठे अग्निम् अन्नादम् अन्नाद्याय आदधे ।

वह प्रभु भूः भुवः स्वः है, उसे साक्षी करके मैं आकाश की सुन्दरता पृथिवी पर उतारने के लिये हे विद्वानों की यज्ञ-भूमि पृथिवी तेरी छाती पर अन्नाद अग्नि की स्थापना करता हूं, जिससे सबको अन्न प्राप्त हो ।

कैसे गहरे शब्द हैं, अन्न के लिये अग्नि की स्थापना करता हूं, याद रक्खो अग्नि बिना बिना अन्न नहीं ।

पर यह अग्नि अकेला नहीं बढ़ा सकता 'द्वन्द्वं वै वीर्य्यम्' इसीलिये अगले मन्त्र में कहते हैं ।

उद्बुध्यस्व अग्ने प्रतिजागृहि। त्वम् इष्टापूर्ते संसृजेथाम् अयञ्च अस्मिन् सधस्थे अधि उत्तरास्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत।

हे अग्ने उद्बुद्ध हो, जाग उठ, तू और यह मिलकर इष्टापूर्त्त (परोपकार के कार्य्य) करें, इसीलिये इस चबूतरे पर यजमान और सब विद्वान् उपस्थित हों, त्वम् अयञ्च तू और यह।

तू और यह कौन ? यह स्थान जान बूझकर खाली छोड़े गए हैं। यहां स्त्री पुरुष, राजा, प्रजा, गुरु, शिष्य सब ही शासक और शासनीय के जोड़े रक्खे जासकते हैं। पर मुख्यरूपेण यहां स्त्री पुरुष ही समझे जाते हैं, क्योंकि आगे चलकर सूर्य्यो ज्योतिः और अग्निर्ज्योतिः आदि अग्निहोत्र की मुख्य आहुतियों में शतपथ कहता है:—

तद्वस्त्येव प्रजननस्य रूपम्। अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहेति। तदुभयतो ज्योतीरेतो देवतया परिगृह्णाति उभयतः परिगृहीतं वै रेतः प्रजायते तदुभयतः एवैतत्परिगृह्य प्रणयति।

यह अग्निर्ज्योतिः की आहुति सन्तानोत्पत्ति का रूप है, इसीलिये ज्योति के दोनों ओर वीर्य्य के देवता अग्नि को बैठाया है, क्योंकि स्त्री-वीर्य्य को जब पुरुष-वीर्य्य दोनों ओर से घेर लेता है, तब ही सन्तान होती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यद्यपि अग्निहोत्र का आरम्भ तू और यह के अव्यक्त शब्दों से किया गया है क्योंकि यह आरम्भिक अन्या धानका भाग अन्य यज्ञों में भी उपयोगी है तथापि मुख्य आहुतियों में फिर स्त्री पुरुष का जोड़ा आगया है।

विश्वेदवा यजमानश्च।

यह शब्द भी ध्यान देने योग्य हैं यद्यपि तू और यह दोनों का मेळ आवश्यक है किन्तु तो भी जब तक दोनों में से एक मुख्य कार्य्य कर्ता न हो तब तक सङ्गठन नहीं हो सकता तब तक वह समज है समाज नहीं। रेबड़ है जत्था नहीं। नाऊकी बरात है सुसज्जित सेना नहीं। इसीलिये यज्ञ भूमि का केन्द्र है यजमान और सब उसके उपकारक हैं इसलिये वह हैं विश्वेदेवाः।

अच्छा यह तो हुआ पर सङ्गठन सफल तब ही होगा जब उसमें शासक शासनीय भाव सदा उछल कूदन मचाता रहे जब उसका प्रत्येक अङ्ग दूसरे के लिये अपने आप को बलिदान करने में एक दूसरे से आगे बढ़ना चाहे इसीलिये आगे लिखते हैं।

अयम्ते इध्म आत्मा जातवेदः तेन इध्यस्व वर्धस्व च इद्ध वर्धय च अस्मान् प्रजया पशुभिःब्रह्मवर्चसेन अन्नाद्येन समेधय ।

हे अग्ने यह मेरा आत्मा तुम्हारा इन्धन है इससे चमको और बढ़ो और हमें भी बढ़ाओ हमारी प्रजा पशु ब्रह्मतेज अन्न सब बढ़े ।

जिस सङ्गठन में प्रत्येक समिधा अपने आपको आहुति करने दौड़े वहां वृद्धि ही वृद्धि है राख न करके वृद्धि देती है यही तो इस अग्नि की विलक्षणता है पर देखना अभिमान न बढ़े सदा याद रखना ।

इद मग्नये जातवेदसे इदन्न मम ।

यह सब उस अन्तर्य्यामी परमाग्नि प्रभुके अर्पण है यह मेरा नहीं है यही सङ्गठन का प्राण है स्वार्थ आलस्य अभिमान किसी कारण से भी हो "मैं" "मेरा" आरम्भ हुई और सङ्गठन भागा ।

कर्म्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन । इदन्न मम ।

देखयजमान कहीं अग्निमात्रा अत्यधिक न बढ़जाय चाहे सन्तानाग्नि का आधान करना हो अथवा किसी अन्य अग्नि का पहिले निर्भय होकर आत्मा से पूछ ।

अदितेऽनुमन्यस्व ।

फिर बड़े बूढ़ों से पूछ ।

अनुमतेऽनुमन्यस्व ।

फिर शास्त्र से पूछ ।

सरस्वत्यनुमन्यस्व ।

फिर अन्त में जगदीश्वर की शरण में जा और कह ।

देव सवितः प्रसुवयज्ञं प्रसुव यज्ञपतिम्भगाय दिव्योगन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिः वाचं नः स्वदतु ।

इस अग्नि के सिर पर इतना जल भी रख फिर अग्नि में अग्निहोत्र की मुख्या हुतिदेना ।

हे गृहस्थ परमात्मा से प्रार्थना कर ।

सजूर्देवने सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्य्योवेतु ।

परमेश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़े हुए प्रातःकाल तेरे घर में सूर्य्य और रङ्गीली उषा का जोड़ा आए जिससे तुम यह उपदेश लो कि पुरुष दिन भर सूर्य्य की तरह गर्म्मी से अनथक काम करे और पत्नी उषाकी तरह खिली रहे काम काज करतो झींखे नही।

सायङ्काल फिर प्रार्थना कर।

परमेश्वर के साथ जुड़ा हुआ इन्दवती (सजीधजी) रात्रि के साथ अग्नि का जोड़ा मेरे घर में आवे। रात्रि के समय पुरुष अग्नि के समान, शीत तथा अन्धकार का निवारक बने और पत्नी रात्रि के समान विश्राम देनेवाली हो

यह है गृहस्थों का दैनिक कर्म्म।

अच्छा यज्ञ वा अग्नि होत्र है क्या।

सूर्य्य अग्नि होत्र है (पृ० ८४)
पुरुष यज्ञ है　　(पृ० १६४)
योनि वेदि है　　(पृ० ७४४)

स्वाध्याय यज्ञ है (पृ० ५७७)
परमेश्वर यज्ञ है तस्माद्यज्ञात् यजु० ३१।७।
अब इस क्रम को पूरा कीजिये।

सूर्य्य का यज्ञ होरहा है वसन्त घृत ग्रीष्म इन्धन शरत् हवि है (यजु३१। १४) इससे अन्न उत्पन्न हुआ उसे पुरुषाग्नि में हवन कीजिये उससे वीर्य्य उत्पन्न हुआ उसे स्त्री वेदि में हवन कीजिये उससे बालक हुआ उसे स्वाध्याय यज्ञ के अर्पण कीजिये उससे ब्राह्मण बना वह परमेश्वरार्पण हुआ उस परमेश्वर की इच्छा से फिर सूर्य्य यज्ञ हुआ और फिर वही चक्र इसी प्रकार बीच में और भी बहुत से यज्ञ कल्पना किये जासकते हैं इसीलिये वेद ने कहा—यज्ञेन यज्ञ मयजन्त देवाः और इसीलिये गीता में कहा है।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः,
यज्ञाद्भवतिपर्जन्यो यज्ञः कर्म्मसमुद्भवः।
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धिब्रह्माक्षर समुद्भवम्,
तस्मात्सर्व्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥
एवं प्रवर्तितं चक्रं। गीता ३।१४।१५।१६।

इन में से किसी विषयक बात जाननी हो तो मौलिक नियम सब विषय में एक है।

जठराग्नि को भोजन के हीन मिथ्या तियोग से

वीर्य्याग्नि को सन्तति के ,, ,, ,,

सन्तति को स्वाध्याय के ,, ,, ,,

बचाते रहो जिससे अग्नि बुझने न पाए इसी प्रकार यन्त्राग्नि में भौतिक अग्नि राष्ट्र में उत्साहाग्नि आदि अनेक अग्नियों की कल्पना हो सकती है सब का तत्त्व एक है इसीलिये यह अग्निविद्या अनन्त है यह छोटासा हवन कुण्ड अनन्त विद्या का भण्डार है परन्तु यह न भूलना चाहिये कि याज्ञवल्क्य कात्यायनादि सब आचार्य्यों ने सब से अधिक बल उत्तम सन्तान उत्पन्न करने पर दिया है। रे प्रकृति पूजक संसार क्या तू कभी अपनी सन्तति का मूल्य समझेगा तू कब चेतेगा ?

पशुहिंसा।

अब हम यज्ञों में पशुहिंसा विषयक एक ऐसे रहस्य का उद्घाटन करते हैं जिससे जहां जहां यज्ञों में पशुहिंसा का विधान है प्रायः उन सब ही स्थलों की व्याख्या हो जायगी। हम आज उदाहरण के लिये अग्नीषोम यज्ञ को लेते हैं इसका पशुछाग अर्थात् बकरी का बच्चा है। वैदिक साहित्य में अज नाम जीव का है इसके लिये यहां एकही प्रमाण पर्य्याप्त है।

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृमानां नमामः।

अजा ये ता जुषमाणा भजन्ते जहत्येना भुक्त भोगां नुमस्ताम्।

साख्य तत्त्व कौमुद्या वाचस्पतिः।

स्पष्ट है छाग छोटे बच्चे का नाम है। छाग से उपमा इसीलिये दी गई है कि साधारण बच्चा बकरी का बच्चा ही कहा जासकता है। व्याघ्र गौ आदि के बच्चे साधारण नही उन में तीव्रता सोम्यता आदि गुण हैं इसलिये साधारण बच्चे को लेले सेही उपमा दी जासकती है।

अब अग्नीषोम यज्ञ क्या है। सोमपान द्वारा ऐसी सन्तान उत्पन्न करना जिसमें अग्नि और सोम दोनों गुण इकट्ठे हों।

जिन के लिये कहा जासके।

भीम कान्तै नृप गुणैः सबभूवोप जीविनाम्।

अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः॥

अथवा

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि कोह विज्ञातुमर्हति ॥

अथवा

खल दल दलनायासहस्य भासाज्वलन्तम्।
सदय मथ दृगन्ता नार्त्तलोके झरन्तम् ॥

अग्नि और सोम क्रोध और शान्ति का यथोचित मेल किन्हीं विरले मन और विरले शरीरों में होता है शरीर में भी इन दोनों गुणों की समीचीनता (Epudilriam) की आवश्यकता है इसीलिये सुश्रुत में शरीर को अग्नीषोम कहा है पूर्णस्वास्थ्य का चिन्ह है अग्निसोम का साम्य ऐसा विलक्षण पुत्र उत्पन्न करने केलिये वीर्य्य शुद्धि के लिये सोमपान की आवश्यकता है।

इसी यज्ञ में पशुबलि भी दी जाती है अब देखना चाहिये कि इसका क्या तात्पर्य्य है। यह ग्रन्थि एक शब्द के सुलझाने से सुलझ जायगी वह शब्द संज्ञपन है। यहां ही नहीं जहां कहीं भी पशुयज्ञ है वहां आलम्भन संज्ञपन और विशासन शब्दों का प्रयोग हैं आलम्भन पर बहुत विचार हो चुका है हम स्वयं भी अपने एक लेख में इसका बिचार कर चुके हैं आज हमारी इच्छा संज्ञपन पर ही विचार करने की है। यह शब्द णिच् प्रत्यायान्त सं पूर्व्वक ज्ञा धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर बना है।

अब सब से पहिले सं पूर्व्वक ज्ञा धातु का क्या अर्थ है यह देखना चाहिये। हम बल पूर्व्वक कह सकते हैं कि वेद में यह धातु सङ्गम के अर्थ में आई है अन्य किसी अर्थ में आई हो तो कोई पाठक हमारे ध्यान में लाने की कृपा करें हम यहां दो प्रमाण उपस्थित करते हैं।

संज्ञानंनः स्वेभिः संज्ञान मरणेभिः।
संज्ञानमश्विना युव मिहास्मासु नियच्छतम् ॥

अथर्व्व ७ काण्ड ५ अनु०। सू० ५३।

संजानीध्वं संपृच्यध्वं संवोमनांसिजानताम्।
देवा भागं यथा पूर्व्वे सञ्जानाना उपासते ॥

अथर्व्व काण्ड ६। अनु० ७। सू० ६४।

हे अश्वियो हमारा अपने पराये सबसे मेल रहे। हमारे अन्दर परस्पर भी मेल रहे ऐसी कृपा हम पर करो करो।

हे मनुष्यो तुम भी परस्पर ऐसे मिले रहो ऐसे चिपटे रहो जैसे तुम्हारे बड़े उस भजनीय परमेश्वर की मिलकर उपासना करते हैं।

अब यहां कोई भी नहीं कह सकता कि इन मन्त्रों में सञ्ज्ञानी एवं सङ्गच्छ एवं के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ। अब प्रश्न हो सकता है कि णिच् प्रत्यय से अर्थ बदल गया हो सो प्रथम तो णिच् प्रत्यय से केवल इतना ही अर्थ बदल सकता है कि संगत होना के स्थान में सङ्गत करना अर्थ होजाय क्योंकि णिच् हेतुमद्भाव (Cousative) में होता है परन्तु प्रतिवादियों को तो वज्र प्रहार के बिना सन्तोष नहीं हो सकता इस लिये णिच् प्रत्ययान्त प्रयोग लीजिये।

सवः पृच्यन्तांतन्वः संमनासि समुव्रता। संवोयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः संवो अजीगमत्। संज्ञपनं वो मनसा थो संज्ञपन हृदः अथो भगस्य यच्छ्रान्त तेन संज्ञपयामिवः। ६ काण्ड अनु ८ सू० ७४.

तुम्हारे शरीर तुम्हारे मन तुम्हारे व्रत मिले रहें। वह कल्याणकारी ब्रह्मणस्पति तुम्हें हर प्रकार इकट्ठा कर चुका है।

तुम्हारे मन और तुम्हारे हृदयों का सङ्गमन हो परमेश्वर के नाम पर किये हुए पुरुषार्थ से तुम्हें इकट्ठा करता हूं।

क्यों श्रोत्रिय जी अभी नशा उतरा कि नहीं अच्छा अब देखिये यह संज्ञपन शब्द क्या रङ्ग लाता है ज़रा पशु के बलिदान की क्रिया सुनिये।

देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णोहस्ताभ्याम्। अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नियुनज्मि अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनुत्वा माता मन्यता मनु पितानु भ्रातानु स गर्भ्योऽनुसखा सयूथ्यः। अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि!

इस मन्त्र को पढ़ कर बलि पशु को यूप अर्थात् खम्भे से बांधा जाता है। अब इस मन्त्र का महीधर का ही किया हुआ अर्थ सुनिये। हे पशु नाना प्रकार के जल और ओषधियों से तुझे पवित्र करता हूं इस प्रकार के तुझे माता पिता भ्राता सहोदर सखा और हमजोली सब के सब अनुमति दें।

अब विद्वान् लोग लोचें कि यह शब्द पशु के लिये कहे जासकते हैं।

अब पशु के मारे जाने पर क्या मन्त्र पढ़ा जाता है वह सुनिये।

वाचं ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रन्ते शुन्धामि नाभिन्ते शुन्धामि मेढ्न्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि।

पत्नी कहती है–हे पशु! मैं तेरे प्राण, चक्षु श्रोत्र, नाभि, लिङ्ग, गुदा और पैरों को शुद्ध करती हूं। यह मन्त्र पढ़कर पत्नी मृत पशु के अङ्गों को जल से स्पर्श करती है। मन्त्र में चरित्र का अर्थ पैर महीधर को पदक-प्रदान का अधिकारी बना रहा है। बलिहारी है इस बुद्धि की!

अच्छा, अब और दिल्लगी सुनिये।

अध्वर्य्यु और यजमान मरे पशु से कहते हैं:—

मनस्त आप्यायतां वाक् त आप्यायताम् चक्षुस्त आप्यायताम् यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्त आप्यायतां निष्टयायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः ओषधे त्रायस्व मैनꣳहिꣳसीः।

तेरा मन शान्त हो, तेरी वाणी शान्त हो, तेरा प्राण शान्तिप्रद हो, तेरी चक्षु शान्त हों, तेरे कान शान्त हों। जो कुछ क्रूर तेरे साथ हुआ है, या उपस्थित है, सब शान्त हो। वह सब पूर्ण होजावे, तेरे दिन अच्छे गुज़रें। फिर मरे पशु की नाभि पर तिनका रखकर कहता है:—"ओषधे! इसकी रक्षा कर, इसे दुःख न पहुंचाना।"

यह सब कुछ मरे पशु से कहा जारहा है। नर-पशुओ! तुम्हारी बुद्धि कहां भाग गई?

अब इन मन्त्रों का तात्पर्य्य सुनिये—

हम पहले ही कह चुके हैं, कि अग्निषोम यज्ञ का तात्पर्य्य है ऐसा बालक उत्पन्न करना, जिसमें यह दोनों दुर्लभ गुण एकत्र होजावें। अब भावी सन्तान को प्रत्यक्षवत् लक्ष्य करके पत्नी यह कहती है। यह वाक्यालङ्कार कुछ नया कल्पित नहीं है, हम मुद्राराक्षस नाटक में पढ़ते हैं:—

चाणक्यः—(प्रत्यक्षवदाकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा) दुरात्मन् राक्षस! तिष्ठ एषोऽहमचिराद्भवन्तम्—

स्वच्छन्दमेकचरमुज्ज्वलदानशक्तिम्,

उत्सेकिना मदबलेन विगाहमानम् ।

बुद्ध्या निगृह्य वृषलस्य कृते क्रियायाम्,

आरण्यकं गजमिव प्रगुणीकरोमि ॥

लोग अपने आपसे बात करते हुए अपने शत्रु के विषय में न मालूम कितनी बार कह उठते हैं, "अच्छा बच्चू, तू मिल तो सही, देख, तेरे साथ कैसा करता हूं" । अब यहां प्रबल हृदय-वेग के कारण 'करूंगा' इस भविष्यत् के अर्थ में वर्त्तमान काल का प्रयोग है । पत्नी उस आने वाले आत्मा को सम्बोधन करके कहती है, "हे बच्चे ! मैं देवसविता को साक्षी करके उसके प्रबल हाथों को और महती पोषक शक्ति को प्रत्यक्ष जानकर यह प्रण करती हूं, कि तू अग्निष्टोम कार्य्य के अर्पण है, अर्थात् संसार के दुष्ट गुणों के दाह और जगत् में शान्ति विस्तार के लिये मैं तुझे अपने गर्भ में बुलाती हूं । मैं प्रभु को साक्षी करके प्रण करती हूं, कि जब तू बड़ा होगा तो हे मेरे लेले ! (प्यार से बच्चे को लेला कहती है) मैं मोहवश तुझे खुला न फिरने दूंगी, तू अवश्य गुरु के खूंटे से बांधा जायगा । मैं तो उस दिन को मनाती हूं, जब तू बड़ा हो और अग्निषोम गुण प्राप्त करने गुरुजी के घर जाए । उस समय मैं, तेरे पिता, भ्रातृ (चाचा आदि के लड़के), सहोदर, मित्र हमजोली सब प्रसन्न होकर मङ्गल मनाते हुए गुरुजी के घर भेजें । इसीलिये मैं उत्तम जल और ओषधि सेवन करूंगी । मैं फिर कहती हूं कि मैंने तुझे अग्नीषोम यज्ञ के अर्पण किया । मैं तेरी वाणी, तेरे प्राण, तेरे आख, कान, नाभि, लिङ्ग, गुदा सब इन्द्रियों को पवित्र करती हूं, अर्थात् ऐसा यत्न करूंगी, कि तेरे किसी इन्द्रिय में विकार न हो, और ऐसे ही गुरु के पास भेजूंगी, जो तुझे इन इन्द्रियों के सदुपयोग की शिक्षा दे, और तेरे चरित्रों को पवित्र करे । मेरे बच्चे ! तू गुरुकुल में जाकर तेरा मन आप्यायित हो, तेरी वाणी आप्यायित हो, तेरी चक्षु आप्यायित हो, तेरे कान आप्यायित हों । गुरुकुल में तेरे हित के लिये गुरु लोग कोई कठोरता वर्त्तें, अथवा और जो कुछ तुझे विद्याभ्यास आदि के कारण कृशतादि प्राप्त हो, वह भी पूरी होजाय । तू अक्षुण्ण हो, तू शुद्ध हो, तेरे दिन अच्छे बीतें ।" फिर जो सोम आदि ओषधि विद्वान् दें, उसे लेकर वह आशीर्वाक्य कहती

है, "हे ओषधि ! तू आने वाले बालक के लिये रक्षा-कारिणी हो, उसे कोई कष्ट न होने दे।"

अब हम अपने किये अर्थ की पुष्टि में प्रमाण उपस्थित करते हैं।

(१) हमारा किया अर्थ मनुष्यों के सम्बन्ध में होने से ठीक है। पशु के माता, पिता, सखा, सहोदरादि का अनुमति देना और वह भी वध के लिये उपहासमात्र है।

(२) मरे हुए की वाणी प्राणादि की शुद्धि कहना और भी अधिक उपहास है। इसी प्रकार उसे मारकर फिर आप्यायताम् की माला जपना, जले पर नमक छिड़कना है।

(३) वाक्, प्राण आदि शब्दों का जिह्वा, नासिकादि अर्थ लेना शब्दों के साथ अत्याचार है। जब हमारा किया हुआ अर्थ मुख्यार्थ का अनुग्राहक है, तो मुख्यार्थ का निग्राहक अर्थ क्यों लें?

(४) फिर यहां एक और बात देखने योग्य है। शतपथ के जिस शब्द का अर्थ यहां पशु-बध लिया गया है, देखना चाहिये वह क्या शब्द है? वह शब्द वही "संज्ञपन" है जिसकी चर्चा हमने आरम्भ में उठाई थी और जिसका अर्थ हम वेद के प्रमाणों से ही "सङ्गमन" सिद्ध कर चुके हैं। अब देखना चाहिये, शतपथ स्वयं इस विषय में क्या कहता है?

तन्नाह जहि मारयेति मानुषꣳहि तत् संज्ञपय अन्वगन्निति तद्धि देवत्रा स यदाह अन्वगन्नित्येतर्हि ह्येष देवान् अनु गच्छति तस्मादाहान्वगन्निति।

पशु के लिये यज्ञ में जहि, मारय यह शब्द नहीं कहते क्योंकि यह तो साधारण मनुष्यों की भाषा है। देवताओं की भाषा में 'संज्ञपय, अन्वगन्' यह शब्द प्रयुक्त होते हैं क्योंकि यही देवोचित व्यवहार है। देवता जिस पशु को मारना चाहते हैं वह उसके पशुत्व को मारते हैं नकि उस पशु को। वह 'मारय' नहीं कहते किन्तु 'संज्ञपय' (संगमय) कहते हैं, अर्थात् इसे हमारी सङ्गति में लाओ। वह 'अन्वगन्' कहते हैं अर्थात् इसे हमारा अनुगामी बनाओ। देखिये शतपथ स्वयं ही कह रहा है।

"सो यह जो कहता है 'अन्वगन्'—वह इसलिये कि फिर वह देवताओं का अनुगामी हो जाता है। इसीलिये 'अन्वगन्' यह शब्द बोला जाता है। कितना स्पष्टभाव है? मनुष्य लोग मारने को बीभत्स कार्य्य करते हैं, किन्तु देव लोग उसके पशुत्व को मार कर उसे अपना अनुगामी बना लेते हैं, यही उनका मारना है। तद्धि देवत्रा।

यह है यज्ञों में पशुहिंसा। ऐसी पशुहिंसा तो रोज़ हुआ करे। अग्नीषोम में भी उपदेश है कि यह बच्चा चाहे कैसे अच्छे संस्कार लेकर आए, जबतक किसी विद्वान् के खूंटे से न बांधोगे तब तक निरा छाग ही रहेगा। इसीलिये इसे किसी विद्वान् के घर भेजना। इसीलिये पत्नी के मुख से "वाचं ते शुन्धामि" आदि प्रतिज्ञाएं कराई जाती हैं। इस प्रकार परम-कारुणिक कल्पसूत्रकारों ने जो मधुर कल्पनाएं की थीं, उनका मर्म न जानकर अथवा स्वार्थवश होकर पामरों ने कैसा हिंसा-जाल विस्तीर्ण किया है? । हे भगवन्! इससे रक्षा करो! इसीलिये तो वेद भगवान् ने पहले ही घण्टा-घोष किया था, "मुग्धा देवा उत शुनाऽयजन्त उत गोरङ्गैः पुरुधा यजन्त।"

यहां हमने अग्नीषोम में इन मंत्रों का क्या अर्थ है? यह दिखा दिया। इसी प्रकार अन्यत्र गुरुशिष्य व्यवहार, शल्य चिकित्सादि में भी इनका विनियोग होसकता है। गुरुशिष्य व्यवहार में विनियोग करते समय तो वर्त्तमान का भविष्यत् अर्थ में भी प्रयोग मानने की आवश्यकता न रहेगी। इसी प्रकार अन्यत्र भी जहां यह वाक्य विनियुक्त हो सकते हों करने चाहिये; क्योंकि मन्त्रार्थ विनियोग का नियामक है, विनियोग मन्त्रार्थ का नहीं। परमेश्वर ने यह मंत्र ख़ास अग्नीषोम यज्ञ के लिये घड़कर नहीं भेजा। कल्प सूत्रकारों ने अपनी कल्पना से उनका यथोचित स्थान में विनियोग किया, इसीलिये वह कल्पसूत्रकार कहलाए। हां जिन्होंने मन्त्रार्थ से विपरीत स्थानों में मन्त्रों को तोड़ मरोड़कर वाणी की जीभ और प्राण की नाक बनाकर विनियोग किया, उनकी बुद्धि पर जितना रोया जाए थोड़ा है।

नाटक की यथार्थता।

अब हमें एक प्रश्न का उत्तर देना और शेष रह गया। यह पूछा जासकता है कि नाटक करने वाले नाटक में यथा सम्भव यथार्थता लाने का यत्न करते हैं। यदि कोई अपने नाटक में सचमुच का राजवेष पहना कर सचमुच

चन्द्रोदय दिखला सके तो क्यों न दिखाए? इसी प्रकार यदि कोई इस काल्पनिक पशुत्व की हिंसा को आचमनादि की शुद्धि द्वारा आभ्यन्तरिक शुद्धि की तरह स्थूल कर्म्म द्वारा यथार्थ दिखाना चाहे तो क्यों न दिखाए। उनके प्रति हमारा यह उत्तर है कि यथासम्भव का अर्थ तुम क्या लेते हो? देखो नाटक में जहां कोई ख़ून दिखलाया जाता है वहां ममुष्य झूठमूठ मरा हुआ सा बनकर पड़ जाता है। यदि वहां सचमुच ख़ूनही कर दिया करो तो नाटक में कैसी यथार्थता आजाय। लोग यही कहेंगे कि राजाज्ञा द्वारा ख़ून में प्राणदण्ड होने से यथार्थ ख़ून नहीं दिखलाया जासकता। तो बस हमारा यही कहना है कि "मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे, पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते, मुग्धा देवाः" इत्यादि श्रुतिवाक्य तथा मा हिंस्यात् सर्व्वा भूतानि इत्यादि ब्राह्मण वाक्यों के कारण आप के नाटक के इस भाग में भी यह रस-विघातिनी बीभत्स क्रूरता यथार्थ नहीं आ सकती।

प्रतीत होता है कि यथार्थता के लिये पहिले लोगों ने ब्रीहिमय पशु की आहुतियां दी होंगी। इसीलिये महाभारत में आया है "पुरा ब्रीहिमयः पशुः"। भागवत में भी पिष्ट पशु का वर्णन है। पहिले यह मानस व्यापार था, फिर पिष्ट पशु बना, फिर जब संसार में अज्ञान, लोभ और मदान्धता बढ़ी तो पूरी यथार्थता हो गई। वस्तुतः पशुत्व की हिंसा पशुहिंसा है, पशुओं के शरीर की हिंसा पशुहिंसा नहीं। इसीलिये महाभारत ने कहा है 'धूर्त्तैः प्रवर्त्तितं चक्रं नैतद्वेदेषु विद्यते'॥ महाभारत शान्ति २६४ अ०।

और इसीलिये अथर्व्ववेद ७म काण्ड में प्रार्थना है:—

य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्रणोवोचस्तमिहेह ब्रवः।

अर्थात् हे प्रभो! ऐसा गुरु भेज जो हमें मन से यज्ञ करना सिखाए।

इस ग्रन्थियां को समझ लेने से श्येनयागादि अनेक ग्रन्थियां खुल गईं। जो शत्रु को मारना चाहे वह निरन्तर ध्यान द्वारा ऐसी सन्तान पैदा करे जो शत्रु को मार गिराए। इसके लिये अग्नि की समिधाओं का चयन भी श्येन अर्थात् बाज़ जैसा हो, वह ध्यान भी बाज़ का करे किन्तु यह निन्दित यज्ञ है। श्येनयाग का यही अर्थ शबर स्वामी ने अपने मीमांसा भाष्य में किया है।

इसी प्रकार वरुण का पशु मेढा बताया गया है। इसका अर्थ है कि पोलिस के काम केलिये मेढे के समान गुण्डे पशुओं को अपना अनुगामी बना कर पोलिस का काम ले, क्योंकि गुण्डे ही सुधर कर गुण्डों को पकड़ सकते हैं। यमराज का पशु भैंसा है, अर्थात् दण्डाधीश के पद से राजा भैंसे के समान तमोगुणी भयङ्कर आदमियों से जल्लाद आदि का काम ले। और जिस यज्ञ में उन पशुओं का वर्णन है वहां तदुपयोगी सन्तान का वर्णन है यह है। हमारा कुमार सम्भव। इसी प्रकार हम समय समय पर बाजपेय, अश्वमेध आदि पर प्रकाश डालने का यत्न करेंगे और यदि प्रभु ने सामर्थ्य दी तो किसी दिन यज्ञों पर से इस घोर कलङ्क को दूर करने में सफल होंगे। धन्यवाद है उस प्रभु का जिसने ऋषि दयानन्द सा गुरु भेजकर हमें मन से यज्ञ करना सिखाया। ऋषिवर! यही आप के इस तुच्छ शिष्य की शताब्दी के अवसर पर आनन्दाश्रुस्नात भेंट है। इससे अविद्यान्धकार दूर हो।

सभ्यता की सच्ची कसौटी।

(पण्डित देवेश्वर सिद्धान्तालङ्कार)

आजकल सभ्य जगत् में चारों ओर यह आवाज़ सुनाई पड़ती है कि हम लोग उन्नति कर रहे हैं, मनुष्यसमाज उन्नति कर रहा है और पश्चिम की जातियां या White Races उन्नति को चरम सीमा पर पहुंच चुकी हैं। जिस क्षेत्र में भी देखिए, मनुष्य उन्नति करता हुआ दीखता है। देश और काल की कठिनाइयों और दूरियों को मनुष्य ने जीत लिया है। हज़ारों मीलों का सफ़र दिनों में और सैंकड़ों का घण्टों में तै कर लिया जाता है। आकाश के विस्तीर्ण वायुमण्डल और गंभीर सागर के कोनों को मनुष्य ने खोज डाला है। भूमि के गहरे पेट के अन्दर हज़ारों फ़ीट की नीचाई पर दबे सोना, चांदी और हीरा मोती आदि बहुमूल्य पदार्थों को खोद निकाला है। बढ़ती हुई जन-संख्या और उसकी बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये भूमि की उपजाऊ शक्ति को नाना प्रकार के कृषि के यंत्रों और बनस्पति तथा कृषिशास्त्र के साधनों से कई गुणा कर दिया गया है। सभ्यता का वर्णन करते हुए कहा जाता है कि सभ्य मनुष्य की संख्या में जहां वृद्धि होती है, वहां उसकी आवश्यकताओं में भी वृद्धि होती

है, और उस जाति वा देश में सभ्यता अपनी चरम सीमा को पहुंची हुई समझनी चाहिये, जहां इन आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रबन्ध भी हो और मनुष्य की संपत्ति और भोगसामग्री उसकी इच्छाओं के अनुपात में पाई जावे। सभ्य मनुष्य प्रकृति की शक्तिओं को खोज कर उन पर अधिकार वा प्रभुत्व प्राप्त करता है। नाना प्रकार के कला-कौशल का आविष्कार करके थोड़ी शक्ति और थोड़े धन से अधिक लाभ प्राप्त करता है। वह जहां जाना चाहे जा सकता है। जिस प्रकार आमोद प्रमोद से अपना जीवन बिताना चाहे बिता सकता है, और जिस पदार्थ का जब जिस प्रकार से उपयोग वा भोग करना चाहे, कर सकता है। यही सभ्यता की सच्ची व्याख्या समझी जाती है। संक्षेप में यों कह सकते हैं कि मनुष्य इन्द्रियों के विषयों पर पूरा २ प्रभुत्व प्राप्त करले और इन्द्रियार्थों को इच्छानुसार भोग सके, यह सभ्यता का आधुनिक लक्षण है।

मनुष्य भोग करता है, और उससे नए २ रोग उत्पन्न होते हैं, पर साथ ही साथ इन रोगों का इलाज और औषधियां भी आविष्कृत हो रही हैं। मनुष्य जाति रोगों और बीमारियों से दुःखी है, पर साथ ही साथ डाक्टरों की संख्या भी बढ़ रही है। इसका नाम सभ्यता कहा जाता है। मनुष्य का चित्त अकेले-एकांत में-नहीं लगता, इससे थियेटर, सिनेमा और खेल तमाशे राग रंग और तत्संबन्धी समूहों, सोसाइटियों, संगठनों की वृद्धि होती है। बिजली, भाफ शक्ति, और गैसशक्ति इस आमोद प्रमोद को सुगम और सुन्दर बनाने में मनुष्य की दासता स्वीकार करती है, इस प्रकार मनुष्य अपने मानसिक उदासी रूपी क्लेश पर अधिकार प्राप्त करता है, इसे सभ्यता का नाम दिया जाता है। ब्रह्मचर्य्य के अभाव, स्त्री पुरुषों के लैंगिक संबन्धों के बिगड़ने से भोगवाद की प्रवृत्ति बढ़ने और विषय सेवन से गनोरिया, सिफ़लिस, पागलपना आदि रोग बढ़ते हैं और साथ २ नई औषधियां और पागलख़ाने वा Public Houses बनाए जाते हैं। इसका नाम सभ्यता पुकारा जाता है। निर्बल, अयोग्य, और दुराचारी लोग विषय की गुलामी करके मर्यादा से च्युत हो सन्तान उत्पन्न करते हैं और उन बच्चों को सीधे मार्ग पर लाने के लिये, शिक्षा देने के लिए, सदाचारी बनाने के लिये, और उनको सच्चे नागरिक बनाने के लिये सुधारपाठशालायें राज्य और जाति की तरफ़ से खोली जातीं हैं। इसका नाम सभ्यता है।

देश की जन-संख्या बढ़ती है, अपने देश में रहने को स्थान नहीं, खाने की पर्याप्त सामग्री नहीं। जाति के लोग दूसरे देशों में जाकर बसते है, उन्हें

बसाते Colonise करते हैं। उस देश के आदि लोगों को शिकार बनाते हैं। उन्हें असभ्य जंगली और पशु बनाकर उनका संहार करते हैं। उनके देश पर अपना राज्य जमाते हैं, उनको अपने घरों से बाहर निकाल देते हैं। यदि वह लोग भी कुछ दृढ़ हों, मुकाबिला करने के योग्य हों तो उन्हें अपनी शरण (Protection) में लेकर उन्हें भी अपने सदृश सभ्य बनाने के मिशन की दुहाई देकर उनके देश को अपना रक्षित राज्य Protectorate बना लेते हैं। उन के देश की प्राकृतिक संपत्ति, खनिज दौलत, और भूमिजन्य अनाज को अपनी मलकीयत बनाकर उनको अपने अधीन कर लेते हैं। अधीन जाति को बात २ में अपने इन सभ्य स्वामियों की आज्ञा, सहायता, और सलाह लेनी पड़ती है। इसको सभ्यता Progress वा Extension उन्नति और वृद्धि कहा जाता है। यह वृद्धि अवश्य है, उन्नति ज़रूर है, पर एक तरफ़ी है। एक जाति मरती है और उसकी हड्डियों, मांस, लहू, और प्राण पर दूसरी मनुष्य-जाति जीती है। एक के प्राण, संपत्ति, बलका क्षय, नाश, और हनन किया जाता है, और दूसरे का उदय, अभ्युदय होता हैं। सो यह सभ्यता, उन्नति, अभ्युदय एक तरफ़ा है, यह मानना पड़ेगा। इस पर ये सभ्य मनुष्य यों कहते हैं कि हां कहीं उन्नति, कहीं अवनति अवश्य हो रही है, पर on the whole संपूर्ण तौर पर विचार करने पर यही प्रतीत होता है कि उन्नति ही हो रही है। ठीक है, यह बात तो सच ही है, अपना पेट भर जाने पर सारा संसार सुखी और तृप्त ही दीखता है और अपने मरने पर दुनिया सारी ही मरती हुई दीखती है। "आप मरे तो जग परलो"। जब योरुप में १९१४ में महाभारत का युद्ध छिड़ा और जर्मनी ने इंगलैण्ड और फ्रांस को बुरी तरह दबाया और परेशान कर दिया, तब इन देशों ने सभ्यता के उज्ज्वल नाम पर मनुष्य जाति के संहार, संसार के सत्यानाश, स्वतंत्रता के समूलोच्छेदन हो जाने की दुहाई दे देकर उन देशों से सहायता मांगी थी, जो इनके अधीन हैं। क्या आश्चर्य्य है! वाह री सभ्यता! तू कैसी विचित्ररूपा नटी है! जिन देशों की स्वतंत्रता का हरण इन देशों ने किया, उसी स्वतंत्रता की दुहाई देकर इन देशों से अपरिमित जनबल और धनबल भी लिया। इस खेल का, इस जादू की पुस्तक का, नाम सभ्यता Civiliation है।

कहा जाता है कि हमारी इच्छा का कोई जाति, देश वा प्राणी प्रतिघात नहीं कर सकता। हमारे नागरिक सब स्थानों में सब कालों में ज़मीन के ऊपर, नीचे, पानी के तल पर, और समुद्र की तह में, आसमान के कोनों और मैदा-

एवरेस्ट की चोटियों-पर धावा कर सकते हैं, इस लिए हम सभ्य हैं। प्राचीन काल में जब लोग जंगलों में रहना शहरों में रहने से उत्तम समझते थे, जब लोग शरीर की आंतरिक शक्तियों की वृद्धि, उन्नति और संयम को बाह्य प्राकृतिक शक्तियों के विजय से श्रेष्ठ गिनते थे, उस समय राजाओं को जो सुख बड़े प्रयत्न और पुरुषार्थ से मिलते थे, वह सुख आज यूरोप और अमरीका के एक सभ्य मनुष्य के घर में मौजूद हैं। वह जब चाहता है आग जल जाती है, बटन दबाते ही रोशनी हो जाती है, भोजन पक जाता है, आप ही प्लेट्स मेज़ पर आजाती और भोजन कर चुकने पर धुल जाती हैं; इशारा करने पर कमरा साफ़ होता है। फ़ोन पर झट बातचीत कर लो, जिससे चाहो मिल लो, जिस स्थान को चाहो देखलो। घर बैठे २ सुन्दर राग और वक्तृतायें सुन लो, घर बैठे चाहो तो पुस्तकों, Records, Cinemas से दुनियां की सैर करलो, इसका नाम सभ्यता है। संक्षेप यह कि इच्छायें करो, फिर करो, और उन्हें पूरा करते चले जाओ। पर शोक कि मनुष्य के अन्दर की शक्ति-वृद्धि पर इन सभ्यताभिमानियों को अभी विजय प्राप्त नहीं हुई। और इस पराजय ने सब विजय फीकी कर रक्खी है। भोग करते २ बुढ़ापा और मौत आजाती है और इच्छायें अन्दर ही रह जाती हैं, इसका इलाज क्या हो?

पुराने लोग योग की सिद्धियों से जो करिश्मे तथा चमत्कार करते वा जो शक्तियां प्राप्त करते थे, वह आधुनिक सभ्य आदमी ने प्रकृति-विजय से प्राप्त करली हैं। पर पुराने योगियों ने जीवनी शक्ति की वृद्धि और संयम का जो मूल मन्त्र खोज निकाला था, वह आजकल के सभ्य आदमी से छिपा हुआ है। सभ्य मनुष्य ने इस बात का प्रयत्न किया कि जीवनी शक्ति की बनावट का पता लगाया जावे कि यह किन २ तत्वों के किस अनुपात में संयोग से बनी है और यह जीवनी शक्ति भौतिक विज्ञान की प्रयोगशाला में कैसे बताई जा सकती है। परीक्षण किये गए और फिर परीक्षण किये गए। आशाभरी निगाहों से टिकटिकी बांध कर सभ्य मनुष्य इन परीक्षणों को तरफ़ देखता रहा। उस ने विश्वास किया कि उसके वैज्ञानिक ऋषि जब इस मूल मन्त्र का दर्शन कर लेंगे तब ईश्वर की संसार में कोई भी आवश्यकता न रहेगी और ईश्वर के स्थान पर मनुष्य को बिठा दिया जावेगा। उस समय सभ्यता अपनी चरम सीमा पर पहुंच जावेगी—पर संयोग वश उसकी आँखें खोलने के लिये इस यत्न में उसको निराशा उठानी पड़ी।

यह ठीक है कि प्राकृतिक-शक्ति प्राप्त करना विजय है, सामर्थ्य है, पर प्राकृतिक-सम्पत्ति और भोग-साधनों के प्राप्त होजाने पर उसी अनुपात में भोग-लालसा का बढ़ते जाना और भोग भोगने में आन्तरिक-शक्ति का क्षय होते जाना, पर भोग-वासना और लालसा का न हटना—यह पराजय का चिह्न है। पाठकगण ! यहीं पर पश्चिमी सभ्यता पराजित हुई है । मनुष्य की इच्छायें बढ़ रही हैं, भोग, साधन, सम्पत्ति बढ़ रही हैं, भोग भोगे जारहे हैं, पर लालसा की आग बुझने की जगह भड़क रही है । "न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति" यह मनुवाक्य स्मरण होआता है । भर्तृहरिजी का वचनः—

"भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता आशा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ।"

याद आता है ।

मनुष्य जीवन-यात्रा की इस मंज़िल पर पहुंचकर सच्चे दिल से जिज्ञासा करता है, कि यदि जीवन की सफलता की, मानवी-सभ्यता की, यह कसौटी नहीं तो और क्या है ? मनु भगवान् उत्तर देते हैं ।:—

यमान् सेवेत् सततं न नियमान् केवलान्बुधः ।
यमान् पतत्यकुर्वाणः नियमान् केवलान्भजन् ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य तथा अपरिग्रह ये यम हैं । मनु कहते हैं कि यमों का सेवन करने वाला मनुष्य वा जाति पतित नहीं होती, उन्नति ही करती रहती है । पर केवल नियम अर्थात् बाहर की शुद्धि सफाई, परिश्रमी जीवन से प्रकृति पर विजय, भोग-सामग्री के संग्रह, प्रकृति के अध्ययन और तज्जन्य विजय से अपने ऐश्वर्य्य पर भरोसा वा विश्वास से ही कोई जाति सदा उन्नति की तरफ़ नहीं जा सकेगी । मनु की राय में सभ्यता की कसौटी सब प्राणियों से आत्मवत् व्यवहार, अन्दर की शक्तियों पर विजय, आन्तरिक-शक्ति का संयम, बाह्य भोगसामग्री की लालसा का नाश, और संग्रह-हीनता वा त्याग है । पहिला यम अहिंसा है,जिसका अर्थ किसी देश,किसी भी काल, और किसी भी निमित्त किसी प्राणी को दुःख वा क्लेश न देना, किसीका नुक़सान व हनन न करना है । और मनु के यहां मानवी-सफलता वा सभ्यता की कसौटी अर्थात् जांच इस बात से होती है कि कौन मनुष्य कितना अहिंसक है । इसको सार्वभौम धर्म कहा गया है, और इसकी प्रतिष्ठा तब होती है जब कोई भी मनुष्य

किसी भी अवस्था में किसी प्राणी की हिंसा न करे। यह है सभ्यता की कसौटी। पर आजकल सभ्यता की कसौटी किसे समझा जाता है। आज जो जाति, जो देश वा जो मनुष्य-समुदाय, सब देशों,सब कालों,पृथ्वी के प्रत्येक कोने पर अपना ऐसा प्रभुत्व जमाले कि जब चाहे जिसे चाहे रोकले, घेरले,कैद करले,मार डाले,जहां और जब चाहे अपनी तोपें, हवाई जहाज़, स्टीमर, क्रूज़र, सेनायें भेजदे,जिसका और जितनों का चाहे ख़ून बहादे, उसे उतना ही सभ्य गिना जाता है। जापान जब तक रक्त-वाहिनी विद्या में अकुशल रहा, असभ्य था; पर जब उसने रूस-जापान युद्ध में सहस्रों और लक्षों का कामयाबी से रक्तपात करके दिखा दिया, तब उस की गिनती सभ्य देशों में होने लगी। एक पाश्चात्य विद्वान् ने ही लिखा है कि आज कल एक दूसरे को नुक़सान पहुंचाने की शक्ति से सभ्यता Civilization की परख की जाती है।

मनु ने सत्य को सभ्यता को दूसरी कसौटी गिना है। सत्य के अर्थ यथार्थ बात के यथार्थ रूप में यथार्थ भाव से प्रचार वा कथन के हैं। स्वार्थ वश किसी बात को कमोबेश वा दूसरा कोई रंग देकर कहना, प्रचार करना सभ्यता नहीं, अपितु मनु के अनुसार असभ्यता में शामिल है, किन्तु आज कल भाषा का पांडित्य और उन्नति इस बात में समझी जाती है कि असली भाव को इस तरह छिपा लिया जावे कि दूसरा प्रसन्न भी हो जावे, उसे वस्तुतः प्राप्त भी कुछ न हो, और अपना काम भी निकल जावे। दूसरे को केवल सूखी आशाओं, और न पूरी होने वाली उम्मेदों पर ही जिला २ कर वक्त गुज़ार दिया जावे। ऐसे लेखों को नैतिक लेखों का नाम दिया जाता है और जो मनुष्य इस कला में प्रवीण हो, उसे सभ्य नीतिज्ञ कहा जाता है और वह अन्य सरल मनुष्यों की अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय और पूजनीय समझा जाता है। शान्ति के समय सामान्यतः और युद्ध के समय विशेषतः खबरों को ऐसा रंग देकर छापा जाता है जिससे अपनी स्वार्थ-सिद्धि हो जावे और शत्रु का नुक़सान दिखाया जावे। इस प्रकार के हुनर को सभ्य जातियों में खास कला समझा जाता है। इसी प्रकार के पत्र-सम्पादकों की ख़ास क़दर है। सब लोग इस प्रकार के पत्रों के मालिक बनने, उन को सहायता देकर उनकी संरक्षा करने और इस तरह जनता की सम्मति को अपने वश करने तथा उसको अपनी इच्छानुसार परिवर्त्तन करने में अपना गौरव समझते हैं। योरप और अमरीका में इस बात के लिये बहुतसा धन व्यय किया जाता है। बड़े २ भारी

संगठन हैं। धनी लोग और सरकारें अधिक से अधिक समाचार-पत्र अपने हाथ मे रखने का सब प्रकार से यत्न करते हैं और इस प्रकार लोकमत को अपने हाथों में रखते हैं। भिन्न २ देशों के राज्य-प्रबन्ध इसके लिये जुदा २ विभाग रखते हैं। युद्ध के दिनों में यह कला ख़ास उन्नति पर थी। हनन-शक्ति को बढ़ाने के लिये सभ्य जातियों में सेनायें बढ़ाई जाती हैं। तोपें, बन्दूकें, मशीनगनें, हवाई जहाज़, क्रूज़रस, सबमेरीन्स और डिस्ट्रायर आदि अधिक संख्या में तैयार किये जाते हैं। असत्य समाचारों के प्रचार के लिये अपने समाचार पत्र और प्रकाशन-कार्यालय खोले जाते हैं। अपने स्वार्थ के उपयुक्त इतिहास ग्रन्थ और राजनीति के ग्रन्थ विद्वानों से तैयार कराए जाते हैं और सभ्य जातियां अपने अधीन देशों के शिक्षणालयों, स्कूलों, और कालिजों में उन पुस्तकों को पढ़ाती हैं। स्वजाति तथा स्वदेश के स्वार्थ के लिये दूसरे देशों के इतिहास, धर्म, तथा सभ्यता को हीन दशा में दिखलाया जाता है। यह विचित्र दिमाग़ी यत्न भी सभ्यता-प्रचार में शामिल हैं। इस प्रकार पुरातन आर्यों की सभ्यता की कसौटियां, जो मनु ने गिनाई हैं और आज कल के सभ्य जगत की उन्नति की परख में भारी भेद है। आइये दो तीन और कसौटियों की जांच पड़ताल करें।

(असमाप्त)

चार दिन।

[लेखक—श्रीयुत वंशीधर विद्यालङ्कार]

(१)

अपने बचपन में ही मातृपितृ-हीना हो गई थी। मेरा जो कुछ लालन पालन हुआ वह अपने मामा के घर में। मेरे मामा की भी कोई सन्तान नहीं थी, इसीलिये वे मुझे बहुत अधिक प्यार करते थे। मैं उन्हें "ममुआ" कहा करती थी और वे मुझे प्यार भरी भाषा में पुकारा करते थे "चवन्नी"। इसका कारण यह था कि जब मेरे पिता जीवित थे और मैं कभी अपने मामा के घर जाती थी तो उनसे नियम-पूर्वक चवन्नी मांगा करती थी। वे भी मुझे तंग करने के लिये कभी पैसा निकालते थे, कभी इकन्नी और कभी दोअन्नी, किन्तु मैं जब तक चवन्नी नहीं मिलती थी, रूसा हुआ मुंह बना लेती थी। किन्तु अब उन बातों को याद करने से लाभ ही क्या? जितना लिख गई हूं, हृदय में प्रेम उमड़ आने से ज़बरदस्ती लिखा गया है।

मैंने जिस समय ठीक १६ वें वर्ष में पैर रक्खा, उसी समय मेरे मामा का देहान्त हो गया। मैं यह कहना भूल गई हूं कि मुझे मामी का मुख देखना एक दिन भी नसीब नहीं हुआ था। मेरे पैदा होने से एक वर्ष पूर्व ही वे संसार को छोड़कर जाचुकीं थीं। अब इस घर में मेरा कोई भी नहीं रहा। मैं उस समय के दुःख का किसी प्रकार भी वर्णन नहीं कर सकती और यदि करूंगी भी तो वह कौनसा हृदय होगा जो उसे अनुभव भी करेगा? हिन्दु घर में माता पिता के जीते हुए एक लड़की को बड़ा कष्ट भोगना पड़ता है, फिर उनके दिवंगत होने पर तो उसके दुःखों का ठिकाना ही क्या? मुझे अब अनुभव हुआ कि हिन्दु-घर में लड़की, स्त्री, माता, असहाय होने के मूर्तरूप हैं। कैसे लिखूं?

मैं एक उस फूल के समान होगई थी जो नितान्त एकान्त में खिला होता है, जिसकी शोभा को देखनेवाला इस संसार में विरला ही होता है। छिपाऊं ही क्या? बात यह थी कि मेरे समस्त शरीर में यौवन का साम्राज्य हो रहा था। मालूम होता है कि भगवान् ने बड़े ही कोमल हाथों से सौन्दर्य-सृष्टि के सार को कुछ थोड़ा सा लेकर मेरी रचना की थी। इसीलिये यदि मैंने अपनी एक फूल से उपमा देदी तो इसमें हर्ज ही क्या? सौन्दर्य पर स्त्रियों का कुछ न कुछ जन्म-सिद्ध अधिकार होता ही है, और इसे सब जानते हैं। मैंने यही सोचकर इतना लिखने की चेष्टा की है।

मैंने यह इस लिये भी लिखा है कि मुझे जिस समय चारों ओर से चिन्ताओं ने घेर लिया था और मैं हर समय उदास सी रहा करती थी, उस समय एक यही रूप का भाव था जो मेरे हृदय में शान्ति उत्पन्न करता था। पता नहीं यौवन में रूप-माधुर्य हृदय पर क्यों प्रभाव डालता है? मामूली प्रभाव नहीं-जादू का सा।

(२)

आखिर मैंने घर बार छोड़कर भिखारिणी का वेश धारण किया। मुख पर कुछ थोड़ीसी राख लगाती थी और मैले मैले कपड़े पहिनती थी। मुझे मालूम नहीं था कि मुझे किधर जाना है? यह जीवन किस काम आयेगा?

एक दिन की बात है कि मैं प्रातः काल नदी में स्नान करने गई हुई थी। सूर्य भगवान् अभी निकले नहीं थे। उनके आने का सन्देशा उनकी किरणों से पहुंच चुका था। दिशाओं में लाली छाई हुई थी। वृक्षों में पक्षियों ने अपने गीत गाने प्रारम्भ कर दिये थे। मैं आनन्द से नहा रही थी-उस समय नदी-तट पर कोई भी व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं होता था। अचानक मेरी टांगों में बहता

हुआ एक बड़ा भारी पत्थर आ लगा। मैंने उसको उठाकर देखा तो वह महादेव की एक मूर्ति थी। जिस समय मैंने उसे पानी में से निकाला था, ठीक उसी समय एक साधु भी नदी में स्नान करने के लिये आया था। जिस समय मैंने उस मूर्ति को पानी के भीतर से निकाला, उस समय मालूम होता है कि साधुने इसे देख लिया था। उसने नदी के किनारे खड़े होकर चिल्लाना प्रारम्भ कर दिया—"देवी" "देवी" तुम "देवी" हो, तुम मानुषी नहीं हो। जब और २ लोग स्नान करने के लिये आने लगे, मैं झटपट मूर्ति हाथ में लिये हुए निकली। अभी साधु मेरे पास पहुंचा नहीं था कि मैंने अपने कपड़े पहिन लिये और जाने का उपक्रम करने लगी। साधु एक दम आकर मेरे पैरों पर गिर गया। कहने लगा-लोगो! आओ-प्रणाम करो। यह देवी है-दिव्यलोक से आई है। कैलाश छोड़कर महादेव बाबा इसके लिये यहां तक चलकर आये हैं। भला सोचो तो सही—कि नदी की पानी की धारा में इतना भारी पत्थर भी बह सकता है। मैं आप से सत्य कहता हूं कि यह देवी है-इसे प्रणाम करो और अपने इस लोक और परलोक को धन्य करो। यह कहकर साधु मेरे पैरों पर बारम्बार गिर गिर कर प्रणाम करने लगा। देखते देखते वहां बड़ा भारी जन-समुदाय इकट्ठा होगया। सब बढ़ बढ़कर मेरे पैरों पर गिरने लगे-मैं जितना सङ्कोच कर भागना चाहती थी, उतना ही मैं जन-समुदाय में घिर जाती थी। मैं इसका कुछ भी तात्पर्य समझ नहीं सकी। माया-मय प्रभु की क्या लीला थी? एक बहते हुए पत्थर के स्पर्श से मैं क्या की क्या होगई। सब कहते थे कि मैं इस संसार की रहने वाली नहीं हूं, मैं देवी हूं-अचानक कहीं से प्रकट होगई हूं। उस दिन न जाने कितने सिर मेरे पैरों में रक्खे गये थे। मेरे पैरों पर से धूली इस ज़ोर से उतरी जारही थी कि वे विचारे लाल होगये थे। मुझे खड़े खड़े बहुत देरी हो गई थी।

जन-समुदाय में साधु ने प्रवेश करके कहा—"देवी! यदि आप हम को कृतार्थ करें तो बड़ी कृपा होगी। हम धन्य हैं। हमारा मनुष्य जीवन धन्य है जो आप के दर्शन हुए हैं। मनुष्य समाज ने ईश्वर को भुला दिया है-आप अपने हाथ में ईश्वर को लेकर आई हैं। संसार दिन प्रति दिन नास्तिक होता चला जाता है-दान नहीं करता। अब मालूम होता है कि संसार के दिन फिर गये हैं। संसार ईश्वर के दर्शन करेगा—दान करेगा। देवीजी! हमें इस कृपा से वञ्चित न कीजिए। अवश्य चलिये, नहीं तो हमारा किसी प्रकार भी भला नहीं हो सकता।"

मैं इसका कुछ भी तात्पर्य न समझ सकी। मैं उस समय एक दम किं-कर्तव्य विमूढ़ होगई। उत्तर देना चाहती थी किन्तु लज्जाने होंट बन्द कर दिये। मुंह लाल हो आया। विचारी बंधी हरिणी की तरह मैं मन्दिर की ओर जन-समुदाय के साथ चलदी।

(३)

मैं नहीं कह सकती कि उस समय मेरी मानसिक अवस्था कैसी थी। मेरे हृदय में सुख था या दुःख। मैं उस समय क्या अनुभव कर रही थी-इसका भी मुझे अनुभव नहीं होता था। बस मैं चली जा रही थी और यह जानती थी कि मेरे पीछे बहुतसा जन-समुदाय आरहा है। नहीं कह सकती कि उस समय मुझ में कुछ चेतना रह गई थी या नहीं। मालूम होता है कि मैं उस समय जागते हुये भी सुप्तावस्था में थी। मैं अपने आप को भूलसी गई थी। मेरे आगे पीछे से ये शब्द सुनाई देरहे थे "बोलो-देवी की जय!" आकाश में गूंजते हुये ये शब्द मेरे कानों को चीर जाते थे। आख़िर जैसे तैसे हम मन्दिर में पहुंचे। थोड़ी देर तक सब मेरे दर्शन करते रहे। जय जयकार होती रही। मैं उस समय संसार से बिलकुल अपरिचित थी। मुझे यहां आकर थोड़ासा ज्ञान होने लगा। मुझे अपना अनुभव होने लगा—मैं अपनी जागृत अवस्था में आने लगी—मुझे थोड़ा थोड़ा ज्ञान होने लगा। मन कहने लगा कि क्या ये लोग पागल हो गये हैं? कल तक तो मैं एक भिखारिणी के वेश में घूमती थी, आज यह अचानक परिवर्तन क्यों? आज यह जय जयकार क्यों? अन्दर से उत्तर मिला-केवल एक पत्थर के स्पर्श से। उस पत्थर की विशेषता यह है कि उसमें महादेव की मूर्ति बनी हुई है। मूर्ति कोई भगवान् ने तो बनाई ही नहीं है। मैंने कई बार घूमते २ यह देखा है कि मनुष्य ही मूर्ति को बनाते हैं। नदी के पास कोई मूर्ति होगी जिसे यह नदी बहाकर ले आई है-बस इतने से ही मैं देवी होगई।

फिर मैं सोचने लगी कि यह सब शायद भ्रम ही हो। मैं शायद सच-मुच ही देवी हूं। जब यह इतना भारी जन-समुदाय मुझे 'देवी' कह रहा है तो यह क्या मिथ्या है? साधु महात्माने भी मुझे देवी कहा था। हैं! यह क्या! सब लोग तो मन्दिर में आज तक एक पत्थर की मूर्ति समझ कर पूजा करते रहे हैं, यह मुझ चेतन की फिर पूजा कैसी? मेरा मन विक्षुब्ध हो उठा। मैं ठहरी बिलकुल अनजान। मैंने सोचा कि ये सब प्रश्न जटाधारी महात्मा से पूछूंगी। मैं यह सोच ही रही थी कि इतने में साधु ने बड़ी ज़ोर की आवाज़ के साथ

कहा कि अब आप लोग जाइये । देवीजी के दर्शन अब न हो सकेंगे । सायङ्काल के चार बजे से फिर दर्शन दीजियेगा । उस समय जितने उपहार आप ला सकें लाइयेगा ।

(४)

किसी तरह आराम तो मिला । जब सब जन-समुदाय धीरे २ चला गया तो मैंने देखा कि साधु महात्मा सारी भेंटें, जो लोगों ने मुझ पर फेंकी थीं, उठा-कर पास ही घर में चुपके से रख आये । उन का यह कार्य मैं इस तरह देखरही थी कि मानों मुझे कुछ मालूम ही नहीं । सबसे बड़ा आश्चर्य जो मुझे प्रतीत हुआ वह यह था कि किसी ने भी तो यह प्रश्न नहीं किया कि मैं किस प्रकार देवी हूं-कहां से आई हूं ? गणित की स्वयं-सिद्ध सिद्धियों की तरह मैं स्वयं-सिद्ध एक देवी मान ली गई थी ।

मैं ऐसा सोच ही रही थी कि साधु ने मेरे पास आकर कहा—देवीजी ! आप इस कमरे में चलिये । दो घण्टे के बाद हम आप को * भोग लगाएंगे । आप यहीं रहिये-हम आप के सेवक आप ही के पास रहेंगे ।

मैं नहीं जानती कि उस समय मुझ में कहां से बल आगया । मैंने कहा-साधुजी ! मैं आप से एक दो बातें पूछना चाहती हूं । आइये ज़रा बैठिये ।

मैं—आप ठीक २ उत्तर देंगे ?

सा०—मुझ से जैसा बनेगा ? आप जानते हैं कि मैं अज्ञानी हूं—बहुत कठिन प्रश्न न पूछियेगा ।

मैं—आप ने कैसे जाना कि मैं देवी हूं ?

सा०—क्या भक्तों को भी अपने हृदय के देवता को पहिचानने में देर लगती है ? मैं ईश्वर का भक्त हूं । हृदय में ईश्वर निवास करते हैं । हृदय कहता है कि आप देवी हैं और हमारे उद्धार के लिये आई हैं ।

मैं—उद्धार से आप का क्या तात्पर्य है ?

सा०—यही कि मनुष्य दिन प्रति दिन नास्तिक होते चले जाते हैं । दान आदि नहीं करते । अब आप यहां रहेंगी तो यह सब मन्दिर सोने चांदी से भर जायगा ।

मैं०—इस दान से क्या होता है ?

सा०—हम आस्तिक जनों की ईश्वर में अधिकाधिक श्रद्धा होती है । हम लोगों को ईश्वर का नाम लेने में सुगमता होजाती है । हम इस तरह दिन रात

* भोग लगाएंगे का तात्पर्य भोजन खिलाने का है—ले० ।

धूनी तपा कर ईश्वर का नाम लेने में लगे रहते हैं। वैसे तो भीख भी मांगनी पड़ती है।

मैं--तो क्या मेरी पूजा से ईश्वर की पूजा हो जायगी ?

सा०—हां! आप देवी हैं, भगवान् ने आप के द्वारा हमें दर्शन दिये हैं। आप की पूजा से उनकी पूजा होजायगी।

मैं— मेरे पूजने से ईश्वर पूजा! मैं तो जानती ही नहीं कि ईश्वर क्या चीज़ है ? मैंने उसे आज तक देखा ही नहीं, केवल नाम ही नाम सुना है, साधुजी! क्या यही महादेव की मूर्ति ईश्वर है ? यह तो मनुष्य की बनाई हुई है। इसके स्पर्श से मैं देवी कैसे होगई ? मैं अपने को ख़ूब समझती हूं। साधूजी! मैं इन उपहारों और जय जयकारों के तात्पर्य को समझ नहीं सकती। पता नहीं, मेरे हृदय में यह कैसा विक्षोभ पैदा हो रहा है। मैं यहां से चली जाऊंगी। साधुजी! मुझे जाने दीजिये।

सा०—ना! ना!! आप मत जाइये-आपके जाने से देशका अनिष्ट होगा।

मैं—क्यों अनिष्ट होगा ?

सा०—धर्म का पालन नहीं होगा।

मैं—किस धर्म्म का ?

सा०—सत्य-सनातन हिन्दु-धर्म का। वह धर्म जो सबसे पुराना है। ऋषि-मुनियों का है।

मैं—क्या यही हिन्दु-धर्म्म है महात्मा जी! जिस धर्म्म को मैं पूरी तरह समझती भी नहीं-जिसके विषय में मैंने अपने मामा जी से सुना था कि ऋषि-मुनि भी इसी धर्म्म का पार नहीं पासके, आज उसी धर्म्म की मैं एक अबोध युवती एकाएक किस प्रकार अधिष्ठातृ होगई ? ना—महात्माजी! मुझे जाने दीजिये। मैं इस पुण्य-पवित्र धर्म्म को अपने द्वारा कलङ्कित नहीं करना चाहती।

सा०—आप इस महत्व को समझेंगी, देवी! और समझती हैं। भक्तों की परीक्षा किस लिये लेती हैं ? अभी देखिये—सायङ्काल कितने मनुष्य आपके शुभ-दर्शनों के लिये आएंगे, कितने बीमार जिनकी बीमारी किसी रोग से अच्छी नही हुई, वह एक मात्र आप को चरण-धूलि से अच्छे होजायेंगे। हजारों की मनः कामनाएं पूरी होंगी। आप मत जाइये।

यह कह कर वह मेरे पैरों पर गिरगया मैं उससे अपने पैर छुड़ाने की

जितनी भी कोशिश करती थी, वह उतनी ही ओर से मेरे पैरों को पकड़लेता था, मुझे कुछ भय सा मालूम होने लगा।

फिर कहने लगा कि अच्छा आप जाना ही चाहती हैं तो हमारी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये। आप यहां चार दिन अवश्य ही रहिये। फिर आप इसके तात्पर्य को भली प्रकार समझ सकेंगी। यह कह कर फिर वह अपने सिर पर मेरी पद-धूलि लगाने लगा।

जब वह किसी प्रकार नहीं माना तो मैंने कहा "अच्छा चार दिन रहूंगी, उसके बाद नहीं।" मुझे मालूम नहीं उस समय मैंने किन भावों में भर कर यह स्वीकृति दी थी।

(५)

४ वजे से पूर्व ही मन्दिर में लोग जमा होने लगे। दर्शनों के लिये इतना जन-समुदाय आता था जिसका वर्णन कठिन है। हज़ारों स्त्रियें अपने पुत्रों की मङ्गल-कामनाएं करती थीं। इसी बीच में मैं एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक समझती हूं।

एक देवी जिसका नाम कमलावती था बड़े ज़ोर से धाड़ें मार मार कर रोती हुई मेरे पास आई। कहने लगी कि मेरा पुत्र बड़ा ही सख्त बीमार है। डाक्टर कहते हैं कि यह बीमारी किसी प्रकार अच्छी होने वाली नहीं है। यह कह कर वह बड़े जोर से चीख उठी। कहने लगी कि मां! रक्षा करो। कोई सहारा नहीं। मेरा एक यही इकलौता बेटा है। दया करो-दयामयि माता! यह कह कर वह मेरे पैरों पर गिर पड़ी। मैं कुछ बोली नहीं, क्योंकि मैंने साधु को यह कह दिया था कि मैं कुछ भी नहीं बोलूंगी। उसने भी इसी बात पर बल दिया था। एक मात्र मैंने उसकी ओर सहानुभूति-पूर्ण आंखों से देखा। वह दो दिन तक प्रातःसायं मेरी पद-धूलि लेजाती थी और उसे पानी में घोल कर पिला देती थी। अचानक उसका पुत्र अच्छा होने लगा। कमलावती अब नित्य आकर मेरी महिमा का गान करने लगी। इस घटना का शहर में इतना प्रचार हुआ कि मेरे पास बुरे से बुरे बीमार आने लगे—ऐसे बीमार जिनको देखकर मुझे बड़ी घृणा होती थी। जब वे अच्छे नहीं हुये तो मैंने सुना है कि उन्होंने अपने कर्मों के साथ २ मुझे भी खूब गालियां दी थीं।

चार दिन तक जो मैं देखती रही उसका सार यह है:—जितने मनुष्य मेरे पास आते थे, वे सब किसी न किसी इच्छा-पूर्ति के लिये आते थे—वह

इच्छा जो किसी भी लौकिक साधन से पूरी नहीं होसकती थी। मुझे उस समय मालूम हुआ कि जैसे संसार ने अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये ही भगवान् के विचार की सृष्टि की है। जिस मनुष्य की इच्छा-पूर्ति होजाती थी, वह मेरा सत्कार और आदर दुगुना करता था, और जिसकी इच्छा की पूर्ति नहीं होती थी, वह मेरे सामने ही नहीं आता था। मैंने उस समय समझा कि आस्तिक वह है, जिसकी इच्छा किसी न किसी प्रकार पूरी होजाय, और नास्तिक वह है, जिसकी इच्छा किसी प्रकार भी पूरी न होसके।

ओह! उस समय मुझपर कितनी भेंटें चढ़ी थीं, कितनी श्रद्धा-भक्ति से मुझे समर्पित करते थे। यदि मैं उन सबको इकट्ठा करती, तो बड़ी अमीर होजाती, किन्तु इस आस्तिकता के प्रचार से मैं समझती हूं, कि साधु का ख़ज़ाना इतना भर गया था कि उसे फिर कभी भीख मांगने की आवश्यकता न रह गई होगी।

ठीक चौथे दिन की रात्रि को मैं समय पाकर वहांसे भाग गई। साधु यद्यपि मुझसे वहां रहने की प्रार्थना बारम्बार करता था, किन्तु मुझसे ये नित्य के दृश्य देखे नहीं जाते थे, और नां ही मैं इन्हें पसन्द करती थी। मेरे हृदय में यौवन की जो उद्दाम चञ्चलता थी, वह किसी प्रकार के बन्धनों में नही बँध सकती थी।

× × × × ×

(६)

उसके बाद मेरा विवाह होगया।

मुझे अपने जीवन के ये चार दिन किसी प्रकार भी भूल नहीं सकते। मुझे मालूम होता है कि जैसे मैं उन चार दिनों के लिये वाइसराय बनकर आई थी। मैंने एक बार इन चार दिनों का ज़िकर अपने पति से भी किया था, तो उन्होंने प्यार-भरी भाषा में मुझसे कहा कि:—देवियां ईश्वर की प्रतिनिधि हैं ही, और इस कार्य्य को तुमने अपना दैवीयपन छोड़कर सिद्ध कर दिया। जिस दिन संसार के तुमको दिव्य समझनेपर भी तुमने अपनेको मानुषी ही समझा—वही तुम्हारा दिव्यरूप था। उन्हीं चार दिनों ने वास्तव में सिद्ध कर दिया कि तुम देवी हो।

मैं हँसकर चुप होगई।

साहित्य समीक्षा।

वैदिकदर्शन—लेखक पं० चमूपति एम० ए०, प्रकाशक म० राजपाल, सरस्वती आश्रम लाहौर मूल्य ।≠)

यह निबन्ध श्री दयानन्द जन्म-शताब्दी के अवसर पर होनेवाले अखिल धर्म सम्मेलन के लिये लिखा गया था। लेखक महोदय ने आर्य सिद्धान्तों की जटिल तथा गहन समस्याओं को बड़ी योग्यता से हल करने का प्रयत्न किया है। आत्मा, परमात्मा, सृष्टि की उत्पत्ति, मुक्ति का स्वरूप इत्यादि तत्वज्ञान की ग्रन्थियों को संसार भर के सब मत मतान्तर खोलनेका यत्न करते हैं। वैदिक धर्म इनका क्या हल पेश करता है और कहां तक आधुनिक दर्शनिकों के विचारों के साथ उसकी समता तथा विषमता है, इत्यादि बातों पर बड़ी उत्तमता से विचार किया गया है। इस निबन्ध के अध्ययन से वैदिक धर्म के दर्शनिक सिद्धान्तों का अच्छा ज्ञान हो जाता है। पुस्तक का कागज़ तथा छपाई भी उत्तम है।

शास्त्ररहस्य—लेखक श्री पं० राजाराम जी प्रो० कालेज मूल्य १।)।

आर्यसिद्धान्तों की व्याख्या करने में पण्डितजी निष्णात ही हैं। समय २ पर पं० जी आर्य सिद्धान्तों के प्रदर्शन केलिये पुस्तकें लिखते ही रहते हैं। इस पुस्तक में गृहस्थी आर्य समाजियों के ज्ञान के लिये पर्याप्त मसाला इकट्ठा किया गया है। जिन लोगों को शास्त्र पढ़ने की योग्यता नहीं, उनके लिये यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी होगा। इस ग्रन्थ के दो भाग हैं। छपाई तथा कागज साधारणतया अच्छा है। मूल्य ज़रा अधिक है।

वैदिक प्रार्थना पुस्तक—लेखक म० शहज़ादाराम, प्रकाशक वज़ीरचन्द्रशर्मा अध्यक्षवैदिक पुस्तकालय लाहौर, मूल्य -)॥।

साप्ताहिक सत्सङ्गों में प्रारम्भिक प्रार्थनाओं के लिये यह पुस्तिका उपयोगी हो सकती है। छपाई तथा कागज़ उत्तम है।

विधवा—लेखक पं० राजाराम शुक्ल, प्रकाशिका श्रीमती फूलकुमारी मेहरोत्रा सम्पादिका 'स्त्री दर्पण' कानपुर, मूल्य ॥)।

भारतवर्ष में विधवाओं की अवस्था बड़ी ही दारुण तथा शोचनीय है। विधवाओं की वर्तमान स्थिति को देखकर सुधारक लोग उनके पुर्नविवाह की

अनुज्ञा देदेते हैं। हिन्दु जाति के दुर्व्यवहार से पीड़ित होकर विधवायें विधर्मी बन जाती हैं या वेश्या वृत्ति स्वीकार कर लेती हैं। इन बातों से बचने के लिये आर्य समाज नियोग या पुनर्विवाह का विधान करता है। परन्तु लेखक की सम्मतिमें विधवाओं के लिये आदर्श यही हैं कि वे अपने जीवन को उच्च बनाकर समाज-सेवा के अर्पण करें। इसी बात को दर्शाने के लिये लेखकने इस पुस्तक में एक आदर्श तपस्विनी के पवित्र चरित्र को दर्शाने का यत्न किया है। लेखक का मत यह प्रतीत होता है कि विधवाओं को ब्रह्मचारिणी रहकर ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये।

क़ुरान—अनुवादक तथा सम्पादक श्री पं० रामचन्द्र, प्रकाशक प्रेम पुस्तकालय फुलट्टी बाज़ार, आगरा।

इसपुस्तक में सूरये बकरकामूल तथा भाषानुवाद है। जो लोग अरबी भाषा से अनभिज्ञ हैं परन्तु क़ुरान का अध्यान करना चाहते हैं तथा तद्विषयक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं. उनके लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। साधारण तथा प्रत्येक आर्य-समाजी तथा विशेषतया उपदेशकों को इस पुस्तक की एक प्रति अपने पास रखनी चाहिये। कागज तथा छपाई अत्युत्तम है।

सुभाषितमञ्जूषा—लेखक तथा प्रकाशक चौधरी रामसिंह मेम्बर पंजाब लेजिस्लेटिव कौंसिल, ग्राम घरडरां, जिला कांगड़ा।

इस पुस्तक में लेखकने संस्कृत श्लोकों के साथ हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, आदि भाषाओं के समानार्थवाची पद संगृहीत किये हैं। हिन्दी साहित्य में इस प्रकारकी पुस्तकों का अत्यन्त अभाव था। राष्ट्र भाषा में इस प्रकार के अभाव को अनुभव करके चौधरी जी ने यह पुस्तक लिखकर निस्सन्देह हिन्दी साहित्य की अपूर्व सेवा की है। चौधरी जी का परिश्रम प्रशंसनीय है। हिन्दी साहित्य में इस पुस्तक का मान होना चाहिये। विशेषतया यह पुस्तक उपदेशकों तथा लेखकों के बहुत काम की है। दूसरे संस्करण में अशुद्धि-संशोधन की तरफ विशेष ध्यान देना चाहिये।

सत्यवादी—सम्पादक श्री० पं० भीमसेन विद्यालङ्कार।

सत्यवादी नाम का एक साप्ताहिक पत्र पंजाब की राजधानी लाहौर से पं० भीमसेन विद्यालङ्कार के सम्पादकत्व में निकलना प्रारम्भ हुआ है। इसका प्रथम अङ्क श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित हुआ था। इस

अङ्क को देखने से प्रतीत होता है, कि यह पत्र पंजाब में आर्य भाषा के प्रचार तथा देवियों में धार्मिक सामाजिक तथा राजनैतिक जागृति पैदा करने के उद्देश्य से प्रादुर्भूत हुआ है। हमें आशा है कि सत्यवादी अवश्य अपने उद्देश्य में सफल होगा। हम हृदय से इस पत्र का स्वागत करते हैं।

यशःपाल सिद्धान्तालंकार,

संपादकीय

शताब्दी महोत्सव—

मथुरा की यात्रा होली। शताब्दी महोत्सब समाप्त हुआ। इतना बड़ा मेला मथुरा ने कभी नहीं देखा। किसी के स्वप्न में भी न था कि ऋषि को जन्म-शताब्दी मनाने को दो लाख से ऊपर लोग एकत्रित होंगे। लोगों की भक्ति ने प्रबन्धकों के प्रबन्ध को अपूर्ण सिद्ध किया। कोई त्रुटि थी भी तो इस असंभावित संख्या की बाढ़ में बह गई। उत्सव की सफलता प्रबन्ध की अपूर्णता से प्रमाणित होने लगी। तमाशा यह कि इस अपूर्णता का सबसे अधिक अभिमान प्रबन्धकों को था। प्रबन्धकों को वधाई हो। मथुरा के पास कितनी मथुराओं की एक नई मथुरा बसी प्रतीत होती थी। प्रान्त २ के लोग आए हुए थे। बूढ़ों का वय घट गया प्रतीत होता था। युवकों और बालकों का उत्साह तो लोकप्रसिद्ध है ही, वहां बूढ़े नाचते देखे गए। प्रातः काल जब कैंप की गलियों में 'दयानन्द्र के वीर सैनिक बनेंगे' गाया जाता था तो प्रतीत होता था कि वस्तुतः दयानन्दी उत्साह हृदय २ को दयानन्द बनाए हुए है। कवि ने तो लिखा था:-

'वही वृद्ध भारत गुरू है हमारा'।

भक्तों की उमड़ी हुई भावना सहसा कवि बन गई। गायकों ने स्वयं इस पंक्ति का संशोधन किया:—

'दयानन्द स्वामी गुरू हैं हमारा'।

न जाने कवि महोदय इस जन-समुदाय के किये संशोधन को शिष्य-भाव से सिर आंखों पर रखते हैं या नहीं।

व्याख्यान हुए, सम्मेलन हुए, गोष्ठियां हुईं। पर मेला इनमें से किसी का नाम नहीं। शताब्दी नाम उस यात्रा का है जो १७ फर्वरी को शताब्दी कैंप

से निकली और गीत गाती, दयानन्द का नाम गुंजाती, मथुरा में पहुंची। लाख मनुष्य कहने को दो शब्द हैं। देखने वालोंने परीक्षा से परिमाण किया कि सारे जलूस को एक स्थान से गुज़र जाने में एक घंटा १५ मिनट लगे। भगवा वेष धारे साधु कुछ उन्माद की अवस्था में थे। इनके सिर झूमते देखकर विचार होता था कि आज इन्होंने वस्तुतः पी है। पीले वस्त्रों में गुरुकुलों के ब्रह्मचारी, दीक्षा के वेष में स्नातक, दयानन्दी युग के विशेष चिन्ह थे। और फिर देवियां जिनके दोनों ओर स्वयंसेवकों ने अपने बाहुओं को लंबा कर सजीव पराकार बना दी थी, ऋषि के देवि-उपयोगी प्रचार का मूर्त परिणाम प्रतीत हो रही थीं। विविध २ स्थानों की विविध २ मंडलियां। सब के स्वर अलग, ताल अलग, राग अलग। राग ताल थे भी ? वहां को एक ही ताल था—ऋषि गुण-गान, या धृष्टता न हो, तो शिष्य दयानन्द का गुरु-नगरी को संदेश। यह सब मंडलियां जब उस खंडहर-रूप कुटी के सामने आतीं, जहां भावी ऋषि ने प्रज्ञाचक्षु गुरु से शिक्षा पाई थी, तो आंखें निर्निमेष हो जातीं। अपनी सुध बुध भूल जाती। अणु २ दयानन्द का साक्षात् स्थानापन्न प्रतीत होता। दोनों ओर की गलियां रुक गईं। बाजार पानी से भर गया। पर इसकी होश किसे थी ? स्नातकों ने उस आदर्श गुरुकुल को देखा जो यों तो गुरुकुल के किसी नियम को पूरा नहीं करता, परन्तु समस्त गुरुकुलों का जन्मदाता यहीं का एक स्नातक है। स्नातकों की दीक्षा ने अपने आचार्य के दीक्षा-भवन के आगे भावमयी भक्ति की भेंट धरी। वह एक दृश्य था। गुरुकुल के स्नातक ऋषि की टूटी फूटी पाठशाला के आगे झूम २ कर गुरु गौरव का गान गुंजा रहे थे। देवियां देवों से बढ़ गईं। उन्हें आज पता लगा कि उनके आधुनिक युग के प्रवर्तक देव दयानन्द ने किन कठिनाइयों में देवी-पूजा का पाठ सीखा और फिर संसार को सिखाया। लायलपुर और सरगोधा के भाई मथुरा को वैदिक-धर्मी बन जाने का सरल सन्देश किस तन्मयता से देरहे थे !

और वह छोटीसी खिड़की जिसके अन्दर की कुठरिया में ऋषि रहते थे ! ऋषि का शिक्षा-काल सच-मुच दूसरा गर्भ-निवास का काल था। यह छोटी कोठरी और वह विशालकाय दयानन्द ! अचम्भा है कि उसमें शयन कैसे करते होंगे ?

लोग हमसे पूछते हैं कि शताब्दी का सन्देश क्या है ? यदि यह सन्देश

व्याख्याताओं और उपदेशकों से लेना हो तो वह तो जैसे चौकड़ी ही भूले हुए थे। इतना बड़ा जन-समूह ! बोलने वालों पर आ बनी थी। शताब्दी का सन्देश वह है, जो विरजानन्द की कुटी ने दिया। शताब्दी का सन्देश वह है, जो विश्राम घाट पर खड़ी उस छोटी बन्द खिड़की ने दिया—दयानन्द को और दयानन्द के पीछे दयानन्द के शिष्यों को। पढ़ और पढ़ा, समझ और समझा। फैलजा, छाजा। बनजा, बनाजा।

आर्य्य परिषत्—शताब्दी महोत्सव में आर्य्यपरिषत् की कुछ बैठकें हुईं। हमारी समझ में इस मेले के साथ यह परिषत् बुलाना एक भूल थी। जो महानुभाव परिषत् में सम्मिलित हुए वह एकाग्रचित्त न होसके। किसी विषय पर गंभीर विचार का अवसर ही न था। इस परिषत् की आयोजना कुछ समय पीछे फिर करनी चाहिये। विषयों का निर्धारण पहिले से ही विद्वानों को करना चाहिये। पूर्व ही उन पर विचार किया जाए। परिषत् के दिनों पहिले विषय निर्धारिणी समिति की बैठक हो जिस में विचारणीय विषयों को प्रस्तावों का रूप दिया जाए। फिर उन्हें परिषत् में लाया जाए। यदि किसी मेले के साथ परिषत् का सम्बन्ध होना आवश्यक हो तो इसकी कार्यवाही मेले से पूर्व समाप्त होजानी चाहिये और आरम्भ तो महीना पन्द्रह दिन पूर्व हो।

हमारा हृदय अनुभव करता है कि यदि सफल परिषदें न हुईं तो आर्य्य समाज के प्रचार में प्रान्तीय भावों का प्रबलता हो जाएगी। भिन्न २ प्रदेशों में विद्वानों के मिल बैठने की, एकता की दृष्टि से, अत्यन्त आवश्यकता है। जनता पर उनके निश्चयों का क्या प्रभाव होगा, यह पीछे की बात है। पहिले वह स्वयं परस्पर विचार-परिवर्तन कर अपने दृष्टि-कोण में एकता और विशालता तो लाएं। उचित अवसर पर इस परिषत् की आयोजना होनी आवश्यक है।

धर्मसम्मेलन—दूसरा सम्मेलन जो अकृतकार्य्य हुआ वह धर्म सम्मेलन था। जैन, ईसाई, बहाई भाईयों ने अपने निबन्ध पढ़े। नियत विषयों का इन निबन्धों से बहिष्कार इन निबन्धों का विशेष गुण था। शेष सम्मेलनों में भी निबन्धों के स्थान में व्याख्यान कराने पड़े। इस का कारण वही जन-बाहुल्य था। सुनने वाले बहुत थे। इसलिये सुने कौन ? और फिर पढ़ी हुई बात का।

पंडाल—पण्डाल अनेक थे। दो तो शताब्दी सभा के खड़े किये हुए थे।

उनके अतिरिक्त शुद्धिसभा, साधु कंप आदि में अलग उपदेश का प्रबन्ध था। पर अवसर उपदेश लेने का था, देने का नहीं। जिन्हों ने दिया, उनका आत्मा पर बलात्कार था। हमारा भी।

दयानन्द लंगर—यह साधु कैंप में था। इसके अधिष्ठाता श्री स्वामी सर्वदानन्द जी थे। जो साधु आता भोजन पाता और ऋषि की शिक्षा का प्रभाव लेकर जाता। शताब्दी महोत्सव में सर्वदानन्द सचमुच काली कमली वाले हो रहे थे। लोग तो उन्हें ऐसा कहते ही हैं।

धन प्राप्ति—

शताब्दी सभा की ओर से पांच लाख रुपये की अपील की गई थी। इसका उद्देश्य विदेश-प्रचार का प्रबन्ध तथा प्रकाशन-गृह की स्थापना था। शताब्दी--नोट वितरण किये जारहे थे। इनसे सवा लाख की आय हुई बताई जाती है। प्रान्तिक सभाओं ने पहिले ही जनता की जैबें खाली कर ली थीं। इस दोही हुई गाय ने इतना फिर दिया, ग़नीमत है। दोहने वालों ने भी कृपा की कि विचारी गैया पर बहुत ज़ोर नहीं डाला—मांगने का यत्न ही नहीं हुआ।

शताब्दी महोत्सव के दूसरे भागों में तो कालेज और गुरुकुल—दोनों पक्षों के लोग बराबर सम्मिलित होते रहे, परन्तु धन देते समय कालेज भाग के भाइयों को स्मरण आया कि वह अलग हैं। कारण कि रुपया सब सार्वदेशिक सभा को मिलना है, जिस में उनके प्रतिनिधि नहीं। सुना है प्रतिनिधि भेजने का यत्न किया जा रहा है। रुपया फिर सही। अमेरिका में स्वतन्त्रता का युद्ध इसी सिद्धान्त के आधार पर हुआ था—पहिले प्रतिनिधित्व पीछे कर। यहां युद्ध तो क्यों होगा? क्योंकि यहां कर नहीं, दान है, और दान मन की मौज से दिया जाता है। प्रतिनिधित्व का प्रश्न और एकता का प्रश्न एक है। सार्वदेशिक सभा में ही यह हल होजाए तो अच्छा है।

प्राप्त धन का सार्वदेशिक सभा क्या उपयोग करती है—इसका अभी निश्चय नहीं हुआ। इस थोड़ी राशि से विदेश प्रचार और प्रकाशन-गृह दोनों साध्य तो सिद्ध होने से रहे। रुपया और चाहिये, तब भी काम एक ही हो सकेगा, दो नहीं।

बृहद् यज्ञ—

शताब्दी में बृहद् यज्ञ होने की घोषणा हुई थी। यज्ञ-शालाएं बनी हुई थीं, और इकले दुकले श्रोत्रिय वहां वेद पाठ करते दीखते भी थे, परन्तु

जनता मानो यज्ञ के नाम से कांपती थी। श्रोत्रिय खुश होंगे कि अनधिकारी नहीं आए। यह यज्ञ क्या थे? किस निमित्त से किये गए? उनकी प्रणाली क्या होनी चाहिये थी? स्वयं करने वालों को भी इन बातों का पता था—इस में सन्देह है। आर्य समाजों को यज्ञ चालू करने चाहिये परन्तु विधिपूर्व। प्रत्येक कार्य के लिये अलग योग्यता की आवश्यकता है। व्याख्यान की वेदी और यज्ञ की वेदी का प्रबन्ध एक चीज़ नहीं-यह गुर हमारी समझ में कब आएगा?

ऋषि का दिया कोट और पाजामा—

मुख्य मंडप के रास्ते में दयानन्द-प्रदर्शिनी थी। उसमें और तो कोई ऐसी काम की चीज न थी, ऋषि का पहिना हुआ एक दुशाला रखा था, और उस से अधिक आकर्षण खद्दर के उस कोट और पाजामे का था जो ऋषि ने शाहपुराधीश श्री नाहर सिंहजी को स्वयं दिया था। एक महाराज को खद्दर के कपड़े देना जहां ऋषि के महान् गौरव का परिचायक है, वहां उनकी दूरदर्शिता का भी अपूर्व प्रमाण हैं। महात्मा गान्धी का चलाया खादी – आन्दोलन नया नहीं। इसका बीज ऋषि ने अपने हाथों छड़का। हमें इस कोट और पाजामे ने एक उपदेश दिया जो सब देखने वालों के हृदयों में घर कर गया होगा। यहां उस उपदेश के दोहराने की आवश्यकता नहीं।

समाप्ति—

उत्सव की समाप्ति में वह सुन्दरता न थी जो उसके आरम्भ में थी। ठाठ बाठ तो कम होना ही था। उत्साह भी आरंभ के समान दिखाया न जासका था। सब को घर जाने की पड़ी थी। इतने बड़े मेले में से निकल जाने का रास्ता मिल जायगा, दफ्तरों के बाबुओं को यह विश्वास न था, और उन्हें पहुंचना ठीक बाईसवीं को था। कुशल पूर्वक मेला बिखर गया, इसके लिये प्रभु का धन्यवाद है।

यदि कुछ नव युवकों की नासमझी के कारण चौबों से उन नवयुवकों की मुट भीड़ न हो जाती तो उत्सव की इस शान्ति पूर्वक सफलता के क्या कहने थे? झगड़ा शीघ्र शान्त करा दिया गया और हर्ष की बात है कि श्री स्वामी श्रद्धानन्द तथा मुख्य चौबों के हस्ताक्षरों से यह सूचना पत्रों में दे दीगई है कि दोनों पक्ष इसे मूर्खों की मूर्खता समझते हैं, आर्य समाज या सनातनधर्म का इस में दोष नहीं।

हम कृतघ्न हों यदि १७ तिथि की यात्रा के दिन आर्यों के सिर पर फूल

बरसाने वाले मथुरा निवासियों को ख्वाह नख्वाह लड़ाई छेड़ने का दोष दें। दयानन्द मथुरा का शिष्य है—मथुरा का बाल है। हमारा नाता कृष्ण की—और अब तो दयानन्द की—नगरी से पूजा का नाता है। दंडी गुरु की लाठी खाने का नाता है, पलटे में लाठी चलाने की नहीं।

प्रभु हमें सुमति दें कि हम शताब्दी के सन्देश को स्मरण रखें और आगे दूनी चौगुनी शक्ति से ऋषि के कार्य में तत्पर हों।

गुरुकुल हरिद्वार—

आर्य प्रतिनिधिसभा का साधारण अधिवेशन शताब्दी के अवसर पर हुआ। उस में निश्चय हुआ कि गुरुकुल हरद्वार के समीप किसी उत्तम स्थान में रखा जाए। स्थान निर्दिष्टप्राय हैं। डाक्टरों ने उन्हें देखा और पसन्द किया है। जो मिल जायेगा तथा अनुकूल पड़ेगा, लेलिया जाएगा।

श्री मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी लिखते हैं:—

गुरुकुल कांगड़ी का वार्षिकोत्सव ईस्टर की (९-१२-११-१२-अप्रैल) छुट्टियों में निश्चित किया गया है। गुरुकुल को गंगा की भीषण बाढ़ से जो हानि हुई है उस के कारण गुरुकुल की स्वामिनी सभा ने गुरुकुल को गंगा के उस पार से उठा कर इस पार हरिद्वार के पास लाने का निश्चय कर दिया है इस लिये इस वार गुरुकुल का वार्षिकोत्सव गुरुकुल मायापुर बाटिका में जो हरिद्वार और कनखलके मध्य में है मनाया जायगा। मायापुर बाटिका के एक ओर गंगा अपने पूरे यौवन में लहरा रही है और दूसरी ओर नहर अपनी बहार दिखला रही है। स्टेशन से मुश्किल से १० मिएट का रस्ता है। आर्य्य जनता में प्रत्येक नर नारी को गुरुकुल की इस आपत्ति की अवस्था में स्वयं चिन्ता लगी हुई है। यह चिन्ता ही हर एक आर्य्य को 'कुल' के इस उत्सव पर खींच लाने के लिये पर्याप्त है फिर भी मेरा कर्तव्य है कि जनता को चेतावनी देकर पूंछू कि वर्षों तक लालन पालन से बढ़ाये हुए पौधे को गंगा की बाढ़ के कारण जड़ से उखड़ा देख कर उन्हें जो सदमा पहुंचा है उसे दूर करने के लिये वे क्या २ कोशिशें कर रहे हैं?

इस समय गुरुकुल के प्रेमियों का कर्तव्य है कि वे गुरुकुल कार्यालय से पुरुषार्थ निधि की पुस्तकें मंगवा कर धनसंग्रह का कार्य्य प्रारम्भ कर दें, और गुरुकुल उत्सव से पहिले गुरुकुल के कोष को भर दें। गुरुकुल का काम रुक नहीं सकता। जिस आर्य्य जनता ने इसे चलाया है वह कितने ही दूसरे खर्च क्यों न कर ले गुरुकुल के लिये फिर भी धनी है। गुरुकुल का इस समय जो बड़ा भारी खर्च सामने है उस का पूरा करना हमारा फ़र्ज है। इस

फ़र्ज को अदा करने के लिये जिस हिम्मत की जरूरत है वह हमारे आर्य्य भाइयों में पहिले से ही मौजूद है।

जो यज्ञ आर्य्य जनता ने मथुरापुरी में ऋषि दयानन्द की दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति भाव को प्रकट करने के लिये रचा है उस की पूर्णाहुति अभी नहीं पड़ी। उसी पूर्णाहुति के लिये आर्य्य भाई पूर्ण उत्साह से तय्यारी कर रहे होंगे, इस की मुझे पूरी आशा है। इस अपूर्व यज्ञ की अन्तिम आहुति गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर अपने हाथों डालने वाले कर्मकाण्डी निस्सन्देह शताब्दी-यज्ञ के सम्पूर्ण फल के अधिकारी बनेंगे। मुझे आशा है कि आर्य समाजी भाईयोंके जिस उत्साह ने मथुरा-तीर्थ-वासियों को ऋषि दयानन्द का भक्त बना दिया,वही उत्साह हरिद्वार में भी उमड़ पड़ेगा और एकवार हरिद्वार में भी मथुरा का चित्र लोगों की आखों के सामने फिर जायगा। इन भावों के साथ मैं गुरुकुल शिक्षा प्रणाली से सहानुभूति रखने वाले सभी भाईयों को गुरुकुल के उत्सव में सम्मिलित होने का निमन्त्रण देता हुं।

आचार्य रामदेव जी—

आचार्य रामदेव जी अफ्रीका से लौट आए हैं। हम उनका हृदय से स्वागत करते हैं। इन आपत्तियों में इस अदम्य वीर के उत्साह और साहस की सराहणा विवश होकर करना पड़ती है। परमात्मा उन्हें स्वास्थ्य दें जिससे वह और भी अधिक तत्परता से ऋषि का ऋण चुकाएं और अपनी सफलता से, जैसा उनका स्वभाव है, सन्तुष्ट कभी न हों।

उपदेशक परीक्षा—

श्री मंत्री. आ. प्र. नि. सभा पंजाब सूचना देते हैं:—

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से जो उपदेशक परीक्षा नियत है, वह फाल्गुन मास में होती है। लेकिन इस साल दयानन्द जन्मशताब्दी के कारण फाल्गुन मास में परीक्षा स्थगित कर दी गई थी। अब ४ मई से ९ मई १९२५ तक होगी। परीक्षार्थियों को प्रार्थनापत्र ३१ मार्च १९२५ तक सभा के दफ्तर, गुरुदत्त भवन, में भेज देने चाहियें। प्रार्थना पत्र में परीक्षार्थी का नाम, पिता का नाम, आयु, निवास स्थान, आर्यसमाज से संबंध, और कौन सी परीक्षा देना चाहता है, साफ़तौर पर दर्ज होना चाहिये। विकल्प विषयों में से जिस विषय में परीक्षा देनी हो, वह भी दर्ज होना चाहिये।

दयानन्द उपदेशक विद्यालय—

दयानन्द उपदेशिक विद्यालय २ एप्रिल १९२५ को खुलेगा। विद्यार्थियों को नियम और प्रवेश के प्रार्थना पत्र सभा के कार्यालय से मंगवाने चाहिये।

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब, गुरुदत्त भवन लाहौर।

ब्यौरा आय व्यय बाबत मास पौष संवत् १९८१ विक्रमी

निधि	बजट आय	इस मासकी आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
	२७२२५)	१४६१-)४	१५१०४॥≡)२			
ार	२०००)	४६॥।-)	११९१।=)३			
ा	६८००)	१६५=)	११४१॥≡)	६८००)	१६५॥।=)॥	१७१६॥-)॥।
	२०००)	१८५≡)	७०३॥।)७			
तिनिधि				६५००)	५१८॥।=)॥।	४३४२-)८
ाय	१००)	२७॥)	२०४॥।=)	२५००)	१४७।=)	१९७३॥≡)॥
पुस्तकालय				५००)		१२०)
तैयार कराई				५००)	३८)	४६६॥-)॥।
ा				१५१४१)	१११४॥=)२	१०८५१)॥।
पदेशकों				६५००)	१३०॥।-)॥	४४५२॥।)२
				५०)		५८=)
ोवन						
विभाग	२००)	१८)॥।	१५१=)।	१४००)	१२५)	१००९=)।
कोष						
ता माता				२४)		१२)
गणपति शर्म्मा					१००)	१००)
प्रचार					७८॥)	७८॥)
प्रचार						
योग		१६०४॥।)१	१८४६७॥-)।		२४५०=)११	२५२१३॥।-)१०
स्मारक निधि	३००)		६७-)			
उपदेशकों				१४००)	३५)	५९१॥)
ाय				५००)		३७४।=)॥
				१२०)	१०)	६०)
विधवा पं० तुलसी राम				६६)	८)	७२)
„ पं०वज़ीरचंद						११२=॥।=)॥
योग			६७-)		५३)	४२८)
आर्य विद्यार्थी आश्रम			८४)		७४॥।)	७०३६)४
अन्य संस्थायें		८२)	८७८७॥=)॥		८)	६२०)
आर्य समाजें		२००)॥	३४५५=)॥।			१७०)
वैदिक पुस्तकालय		१०)	८२)			५४०-)
मोलेशाह			४६-)			
अम्बालाल			४०००)			
दामोदरदास					८२॥।)	८७६४-)४
योग		१०२२)॥	१६४५७॥।=)।		२३)८	८२।≡)१
		६६०६)५	२८७६५॥)४			
र्जा			२००६।≡)			
सा मकानात		२)	२६)			१५६≡)।
आय व्यय		३९॥)	५९४)		२३)८	२४१॥=)४
		९९५०॥)५	३१३२१॥≡)४			

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब, गुरुदत्त भवन लाहौर

ब्यौरा आय व्यय बाबत मास पौष संवत् १९८१ विक्रमी

निधि	बजट आय	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय
निहालदेवी जींदाराम			७००)		
गुरुकुल मुलतान			५)		
अज्ञात निधि		५०२८॥-)	६४६२॥=)।		१४१)
दयानन्द-जन्म शताब्दि	१००००)	१५०१।≡)	६३६४॥।-)	१५०००)	३६६२।≡)
दलितोद्धार	१२०००)	६॥)	२२६६॥=)	१२०००)	२२४)
राजपूतोद्धार		५॥।)	२७५।=)		६५)
प्रोवीडेण्ट		१०१।)८	८१८॥।)१		
बोनस				१०००)	
आर्य्य विद्यार्थी आश्रम	२८७०)		१८५६॥।=)	२८७०)	२५७॥=)॥
,, ,, ,, शाला			६३४४।)५		
वसीयत पं० पूर्णानन्द			२६२५)		४०)
विदेश प्रचार	८०००)	५०)	१०५)	८०००)	
कन्या गुरुकुल		८३॥=)	१२७।=)		८३॥।-)
सभा के सेवकों की सहायता					
दयानन्द उपदेशक महा विद्यालय		१२१७४)	१४६८७)		५॥।≡)
आसाम प्रचार			१०७॥-)		
दयानन्द सेवा सदन			२)		
रामचन्द्र स्मारक निधि			३८०॥-)		
ईश्वरदास निधि					
अंडमन प्रचार			७०)		
मदरास ,,			८७)		
वसीयत स्वामी विद्यानन्द			७००)		
जानकी बाई					
,, महाशय ओचीराम			५०००)		१२॥)
योग		१८६५४=)८	५२०४५॥।-)॥।		४५२२॥-)॥
गुरुकुल महानिधि					
,, अस्थिर छात्रवृति			८९८२७॥)११		
,, स्थिर कोष			८९०२)		
,, उपाध्याय वृत्ति			२१०)		
,, स्थिर छात्रवृति			—८०३५॥)		
,, आयुर्वेद			७०००)		
			१००३५॥)		
योग			१०६८३९॥)११		
सर्व योग		३१८३१।≡)८	२२५३००=)॥		७१३१॥-)१
गत शेष		१०१०६१३॥।≡)४	९५३६०१॥।)४		
योग		१०४२०४५।≡)	११७८९०१॥=)१०		
व्यय		७१३१॥-)।	१४३२८८)११		
वर्तमान शेष		१०३५६१३॥।-)११	१०३५६१३॥।-)११		

Registered. No. L. 1424. रजिस्टर्ड नं० एल १४२४

* ओ३म् *

भाग ५ फाल्गुन १९८१
अङ्क १० मार्च १९२५

आर्य्य

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मासिक पत्र

सम्पादक—चमूपति

प्रार्थना ।

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । अपघ्नन्तोऽराव्णः

ऋग्वेद ।

हे प्रभु ! हम तुम से वर पावें ।
विश्व जगत् को आर्य बनावें ॥
फैलें, सुख सम्पत् फैलावें ।
आप बढ़ें, तव राज्य बढ़ावें ॥
वैर-विघ्न को मार मिटावें ।
प्रीति-नीति की रीति चलावें ॥

वार्षिक मूल्य ३) रु० पेशगी

भारतचन्द्र लखनपाल प्रिन्टर व पब्लिशर के अधिकार से बाम्बे मैशीन प्रेस मोहनलाल रोड लाहौर में छप कर प्रकाशित हुवा ।

विषय सूची ।

"आर्य्य" के नियम ।

१—यह पत्र अंग्रेज़ी मास की १५ तारीख़ को प्रकाशित होता है। (डाकख़ाना में चूंकि अंग्रेज़ी तारीख़ देनी होती है, इसलिये अंग्रेज़ी तारीख़ का हिसाब रक्खा गया है)।

२—इसका वार्षिक मूल्य ३) है। सभा ने वैदिक धर्म तथा नागरी प्रचार के लिये इसे जारी किया है।

३—इस पत्र में धर्मोपदेश, धर्म-जिज्ञासा, प्रतिनिधि सभा की सूचनाएं दर्ज होती हैं।

४—पत्र में प्रकाशित होने के लिये समाचार तथा लेख प्रत्येक अंग्रेज़ी मास की १ तारीख़ के पूर्व आजाने चाहियें।

५—यदि डाक की ग़लती से कोई अङ्क न पहुंचे, तो दिन के भीतर सूचना देने से वह अङ्क भेज दिया जायगा, लेकिन इस अवधि के पश्चात मंगवाने पर प्रति अङ्क ।≠)

* ओ३म् *

आर्य्य

भाग ५] लाहौर—फाल्गुण १९८१, मार्च १९२५ [अंक १०

वेदामृत ।

वीर की भावना ।

ओ३म् अनुच्छ्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथा पर्वसिना माऽभिमंस्थाः । माऽभिद्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाकेऽधि विश्रयैनम् ॥

अथर्व ९।५।४॥

घातक खूब चला तलवार ॥
अंग अंग परु परु के काली,
कर भुजंगिनी पार ॥१॥
सोच नहीं, संकोच द्रोह है,
जोड़ जोड़ संहार ॥२॥
कर तृतीय अध्यात्म धामका
भागी, कर उपकार ॥३॥

अद्भुत कुमार सम्भव ।

(श्रीयुत बुद्धदेव विद्यालङ्कार)

कालिदासकवेर्व्वाणी दुर्व्याख्या विषमूर्छिता ।
एषा सञ्जीवनी टीका तामद्योज्जीवयिष्यति ॥

मल्लिनाथ ने कालिदास के टीकाकारों पर बिगड़कर उपर्य्युक्त पद्य कहा है । आज मल्लिनाथ के चित्त कीसी अवस्था मेरे चित्त की भी है । मैं भी आज एक कुमारसम्भव की टीका 'आर्य्य' के पाठकों के सन्मुख लेकर उपस्थित हुआ हूं । इस कुमार सम्भव के साथ कालिदास के कुमारसंभव की अपेक्षा कुछ कम नहीं, अपितु सहस्रगुण अधिक अन्याय हुआ है । और अधिक दुःख की बात तो यह है कि मल्लिनाथ के प्रयत्न से कालिदास पर अत्याचार करनेवाले वह ग्रन्थ लुप्त होगए हैं जिनपर बिगड़कर मल्लिनाथ ने उक्त पद्य कहा है, परन्तु यहां तो उन अपभाष्यों का घोर प्रचार है और उनके विरुद्ध युद्ध की केवल घोषणा मात्र हुई है ।

मैं जिस कुमारसम्भव को आज उपस्थित करने लगाहूं उसमें कई विचित्रताएं हैं । इन में एक विचित्रता तो यही है कि यह श्रव्यकाव्य नहीं किन्तु नाटक है । एक और बड़ी विचित्रता यह है कि इसका सम्बन्ध मीमांसा से है । इसके कर्त्ता याज्ञवल्क्य, ऐतरेय, कात्यायनादि महर्षि हैं और अलङ्कारसूत्रकार हैं जैमिनि । काव्य और मीमांसा इनका संबन्ध ! इससे बढ़कर धृष्टता क्या हो सकती है ? इसीलिये मैंने शीर्षक रक्खा है "अद्भुत" कुमारसम्भव ।

अच्छा, प्रस्तावना को लम्बा न करके मैं स्पष्ट भाषा का आश्रय लिये लेता हूं । आज के लेख का विषय है यज्ञ । यज्ञ क्या है ? नाटक । किस रसके ? मुख्यतया शृङ्गाररस के यत्र तत्र और रसों के भी । यज्ञशाला क्या है ? नाटक शाला । अब तो धृष्टता की सीमा ही नहीं रही । ज़रा बचे रहना । कहीं श्रोत्रिय महाराज स्रुवा मारकर खोपड़ी का अवदान न करदें या स्फ्य के प्रहार से आप ही का आलम्भन न होजाय । ख़ैर आज तो घर से निकले ही हैं धृष्टता करने । जब सिरसे कफ़न बांधा है तो तलवार से डरना ही कैसा ।

निस्सन्देह यज्ञ नाटक है—यह स्थापना "आर्य्य" के पाठकों को आश्चर्य में डाल देगी पर वास्तव में तथ्य यही है । ब्राह्मण ग्रन्थ के पाठकों के लिये यह

कुछ आश्चर्य की बात नहीं। जो हो, पर जब इस के प्रमाण उपस्थित हो जावें तो फिर आश्चर्य क्या ? प्रमाणों के लिये दूर भी नहीं जाना। ऐतरेय अथवा शतपथ का कोई पृष्ठ खोल लीजिये, इस बात के प्रमाण ही प्रमाण दृष्टिगोचर होंगे। हां, आप आंख ही मूंदने की शपथ खाए हों तो दूसरी बात है। तथापि सुगमता के लिये यहां दो एक प्रमाण उपस्थित करता हूं। यह लीजिये, सब से पहिले शतपथ ब्राह्मण के पहले पृष्ठ को ही पढ़जाइये।

व्रत मुपैष्यन्। अन्तरेणाहवनीयञ्च गार्हपत्यञ्च प्राङ्तिष्ठन्नप उपस्पृशति तद्यदप उपस्पृशत्यमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति तेन पूतिरन्तरतो मेध्या वाऽआपो मेध्यो भूत्वा व्रतमुपयानीति पवित्रं वाऽआपः पवित्रपूतो व्रतमुपयानीति तस्माद्वाऽअपउपस्पृशति।

आज व्रत धारण करना है। सबसे पहिला काम यजमान पूर्वाभिमुख होकर आचमन करता है। तात्पर्य्य यह है कि पुरुष असत्य भाषण से अपवित्र हो जाता है, इसीलिये पवित्रता का चिन्ह जल अन्दर लेता है, जिससे स्मरण रहे कि आज व्रत धारण के समय तो मैं अपने अन्दर से असत्य निकाल दूं (जिससे नया जीवन बना सकूं)। जल पवित्र है यह सब जानते हैं इसीलिये इस पवित्रता के चिन्ह जल का व्रतारम्भ में आचमन किया जाता है।

देहली के लाल किले में बादशाह के न्यायासन के ऊपर एक समतोल तराज़ू बनी हुई है। लोग देखते हैं और कहते हैं, क्या नाजुक ख़याली है! शोक है मीमांसा इतने दिन तक मोटे ख़यालवालों के हाथों ही पड़ी रही। जिस प्रकार कि नाटक के आरम्भ में नाट्यार्थ सूचक नान्दी होती है, इसी प्रकार यहाँ भी व्रत धारण के समय आत्मिक पवित्रता के अनुगुण आचमन की स्थूल क्रिया की जा रही है। सहृदय लोग इस आनुगुण्य का रसास्वाद करें। यह है शतपथ ब्राह्मण के पहिले पृष्ठ की पहिली पंक्ति। क्यों ? है न आरम्भ से ही नाटक!

अच्छा और सुनिये।

अथातोऽशनानशनस्यैव। तदुहाषाढः सावयसोऽनशनमेव व्रतं मेने मनोहवै देवा मनुष्यस्या जानन्ति तऽएन मेनद्व्रतमुपयन्तो विदुः प्रातर्नो यक्ष्यत इति तेऽस्य विश्वेदेवा गृहानागच्छन्ति तेऽस्य गृहेषूपवसन्ति स उपवसथः।

तन्न्वेवानवक्लृप्तम् । यो मनुष्येष्वनश्नत्सु पूर्व्वोऽश्नीयादथ किमुयो देवे-
श्वनत्सु पूर्व्वोऽश्नीयात्तस्मादु नैवाऽश्नीयात् ।

आचमन की बात होली। अब व्रतधारण से पहिले खाने न खाने की कहो। लो अब खाने न खाने ही की कहते हैं। आषाढ सावयस आचार्य्य कहते हैं कि व्रतधारण से पहिले भोजन करना अच्छा नहीं। व्रतधारण करना सत्यादि दिव्य गुणों को मन में बुलाकर बैठाना है। जब दिव्यगुणों को पता लगता है कि कल इस यजमान को प्रातः व्रत धारण करना है तो वह निमन्त्रण पाकर उसके मनमें डेरा करने लगते हैं, सो यह कैसी अनुचित बात है। जब मनुष्यों को अपने घर में बुलाकर उन्हें बिना खिलाये भोजन करना ठीक नहीं तो देवताओं को बुलाकर उनको भोजन दिये बिना भोजन करना कैसे ठीक हो सकता है? इसलिये जब तक अन्दर के देवता भोजन न करलें तब तक बाहर के ब्राह्मणदेवता (मुख) भी भोजन न करें।

इसी प्रकार, सवै समिधो यजति । प्राणावै समिधः (शत पृ० ४०) सूर्य्योहवा अग्निहोत्रं (पृ० ८४) शिरो वै यज्ञस्यातिथ्यं (पृ० १५२) पुरुषो वै यज्ञः........शिरएवास्यहविर्धानम् (पृ० १६४) अर्धोवा एष आत्मनो यज्जाया (पृ० २७५) तिष्ठन्समिध आदधाति । अस्थीनि वै समिध स्तिष्ठन्तीव वा अस्थीनि आहुतीर्जुहोति मांसानि वा आहुतय आसत इव वै मांसान्यन्तराः समिधो भवन्तिबाह्या आहुतयोऽन्तराणिह्यस्थीनि बाह्यानि मांसानि (पृ० ४८१) वायुरेव यजुः ..अयमेवाकाशोजूः । अथाध्यात्मम् प्राणएव यजुः........अयमेवाकाशोजू अन्नमेव यजुः (पृ० ५२३) अथ ब्रह्मयज्ञः। स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञस्तस्य वा एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य वागेवजूहूर्मन उपभृच्चक्षु र्ध्रुवा मेधास्रुवः सत्यमवभृथः स्वर्गो लोक उदयनम्......एताः पय आहुतयो वाऽएता देवानाम् यदृचः। आज्याहुतयो वा देवानाम् यद्यजूंषि सोमाहुतयो वा एता देवानाम् यत्सामानि मेद आहुतयो वा एता देवानाम् यदथर्वाङ्गिरसः (पृ० ५००) सवाएष आत्मैव यत्सौत्रामणी ... योनिरेव वरुणः रेत इन्द्रः (पृ० ६३०) तस्या वेदिरुपस्थो लोमानि बर्हिश्चर्माधिषवणे समिद्धो मध्यतस्तौ मुष्कौ स यावान्ह वै वाजपेयेन यजमानस्य लोको भवति तावानस्य लोको भवति य एवं विद्वानधोपहासञ्चरति (पृ० ७४४)

वह समिधाओं का हवन करता है। प्राण ही समिधा हैं (शत पृ०४०)

सूर्य्य ही अग्निहोत्र है (पृ० ८४) आतिथ्य ही यज्ञ का सिर है (पृ० १२५) पत्नी आत्मा का आधाभाग है (पृ०२७१) खड़ा होकर समिदाधान करता है क्योंकि समिधाएं यज्ञकी हड्डियें हैं। हड्डियां भी खड़ी रहती हैं, समिधा भी। आहुतियें मांस है। क्योंकि मांस जिस प्रकार खड़ा नहीं रह सकता, इसी प्रकार आहुतियां भी बिना समिधाओं के सहारे नहीं खड़ी रह सकती। हड्डियां अन्दर रहती हैं, मांस बाहर होता है, इसी प्रकार समिधाएं अन्दर हो जाती हैं आहुतियां उन्हें ढक लेती हैं (पृ० ४८१), वायु यजु है, आकाश जू है। इसीको अध्यात्म में लो प्राण। यजु है अकाशजू है। (पृ० ५२३) अब ब्रह्मयज्ञ की महिमा कहते हैं। स्वाध्याय का नाम ब्रह्मयज्ञ है सो इस ब्रह्मयज्ञ की वाणी जुहू (यज्ञपात्र विशेष) है, मन उपभृत् है, चक्षु ध्रुवा है, और मेधा स्रुवा है, सत्य अवभृथ स्नान है, स्वर्ग उदयन है। ऋग्वेद पढ़ना इसमें दूध की आहुति करना है, यजुर्वेद पढ़ना घृताहुति है। सामवेद पढ़ना सोमाहुति है, अथर्व्व पढ़ना अन्य स्निग्ध पदार्थों की आहुति हैं। (पृ०५७७) यह आत्मा ही सौत्रामणी यज्ञ है। इस यज्ञ में स्त्री-योनि वरुण देवता है, पुरुष-वीर्य्य इन्द्रदेवता है। (पृ० ६३०) स्त्री की योनि यज्ञवेदि है, उस पर जो रोम हैं वह यज्ञ के आसन हैं, बीच में पुरुषाङ्ग प्रदीप्ताग्नि है। सो वह आदमी जो विपरीति रति आदि द्वारा वीर्य्यनाश न करके उससे उत्तम सन्तान उत्पन्न करता है वह बाजपेय यज्ञ का फल पाता है (पृ० ७४४)।

यह प्रमाण तो यों ही उपस्थित कर दिये गए हैं। सच पूछिये तो शत-पथ का पृष्ठ पृष्ठ पंक्ति पंक्ति यह कहरहा है कि यज्ञ नाटक है। हां, एक बात और है। कहीं कहीं यह नाटक अनेक कथाएं एक ही समय में सुनाते हैं। अथवा यों कहिये कि वस्तुतः तो प्रत्येक यज्ञ आध्यात्मिक आधि भौतिक अधिराष्ट्र न जाने कितनो घटनाओं का रूपक है पर कहीं कहीं ऋषियों ने यह भाव दिग्दर्शनार्थ स्पष्ट कर दिये हैं, जैसे पृ० ५२३ पर सौत्रामणी प्रकरण में जिस में से एक छोटा सा उद्धरण ऊपर भी दिया गया हैं।

शृङ्गार रस।

अब हम अपनी दूसरी स्थापना की ओर आते हैं। यज्ञों में मुख्यभाव क्या है ? मिलकर कार्य्य करना सिखाना अर्थात् सङ्गठन। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये याज्ञिक ऋषियों ने इस राग-माला की टेक बनाई है 'स्त्री पुरुष का जोड़ा।' बात है भी मार्म्मिक। ऋषिलोग वर्त्तमान मीमांसक पशुओं की भांति

नीरस न थे। इससे बढ़ कर सरस और सफल सङ्गठन और हो ही नहीं सकता। Home, sweet home के नाम से भी इसी सङ्गठन के गीत गाए गए हैं और न मालूम कितने ऋषियों ने इसका गान करके अपने काव्य को अमर बनाया है।

इस सङ्गठन में एक और बड़ी मौलिक विशेषता है, जिसकारण सङ्गठन मात्र का प्रतिनिधि इसे चुना गया है। संसार के अन्य सब कार्य्य शायद अकेले अकेले भी सिद्ध होसकते हैं, राबिन्सन क्रूसो अपना सब निर्वाह अकेला कर सकता है, पर यदि कोई एक कार्य्य ऐसा है जो बिना दो के हो ही नहीं सकता तो वह है यही गर्भाधान। यही नहीं, संसार को स्वर्ग और नरक बनाने का मूल आधार यदि कोई है तो यही मूलाधार। शतपथ कहता है :—

आत्मन्नग्निं गृह्णीते चेष्यन्। आत्मनो वा एतमधिजनयति यादृशाद्वै जायते तादृङ्ङेव भवति स यद् गृहीत्वाऽग्निं चिनुयात्मनुष्यादेव मनुष्यं जनयेन् मर्त्यान्मर्त्य मनपहत पाप्मनोऽनपहत पाप्मान मथ यदग्निं गृहीत्वा चिनोति तदग्ने रेवाध्यग्निं जनयत्य मृतादमृतमप हतपाप्मनोऽपहत पाप्मानम् (पृ० ३२१)

यहां अग्निचयन की विद्या बताई गई है। उसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि यह बाहर जो अग्निचयन किया जाता है यह तो वस्तुतः नाटक है। इसे देखकर अपने अन्दर अग्निस्थापन करो, क्योंकि जो जैसा होकर सन्तान पैदा करता है सन्तान भी वैसी ही होती है। यदि मनुष्य सन्तान पैदा करेगा तो साधारण मनुष्य ही पैदा करेगा—मर्त्य से मर्त्य, पापयुक्त से पाप युक्त ही उत्पन्न होगा। पर हां यदि अपने अन्दर अग्निधारण करके सन्तान पैदा करेगा तो सन्तान भी अग्निरूप होगी। उस समय अमर से अमर, पापमुक्त से पापमुक्त का जन्म होगा। इसलिये सन्तान उत्पन्न करने से पहिले अपने अन्दर अग्नि धारण करे।

इसीलिये पृ० ७४४ में स्त्री-योनि को वेदि और पुरुषाङ्ग को समिद्धाग्नि कहा और बताया है। मनुष्य ने उत्तम सन्तान उत्पन्न करली, मानो वाजपेय यज्ञ कर लिया। यहीं तक नहीं, राष्ट्र में मनुष्य संख्या की वृद्धि के लिये भी शतपथ उसी प्रकार बल देता है, जैसे ऊपर उनके उत्कर्ष के लिये देखचुका है।

यहां राष्ट्रभृत् आहुतियों का प्रकरण है। इन में जोड़े जोड़े के नाम पर आहुति दी गई हैं। इसका कारण सुनिये।

मिथुनानि जुहोति। मिथुनाद्धि प्रजायते सराष्ट्रं भवति अराष्ट्रं वै स भवति यो न प्रजायते तद्यन्मिथुनानि राष्ट्रं बिभ्रति मिथुनाउऽएते देवास्तस्मादेता राष्ट्र भृत आज्येन द्वादशगृहीतेन (पृ० ४८१)

बिना जोड़े के सन्तान नहीं। जहां सन्तान नहीं, वहां राज्य ही नहीं रह सकता। इसलिये यह स्त्री पुरुषों के जोड़ों की आहुतियें राष्ट्रभृत् कहलाती हैं। यह आहुतियें विवाह में पढ़ी जाती हैं। इन मन्त्रों में सृष्टि में अनेक परिवार दिखाए गए हैं जिन में आनन्द की धूम मची हुई है। साथ ही इन में यह भी बताया गया है कि पुरुष स्त्री की अपेक्षा अधिक बलवान् होना चाहिये। उस में इतनी सामर्थ्य होनी चाहिये कि अनेक स्त्रियों से विवाह कर सके, जब इतनी सामर्थ्य हो तब एक से विवाह करे। यह नहीं कि यज्ञ के नाम से केवल स्त्री पुरुष के सङ्गठन की ही व्याख्या की गई है। नहीं, जोड़े को सङ्गठन का उपलक्षण (Symbol माना गया है, क्योंकि इस से बढ़कर प्रेममय सङ्गठन कोई नहीं जिसमें शासन का कार्य्य यथावत् चलता हो। माता पुत्र में प्रेम है, पर शासन नहीं। बहिन भाई में प्रेम है, शासन नहीं। किन्तु पति पत्नी में शासन और प्रेम दोनों का मेल है। शासक कौन किसका है ? इस में सन्देह नहीं कि जो जिस स्त्री का स्वयंवृत शासक है, वही उसका यथार्थ पति है। पर आदर्श पति पत्नी में शासन कौन किसका करता है,यह परमात्मा ही जाने। बस यही सङ्गठन (Organisation) का आदर्श है। शासक और शासनीय के बिना कोई सङ्गठन नहीं रह सकता। पर सङ्गठन ठीक वही है जहां प्रेम के कारण शासक की शासकता का कभी कोई अनुभव न करे। यज्ञ का सङ्गठन रूप शतपथ में यों कहा गया है।

द्वंद्वं पात्राण्युदाहरति शूर्पश्चाग्निहोत्रहवणीं च स्फ्यं च कपालानि च शम्याश्च कृष्णाजिनश्चोलूखलमुसले दृषदुपले तद्दश दशाक्षरा वै विराड्विराड्वै यज्ञस्तद्विराजमेवैतद्यज्ञमभिसम्पादयत्यथ यद्द्वंद्वं द्वंद्वं वै वीर्य्यं यदा वै द्वौ संरभेतेऽथ तद्वीर्य्यं भवति द्वंद्वं वै प्रजननम् मिथुनमेवैतत्प्रजननम् क्रियते।

पात्रों के जोड़े रखता है। छाज और अग्निहोत्रहवनी, स्फ्य और कपाल, शम्या और कृष्णाजिन, ऊखल मूसल, सिल वट्टा, यह दस हुए, क्योंकि यहां विराट् छन्द है, विराट् के दस अक्षर होते हैं। यज्ञ भी विराट्रूप है, इसलिये दस पात्रों से यज्ञ का विराट्रूप किया। अब यह जो जोड़े रक्खे, सो उसका कारण यह है कि विराट् (प्रजा; इसीलिये Republic को विराट् कहा गया है) की शक्ति जोड़े से ही होती है। "यदा वै द्वौ संरभेतेऽथ तद्वीर्य्यं भवति" जब दो मिलकर कार्य्य करते हैं (सम्+रभेते) तब ही शक्ति पैदा होती है। इसीलिये कहा है, 'द्वंद्वं वै वीर्य्यं' जोड़े में बल है। यहां तक कि संसार का सब से मुख्य कार्य्य प्रजनन (प्रकृष्टं जननम्) उत्तम सन्तान बिना जोड़े के नहीं हो सकती। इसलिये जोड़ा ही बल और जोड़ा ही सर्ग (प्रजनन Creation) है। ऊपर के जोड़ों को ध्यान पूर्वक देखने से पता लगेगा, कि सबके सब स्त्री पुरुष जोड़े नहीं, जैसे स्फ्य कपाल, ऊखल मूसल। किन्तु जहां तक सम्भव हुआ है जोड़े स्त्री पुरुष के ही बनाए गए हैं, जैसे शम्या कृष्णाजिन। यह है सङ्गठनशास्त्र।

स्त्री पुरुष के इस भाव से कोई यज्ञ खाली नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को इसी सङ्गठन का उपदेश किया गया हो, साथ ही उस प्रकार की सन्तान का भाव अवश्य है। इसीलिये कहा जाता है, बिना पत्नी यज्ञ नहीं हो सकता। कारण स्पष्ट है, जहां ब्राह्मण को सच्चा उत्तम ब्राह्मण बनाना आवश्यक है, वहीं, उसी दशा में उसकी सन्तान भी उपकारक होसकती है। यही कारण है कि यज्ञ को मिथुनरूप बनाया गया है। जिस प्रकार छान्दोग्योपनिषद्कार ऋषि ने संसार के प्रत्येक सङ्गठन को सङ्गीत की भाषा में वर्णन किया है, उसी प्रकार शतपथकार याज्ञवल्क्य ने संसार-भर की घटनाओं को मैथुन (जोड़े) की भाषा में वर्णन किया है, क्योंकि यज्ञ का उद्देश्य ही है उत्तम सन्तान की उत्पत्ति। अन्य सब उद्देश्य उत्तम शब्द के पेट में समा जाते हैं। परिणाम यह है कि यज्ञशाला में छत और खम्भे का जोड़ा, यज्ञवेदियों में गार्हपत्य और आहवनीय का जोड़ा, यज्ञपात्रों में जोड़ा, सोम और जल का जोड़ा, जिधर भी देखो मिथुन ही मिथुन का दृश्य दिखाया है। याज्ञिक लोग चाहते हैं कि यज्ञ करने से पुरुष पत्नीमय और पत्नी पुरुषमय होजाय। ब्राह्मण उत्तम ब्राह्मण बने और ब्राह्मणीमय होजाय, ब्राह्मणी उत्तम ब्राह्मणी बने और ब्राह्मणमय होजाय, जितने दिन यज्ञ करें मैथुन न करें, क्योंकि यज्ञ में मैथुन का निषेध है। किन्तु स्वप्न, उठते, बैठते, सोते,

जागते एक दूसरे के अतिरिक्त किसीको न देखें। फिर अवभृथ स्नान के पश्चात् उनके सम्बन्ध से उत्तम सन्तान होगी। उस समय तक ऋत्विज् उनपर पहरा देंगे, यह उनके संयम का सबसे बड़ा कारण होगा। इसके अतिरिक्त दिन भर उपदेश भी मन्त्रों द्वारा मिलेगा। यज्ञक्रिया भी संयम में सहायक होगी, किन्तु ध्यान होगा जोड़े का। यह जोड़े का भाव शतपथ में इतना भरा हुआ है कि कोई पृष्ठ ही इससे खाली होगा। यद्यपि हमने अभी तक परिगणन नहीं किया, किन्तु तो भी इतना अवश्य कहा जासकता है कि यदि जोड़े के वाक्य शतपथ में हज़ारों में नहीं तो सैंकड़ों में अवश्य आए हैं। सच तो यह है कि जिस प्रकार सङ्गीत के कारण छान्दोग्योपनिषद् नाम रक्खा गया है, उसी प्रकार यदि हम शतपथ को मिथुनोपनिषद् कहदें तो कुछ अनुचित प्रतीत नहीं होता। पर एक बात साथ है, कहीं भी मिथुन का शब्द प्रजनन से अलग नहीं आया है। यह जोड़ा भी व्यापक है, इसको कहते हैं, 'काजल की कोठरी को स्वर्ग बनाना' कहां तो वेदान्तियों का कहना, "द्वारं किमेकं नरकस्य? नारी" और कहां यह, पर सच्चे दोनों हैं। है न शृङ्गार रस? सच पूछिये तो प्रजनन के साथ ही शृङ्गार रस है, नहीं तो वह शृङ्गार रस नहीं, वह है शृङ्गार विष।

अग्निहोत्र।

अब इसी प्रसङ्ग में अग्निहोत्र की व्याख्या करदें तो अनुचित नहीं। यह नित्य कर्म है। यों समझ लीजिये कि यह संक्षिप्त कुमारसम्भव नाटक है। नित्यपाठ की चीज़ होनी ही चाहिये संक्षिप्त, पर है यह भी नाटक। आइये इस नाटक का भी तत्त्व देखें। सबसे पहिले अग्निकुण्ड को देखिये, इसकी आकृति समचतुरस्र अर्थात् वर्गाकार (Square) है। तथा नीचे से बहुत छोटी पर धीरे धीरे ऊपर की ओर खुलती गई है। इन दोनों बातों का क्या कारण हैं! पहिले वर्गाकृति को लेलीजिये। इसका तत्त्व है समय बचाना। अग्निहोत्र-हीन भारतवासी समय का मूल्य क्या जानें। आजकल तो अग्निहोत्र के राष्ट्रीय-तत्त्व को यदि किसीने समझा है, तो योरोपियन लोगों ने। वे हरएक काम को वर्गाकार (Square) रूप में करना जानते हैं। कमसे कम समय जिससे लगे, वही काम वर्गाकार है, क्योंकि उसके प्रत्येक दो बिन्दुओं के बीच में

छोटी से छोटी रेखा अर्थात् सरल रेखा है । अभागे भारतवासियों के काम सब ही गोलमाल (Round about) हैं, उनका हवनकुण्ड विकृत होगया है ।

हवनकुण्ड के नीचे छोटे ऊपर खुले होने में भी इसी प्रकार तत्त्व भरा हुआ है । इसका तात्पर्य्य यह है, कि जो कार्य्य करो, पहिले थोड़ा आरम्भ करके धीरे धीरे बढ़ाओ । पहिले बड़ी धूम-धाम और ढोल-ढमक्के के साथ काम आरम्भ करके फिर हाथ पर हाथ धर बैठना मूर्खता है । आरम्भ में शूर मत कहलाओ, परिणाम में बनो । इसी बात को वेद ने यों कहा है :—

आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धास उद्भिदः ।

(यजु० अ०२५ । मं० १४)

हमारे सब कर्म चारों ओर से अविकृत (Square) तथा उद्भिद् (growing upwards) हों, इसी आकृति के कारण वृक्ष भी उद्भिद् कहलाते हैं ॥

भारतवासियोंका हवनकुण्ड केवल विकृत ही नहीं औंधा भी पड़ा है ।

अब शतपथ तथा अन्य ग्रन्थों के वह वाक्य भी समझ में आसकते हैं, जिनमें लिखा है, जिसने अग्निहोत्र किया, उसने जगत् जीत लिया । जिसने यज्ञ में मात्रा-भर भी भूल की, वह मारा गया । यह सब वाक्य नाट्य-परक हैं, नाटक-परक नहीं । दृष्टविघात स्वयं साधारण बात है, पर अदृष्ट भाव में विघातक होने के कारण घोर हानिकारक है । यह है मीमांसा के अदृष्ट का तात्पर्य्य । हवनकुण्ड को उलटा करने से अन्धेर नहीं आता, पर वह जिस भाव का दर्शक है, उस अदृष्ट भाव को उलटा करने से क्या हानि होती है वह प्रत्यक्ष है । अग्याधान मन्त्र को लीजिये उसमें भी यही भाव है ।

भूः भुवः स्वः प्रभुः द्यौरिव भूम्ना पृथिवी व (च) वरिम्णा तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठे अग्निम् अन्नादम् अन्नाद्याय आदधे ।

वह प्रभु भूः भुवः स्वः है, उसे साक्षी करके मैं आकाश की सुन्दरता पृथिवी पर उतारने के लिये हे विद्वानों की यज्ञ-भूमि पृथिवी तेरी छाती पर अन्नाद अग्नि की स्थापना करता हूं, जिससे सबको अन्न प्राप्त हो ।

कैसे गहरे शब्द हैं, अन्न के लिये अग्नि की स्थापना करता हूं, याद रक्खो अग्नि बिना बिना अन्न नहीं ।

पर यह अग्नि अकेला नहीं बढ़ा सकता 'द्वन्द्वं वै वीर्य्यम्' इसीलिये अगले मन्त्र में कहते हैं ।

उद्बुध्यस्व अग्ने प्रतिजागृहि। त्वम् इष्टापूर्ते संसृजेथाम् अयश्च अस्मिन् सधस्थे अधि उत्तरास्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत।

हे अग्ने उद्बुद्ध हो, जाग उठ, तू और यह मिलकर इष्टापूर्त्त (परोपकार के कार्य्य) करें, इसीलिये इस चबूतरे पर यजमान और सब विद्वान् उपस्थित हों, त्वम् अयश्च तू और यह।

तू और यह कौन? यह स्थान जान बूझकर खाली छोड़े गए हैं। यहां स्त्री पुरुष, राजा, प्रजा, गुरु, शिष्य सब ही शासक और शासनीय के जोड़े रक्खे जासकते हैं। पर मुख्यरूपेण यहां स्त्री पुरुष ही समझे जाते हैं, क्योंकि आगे चलकर सूर्य्यों ज्योतिः और अग्निर्ज्योतिः आदि अग्निहोत्र की मुख्य आहुतियों में शतपथ कहता है:—

तद्वस्त्येव प्रजननस्य रूपम्। अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहेति। तदुभयतो ज्योतीरेतो देवतया परिगृह्णाति उभयतः परिगृहीतं वै रेतः प्रजायते तदुभयतः एवैतत्परिगृह्य प्रणयति।

यह अग्निर्ज्योतिः की आहुति सन्तानोत्पत्ति का रूप है, इसीलिये ज्योति के दोनों ओर वीर्य्य के देवता अग्नि को बैठाया है, क्योंकि स्त्री-वीर्य्य को जब पुरुष-वीर्य्य दोनों ओर से घेर लेता है, तब ही सन्तान होती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यद्यपि अग्निहोत्र का आरम्भ तू और यह के अव्यक्त शब्दों से किया गया है क्योंकि यह आरम्भिक अग्न्या धानका भाग अन्य यज्ञों में भी उपयोगी है तथापि मुख्य आहुतियों में फिर स्त्री पुरुष का जोड़ा आगया है।

विश्वेदवा यजमानश्च।

यह शब्द भी ध्यान देने योग्य हैं यद्यपि तू और यह दोनों का मेल आवश्यक है किन्तु तो भी जब तक दोनों में से एक मुख्य कार्य्य कर्ता न हो तब तक सङ्गठन नहीं हो सकता तब तक वह समज है समाज नहीं। रेवड़ है जत्था नहीं। नाऊकी बरात है सुसज्जित सेना नहीं। इसीलिये यज्ञ भूमि का केन्द्र है यजमान और सब उसके उपकारक हैं इसलिये वह हैं विश्वेदेवाः।

अच्छा यह तो हुआ पर सङ्गठन सफल तब ही होगा जब उसमें शासक शासनीय भाव सदा उछल कूदन मचाता रहे जब उसका प्रत्येक अङ्ग दूसरे के लिये अपने आप को बलिदान करने में एक दूसरे से आगे बढ़ना चाहे इसीलिये आगे लिखते हैं।

अयमृते इध्म आत्मा जातवेदः तेन इध्यस्व वर्धस्व च इद्ध वर्धय च अस्मान् प्रजया पशुभिःब्रह्मवर्चसेन अन्नाद्येन समेधय ।

हे अग्ने यह मेरा आत्मा तुम्हारा इन्धन है इससे चमको और बढ़ो और हमें भी बढ़ाओ हमारी प्रजा पशु ब्रह्मतेज अन्न सब बढ़े ।

जिस सङ्गठन में प्रत्येक समिधा अपने आपको आहुति करने दौड़े वहां वृद्धि ही वृद्धि है राख न करके वृद्धि देती है यही तो इस अग्नि की विलक्षणता है पर देखना अभिमान न बढ़े सदा याद रखना ।

इद मग्नये जातवेदसे इदन्न मम ।

यह सब उस अन्तर्य्यामी परमाग्नि प्रभुके अर्प्पण है यह मेरा नहीं है यही सङ्गठन का प्राण है स्वार्थ आलस्य अभिमान किसी कारण से भी हो "मैं" "मेरा" आरम्भ हुई और सङ्गठन भागा ।

कर्म्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन । इदन्न मम ।

देखयजमान कहीं अग्निमात्रा अत्यधिक न बढ़जाय चाहे सन्तानाग्नि का आधान करना हो अथवा किसी अन्य अग्नि का पहिले निर्भय होकर आत्मा से पूछ ।

अदितेऽनुमन्यस्व ।

फिर बड़े बूढ़ों से पूछ ।

अनुमतेऽनुमन्यस्व ।

फिर शास्त्र से पूछ ।

सरस्वत्यनुमन्यस्व ।

फिर अन्त में जगदीश्वर की शरण में जा और कह ।

देव सवितः प्रसुवयज्ञं प्रसुव यज्ञपतिम्भगाय दिव्योगन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिः वाचं नः स्वदतु ।

इस अग्नि के सिर पर इतना जल भी रख फिर अग्नि में अग्निहोत्र की मुख्या हुतिदेना ।

हे गृहस्थ परमात्मा से प्रार्थना कर ।

सजूर्देवने सवित्रा सजूरुपसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्य्योवेतु ।

परमेश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़े हुए प्रातःकाल तेरे घर में सूर्य्य और रङ्गीली उषा का जोड़ा आए जिससे तुम यह उपदेश लो कि पुरुष दिन भर सूर्य्य की तरह गर्म्मी से अनथक काम करे और पत्नी उषाकी तरह खिली रहे काम काज करती झींखे नही।

सायङ्काल फिर प्रार्थना कर।

परमेश्वर के साथ जुड़ा हुआ इन्द्रवती (सजीधजी) रात्रि के साथ अग्नि का जोड़ा मेरे घर में आवे। रात्रि के समय पुरुष अग्नि के समान, शीत तथा अन्धकार का निवारक बने और पत्नी रात्रि के समान विश्राम देनेवाली हो

यह है गृहस्थों का दैनिक कर्म्म।

अच्छा यज्ञ वा अग्नि होत्र है क्या।

सूर्य्य अग्नि होत्र है (पृ० ८४)
पुरुष यज्ञ है (पृ० १६४)
योनि वेदि है (पृ० ७४४)

स्वाध्याय यज्ञ है (पृ० ५७७)

परमेश्वर यज्ञ है तस्माद्यज्ञात् यजु० ३१। ७।

अब इस क्रम को पूरा कीजिये।

सूर्य्य का यज्ञ होरहा है वसन्त घृत ग्रीष्म इन्धन शरत् हवि है (यजु३१। १४) इससे अन्न उत्पन्न हुआ उसे पुरुषाग्नि में हवन कीजिये उससे वीर्य्य उत्पन्न हुआ उसे स्त्री वेदि में हवन कीजिये उससे बालक हुआ उसे स्वाध्याय यज्ञ के अर्पण कीजिये उससे ब्राह्मण बना वह परमेश्वरार्पण हुआ उस परमेश्वर की इच्छा से फिर सूर्य्य यज्ञ हुआ और फिर वही चक्र इसी प्रकार बीच में और भी बहुत से यज्ञ कल्पना किये जासकते हैं इसीलिये वेद ने कहा—यज्ञेन यज्ञ मयजन्त देवाः और इसीलिये गीता में कहा है।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः,
यज्ञाद्भवतिपर्जन्यो यज्ञः कर्म्मसमुद्भवः।
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धिब्रह्माक्षर समुद्भवम्,
तस्मात्सर्व्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥
एवं प्रवर्तितं चक्रं। गीता ३। १४। १५। १६।

इन में से किसी विषयक बात जाननी हो तो मौलिक नियम सब के विषय में एक है ।

जठराग्नि को भोजन के हीन मिथ्या तियोग से

वीर्य्याग्नि को सन्तति के ,, ,, ,,

सन्तति को स्वाध्याय के ,, ,, ,,

बचाते रहो जिससे अग्नि बुझने न पाए इसी प्रकार यन्त्राग्नि में भौतिक अग्नि राष्ट्र में उत्साहाग्नि आदि अनेक अग्नियों की कल्पना हो सकती है सब का तत्त्व एक है इसीलिये यह अग्निविद्या अनन्त है यह छोटासा हवन कुण्ड अनन्त विद्या का भण्डार है परन्तु यह न भूलना चाहिये कि याज्ञवल्क्य कात्यायनादि सब आचार्य्यों ने सब से अधिक बल उत्तम सन्तान उत्पन्न करने पर दिया है । रे प्रकृति पूजक संसार क्या तू कभी अपनी सन्तति का मूल्य समझेगा, तू कब चेतेगा ?

पशुहिंसा ।

अब हम यज्ञों में पशुहिंसा विषयक एक ऐसे रहस्य का उद्घाटन करते हैं जिससे जहां जहां यज्ञों में पशुहिंसा का विधान है प्रायः उन सब ही स्थलों की व्याख्या हो जायगी। हम आज उदाहरण के लिये अग्नीषोम यज्ञ को लेते हैं इसका पशुछाग अर्थात् बकरी का बच्चा है । वैदिक साहित्य में अज नाम जीव का है इसके लिये यहां एकही प्रमाण पर्य्याप्त है ।

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृमानां नमामः ।
अजा ये ता जुषमाणा भजन्ते जहत्येना भुक्त भोगां नुमस्ताम् ।
साख्य तत्त्व कौमुद्यां वाचस्पतिः ।

स्पष्ट है छाग छोटे बच्चे का नाम है । छाग से उपमा इसीलिये दी गई है कि साधारण बच्चा बकरी का बच्चा ही कहा जासकता है । व्याघ्र गौ आदि के बच्चे साधारण नही उन में तीव्रता सौम्यता आदि गुण हैं इसलिये साधारण बच्चे को लेले सेही उपमा दी जासकती है ।

अब अग्नीषोम यज्ञ क्या है । सोमपान द्वारा ऐसी सन्तान उत्पन्न करना जिसमें अग्नि और सोम दोनों गुण इकट्ठे हों ।

जिन के लिये कहा जासके ।

भीम कान्तै र्नृप गुणैः सबभूवोप जीविनाम् ।
अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः ॥

अथवा

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि कोह विज्ञातुमर्हति ॥

अथवा

खल दल दलनायासहृच्य भासाज्वलन्तम्।
सदय मथ हगन्ता नार्त्तलोके झरन्तम् ॥

अग्नि और सोम क्रोध और शान्ति का यथोचित मेल किन्हीं विरले मन और विरले शरीरों में होता है शरीर में भी इन दोनों गुणों की समीचीनता (Epudilriam) की आवश्यकता है इसीलिये सुश्रुत में शरीर को अग्नीषोम कहा है पूर्णस्वास्थ्य का चिन्ह है अग्निसोम का साम्य ऐसा विलक्षण पुत्र उत्पन्न करने केलिये वीर्य्य शुद्धि के लिये सोमपान की आवश्यकता है।

इसी यज्ञ में पशुबलि भी दी जाती है अब देखना चाहिये कि इसका क्या तात्पर्य्य है। यह ग्रन्थि एक शब्द के सुलझाने से सुलझ जायगी वह शब्द संज्ञपन है। यहां ही नहीं जहां कहीं भी पशुयज्ञ है वहां आलम्भन संज्ञपन और विशासन शब्दों का प्रयोग हैं आलम्भन पर बहुत विचार हो चुका है हम स्वयं भी अपने एक लेख में इसका बिचार कर चुके हैं आज हमारी इच्छा संज्ञपन पर ही विचार करने की है। यह शब्द णिच् प्रत्यायान्त सं पूर्व्वक ज्ञा धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर बना है।

अब सब से पहिले सं पूर्व्वक ज्ञा धातु का क्या अर्थ है यह देखना चाहिये। हम बल पूर्व्वक कह सकते हैं कि वेद में यह धातु सङ्गम के अर्थ में आई है अन्य किसी अर्थ में आई हो तो कोई पाठक हमारे ध्यान में लाने की कृपा करें हम यहां दो प्रमाण उपस्थित करते हैं।

संज्ञानंनः स्वेभिः संज्ञान मरणेभिः।
संज्ञानमश्विना युव मिहास्मासु नियच्छतम् ॥

अथर्व्व ७ काण्ड ५ अनु०। सू० ५२।

संजानीध्वं संपृच्यध्वं संवोमनां सिजानताम्।
देवा भागं यथा पूर्व्वे सञ्जानाना उपासते ॥

अथर्व्व काण्ड ६। अनु० ७। सू० ६४।

हे अश्वियो हमारा अपने पराये सबसे मेल रहे। हमारे अन्दर परस्पर भी मेल रहे ऐसी कृपा हम पर करो करो।

हे मनुष्यो तुम भी परस्पर ऐसे मिले रहो ऐसे चिपटे रहो जैसे तुम्हारे बड़े उस भजनीय परमेश्वर की मिलकर उपासना करते हैं।

अब यहां कोई भी नहीं कह सकता कि इन मन्त्रों में सज्ञानी एवं सङ्गच्छ एवं के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ। अब प्रश्न हो सकता है कि णिच् प्रत्यय से अर्थ बदल गया हो सो प्रथम तो णिच् प्रत्यय से केवल इतना ही अर्थ बदल सकता है कि संगत होना के स्थान में सङ्गत करना अर्थ होजाय क्योंकि णिच् हेतुमद्भाव (Cousative) में होता है परन्तु प्रतिवादियों को तो वज्र प्रहार के बिना सन्तोष नहीं हो सकता इस लिये णिच् प्रत्ययान्त प्रयोग लीजिये।

सवः पृच्यन्तांतन्वः संमनासि समुव्रता। संवोयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः संवो अजीगमत्। संज्ञपनं वो मनसा थो संज्ञपन हृदः अथो भगस्य यच्छ्रान्त तेन संज्ञपयामिवः। ६ काण्ड अनु ८ सू० ७४.

तुम्हारे शरीर तुम्हारे मन तुम्हारे व्रत मिले रहें। वह कल्याणकारी ब्रह्मणस्पति तुम्हें हर प्रकार इकट्ठा कर चुका है।

तुम्हारे मन और तुम्हारे हृदयों का सङ्गमन हो परमेश्वर के नाम पर किये हुए पुरुषार्थ से तुम्हें इकट्ठा करता हूं।

क्यों श्रोत्रिय जी अभी नशा उतरा कि नहीं अच्छा अब देखिये यह संज्ञपन शब्द क्या रङ्ग लाता है ज़रा पशु के बलिदान की क्रिया सुनिये।

देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णोहस्ताभ्याम्। अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नियुनज्मि अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनुत्वा माता मन्यता मनु पितानु भ्रातानु स गर्भ्योऽनुसखा सयूथ्यः। अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि!

इस मन्त्र को पढ़ कर बलि पशु को यूप अर्थात् खम्भे से बांधा जाता है। अब इस मन्त्र का महीधर का ही किया हुआ अर्थ सुनिये। हे पशु नाना प्रकार के जल और ओषधियों से तुझे पवित्र करता हूं इस प्रकार के तुझे माता पिता भ्राता सहोदर सखा और हमजोली सब के सब अनुमति दें।

अब विद्वान् लोग सोचें कि यह शब्द पशु के लिये कहे जासकते हैं। अब पशु के मारे जाने पर क्या मन्त्र पढ़ा जाता है वह सुनिये।

वाचं ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रन्ते शुन्धामि नाभिन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि।

पत्नी कहती है—हे पशु! मैं तेरे प्राण, चक्षु श्रोत्र, नाभि, लिङ्ग, गुदा और पैरों को शुद्ध करती हूं। यह मन्त्र पढ़कर पत्नी मृत पशु के अङ्गों को जल से स्पर्श करती है। मन्त्र में चरित्र का अर्थ पैर महीधर को पदक-प्रदान का अधिकारी बना रहा है। बलिहारी है इस बुद्धि की!

अच्छा, अब और दिल्लगी सुनिये।

अध्वर्य्यु और यजमान मरे पशु से कहते हैं:—

मनस्त आप्यायतां वाक् त आप्यायताम् चक्षुस्त आप्यायताम् यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्त आप्यायतां निष्टयायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः ओषधे त्रायस्व मैनꣳहिꣳसीः।

तेरा मन शान्त हो, तेरी वाणी शान्त हो, तेरा प्राण शान्तिप्रद हो, तेरी चक्षु शान्त हों, तेरे कान शान्त हों। जो कुछ क्रूर तेरे साथ हुआ है, या उपस्थित है, सब शान्त हो। वह सब पूर्ण होजावे, तेरे दिन अच्छे गुज़रें। फिर मरे पशु की नाभि पर तिनका रखकर कहता है:—"ओषधे! इसकी रक्षा कर, इसे दुःख न पहुंचाना।"

यह सब कुछ मरे पशु से कहा जारहा है। नर-पशुओ! तुम्हारी बुद्धि कहां भाग गई?

अब इन मन्त्रों का तात्पर्य्य सुनिये—

हम पहले ही कह चुके हैं, कि अग्निषोम यज्ञ का तात्पर्य्य है ऐसा बालक उत्पन्न करना, जिसमें यह दोनों दुर्लभ गुण एकत्र होजावें। अब भावी सन्तान को प्रत्यक्षवत् लक्ष्य करके पत्नी यह कहती है। यह वाक्यालङ्कार कुछ नया कल्पित नहीं है, हम मुद्राराक्षस नाटक में पढ़ते हैं:—

चाणक्यः—(प्रत्यक्षवदाकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा) दुरात्मन् राक्षस! तिष्ठ एषोऽहमचिराद्भवन्तम्—

स्वच्छन्दमेकचरमुज्ज्वलदानशक्तिम्,

उत्सेकिना मदबलेन विगाहमानम्।

बुद्धया निगृह्य वृषलस्य कृते क्रियायाम्,

आरण्यकं गजमिव प्रगुणीकरोमि ॥

लोग अपने आपसे बात करते हुए अपने शत्रु के विषय में न मालूम कितनी बार कह उठते हैं, "अच्छा बच्चू, तू मिल तो सही, देख, तेरे साथ कैसी करता हूं"। अब यहां प्रबल हृदय-वेग के कारण'करूंगा'इस भविष्यत् के अर्थ में वर्त्तमान काल का प्रयोग है। पत्नी उस आने वाले आत्मा को सम्बोधन करके कहती है, "हे बच्चे! मैं देवसविता को साक्षी करके उसके प्रबल हाथों को और महती पोषक शक्ति को प्रत्यक्ष जानकर यह प्रण करती हूं, कि तू अग्निष्टोम कार्य्य के अर्पण है, अर्थात् संसार के दुष्ट गुणों के दाह और जगत् में शान्ति विस्तार के लिये मैं तुझे अपने गर्भ में बुलाती हूं। मैं प्रभु को साक्षी करके प्रण करती हूं, कि जब तू बड़ा होगा तो हे मेरे लेले! (प्यार से बच्चे को लेला कहती है) मैं मोहवश तुझे खुला न फिरने दूंगी, तू अवश्य गुरुजी के खूंटे से बांधा जायगा। मैं तो उस दिन को मनाती हूं, जब तू बड़ा हो और अग्निषोम गुण प्राप्त करने गुरुजी के घर जाए। उस समय मैं, तेरे पिता, भ्राता (चाचा आदि के लड़के), सहोदर, मित्र हमजोली सब प्रसन्न होकर मङ्गल मनाते हुए गुरुजी के घर भेजें। इसीलिये मैं उत्तम जल और ओषधि सेवन करूंगी। मैं फिर कहती हूं कि मैंने तुझे अग्नीषोम यज्ञ के अर्पण किया। मैं तेरी वाणी, तेरे प्राण, तेरे आख, कान, नाभि, लिङ्ग, गुदा सब इन्द्रियों को पवित्र करती हूं, अर्थात् ऐसा यत्न करूंगी, कि तेरे किसी इन्द्रिय में विकार न हो, और ऐसे ही गुरु के पास भेजूंगी, जो तुझे इन इन्द्रियों के सदुपयोग की शिक्षा दे, और तेरे चरित्रों को पवित्र करे। मेरे बच्चे! तू गुरुकुल में जाए, तेरा मन आप्यायित हो, तेरी वाणी आप्यायित हो, तेरी चक्षु आप्यायित हो, तेरे कान आप्यायित हों। गुरुकुल में तेरे हित के लिये गुरु लोग कोई कठोरता वर्त्तें, अथवा और जो कुछ तुझे विद्याभ्यास आदि के कारण कृशतादि प्राप्त हो, वह भी पूरी होजाय। तू अक्षुण्ण हो, तू शुद्ध हो, तेरे दिन अच्छे बीतें।" फिर जो सोम आदि ओषधि विद्वान् दें, उसे लेकर वह आशीर्व्वाक्य कहती

है, "हे ओषधि ! तू आने वाले बालक के लिये रक्षा-कारिणी हो, उसे कोई कष्ट न होने दे।"

अब हम अपने किये अर्थ की पुष्टि में प्रमाण उपस्थित करते हैं।

(१) हमारा किया अर्थ मनुष्यों के सम्बन्ध में होने से ठीक है। पशु के माता, पिता, सखा, सहोदरादि का अनुमति देना और वह भी वध के लिये उपहासमात्र है।

(२) मरे हुए की वाणी प्राणादि की शुद्धि कहना और भी अधिक उपहास है। इसी प्रकार उसे मारकर फिर आप्यायताम् की माला जपना, जले पर नमक छिड़कना है।

(३) वाक्, प्राण आदि शब्दों का जिह्वा, नासिकादि अर्थ लेना शब्दों के साथ अत्याचार है। जब हमारा किया हुआ अर्थ मुख्यार्थ का अनुग्राहक है, तो मुख्यार्थ का निग्राहक अर्थ क्यों लें?

(४) फिर यहां एक और बात देखने योग्य है। शतपथ के जिस शब्द का अर्थ यहां पशु-बध लिया गया है, देखना चाहिये वह क्या शब्द है? वह शब्द वही "संज्ञपन" है जिसकी चर्चा हमने आरम्भ में उठाई थी और जिसका अर्थ हम वेद के प्रमाणों से ही "सङ्गमन" सिद्ध कर चुके हैं। अब देखना चाहिये, शतपथ स्वयं इस विषय में क्या कहता है?

तन्नाह जहि मारयेति मानुषꣳहि तत् संज्ञपय अन्वगन्निति तद्धि देवत्रा स यदाह अन्वगन्नित्येतर्हि ह्येष देवान् अनु गच्छति तस्मादाहान्वगन्निति।

पशु के लिये यज्ञ में जहि, मारय यह शब्द नहीं कहते क्योंकि यह तो साधारण मनुष्यों की भाषा है। देवताओं की भाषा में 'संज्ञपय, अन्वगन्' यह शब्द प्रयुक्त होते हैं क्योंकि यही देवोचित व्यवहार है। देवता जिस पशु को मारना चाहते हैं वह उसके पशुत्व को मारते हैं नकि उस पशु को। वह 'मारय' नहीं कहते किन्तु 'संज्ञपय' (संगमय) कहते हैं, अर्थात् इसे हमारी सङ्गति में लाओ। वह 'अन्वगन्' कहते हैं अर्थात् इसे हमारा अनुगामी बनाओ। देखिये शतपथ स्वयं ही कह रहा है।

"सो यह जो कहता है 'अन्वगन्'—वह इसलिये कि फिर वह देवताओं का अनुगामी हो जाता है। इसीलिये 'अन्वगन्' यह शब्द बोला जाता है। कितना स्पष्टभाव है? मनुष्य लोग मारने को बीभत्स कार्य्य करते हैं, किन्तु देव लोग उसके पशुत्व को मार कर उसे अपना अनुगामी बना लेते हैं, यही उनका मारना है। तद्धि देवत्रा।

यह है यज्ञों में पशुहिंसा। ऐसी पशुहिंसा तो रोज़ हुआ करे। अग्नीषोममें भी उपदेश है कि यह बच्चा चाहे कैसे अच्छे संस्कार लेकर आए, जबतक किसी विद्वान् के खूंटे से न बांधोगे तब तक निरा छाग ही रहेगा। इसीलिये इसे किसी विद्वान् के घर भेजना। इसीलिये पत्नी के मुख से "वाचं ते शुन्धामि" आदि प्रतिज्ञाएं कराई जाती हैं। इस प्रकार परम-कारुणिक कल्पसूत्रकारों ने जो मधुर कल्पनाएं की थीं, उनका मर्म न जानकर अथवा स्वार्थवश होकर पामरों ने कैसा हिंसा-जाल विस्तीर्ण किया है?। हे भगवन्! इससे रक्षा करो! इसीलिये तो वेद भगवान् ने पहले ही घण्टा-घोष किया था, "मुग्धा देवा उत शुनाऽयजन्त उत गोरङ्गैः पुरुधा यजन्त।"

यहां हमने अग्नीषोम में इन मंत्रों का क्या अर्थ है? यह दिखा दिया। इसी प्रकार अन्यत्र गुरुशिष्य व्यवहार, शल्य चिकित्सादि में भी इनका विनियोग होसकता है। गुरुशिष्य व्यवहार में विनियोग करते समय तो वर्त्तमान का भविष्यत् अर्थ में भी प्रयोग मानने की आवश्यकता न रहेगी। इसी प्रकार अन्यत्र भी जहां यह वाक्य विनियुक्त हो सकते हों करने चाहियें; क्योंकि मन्त्रार्थ विनियोग का नियामक है, विनियोग मन्त्रार्थ का नहीं। परमेश्वर ने यह मंत्र ख़ास अग्नीषोम यज्ञ के लिये घड़कर नहीं भेजा। कल्प सूत्रकारों ने अपनी कल्पना से उनका यथोचित स्थान में विनियोग किया, इसीलिये वह कल्पसूत्रकार कहलाए। हां, जिन्होंने मन्त्रार्थ से विपरीत स्थानों में मन्त्रों को तोड़ मरोड़कर वाणी की जीभ और प्राण की नाक बनाकर विनियोग किया, उनकी बुद्धि पर जितना रोएं थोड़ा है।

नाटक की यथार्थता।

अब हमें एक प्रश्न का उत्तर देना और शेष रह गया। यह पूछा जासकता है कि नाटक करने वाले नाटक में यथा सम्भव यथार्थता लाने का यत्न करते हैं। यदि कोई अपने नाटक में सचमुच का राजवेष पहना कर सचमुच का

चन्द्रोदय दिखला सके तो क्यों न दिखाए? इसी प्रकार यदि कोई इस काल्पनिक पशुत्व की हिंसा को आचमनादि की शुद्धि द्वारा आभ्यन्तरिक शुद्धि की तरह स्थूल कर्म्म द्वारा यथार्थ दिखाना चाहे तो क्यों न दिखाए। उनके प्रति हमारा यह उत्तर है कि यथासम्भव का अर्थ तुम क्या लेते हो? देखो नाटक में जहां कोई ख़ून दिखलाया जाता है वहां मनुष्य झूठमूठ मरा हुआ सा बनकर पड़ जाता है। यदि वहां सचमुच ख़ूनही कर दिया करो तो नाटक में कैसी यथार्थता आजाय। लोग यही कहेंगे कि राजाज्ञा द्वारा ख़ून में प्राणदण्ड होने से यथार्थ ख़ून नहीं दिखलाया जासकता। तो बस हमारा यही कहना है कि "मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे, पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते, मुग्धा देवाः" इत्यादि श्रुतिवाक्य तथा मा हिंस्यात् सर्व्वा भूतानि इत्यादि ब्राह्मण वाक्यों के कारण आप के नाटक के इस भाग में भी यह रस-विघातिनी बीभत्स क्रूरता यथार्थ नहीं आ सकती।

प्रतीत होता है कि यथार्थता के लिये पहिले लोगों ने व्रीहिमय पशु की आहुतियां दी होंगी। इसीलिये महाभारत में आया है "पुरा व्रीहिमयःपशुः"। भागवत में भी पिष्ट पशु का वर्णन है। पहिले यह मानस व्यापार था, फिर पिष्ट पशु बना, फिर जब संसार में अज्ञान,लोभ और मदान्धता बढ़ी तो पूरी यथार्थता हो गई। वस्तुतः पशुत्व की हिंसा पशुहिंसा है, पशुओं के शरीर की हिंसा पशुहिंसा नहीं। इसीलिये महाभारत ने कहा है 'धूर्त्तैः प्रवर्त्तितं चक्रं नैतद्वेदेषु विद्यते'॥ महाभारत शान्ति २६४ अ०।

और इसीलिये अथर्व्ववेद ७म काण्ड में प्रार्थना है:—

य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्रणोवोचस्तमिहेह ब्रवः।

अर्थात् हे प्रभो! ऐसा गुरु भेज जो हमें मन से यज्ञ करना सिखाए। इस ग्रन्थियां को समझ लेने से श्येनयागादि अनेक ग्रन्थियां खुल गईं। जो शत्रु को मारना चाहे वह निरन्तर ध्यान द्वारा ऐसी सन्तान पैदा करे जो शत्रु को मार गिराए। इसके लिये अग्नि की समिधाओं का चयन भी श्येन अर्थात् बाज़ जैसा हो, वह ध्यान भी बाज़ का करे किन्तु यह निन्दित यज्ञ है। श्येनयाग का यही अर्थ शबर स्वामी ने अपने मीमांसा भाष्य में किया है।

इसी प्रकार वरुण का पशु मेढा बताया गया है। इसका अर्थ है कि पोलिस के काम केलिये मेढे के समान गुण्डे पशुओं को अपना अनुगामी बना कर पोलिस का काम ले, क्योंकि गुण्डे ही सुधर कर गुण्डों को पकड़ सकते हैं। यमराज का पशु भैंसा है, अर्थात् दण्डाधीश के पद से राजा भैंसे के समान तमोगुणी भयङ्कर आदमियों से जल्लाद आदि का काम ले। और जिस यज्ञ में उन पशुओं का वर्णन है वहां तदुपयोगी सन्तान का वर्णन है यह है। हमारा कुमार सम्भव। इसी प्रकार हम समय समय पर बाजपेय, अश्वमेध आदि पर प्रकाश डालने का यत्न करेंगे और यदि प्रभु ने सामर्थ्य दी तो किसी दिन यज्ञों पर से इस घोर कलङ्क को दूर करने में सफल होंगे। धन्यवाद है उस प्रभु का जिसने ऋषि दयानन्द सा गुरु भेजकर हमें मन से यज्ञ करना सिखाया। ऋषिवर! यही आप के इस तुच्छ शिष्य की शताब्दी के अवसर पर आनन्दाश्रुस्नात भेंट है। इससे अविद्यान्धकार दूर हो।

सभ्यता की सच्ची कसौटी।

(पण्डित देवेश्वर सिद्धान्तालङ्कार)

आजकल सभ्य जगत् में चारों ओर यह आवाज़ सुनाई पड़ती है कि हम लोग उन्नति कर रहे हैं, मनुष्यसमाज उन्नति कर रहा है और पश्चिम की जातियां या White Races उन्नति की चरम सीमा पर पहुंच चुकी हैं। जिस क्षेत्र में भी देखिए, मनुष्य उन्नति करता हुआ दीखता है। देश और काल की कठिनाइयों और दूरियों को मनुष्य ने जीत लिया है। हज़ारों मीलों का सफ़र दिनों में और सैंकड़ों का घण्टों में तै कर लिया जाता है। आकाश के विस्तीर्ण वायुमण्डल और गंभीर सागर के कोनों को मनुष्य ने खोज डाला है। भूमि के गहरे पेट के अन्दर हज़ारों फ़ीट की नीचाई पर दबे सोना, चांदी और हीरा मोती आदि बहुमूल्य पदार्थों को खोद निकाला है। बढ़ती हुई जन-संख्या और उसकी बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये भूमि की उपजाऊ शक्ति को नाना प्रकार के कृषि के यंत्रों और बनस्पति तथा कृषिशास्त्र के साधनों से कई गुणा कर दिया गया है। सभ्यता का वर्णन करते हुए कहा जाता है कि सभ्य मनुष्य की संख्या में जहां वृद्धि होती है, वहां उसकी आवश्यकताओं में भी वृद्धि होती

है, और उस जाति वा देश में सभ्यता अपनी चरम सीमा को पहुंची हुई समझनी चाहिये, जहां इन आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रबन्ध भी हो और मनुष्य की संपत्ति और भोगसामग्री उसकी इच्छाओं के अनुपात में पाई जावे। सभ्य मनुष्य प्रकृति की शक्तिओं को खोज कर उन पर अधिकार वा प्रभुत्व प्राप्त करता है। नाना प्रकार के कला-कौशल का आविष्कार करके थोड़ी शक्ति और थोड़े धन से अधिक लाभ प्राप्त करता है। वह जहां जाना चाहे जा सकता है। जिस प्रकार आमोद प्रमोद से अपना जीवन बिताना चाहे बिता सकता है, और जिस पदार्थ का जब जिस प्रकार से उपयोग वा भोग करना चाहे, कर सकता है। यही सभ्यता की सच्ची व्याख्या समझी जाती है। संक्षेप में यों कह सकते हैं कि मनुष्य इन्द्रियों के विषयों पर पूरा २ प्रभुत्व प्राप्त करले और इन्द्रियार्थों को इच्छानुसार भोग सके, यह सभ्यता का आधुनिक लक्षण है।

मनुष्य भोग करता है, और उससे नए २ रोग उत्पन्न होते हैं, पर साथ ही साथ इन रोगों का इलाज और औषधियां भी आविष्कृत हो रही हैं। मनुष्य जाति रोगों और बीमारियों से दुःखी है, पर साथ ही साथ डाक्टरों की संख्या भी बढ़ रही है। इसका नाम सभ्यता कहा जाता है। मनुष्य का चित्त अकेले-एकांत में-नहीं लगता, इससे थियेटर, सिनेमा और खेल तमाशे राग रंग और तत्संबन्धी समूहों, सोसाइटियों, संगठनों की वृद्धि होती है। बिजली, भाफ शक्ति, और गैसशक्ति इस आमोद प्रमोद को सुगम और सुन्दर बनाने में मनुष्य की दासता स्वीकार करती है, इस प्रकार मनुष्य अपने मानसिक उदासी रूपी क्लेश पर अधिकार प्राप्त करता है, इसे सभ्यता का नाम दिया जाता है। ब्रह्मचर्य्य के अभाव, स्त्री पुरुषों के लैंगिक संबन्धों के बिगड़ने से भोगवाद की प्रवृत्ति बढ़ने और विषय सेवन से गनोरिया, सिफ़लिस, पागलपना आदि रोग बढ़ते हैं और साथ २ नई औषधियां और पागलख़ाने वा Public Houses बनाए जाते हैं। इसका नाम सभ्यता पुकारा जाता है। निर्बल, अयोग्य, और दुराचारी लोग विषय की गुलामी करके मर्यादा से च्युत हो सन्तान उत्पन्न करते हैं और उन बच्चों को सीधे मार्ग पर लाने के लिये, शिक्षा देने के लिए, सदाचारी बनाने के लिये, और उनको सच्चे नागरिक बनाने के लिये सुधारपाठशालायें राज्य और जाति की तरफ़ से खोली जाती हैं। इसका नाम सभ्यता है।

देश की जन-संख्या बढ़ती है, अपने देश में रहने को स्थान नहीं, खाने की पर्याप्त सामग्री नहीं। जाति के लोग दूसरे देशों में जाकर बसते है, उन्हें

बसाते Colonise करते हैं। उस देश के आदि लोगों को शिकार बनाते हैं। उन्हें असभ्य जंगली और पशु बनाकर उनका संहार करते हैं। उनके देश पर अपना राज्य जमाते हैं, उनको अपने घरों से बाहर निकाल देते हैं। यदि वह लोग भी कुछ दृढ़ हों, मुकाबिला करने के योग्य हों तो उन्हें अपनी शरण (Protection) में लेकर उन्हें भी अपने सदृश सभ्य बनाने के मिशन की दुहाई देकर उनके देश को अपना रक्षित राज्य Protectorate बना लेते हैं। उन के देश की प्राकृतिक संपत्ति, खनिज दौलत, और भूमिजन्य अनाज को अपनी मलकीयत बनाकर उनको अपने अधीन कर लेते हैं। अधीन जाति को बात २ में अपने इन सभ्य स्वामियों की आज्ञा, सहायता, और सलाह लेनी पड़ती है। इसको सभ्यता Progress वा Extension उन्नति और वृद्धि कहा जाता है। यह वृद्धि अवश्य है, उन्नति ज़रूर है, पर एक तरफ़ी है। एक जाति मरती है और उसकी हड्डियों मांस, लहू, और प्राण पर दूसरी मनुष्य-जाति जीती है। एक के प्राण, संपत्ति, बलका क्षय, नाश, और हनन किया जाता है, और दूसरे का उदय, अभ्युदय होता हैं। सो यह सभ्यता, उन्नति, अभ्युदय एक तरफ़ा है, यह मानना पड़ेगा। इस पर ये सभ्य मनुष्य यों कहते हैं कि हां कहीं उन्नति, कहीं अवनति अवश्य हो रही है, पर on the whole संपूर्ण तौर पर विचार करने पर यही प्रतीत होता है कि उन्नति ही हो रही है। ठीक है, यह बात तो सच ही है, अपना पेट भर जाने पर सारा संसार सुखी और तृप्त ही दीखता है और अपने मरने पर दुनिया सारी ही मरती हुई दीखती है। "आप मरे तो जग परलो" । जब योरुप में १९१४ में महाभारत का युद्ध छिड़ा और जर्मनी ने इंगलैण्ड और फ्रांस को बुरी तरह दबाया और परेशान कर दिया, तब इन देशों ने सभ्यता के उज्ज्वल नाम पर मनुष्य जाति के संहार, संसार के सत्यानाश, स्वतंत्रता के समूलोच्छेदन हो जाने की दुहाई दे देकर उन देशों से सहायता माँगी थी, जो इनके अधीन हैं। क्या आश्चर्य्य है ! वाह री सभ्यता ! तू कैसी विचित्ररूपा नटी है, जिन देशों की स्वतंत्रता का हरण इन देशों ने किया, उसी स्वतंत्रता की दुहाई देकर इन देशों से अपरिमित जनबल और धनबल भी लिया। इस खेल का, इस जादू की पुस्तक का, नाम सभ्यता Civiliation है।

कहा जाता है कि हमारी इच्छा का कोई जाति, देश वा प्राणी प्रतिघात नहीं कर सकता। हमारे नागरिक सब स्थानों में सब कालों में ज़मीन के ऊपर, नीचे, पानी के तल पर, और समुद्र की तह में, आसमान के कोनों और मैदा-

एवरेस्ट की चोटियों पर धावा कर सकते हैं, इस लिए हम सभ्य हैं। प्राचीन काल में जब लोग जंगलों में रहना शहरों में रहने से उत्तम समझते थे, जब लोग शरीर की आंतरिक शक्तियों की वृद्धि, उन्नति और संयम को बाह्य प्राकृतिक शक्तियों के विजय से श्रेष्ठ गिनते थे, उस समय राजाओं को जो सुख बड़े प्रयत्न और पुरुषार्थ से मिलते थे, वह सुख आज यूरोप और अमरीका के एक सभ्य मनुष्य के घर में मौजूद हैं। वह जब चाहता है आग जल जाती है, बटन दबाते ही रोशनी हो जाती है, भोजन पक जाता है, आप ही प्लेट्स मेज़ पर आजाती और भोजन कर चुकने पर धुल जाती हैं; इशारा करने पर कमरा साफ़ होता है। फ़ोन पर झट बातचीत कर लो, जिससे चाहो मिल लो, जिस स्थान को चाहो देखलो। घर बैठे २ सुन्दर राग और वक्तृतायें सुन लो, घर बैठे चाहो तो पुस्तकों, Records, Cinemas से दुनियां की सैर करलो, इसका नाम सभ्यता है। संक्षेप यह कि इच्छायें करो, फिर करो, और उन्हें पूरा करते चले जाओ। पर शोक कि मनुष्य के अन्दर की शक्ति-वृद्धि पर इन सभ्यताभिमानियों को अभी विजय प्राप्त नहीं हुई। और इस पराजय ने सब विजय फीकी कर रक्खी है। भोग करते २ बुढ़ापा और मौत आजाती है और इच्छायें अन्दर ही रह जाती हैं, इसका इलाज क्या हो?

पुराने लोग योग की सिद्धियों से जो करिश्मे तथा चमत्कार करते वा जो शक्तियां प्राप्त करते थे, वह आधुनिक सभ्य आदमी ने प्रकृति-विजय से प्राप्त करली हैं। पर पुराने योगियों ने जीवनी शक्ति की वृद्धि और संयम का जो मूल मन्त्र खोज निकाला था, वह आजकल के सभ्य आदमी से छिपा हुआ है। सभ्य मनुष्य ने इस बात का प्रयत्न किया कि जीवनी शक्ति की बनावट का पता लगाया जावे कि यह किन २ तत्वों के किस अनुपात में संयोग से बनी है और यह जीवनी शक्ति भौतिक विज्ञान की प्रयोगशाला में कैसे बताई जा सकती है। परीक्षण किये गए और फिर परीक्षण किये गए। आशाभरी निगाहों से टिकटिकी बांध कर सभ्य मनुष्य इन परीक्षणों को तरफ़ देखता रहा। उस ने विश्वास किया कि उसके वैज्ञानिक ऋषि जब इस मूल मन्त्र का दर्शन कर लेंगे तब ईश्वर की संसार में कोई भी आवश्यकता न रहेगी और ईश्वर के स्थान पर मनुष्य को बिठा दिया जावेगा। उस समय सभ्यता अपनी चरम सीमा पर पहुंच जावेगी—पर संयोग वश उसको निराशा उठानी पड़ी। उसकी आँखें खोलने के लिये इस यत्न में

यह ठीक है कि प्राकृतिक-शक्ति प्राप्त करना विजय है, सामर्थ्य है, पर प्राकृतिक-सम्पत्ति और भोग-साधनों के प्राप्त होजाने पर उसी अनुपात में भोग-लालसा का बढ़ते जाना और भोग भोगने में आन्तरिक-शक्ति का क्षय होते जाना, पर भोग-वासना और लालसा का न हटना—यह पराजय का चिह्न है। पाठकगण ! यहीं पर पश्चिमी सभ्यता पराजित हुई है। मनुष्य की इच्छायें बढ़ रही हैं, भोग, साधन, सम्पत्ति बढ़ रही हैं, भोग भोगे जारहे हैं, पर लालसा की आग बुझने की जगह भड़क रही है। "न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति" यह मनुवाक्य स्मरण होआता है। भर्तृहरिजी का वचनः—

"भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता आशा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।"

याद आता है।

मनुष्य जीवन-यात्रा की इस मंज़िल पर पहुंचकर सच्चे दिल से जिज्ञासा करता है, कि यदि जीवन की सफलता की, मानवी-सभ्यता की, यह कसौटी नहीं तो और क्या है ? मनु भगवान् उत्तर देते हैं।:—

यमान् सेवेत् सततं न नियमान् केवलान्बुधः।
यमान् पतत्यकुर्वाणः नियमान् केवलान्भजन् ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य तथा अपरिग्रह ये यम हैं। मनु कहते हैं कि यमों का सेवन करने वाला मनुष्य वा जाति पतित नहीं होती, उन्नति ही करती रहती है। पर केवल नियम अर्थात् बाहर की शुद्धि सफाई, परिश्रमी जीवन से प्रकृति पर विजय, भोग-सामग्री के संग्रह, प्रकृति के अध्ययन और तज्जन्य विजय से अपने ऐश्वर्य्य पर भरोसा वा विश्वास से ही कोई जाति सदा उन्नति की तरफ़ नहीं जा सकेगी। मनु की राय में सभ्यता की कसौटी सब प्राणियों से आत्मवत् व्यवहार, अन्दर की शक्तियों पर विजय, आन्तरिक-शक्ति का संयम, बाह्य भोगसामग्री की लालसा का नाश, और संग्रह-हीनता वा त्याग है। पहला यम अहिंसा है, जिसका अर्थ किसी देश, किसी भी काल, और किसी भी निमित्त किसी प्राणी को दुःख वा कलेश न देना, किसीका नुक़सान व हनन न करना है। और मनु के यहां मानवी-सफलता वा सभ्यता की कसौटी अर्थात् जांच इस बात से होती है कि कौन मनुष्य कितना अहिंसक है। इसको सार्वभौम धर्म कहा गया है, और इसकी प्रतिष्ठा तब होती है जब कोई भी मनुष्य

किसी भी अवस्था में किसी प्राणी की हिंसा न करे। यह है सभ्यता की कसौटी। पर आजकल सभ्यता की कसौटी किसे समझा जाता है। आज जो जाति, जो देश वा जो मनुष्य-समुदाय, सब देशों, सब कालों, पृथ्वी के प्रत्येक कोने पर अपना ऐसा प्रभुत्व जमाले कि जब चाहे जिसे चाहे रोकले, घेरले, कैद करले, मार डाले, जहां और जब चाहे अपनी तोपें, हवाई जहाज़, स्टीमर, क्रूज़र, सेनायें भेजदे, जिसका और जितनों का चाहे ख़ून बहादे, उसे उतना ही सभ्य गिना जाता है। जापान जब तक रक्त-वाहिनी विद्या में अकुशल रहा, असभ्य था; पर जब उसने रूस-जापान युद्ध में सहस्रों और लक्षों का कामयाबी से रक्तपात करके दिखा दिया, तब उस की गिनती सभ्य देशों में होने लगी। एक पाश्चात्य विद्वान् ने ही लिखा है कि आज कल एक दूसरे को नुक़सान पहुंचाने की शक्ति से सभ्यता Civilization की परख की जाती है।

मनु ने सत्य को सभ्यता की दूसरी कसौटी गिना है। सत्य के अर्थ यथार्थ बात के यथार्थ रूप में यथार्थ भाव से प्रचार वा कथन के हैं। स्वार्थ वश किसी बात को कमोबेश या दूसरा कोई रंग देकर कहना, प्रचार करना सभ्यता नहीं, अपितु मनु के अनुसार असभ्यता में शामिल है, किन्तु आज कल भाषा का पांडित्य और उन्नति इस बात में समझी जाती है कि असली भाव को इस तरह छिपा लिया जावे कि दूसरा प्रसन्न भी हो जावे, उसे वस्तुतः प्राप्त भी कुछ न हो, और अपना काम भी निकल जावे। दूसरे को केवल सूखी आशाओं, और न पूरी होने वाली उम्मेदों पर ही जिला २ कर वक्त गुज़ार दिया जावे। ऐसे लेखों को नैतिक लेखों का नाम दिया जाता है और जो मनुष्य इस कला में प्रवीण हो, उसे सभ्य नीतिज्ञ कहा जाता है और वह अन्य सरल मनुष्यों की अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय और पूजनीय समझा जाता है। शान्ति के समय सामान्यतः और युद्ध के समय विशेषतः खबरों को ऐसा रंग देकर छापा जाता है जिससे अपना स्वार्थ-सिद्धि हो जावे और शत्रु का नुक़सान दिखाया जावे। इस प्रकार के हुनर का सभ्य जातियों में खास कला समझा जाता है। इसी प्रकार के पत्र-सम्पादकों की ख़ास क़दर है। सब लोग इस प्रकार के पत्रों के मालिक बनने, उन को सहायता देकर उनकी संरक्षा करने और इस तरह जनता की सम्मति को अपने वश करने तथा उसको अपनी इच्छानुसार परिवर्त्तन करने में अपना गौरव समझते हैं। योरप और अमरीका में इस बात के लिये बहुतसा धन व्यय किया जाता है। बड़े २ भारी

संगठन हैं। धनी लोग और सरकारें अधिक से अधिक समाचार-पत्र अपने हाथ मे रखने का सब प्रकार से यत्न करते हैं और इस प्रकार लोकमत को अपने हाथों में रखते हैं। भिन्न २ देशों के राज्य-प्रबन्ध इसके लिये जुदा २ विभाग रखते हैं। युद्ध के दिनों में यह कला ख़ास उन्नति पर थी। हनन-शक्ति को बढ़ाने के लिये सभ्य जातियों में सेनायें बढ़ाई जाती हैं। तोपें, बन्दूकें, मशीनगनें, हवाई जहाज़, क्रूज़रस, सबमेरीन्स और डिस्ट्रायर आदि अधिक संख्या में तैयार किये जाते हैं। असत्य समाचारों के प्रचार के लिये अपने समाचार पत्र और प्रकाशन-कार्यालय खोले जाते हैं। अपने स्वार्थ के उपयुक्त इतिहास ग्रन्थ और राजनीति के ग्रन्थ विद्वानों से तैयार कराए जाते हैं और सभ्य जातियां अपने अधीन देशों के शिक्षणालयों, स्कूलों, और कालिजों में उन पुस्तकों को पढ़ाती हैं। स्वजाति तथा स्वदेश के स्वार्थ के लिये दूसरे देशों के इतिहास, धर्म, तथा सभ्यता को हीन दशा में दिखलाया जाता है। यह विचित्र दिमाग़ी यत्न भी सभ्यता-प्रचार में शामिल हैं। इस प्रकार पुरातन आर्यों की सभ्यता की कसौटियां, जो मनु ने गिनाई हैं और आज कल के सभ्य जगत को उन्नति की परख में भारी भेद है। आइये दो तीन और कसौटियों की जांच पड़ताल करें।

(असमाप्त)

चार दिन।

[लेखक—श्रीयुत वंशीधर विद्यालङ्कार]

(१)

अपने बचपन में ही मातृपितृ-हीना हो गई थी। मेरा जो कुछ लालन पालन हुआ वह अपने मामा के घर में। मेरे मामा की भी कोई सन्तान नहीं थी, इसीलिये वे मुझे बहुत अधिक प्यार करते थे। मैं उन्हें "ममुआ कहा करती थी और वे मुझे प्यार भरी भाषा में पुकारा करते थे "चवन्नी"। इसका कारण यह था कि जब मेरे पिता जीवित थे और मैं कभी अपने मामा के घर जाती थी तो उनसे नियम-पूर्वक चवन्नी मांगा करती थी। वे भी मुझे तंग करने के लिये कभी पैसा निकालते थे, कभी इकन्नी और कभी दोअन्नी, किन्तु मैं जब तक चवन्नी नहीं मिलती थी, रूसा हुआ मुंह बना लेती थी। किन्तु अब उन बातों को याद करने से लाभ ही क्या? जितना लिख गई हूं, हृदय में प्रेम उमड़ आने से ज़बरदस्ती लिखा गया है।

मैंने जिस समय ठीक १६ वें वर्ष में पैर रक्खा, उसी समय मेरे मामा का देहान्त हो गया। मैं यह कहना भूल गई हूं कि मुझे मामी का मुख देखना एक दिन भी नसीब नहीं हुआ था। मेरे पैदा होने से एक वर्ष पूर्व ही वे संसार को छोड़कर जा चुकीं थीं। अब इस घर में मेरा कोई भी नहीं रहा। मैं उस समय के दुःख का किसी प्रकार भी वर्णन नहीं कर सकती और यदि करूंगी भी तो वह कौनसा हृदय होगा जो उसे अनुभव भी करेगा? हिन्दु घर में माता पिता के जीते हुए एक लड़की को बड़ा कष्ट भोगना पड़ता है, फिर उनके दिवंगत होने पर तो उसके दुःखों का ठिकाना ही क्या? मुझे अब अनुभव हुआ कि हिन्दु-घर में लड़की, स्त्री, माता, असहाय होने के मूर्तरूप हैं। कैसे लिखूं?

मैं एक उस फूल के समान होगई थी जो नितान्त एकान्त में खिला होता है, जिसकी शोभा को देखनेवाला इस संसार में विरला ही होता है। छिपाऊं ही क्या? बात यह थी कि मेरे समस्त शरीर में यौवन का साम्राज्य हो रहा था। मालूम होता है कि भगवान् ने बड़े ही कोमल हाथों से सौन्दर्य-सृष्टि के सार को कुछ थोड़ा सा लेकर मेरी रचना की थी। इसीलिये यदि मैंने अपनी एक फूल से उपमा देदी तो इसमें हर्ज ही क्या? सौन्दर्य पर स्त्रियों का कुछ न कुछ जन्म-सिद्ध अधिकार होता ही है, और इसे सब जानते हैं। मैंने यही सोचकर इतना लिखने की चेष्टा की है।

मैंने यह इस लिये भी लिखा है कि मुझे जिस समय चारों ओर से चिन्ताओं ने घेर लिया था और मैं हर समय उदास सी रहा करती थी, उस समय एक यही रूप का भाव था जो मेरे हृदय में शान्ति उत्पन्न करता था। पता नहीं यौवन में रूप-माधुर्य हृदय पर क्यों प्रभाव डालता है? मामूली प्रभाव नहीं-जादू का सा।

(२)

आखिर मैंने घर बार छोड़कर भिखारिणी का वेश धारण किया। मुख पर कुछ थोड़ीसी राख लगाती थी और मैले मैले कपड़े पहिनती थी। मुझे मालूम नहीं था कि मुझे किधर जाना है? यह जीवन किस काम आयेगा?

एक दिन की बात है कि मैं प्रातः काल नदी में स्नान करने गई हुई थी। सूर्य भगवान् अभी निकले नहीं थे। उनके आने का सन्देशा उनकी किरणों से पहुंच चुका था। दिशाओं में लाली छाई हुई थी। वृक्षों में पक्षियों ने अपने गीत गाने प्रारम्भ कर दिये थे। मैं आनन्द से नहा रही थी-उस समय नदी-तट पर कोई भी व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं होता था। अचानक मेरी टांगों में बहता

हुआ एक बड़ा भारी पत्थर आ लगा। मैंने उसको उठाकर देखा तो वह महादेव की एक मूर्ति थी। जिस समय मैंने उसे पानी में से निकाला था, ठीक उसी समय एक साधु भी नदी में स्नान करने के लिये आया था। जिस समय मैंने उस मूर्ति को पानी के भीतर से निकाला, उस समय मालूम होता है कि साधुने इसे देख लिया था। उसने नदी के किनारे खड़े होकर चिल्लाना प्रारम्भ कर दिया—"देवी" "देवी" तुम "देवी" हो, तुम मानुषी नहीं हो। जब और २ लोग स्नान करने के लिये आने लगे, मैं झटपट मूर्ति हाथ में लिये हुए निकली। अभी साधु मेरे पास पहुंचा नहीं था कि मैंने अपने कपड़े पहिन लिये और जाने का उपक्रम करने लगी। साधु एक दम आकर मेरे पैरों पर गिर गया। कहने लगा-लोगो! आओ-प्रणाम करो। यह देवी है-दिव्यलोक से आई है। कैलाश छोड़कर महादेव बाबा इसके लिये यहां तक चलकर आये हैं। भला सोचो तो सही—कि नदी की पानी की धारा में इतना भारी पत्थर भी बह सकता है। मैं आप से सत्य कहता हूं कि यह देवी है-इसे प्रणाम करो और अपने इस लोक और परलोक को धन्य करो। यह कहकर साधु मेरे पैरों पर बारम्बार गिर गिर कर प्रणाम करने लगा। देखते देखते वहां बड़ा भारी जन-समुदाय इकट्ठा होगया। सब बढ़ बढ़कर मेरे पैरों पर गिरने लगे-मैं जितना सङ्कोच कर भागना चाहती थी, उतना ही मैं जन-समुदाय में घिर जाती थी। मैं इसका कुछ भी तात्पर्य समझ नहीं सकी। माया-मय प्रभु की क्या लीला थी? एक बहते हुए पत्थर के स्पर्श से मैं क्या की क्या होगई। सब कहते थे कि मैं इस संसार की रहने वाली नहीं हूं, मैं देवी हूं-अचानक कहीं से प्रकट होगई हूं। उस दिन न जाने कितने सिर मेरे पैरों में रक्खे गये थे। मेरे पैरों पर से धूली इस ज़ोर से उतरी जारही थी कि वे विचारे लाल होगये थे। मुझे खड़े खड़े बहुत देरी हो गई थी।

जन-समुदाय में साधु ने प्रवेश करके कहा—"देवी! यदि आप हम को कृतार्थ करें तो बड़ी कृपा होगी। हम धन्य हैं। हमारा मनुष्य जीवन धन्य है जो आप के दर्शन हुए हैं। मनुष्य समाज ने ईश्वर को भुला दिया है-आप अपने हाथ में ईश्वर को लेकर आई हैं। संसार दिन प्रति दिन नास्तिक होता चला जाता है-दान नहीं करता। अब मालूम होता है कि संसार के दिन फिर गये हैं। संसार ईश्वर के दर्शन करेगा—दान करेगा। देवीजी! हमें इस कृपा से वञ्चित न कीजिए। अवश्य चलिये, नहीं तो हमारा किसी प्रकार भी भला नहीं हो सकता।"

मैं इसका कुछ भी तात्पर्य न समझ सकी। मैं उस समय एक दम किं-कर्तव्य विमूढ़ होगई। उत्तर देना चाहती थी किन्तु लज्जाने होंट बन्द कर दिये। मुंह लाल हो आया। विचारी बंधी हरिणी की तरह मैं मन्दिर की ओर जन-समुदाय के साथ चलदी।

(३)

मैं नहीं कह सकती कि उस समय मेरी मानसिक अवस्था कैसी थी। मेरे हृदय में सुख था या दुःख। मैं उस समय क्या अनुभव कर रही थी-इसका भी मुझे अनुभव नहीं होता था। बस मैं चली जा रही थी और यह जानती थी कि मेरे पीछे बहुतसा जन-समुदाय आरहा है। नहीं कह सकती कि उस समय मुझ में कुछ चेतना रह गई थी या नहीं। मालूम होता है कि मैं उस समय जागते हुये भी सुप्तावस्था में थी। मैं अपने आप को भूलसी गई थी। मेरे आगे पीछे से ये शब्द सुनाई देरहे थे "बोलो-देवी की जय!" आकाश में गूंजते हुये ये शब्द मेरे कानों को चीर जाते थे। आख़िर जैसे तैसे हम मन्दिर में पहुंचे। थोड़ी देर तक सब मेरे दर्शन करते रहे। जय जयकार होती रही। मैं उस समय संसार से बिलकुल अपरिचित थी। मुझे यहां आकर थोड़ासा ज्ञान होने लगा। मुझे अपना अनुभव होने लगा—मैं अपनी जागृत अवस्था में आने लगी—मुझे थोड़ा थोड़ा ज्ञान होने लगा। मन कहने लगा कि क्या ये लोग पागल हो गये हैं? कल तक तो मैं एक भिखारिणी के वेश में घूमती थी, आज यह अचानक परिवर्तन क्यों? आज यह जय जयकार क्यों? अन्दर से उत्तर मिला-केवल एक पत्थर के स्पर्श से। उस पत्थर की विशेषता यह है कि उसमें महादेव की मूर्ति बनी हुई है। मूर्ति कोई भगवान् ने तो बनाई ही नहीं है। मैंने कई बार घूमते २ यह देखा है कि मनुष्य ही मूर्ति को बनाते हैं। नदी के पास कोई मूर्ति होगी जिसे यह नदी बहाकर ले आई है-बस इतने से ही मैं देवी होगई।

फिर मैं सोचने लगी कि यह सब शायद भ्रम ही हो। मैं शायद सच-मुच ही देवी हूं। जब यह इतना भारी जन-समुदाय मुझे 'देवी' कह रहा है तो यह क्या मिथ्या है? साधु महात्माने भी मुझे देवी कहा था। हैं! यह क्या! सब लोग तो मन्दिर में आज तक एक पत्थर की मूर्ति समझ कर पूजा करते रहे हैं, यह मुझ चेतन की फिर पूजा कैसी? मरा मन विक्षुब्ध हो उठा। मैं ठहरी बिलकुल अनजान। मैंने सोचा कि ये सब प्रश्न जटाधारी महात्मा से पूछूंगी। मैं यह सोच ही रही थी कि इतने में साधु ने बड़ी ज़ोर की आवाज़ के साथ

कहा कि अब आप लोग जाइये। देवीजी के दर्शन अब न हो सकेंगे। सायङ्काल के चार बजे से फिर दर्शन दीजियेगा। उस समय जितने उपहार आप ला सकें लाइयेगा।

(४)

किसी तरह आराम तो मिला। जब सब जन-समुदाय धीरे २ चला गया तो मैंने देखा कि साधु महात्मा सारी भेंटें, जो लोगों ने मुझ पर फेंकी थीं, उठाकर पास ही घर में चुपके से रख आये। उन का यह कार्य मैं इस तरह देखरही थी कि मानों मुझे कुछ मालूम ही नहीं। सबसे बड़ा आश्चर्य जो मुझे प्रतीत हुआ वह यह था कि किसी ने भी तो यह प्रश्न नहीं किया कि मैं किस प्रकार देवी हूं-कहां से आई हूं? गणित की स्वयं-सिद्ध सिद्धियों की तरह मैं स्वयं-सिद्ध एक देवी मान ली गई थी।

मैं ऐसा सोच ही रही थी कि साधु ने मेरे पास आकर कहा—देवीजी! आप इस कमरे में चलिये। दो घण्टे के बाद हम आप को * भोग लगाएंगे। आप यहीं रहिये-हम आप के सेवक आप ही के पास रहेंगे।

मैं नहीं जानती कि उस समय मुझ में कहां से बल आगया। मैंने कहा-साधुजी! मैं आप से एक दो बातें पूछना चाहती हूं। आइये ज़रा बैठिये।

मैं—आप ठीक २ उत्तर देंगे?

सा०—मुझ से जैसा बनेगा? आप जानते हैं कि मैं अज्ञानी हूं—बहुत कठिन प्रश्न न पूछियेगा।

मैं—आप ने कैसे जाना कि मैं देवी हूं?

सा०—क्या भक्तों को भी अपने हृदय के देवता को पहिचानने में देर लगती है? मैं ईश्वर का भक्त हूं। हृदय में ईश्वर निवास करते हैं। हृदय कहता है कि आप देवी हैं और हमारे उद्धार के लिये आई हैं।

मैं—उद्धार से आप का क्या तात्पर्य है?

सा०—यही कि मनुष्य दिन प्रति दिन नास्तिक होते चले जाते हैं। दान आदि नहीं करते। अब आप यहां रहेंगी तो यह सब मन्दिर सोने चांदी से भर जायगा।

मैं०—इस दान से क्या होता है?

सा०—हम आस्तिक जनों की ईश्वर में अधिकाधिक श्रद्धा होती है। हम लोगों को ईश्वर का नाम लेने में सुगमता होजाती है। हम इस तरह दिन रात

* भोग लगाएंगे का तात्पर्य भोजन खिलाने का है—ले०।

धूनी तपा कर ईश्वर का नाम लेने में लगे रहते हैं। वैसे तो भीख भी मांगनी पड़ती है।

मैं—तो क्या मेरी पूजा से ईश्वर की पूजा हो जायगी ?

सा०—हां ! आप देवी हैं, भगवान् ने आप के द्वारा हमें दर्शन दिये हैं। आप की पूजा से उनकी पूजा होजायगी।

मैं—मेरे पूजने से ईश्वर पूजा ! मैं तो जानती ही नहीं कि ईश्वर क्या चीज़ हैं ? मैंने उसे आज तक देखा ही नहीं, केवल नाम ही नाम सुना है, साधुजी ! क्या यही महादेव की मूर्ति ईश्वर है ? यह तो मनुष्य की बनाई हुई है। इसके स्पर्श से मैं देवी कैसे होगई ? मैं अपने को ख़ूब समझती हूं। साधूजी ! मैं इन उपहारों और जय जयकारों के तात्पर्य को समझ नहीं सकती। पता नहीं, मेरे हृदय में यह कैसा विक्षोभ पैदा हो रहा है। मैं यहां से चली जाऊंगी। साधुजी ! मुझे जाने दीजिये।

सा०—ना ! ना ! ! आप मत जाइये-आपके जाने से देशका अनिष्ट होगा।

मैं—क्यों अनिष्ट होगा ?

सा०—धर्म का पालन नहीं होगा।

मैं—किस धर्म्म का ?

सा०—सत्य-सनातन हिन्दु-धर्म का। वह धर्म जो सबसे पुराना है। ऋषि-मुनियों का है।

मैं—क्या यही हिन्दु-धर्म्म है महात्मा जी ! जिस धर्म्म को मैं पूरी तरह समझती भी नहीं-जिसके विषय में मैंने अपने मामा जी से सुना था कि ऋषि-मुनि भी इसी धर्म्म का पार नहीं पासके, आज उसी धर्म्म की मैं एक अबोध युवती एकाएक किस प्रकार अधिष्ठातृ होगई ? ना—महात्माजी ! मुझे जाने दीजिये। मैं इस पुण्य-पवित्र धर्म्म को अपने द्वारा कलङ्कित नहीं करना चाहती।

सा०—आप इस महत्व को समझेंगी, देवी ! और समझती हैं। भक्तों की परीक्षा किस लिये लेती हैं ? अभी देखिये—सायङ्काल कितने मनुष्य आपके शुभ-दर्शनों के लिये आएंगे, कितने बीमार जिनकी बीमारी किसी रोग से अच्छी नही हुई, वह एक मात्र आप को चरण-धूलि से अच्छे होजायेंगे। हजारों की मनः कामनाएं पूरी होंगी। आप मत जाइये।

यह कह कर वह मेरे पैरों पर गिरगया मै उससे अपने पैर छुड़ाने की

जितनी भी कोशिश करती थी, वह उतनी ही ओर से मेरे पैरों को पकड़लेता था, मुझे कुछ भय सा मालूम होने लगा।

फिर कहने लगा कि अच्छा आप जाना ही चाहती हैं तो हमारी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये। आप यहां चार दिन अवश्य ही रहिये। फिर आप इसके तात्पर्य को भली प्रकार समझ सकेंगी। यह कह कर फिर वह अपने सिर पर मेरी पद-धूलि लगाने लगा।

जब वह किसी प्रकार नहीं माना तो मैंने कहा "अच्छा चार दिन रहूंगी, उसके बाद नहीं।" मुझे मालूम नहीं उस समय मैंने किन भावों में भर कर यह स्वीकृति दी थी।

(५)

४ बजे से पूर्व ही मन्दिर में लोग जमा होने लगे। दर्शनों के लिये इतना जन-समुदाय आता था जिसका वर्णन कठिन है। हजारों स्त्रियें अपने पुत्रों की मङ्गल-कामनाएं करती थीं। इसी बीच में मैं एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक समझती हूं।

एक देवी जिसका नाम कमलावती था बड़े ज़ोर से धाड़ें मार मार कर रोती हुई मेरे पास आई। कहने लगी कि मेरा पुत्र बड़ा ही सख्त बीमार है। डाक्टर कहते हैं कि यह बीमारी किसी प्रकार अच्छी होने वाली नहीं है। यह कह कर वह बड़े जोर से चीख उठी। कहने लगी कि मां! रक्षा करो। कोई सहारा नहीं। मेरा एक यही इकलौता बेटा है। दया करो-दयामयि माता! यह कह कर वह मेरे पैरों पर गिर पड़ी। मैं कुछ बोली नहीं, क्योंकि मैंने साधु को यह कह दिया था कि मैं कुछ भी नहीं बोलूंगी। उसने भी इसी बात पर बल दिया था। एक मात्र मैंने उसकी ओर सहानुभूति-पूर्ण आंखों से देखा। वह दो दिन तक प्रातःसायं मेरी पद-धूलि लेजाती थी और उसे पानी में घोल कर पिला देती थी। अचानक उसका पुत्र अच्छा होने लगा। कमलावती अब नित्य आकर मेरी महिमा का गान करने लगी। इस घटना का शहर में इतना प्रचार हुआ कि मेरे पास बुरे से बुरे बीमार आने लगे—ऐसे बीमार जिनको देखकर मुझे बड़ी घृणा होती थी। जब वे अच्छे नहीं हुये तो मैंने सुना है कि उन्होंने अपने कर्मों के साथ २ मुझे भी खूब गालियां दी थीं।

चार दिन तक जो मैं देखती रही उसका सार यह है:—जितने मनुष्य मेरे पास आते थे, वे सब किसी न किसी इच्छा-पूर्ति के लिये आते थे—वह

इच्छा जो किसी भी लौकिक साधन से पूरी नहीं होसकती थी। मुझे उस समय मालूम हुआ कि जैसे संसार ने अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये ही भगवान् के विचार की सृष्टि की है। जिस मनुष्य की इच्छा-पूर्ति होजाती थी, वह मेरा सत्कार और आदर दुगुना करता था, और जिसकी इच्छा की पूर्ति नहीं होती थी, वह मेरे सामने ही नहीं आता था। मैंने उस समय समझा कि आस्तिक वह है, जिसकी इच्छा किसी न किसी प्रकार पूरी होजाय, और नास्तिक वह है, जिसकी इच्छा किसी प्रकार भी पूरी न होसके।

ओह! उस समय मुझपर कितनी भेंटें चढ़ी थीं, कितनी श्रद्धा-भक्ति से मुझे समर्पित करते थे। यदि मैं उन सबको इकट्ठा करती, तो बड़ी अमीर होजाती, किन्तु इस आस्तिकता के प्रचार से मैं समझती हूं, कि साधु का ख़ज़ाना इतना भर गया था कि उसे फिर कभी भीख मांगने की आवश्यकता न रह गई होगी।

ठीक चौथे दिन की रात्रि को मैं समय पाकर वहांसे भाग गई। साधु यद्यपि मुझसे वहां रहने की प्रार्थना बारम्बार करता था, किन्तु मुझसे ये नित्य के दृश्य देखे नहीं जाते थे, और नां ही मैं इन्हें पसन्द करती थी। मेरे हृदय में यौवन की जो उद्दाम चञ्चलता थी, वह किसी प्रकार के बन्धनों में नहीं बँध सकती थी।

× × × × ×

(६)

उसके बाद मेरा विवाह होगया।

मुझे अपने जीवन के ये चार दिन किसी प्रकार भी भूल नहीं सकते। मुझे मालूम होता है कि जैसे मैं उन चार दिनों के लिये वाइसराय बनकर आई थी। मैंने एक बार इन चार दिनों का ज़िकर अपने पति से भी किया था, तो उन्होंने प्यार-भरी भाषा में मुझसे कहा कि:—देवियां ईश्वर की प्रतिनिधि हैं ही, और इस कार्य्य को तुमने अपना दैवीयपन छोड़कर सिद्ध कर दिया। जिस दिन संसार के तुमको दिव्य समझनेपर भी तुमने अपनेको मानुषी ही समझा—वही तुम्हारा दिव्यरूप था। उन्हीं चार दिनों ने वास्तव में सिद्ध कर दिया कि तुम देवी हो।

मैं हँसकर चुप होगई।

साहित्य समीक्षा।

वैदिकदर्शन—लेखक पं० चमूपति एम० ए०, प्रकाशक म० राजपाल, सरस्वती आश्रम लाहौर मूल्य ।≠)

यह निबन्ध श्री दयानन्द जन्म-शताब्दी के अवसर पर होनेवाले अखिल धर्म सम्मेलन के लिये लिखा गया था। लेखक महोदय ने आर्य सिद्धान्तों की जटिल तथा गहन समस्याओं को बड़ी योग्यता से हल करने का प्रयत्न किया है। आत्मा, परमात्मा, सृष्टि की उत्पत्ति, मुक्ति का स्वरूप इत्यादि तत्वज्ञान की ग्रन्थियों को संसार भर के सब मत मतान्तर खोलनेका यत्न करते हैं। वैदिक धर्म इनका क्या हल पेश करता है और कहां तक आधुनिक दर्शनिकों के विचारों के साथ उसकी समता तथा विषमता है, इत्यादि बातों पर बड़ी उत्तमता से विचार किया गया है। इस निबन्ध के अध्ययन से वैदिक धर्म के दर्शनिक सिद्धान्तों का अच्छा ज्ञान हो जाता है। पुस्तक का कागज़ तथा छपाई भी उत्तम है।

शास्त्ररहस्य—लेखक श्री पं० राजाराम जी प्रो० कालेज मूल्य १।)।

आर्यसिद्धान्तों की व्याख्या करने में पण्डितजी निष्णात ही हैं। समय २ पर पं० जी आर्य सिद्धान्तों के प्रदर्शन केलिये पुस्तकें लिखते ही रहते हैं। इस पुस्तक में गृहस्थी आर्य समाजियों के ज्ञान के लिये पर्याप्त मसाला इकट्ठा किया गया है। जिन लोगों को शास्त्र पढ़ने की योग्यता नहीं, उनके लिये यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी होगा। इस ग्रन्थ के दो भाग हैं। छपाई तथा कागज साधारणतया अच्छा है। मूल्य ज़रा अधिक है।

वैदिक प्रार्थना पुस्तक—लेखक म० शहज़ादाराम, प्रकाशक वज़ीरचन्द्रशर्मा अध्यक्षवैदिक पुस्तकालय लाहौर, मूल्य ≠)॥।

साप्ताहिक सत्सङ्गों में प्रारम्भिक प्रार्थनाओं के लिये यह पुस्तिका उपयोगी हो सकती है। छपाई तथा कागज़ उत्तम है।

विधवा—लेखक पं० राजाराम शुक्ल, प्रकाशिका श्रीमती फूलकुमारी मेहरोत्रा सम्पादिका 'स्त्री दर्पण' कानपुर, मूल्य ॥)।

भारतवर्ष में विधवाओं की अवस्था बड़ी ही दारुण तथा शोचनीय है। विधवाओं की वर्तमान स्थिति को देखकर सुधारक लोग उनके पुर्नविवाह की

अनुज्ञा देदेते हैं। हिन्दुजाति के दुर्व्यवहार से पीड़ित होकर विधवायें विधर्मी बन जाती हैं या वेश्या वृत्ति स्वीकार कर लेती हैं। इन बातों से बचने के लिये आर्य समाज नियोग या पुनर्विवाह का विधान करता है। परन्तु लेखक की सम्मतिमें विधवाओं केलिये आदर्श यही हैं कि वे अपने जीवन को उच्च बनाकर समाज-सेवा के अर्पण करें। इसी बात को दर्शाने के लिये लेखकने इस पुस्तक में एक आदर्श तपस्विनी के पवित्र चरित्र को दर्शाने का यत्न किया है। लेखक का मत यह प्रतीत होता है कि विधवाओं को ब्रह्मचारिणी रहकर ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये।

कुरान—अनुवादक तथा सम्पादक श्री पं० रामचद्र, प्रकाशक प्रेम पुस्तकालय फुलट्टी बाज़ार, आगरा।

इसपुस्तक में सूरये बकरकामूल तथा भाषानुवाद है। जो लोग अरबी भाषा से अनभिज्ञ हैं परन्तु कुरान का अध्यान करना चाहते हैं तथा तद्विषयक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं. उनके लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। साधारण तथा प्रत्येक आर्य-समाजो तथा विशेषतया उपदेशकों को इस पुस्तक की एक प्रति अपने पास रखनी चाहिये। कागज तथा छपाई अत्युत्तम है।

सुभाषितमञ्जूषा—लेखक तथा प्रकाशक चौधरी रामसिंह मेम्बर पंजाब लेजिस्लेटिव कौंसिल, ग्राम घण्डरां, जिला कांगड़ा।

इस पुस्तक में लेखकने संस्कृत श्लोकों के साथ हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, आदि भाषाओं के समानार्थवाची पद संगृहीत किये हैं। हिन्दी साहित्य में इस प्रकारकी पुस्तकों का अत्यन्त अभाव था। राष्ट्र भाषा में इस प्रकार के अभाव को अनुभव करके चौधरी जी ने यह पुस्तक लिखकर निस्सन्देह हिन्दी साहित्य की अपूर्व सेवा की है। चौधरी जी का परिश्रम प्रशंसनीय है। हिन्दी साहित्य में इस पुस्तक का मान होना चाहिये। विशेषतया यह पुस्तक उपदेशकों तथा लेखकों के बहुत काम की है। दूसरे संस्करण में अशुद्धि-संशोधन को तरफ विशेष ध्यान देना चाहिये।

सत्यवादी—सम्पादक श्री० पं० भीमसेन विद्यालङ्कार।

सत्यवादी नाम का एक साप्ताहिक पत्र पंजाब की राजधानी लाहौर से पं० भीमसेन विद्यालङ्कार के सम्पादकत्व में निकलना प्रारम्भ हुआ है। इसका प्रथम अङ्क श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित हुआ था। इस

अङ्क को देखने से प्रतीत होता है, कि यह पत्र पंजाब में आर्य भाषा के प्रचार तथा देवियों में धार्मिक सामाजिक तथा राजनैतिक जागृति पैदा करने के उद्देश्य से प्रादुर्भूत हुआ है। हमें आशा है कि सत्यवादी अवश्य अपने उद्देश्य में सफल होगा। हम हृदय से इस पत्र का स्वागत करते हैं।

यशःपाल सिद्धान्तालंकार,

संपादकीय

शताब्दी महोत्सव—

मथुरा की यात्रा होली। शताब्दी महोत्सव समाप्त हुआ। इतना बड़ा मेला मथुरा ने कभी नहीं देखा। किसी के स्वप्न में भी न था कि ऋषि को जन्म-शताब्दी मनाने को दो लाख से ऊपर लोग एकत्रित होंगे। लोगों की भक्ति ने प्रबन्धकों के प्रबन्ध को अपूर्ण सिद्ध किया। कोई त्रुटि थी भी तो इस असंभावित संख्या की बाढ में बह गई। उत्सव की सफलता प्रबन्ध की अपूर्णता से प्रमाणित होने लगी। तमाशा यह कि इस अपूर्णता का सबसे अधिक अभिमान प्रबन्धकों को था। प्रबन्धकों को वधाई हो। मथुरा के पास कितनी मथुराओं की एक नई मथुरा बसी प्रतीत होती थी। प्रान्त २ के लोग आए हुए थे। बूढ़ों का वय घट गया प्रतीत होता था। युवकों और बालकों का उत्साह तो लोक-प्रसिद्ध है ही, वहां बूढ़े नाचते देखे गए। प्रातः काल जब कैंप की गलियों में 'दयानन्द के वीर सैनिक बनेंगे' गाया जाता था तो प्रतीत होता था कि वस्तुतः दयानन्दी उत्साह हृदय २ को दयानन्द बनाए हुए है। कवि ने तो लिखा थाः-

'वही वृद्ध भारत गुरू है हमारा'।

भक्तों की उमड़ी हुई भावना सहसा कवि बन गई। गायकों ने स्वयं इस पंक्ति का संशोधन कियाः—

'दयानन्द स्वामी गुरू हैं हमारा'।

न जाने कवि महोदय इस जन-समुदाय के किये संशोधन को शिष्य-भाव से सिर आंखों पर रखते हैं या नहीं।

व्याख्यान हुए, सम्मेलन हुए, गोष्ठियां हुईं। पर मेला इनमें से किसी का नाम नहीं। शताब्दी नाम उस यात्रा का है जो १७ फर्वरी को शताब्दी कैंप

से निकली और गीत गाती, दयानन्द का नाम गुंजाती, मथुरा में पहुंची। लाख मनुष्य कहने को दो शब्द हैं। देखने वालोंने परीक्षा से परिमाण किया कि सारे जलूस को एक स्थान से गुज़र जाने में एक घंटा १५ मिनट लगे। भगवा वेष धारे साधु कुछ उन्माद की अवस्था में थे। इनके सिर झूमते देखकर विचार होता था कि आज इन्होंने वस्तुतः पी है। पीले वस्त्रों में गुरुकुलों के ब्रह्मचारी, दीक्षा के वेष में स्नातक, दयानन्दी युग के विशेष चिन्ह थे। और फिर देवियां जिनके दोनों ओर स्वयंसेवकों ने अपने बाहुओं को लंबा कर सजीव पराकार बना दी थी, ऋषि के देवि-उपयोगी प्रचार का मूर्त परिणाम प्रतीत हो रहो थीं। विविध २ स्थानों की विविध २ मंडलियां। सब के स्वर अलग, ताल अलग, राग अलग। राग ताल थे भी? वहां को एक ही ताल था—ऋषि गुण-गान, या धृष्टता न हो, तो शिष्य दयानन्द का गुरु-नगरी को संदेश। यह सब मंडलियां जब उस खंडहर-रूप कुटी के सामने आतीं, जहां भावी ऋषि ने प्रज्ञाचक्षु गुरु से शिक्षा पाई थी, तो आंखें निर्निमेष हो जातीं। अपनी सुध बुध भूल जाती। अणु २ दयानन्द का साक्षात् स्थानापन्न प्रतीत होता। दोनों ओर की गलियां रुक गईं। बाजार पानी से भर गया। पर इसकी होश किसे थी? स्नातकों ने उस आदर्श गुरुकुल को देखा जो यों तो गुरुकुल के किसी नियम को पूरा नहीं करता, परन्तु समस्त गुरुकुलों का जन्मदाता यहीं का एक स्नातक है। स्नातकों की दीक्षा ने अपने आचार्य के दीक्षा-भवन के आगे भावमयी भक्ति की भेंट धरी। वह एक दृश्य था। गुरुकुल के स्नातक ऋषि की टूटी फूटी पाठशाला के आगे झूम २ कर गुरु गौरव का गान गुंजा रहे थे। देवियां देवों से बढ़ गईं। उन्हें आज पता लगा कि उनके आधुनिक युग के प्रवर्तक देव दयानन्द ने किन कठिनाइयों में देवी-पूजा का पाठ सीखा और फिर संसार को सिखाया। लायलपुर और सरगोधा के भाई मथुरा को वैदिक-धर्मी बन जाने का सरल सन्देश किस तन्मयता से देरहे थे!

और वह छोटीसी खिड़की जिसके अन्दर की कुठरिया में ऋषि रहते थे! ऋषि का शिक्षा-काल सच-मुच दूसरा गर्भ-निवास का काल था। यह छोटी कोठरी और वह विशालकाय दयानन्द! अचम्भा है कि उसमें शयन कैसे करते होंगे?

लोग हमसे पूछते हैं कि शताब्दी का सन्देश क्या है? यदि यह सन्देश

व्याख्याताओं और उपदेशकों से लेना हो तो वह तो जैसे चौकड़ी ही भूले हुए थे। इतना बड़ा जन-समूह ! बोलने वालों पर आ बनी थी। शताब्दी का सन्देश वह है, जो विरजानन्द की कुटी ने दिया। शताब्दी का सन्देश वह है, जो विश्राम घाट पर खड़ी उस छोटी बन्द खिड़की ने दिया—दयानन्द को और दयानन्द के पीछे दयानन्द के शिष्यों को। पढ़ और पढ़ा, समझ और समझा। फैलजा, छाजा। बनजा, बनाजा।

आर्य्य परिषत्—शताब्दी महोत्सव में आर्य्यपरिषत् की कुछ बैठकें हुईं। हमारी समझ में इस मेले के साथ यह परिषत् बुलाना एक भूल थी। जो महानुभाव परिषत् में सम्मिलित हुए वह एकाग्रचित्त न होसके। किसी विषय पर गंभीर विचार का अवसर ही न था। इस परिषत् की आयोजना कुछ समय पीछे फिर करनी चाहिये। विषयों का निर्धारण पहिले से ही विद्वानों को करना चाहिये। पूर्व ही उन पर विचार किया जाए। परिषत् के दिनों पहिले विषय निर्धारिणी समिति की बैठक हो जिस में विचारणीय विषयों को प्रस्तावों का रूप दिया जाए। फिर उन्हें परिषत् में लाया जाए। यदि किसी मेले के साथ परिषत् का सम्बन्ध होना आवश्यक हो तो इसकी कार्यवाही मेले से पूर्व समाप्त होजानी चाहिये और आरम्भ तो महीना पन्द्रह दिन पूर्व हो।

हमारा हृदय अनुभव करता है कि यदि सफल परिषदें न हुईं तो आर्य्य समाज के प्रचार में प्रान्तीय भावों का प्रबलता हो जाएगी। भिन्न २ प्रदेशों में विद्वानों के मिल बैठने की, एकता की दृष्टि से, अत्यन्त आवश्यकता है। जनता पर उनके निश्चयों का क्या प्रभाव होगा, यह पीछे की बात है। पहिले वह स्वयं परस्पर विचार-परिवर्तन कर अपने दृष्टि-कोण में एकता और विशालता तो लाएं। उचित अवसर पर इस परिषत् की आयोजना होनी आवश्यक है।

धर्मसम्मेलन—दूसरा सम्मेलन जो अकृतकार्य्य हुआ वह धर्म सम्मेलन था। जैन, ईसाई, बहाई भाईयों ने अपने निबन्ध पढ़े। नियत विषयों का इन निबन्धों से बहिष्कार इन निबन्धों का विशेष गुण था। शेष सम्मेलनों में भी निबन्धों के स्थान में व्याख्यान कराने पड़े। इस का कारण वही जन-बाहुल्य था। सुनने वाले बहुत थे। इसलिये सुने कौन ? और फिर पढ़ी हुई बात को।

पंडाल—पण्डाल अनेक थे। दो तो शताब्दी सभा के खड़े किये हुए थे।

उनके अतिरिक्त शुद्धिसभा, साधु कैंप आदि में अलग उपदेश का प्रबन्ध था। पर अवसर उपदेश लेने का था, देने का नहीं। जिन्हों ने दिया, उनका आत्मा पर बलात्कार था। हमारा भी।

दयानन्द लंगर—यह साधु कैंप में था। इसके अधिष्ठाता श्री स्वामी सर्वदानन्द जी थे। जो साधु आता भोजन पाता और ऋषि की शिक्षा का प्रभाव लेकर जाता। शताब्दी महोत्सव में सर्वदानन्द सचमुच काली कमली वाले हो रहे थे। लोग तो उन्हें ऐसा कहते ही हैं।

धन प्राप्ति—

शताब्दी सभा की ओर से पांच लाख रुपये की अपील की गई थी। इसका उद्देश्य विदेश-प्रचार का प्रबन्ध तथा प्रकाशन-गृह की स्थापना था। शताब्दी--नोट वितरण किये जारहे थे। इनसे सवा लाख की आय हुई बताई जाती है। प्रान्तिक सभाओं ने पहिले ही जनता की जैबें खाली कर ली थीं। इस दोही हुई गाय ने इतना फिर दिया, गनीमत है। दोहने वालों ने भी कृपा की कि विचारी गैया पर बहुत ज़ोर नहीं डाला—मांगने का यत्न ही नहीं हुआ।

शताब्दी महोत्सव के दूसरे भागों में तो कालेज और गुरुकुल—दोनों पक्षों के लोग बराबर सम्मिलित होते रहे, परन्तु धन देते समय कालेज भाग के भाइयों को स्मरण आया कि वह अलग हैं। कारण कि रुपया सब सार्वदेशिक सभा को मिलना है, जिस में उनके प्रतिनिधि नहीं। सुना है प्रतिनिधि भेजने का यत्न किया जा रहा है। रुपया फिर सही। अमेरिका में स्वतन्त्रता का युद्ध इसी सिद्धान्त के आधार पर हुआ था—पहिले प्रतिनिधित्व पीछे कर। यहां युद्ध तो क्यों होगा? क्योंकि यहां कर नहीं, दान है, और दान मन की मौज से दिया जाता है। प्रतिनिधित्व का प्रश्न और एकता का प्रश्न एक है। सार्वदेशिक सभा में ही यह हल होजाए तो अच्छा है।

प्राप्त धन का सार्वदेशिक सभा क्या उपयोग करती है—इसका अभी निश्चय नहीं हुआ। इस थोड़ी राशि से विदेश प्रचार और प्रकाशन-गृह दोनों साध्य तो सिद्ध होने से रहे। रुपया और चाहिये, तब भी काम एक ही हो सकेगा, दो नहीं।

बृहद् यज्ञ—

शताब्दी में बृहद् यज्ञ होने की घोषण हुई थी। यज्ञ-शालाएं बनी हुई थीं, और इकले दुकले श्रोत्रिय वहां वेद पाठ करते दीखते भी थे, परन्तु

जनता मानो यज्ञ के नाम से कांपती थी। श्रोत्रिय खुश होंगे कि अनधिकारी नहीं आए। यह यज्ञ क्या थे? किस निमित्त से किये गए? उनकी प्रणाली क्या होनी चाहिये थी? स्वयं करने वालों को भी इन बातों का पता था—इस में सन्देह है। आर्य समाजों को यज्ञ चालू करने चाहिये परन्तु विधिपूर्व। प्रत्येक कार्य के लिये अलग योग्यता की आवश्यकता है। व्याख्यान की वेदी और यज्ञ की वेदी का प्रबन्ध एक चीज़ नहीं-यह गुर हमारी समझ में कब आएगा?

ऋषि का दिया कोट और पाजामा—

मुख्य मंडप के रास्ते में दयानन्द-प्रदर्शिनी थी। उसमें और तो कोई ऐसी काम की चीज न थी, ऋषि का पहिना हुआ एक दुशाला रखा था, और उस से अधिक आकर्षण खद्दर के उस कोट और पाजामे का था जो ऋषि ने शाहपुराधीश श्री नाहर सिंहजी को स्वयं दिया था। एक महाराज को खद्दर के कपड़े देना जहां ऋषि के महान् गौरव का परिचायक है, वहां उनकी दूरदर्शिता का भी अपूर्व प्रमाण हैं। महात्मा गान्धी का चलाया खादी - आन्दोलन नया नहीं। इसका बीज ऋषि ने अपने हाथों छड़का। हमें इस कोट और पाजामे ने एक उपदेश दिया जो सब देखने वालों के हृदयों में घर कर गया होगा। यहां उस उपदेश के दोहराने की आवश्यकता नहीं।

समाप्ति—

उत्सव की समाप्ति में वह सुन्दरता न थी जो उसके आरम्भ में थी। ठाठ बाठ तो कम होना ही था। उत्साह भी आरंभ के समान दिखाया न जासका था। सब को घर जाने की पड़ी थी। इतने बड़े मेले में से निकल जाने का रास्ता मिल जायगा, दफ्तरों के बाबुओं को यह विश्वास न था, और उन्हें पहुंचना ठीक बाईसवीं को था। कुशल पूर्वक मेला बिखर गया, इसके लिये प्रभु का धन्यवाद है।

यदि कुछ नव युवकों की नासमझी के कारण चौबों से उन नवयुवकों की मुट भीड़ न हो जाती तो उत्सव की इस शान्ति पूर्वक सफलता के क्या कहने थे? झगड़ा शीघ्र शान्त करा दिया गया और हर्ष की बात है कि श्री स्वामी श्रद्धानन्द तथा मुख्य चौबों के हस्ताक्षरों से यह सूचना पत्रों में दे दीगई है कि दोनों पक्ष इसे मूर्खों की मूर्खता समझते हैं, आर्य समाज या सनातनधर्म का इस में दोष नहीं।

हम कृतघ्न हों यदि १७ तिथि की यात्रा के दिन आर्यों के सिर पर फूल

बरसाने वाले मथुरा निवासियों को ख्वाह नख्वाह लड़ाई छेड़ने का दोष दें। दयानन्द मथुरा का शिष्य है—मथुरा का बाल है। हमारा नाता कृष्ण की—और अब तो दयानन्द की—नगरी से पूजा का नाता है। दंडी गुरु की लाठी खाने का नाता है, पलटे में लाठी चलाने की नहीं।

प्रभु हमें सुमति दें कि हम शताब्दी के सन्देश को स्मरण रखें और आगे दूनी चौगुनी शक्ति से ऋषि के कार्य में तत्पर हों।

गुरुकुल हरिद्वार—

आर्य प्रतिनिधिसभा का साधारण अधिवेशन शताब्दी के अवसर पर हुआ। उस में निश्चय हुआ कि गुरुकुल हरद्वार के समीप किसी उत्तम स्थान में रखा जाए। स्थान निर्दिष्टप्राय हैं। डाक्टरों ने उन्हें देखा और पसन्द किया है। जो मिल जायेगा तथा अनुकूल पड़ेगा, लेलिया जाएगा।

श्री मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी लिखते हैं:—

गुरुकुल कांगड़ी का वार्षिकोत्सव ईस्टर की (६-१२-११-१२-अप्रैल) छुट्टियों में निश्चित किया गया है। गुरुकुल को गंगा की भीषण बाढ़ से जो हानि हुई है उस के कारण गुरुकुल की स्वामिनी सभा ने गुरुकुल को गंगा के उस पार से उठा कर इस पार हरिद्वार के पास लाने का निश्चय कर दिया है इस लिये इस वार गुरुकुल का वार्षिकोत्सव गुरुकुल मायापुर बाटिका में जो हरिद्वार और कनखलके मध्य में है मनाया जायगा। मायापुर बाटिका के एक ओर गंगा अपने पूरे यौवन में लहरा रही है और दूसरी ओर नहर अपनी बहार दिखला रही है। स्टेशन से मुश्किल से १० मिण्ट का रस्ता है। आर्य्य जनता में प्रत्येक नर नारी को गुरुकुल की इस आपत्ति की अवस्था में स्वयं चिन्ता लगो हुई है। यह चिन्ता ही हर एक आर्य्य को 'कुल' के इस उत्सव पर खींच लाने के लिये पर्याप्त है फिर भी मेरा कर्तव्य है कि जनता को चेतावनी देकर पूंछू कि वर्षों तक लालन पालन से बढ़ाये हुए पौधे को गंगा की बाढ़ के कारण जड़ से उखड़ा देख कर उन्हें जो सदमा पहुंचा है उसे दूर करने के लिये वे क्या २ कोशिशें कर रहे हैं?

इस समय गुरुकुल के प्रेमियों का कर्तव्य है कि वे गुरुकुल कार्यालय से पुरुषार्थ निधि की पुस्तकें मंगवा कर धनसंग्रह का कार्य्य प्रारम्भ कर दें, और गुरुकुल उत्सब से पहिले गुरुकुल के कोष को भर दें। गुरुकुल का काम रुक नहीं सकता। जिस आर्य्य जनता ने इसे चलाया है वह कितने ही दूसरे खर्च क्यों न कर ले गुरुकुल के लिये फिर भी धनी है। गुरुकुल का इस समय जो बड़ा भारी खर्च सामने है उस का पूरा करना हमारा फर्ज है। इस

फ़र्ज को अदा करने के लिये जिस हिम्मत की जरूरत है वह हमारे आर्य्य भाइयों में पहिले से ही मौजूद है।

जो यज्ञ आर्य्य जनता ने मथुरापुरी में ऋषि दयानन्द की दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति भाव को प्रकट करने के लिये रचा है उस की पूर्णाहुति अभी नहीं पड़ी। उसी पूर्णाहुति के लिये आर्य्य भाई पूर्ण उत्साह से तय्यारी कर रहे होंगे, इस की मुझे पूरी आशा है। इस अपूर्व यज्ञ की अन्तिम आहुति गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर अपने हाथों डालने वाले कर्मकाण्डी निस्सन्देह शताब्दी-यज्ञ के सम्पूर्ण फल के अधिकारी बनेंगे। मुझे आशा है कि आर्य समाजी भाईयोंके जिस उत्साह ने मथुरा-तीर्थ-वासियों को ऋषि दयानन्द का भक्त बना दिया,वही उत्साह हरिद्वार में भी उमड़ पड़ेगा और एकवार हरिद्वार में भी मथुरा का चित्र लोगों की आखों के सामने फिर जायगा। इन भावों के साथ मैं गुरुकुल शिक्षा प्रणाली से सहानुभूति रखने वाले सभी भाईयों को गुरुकुल के उत्सव में सम्मिलित होने का निमन्त्रण देता हुं।

आचार्य रामदेव जी—

आचार्य रामदेव जी अफ्रीका से लौट आए हैं। हम उनका हृदय से स्वागत करते हैं। इन आपत्तियों में इस अदम्य वीर के उत्साह और साहस की सराहणा विवश होकर करना पड़ती है। परमात्मा उन्हें स्वास्थ्य दें जिससे वह और भी अधिक तत्परता से ऋषि का ऋण चुकाएं और अपनी सफलता से, जैसा उनका स्वभाव है, सन्तुष्ट कभी न हों।

उपदेशक परीक्षा—

श्री मंत्री. आ. प्र. नि. सभा पंजाब सूचना देते हैं:—

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से जो उपदेशक परीक्षा नियत है, वह फाल्गुन मास में होती है। लेकिन इस साल दयानन्द जन्मशताब्दी के कारण फाल्गुन मास में परीक्षा स्थगित कर दी गई थी। अब ४ मई से ९ मई १९२५ तक होगी। परीक्षार्थियों को प्रार्थनापत्र ३१ मार्च १९२५ तक सभा के दफ्तर, गुरुदत्त भवन, में भेज देने चाहियें। प्रार्थना पत्र में परीक्षार्थी का नाम, पिता का नाम, आयु, निवास स्थान, आर्यसमाज से संबध, और कौन सी परीक्षा देना चाहता है, साफ़तौर पर दर्ज होना चाहिये। विकल्प विषयों में से जिस विषय में परीक्षा देनी हो. वह भी दर्ज होना चाहिये।

दयानन्द उपदेशक विद्यालय——

दयानन्द उपदेशिक विद्यालय २ एप्रिल १९२५ को खुलेगा। विद्यार्थियों को नियम और प्रवेश के प्रार्थना पत्र सभा के कार्यालय से मंगवाने चाहियें।

आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब, गुरुदत्त भवन लाहौर ।

ब्यौरा आय व्यय बाबत मास पौष संवत् १९८१ विक्रमी

निधि	बजट आय	इस मासकी आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय	इस वर्ष का व्यय
	२७२२५)	१४६१-)४	१५१०४॥≡)२			
ार	२०००)	४६॥।-)	११९१।=)३			
	६८००)	१६५=)	११४१॥≡)	६८००)	१६५॥=)॥	१७१६॥-)॥।
	२०७०)	१९५≡)	७०३॥।)७			
तिनिधि				६५००)	५१९॥=)॥।	४३४२-)८
य						
ुस्तकालय	१००)	२७॥)	२०४॥।=)	२५००)	१४७।=)	१९७३॥≡)॥
				५००)		१२०)
तैयार कराई				७००)	३८)	४६६॥-)॥।
				१५६४१)	१११४॥=)२	१०८५१)॥।
पदेशकां				६५००)	१३०॥।-)॥	४४५२॥।)२
यय				५०)		५८=)
ीवन						
विभाग	२००)	१८)॥।	१५१=)।	१५००)	१२५)	१००९=)।
ोष						
ा माता				२४)		१२)
णपति शर्म्मा					१००)	१००)
प्रचार					७८॥)	७८॥)
प्रचार						
योग		१६०८॥।)१	१८४६७॥-)।		२४५०=)११	२५२१३॥।-)१०
स्मारक निधि	३००)		६७-)			५९१॥)
पदेशकां				१४००)	३५)	३७४।=)॥
य				५००)		६०)
				१२०)	१०)	
विधवा पं० तुलसी राम				६६)	८)	७२)
„ पं० वज़ीरचंद					५३)	११२३॥=)॥
योग			६७-)			४२८)
आर्य विद्यार्थी			८४)			
आश्रम					७४॥।)	७०३६)४
अन्य संस्थायें		८१२)	८७८७॥=)॥		८)	६२०)
आर्य समाजें		२००)॥	३४५५=)॥।			१७०)
दिक पुस्तकालय		१०)	८२)			५४०-)
ोलेशाह			४६-)			
अम्बालाल			४०००)			
दामोदरदास					८२॥।)	८७६४-)४
योग		१०२२)॥	१६५५७॥।=)।		२३)८	८२।≡)१
		६६०६)५	२८७६५॥)४			
			२००६।≡)			
ीं			२६)			१५६≡)।
मकानात		२।	५९४)			२४१॥=)४
य व्यय		२९॥)			२३)८	
		९९५०॥)५	३१३२१॥≡)४			

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब, गुरुदत्त भवन लाहौर

ब्यौरा आय व्यय बाबत मास पौष संवत् १९८१ विक्रमी

निधि	बजट आय	इस मास की आय	इस वर्ष की आय	बजट व्यय	इस मास का व्यय
निहालदेवी जींदाराम			७००)		
गुरुकुल मुलतान			५)		
अज्ञात निधि		५०२८॥-)	६४६२॥=)।		१४१)
दयानन्द-जन्म शताब्दि	१००००)	१५०१।≡)	६३६४॥।-)	१५०००)	३६६२।≡)
दलितोद्धार	१२०००)	६॥)	२२६६॥=)	१२०००)	२२४)
राजपूतोद्धार		५॥।)	२७५।=)		६५)
प्रोवीडेण्ट		१०११)८	८१८॥।)१		
बोनस				१०००)	
आर्य्य विद्यार्थी आश्रम	२८७०)		१८५६॥।=)	२८७०)	२५७॥।=)॥
,, ,, ,, शाला			६३४४।)५		
वसीयत पं० पूर्णानन्द			२६२५)		४०)
विदेश प्रचार	८०००)	८०)	१०५)	८०००)	
कन्या गुरुकुल		८३॥=)	१२७।=)		८३॥।-)
सभा के सेवकों की सहायता					
दयानन्द उपदेशक महा विद्यालय		१२१७४)	१४६८७)		५॥।≡)
आसाम प्रचार			१०७॥-)		
दयानन्द सेवा सदन			२)		
रामचन्द्र स्मारक निधि			३८०॥-)		
ईश्वरदास निधि					
अंडमन प्रचार			७०)		
मदरास ,,			८७)		
वसीयत स्वामी विद्यानन्द जानकी बाई			७००)		
,, महाशय ओचीराम			५०००)		१२॥)
योग		१८६५४=)८	५२०४५॥।-)॥।		४५२२॥-)॥
गुरुकुल महानिधि			८८८२७॥।)११		
,, अस्थिर छात्रवृति			८८०२)		
,, स्थिर कोष			२१०)		
,, उपाध्याय वृत्ति			—८०२५॥)		
,, स्थिर छात्रवृति			७०००)		
,, आयुर्वेद			१००३५॥)		
योग			१०६८३९॥।)११		
सर्व योग		३१८३१।≡)८	२२५३००=)॥		७१३१॥-)१
गत शेष		१०१०६१३॥।≡)४	९५३६०१॥।)४		
योग		१०४२७४५।≡)	११७८९०१॥=)१०		
व्यय		७१३१॥-)।	१४३२८८)११		
वर्तमान शेष		१०३५६१३॥।-)११	१०३५६१३॥।-)११		

स्टर्ड. नं. एल ४२४ * ओ३म् * Registered No. L 1424.

ऋष्यङ्क दयानन्दाब्द १०१

आर्य्य

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मुख पत्र

भाग ७ अंक १०

माघ १९८२—फर्वरी १९२६

सम्पादक—चमूपति

वार्षिक मूल्य ३)

मूल्य १ प्रति ।–)

केवल टाइटल अमृत प्रेस, अमृतधारा लाहौर में छपा।

वैदिक पुस्तकालय

जिस में आर्य समाज वच्छोवाली, आर्य समाज अनारकली तथा अन्य कई छोटे २ पुस्तकालय खरीद करके मिलाये जा चुके हैं। इस प्रकार यह एक बड़ा भारी पुस्तकालय बन गया है उस की कुछ पुस्तकें:—

गृह शिक्षक अर्थात् गृहस्थ सुधार ॥।) पुत्री शिक्षक अर्थात् योग्य माता का पुत्री को पतिव्रत धर्म आदि गृहस्थ सम्बन्धी उपदेश ॥) शिशु सुधार अर्थात् बच्चों को कैसे सुधारना चाहिये ॥) स्त्री सङ्गीत पुष्प माला ॥=) अबला भजन प्रकाश पांचों भाग ॥=) आर्य गायन असली १।) मानव धर्म सार भाषा टीका सहित म० हंसराज जी कृत ॥) वैदिक धर्म प्रचार के साधन म० हंसराज जी कृत ≡) संध्या पर व्याख्यान म० हंसराज जी के शारीरिकोन्नति महता रामचन्द्र शास्त्री जी कृत।) स्वामी विरजानन्द जी का जीवन चरित चित्र सहित ≡) गुरु शिक्षा स्वामी दर्शनानन्द जी कृत ≡) नवीन व प्राचीन शिक्षा प्रणाली ≡) ब्रह्मशक्ति ।) स्वर्ग प्राप्ति।) मुक्तिका सत्य ज्ञान ॥।) आर्य समाज तथा सनातन धर्म =) अविद्याके चार अङ्ग ≡) हवन मन्त्रः अर्थ सहित =) शुद्ध रामायण २॥) हरिद्वार का इतिहास ।=) भविष्य पुराणकी पड़ताल ।) दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह छोटा १) बड़ा २॥) छन्द रत्नावली ≡) अष्टाध्यायी १ अध्याय भाष्य ≡) आर्षपितृ यज्ञ ≡) ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार १।) ऋषि दयानन्द स्वरचित स्वकथित जीवन चरित्र ।=) नित्य कर्म गुटका ॥) ध्यान योग प्रकाश १॥) पुराणालोचन =) मांस निषेध पुराण -)। शास्त्रार्थ नीमच =) वैदिक सन्ध्या १) प्रति सैंकड़ा आर्य समाज के नियम बढ़िया १) प्रति सैंकड़ा, घटिया ।-) सैंकड़ा, हवन मन्त्र स्थूल अक्षरों में २॥) प्रति सैंकड़ा आर्य समाज के नियम तथा मेम्बरी के फ़ारम ॥=) सैंकड़ा गुटका भजन संग्रह साप्ताहिक सत्संग के लिये ३॥) सैंकड़ा, भाषा की प्रथम पुस्तक ॥=) प्रति सैंकड़ा, बाल शिक्षा २॥) सैंकड़ा, पाखण्ड निवारण भजन -)॥ वैशेषिक दर्शन प्रशस्तपाद भाष्य सहित संस्कृत ॥) व्याख्यान माला संस्कृत ॥) अग्निहोत्र व्याख्यान भाषा प्रो० बालकृष्णजी कृत ।=) छत्रपति शिवाजी ॥।) ब्रह्म बोधिनी सन्ध्या ।) विवाह पद्धति भाषा टीका सहित ।=) नवयुवको स्वाधीन बनो ॥) सत्यार्थ प्रकाश शब्दार्थ कोष ॥) गीता वचनामृत ≡) ईशोपनिषद भाषा टीका सहित ≡)

आर्य सङ्गीत माला -) दयानन्द वचनामृत ॥=) दारोगा जी ।) राज-यक्ष्मा नाशक यज्ञ विधिः ।) आर्य धर्म प्रवेशिका -)। विचित्र ब्रह्मचारी =)

उपर्युक्त तथा अन्य वैदिक धर्म सम्बन्धी पुस्तकें छोटे २ ट्रैक्ट आर्य घरों व मन्दिरों की शोभाके लिए सुन्दर रंगों में छपे हुए वेद मंत्र व उपदेश आदि मिल सकते हैं।

पता—वजीरचन्द शर्मा अध्यक्ष वैदिक पुस्तकालय, लाहौर।

"अमृतपान"

(लेखक- कविकुल भूषण पं० नारायण प्रशाद जी "बेताब"

—०—

अय स्वदेशी पेय ! अमृतपान नाम ! तू है सचमुच चाय का क़ायम-मुक़ाम १
गो जड़ी बूटी का इक चूरन है तू ! सद्गुणों में अपने सम्पूरण है तू २
दूर से पहले सुना था तेरा नाम ! अब पड़ा है तुझ से आके रोज़ काम ३
है मुबारक हाथ में आना तेरा ! खूब है दिल में समा जाना तेरा ४
आये हैं जिस दिन से मेरे दिन भले ! प्रेम से तुझ को लगाता हूं गले ५
चाय पीने की जो थी आदत मुझे ! कैसी आदत, बल्कि थी इक लत मुझे ६
व्रुक, लिपटन, हैं हसीनाने फ़रंग ! खींचता है दिल को इन का रङ्ग ढंग ७
पैरहन है चुस्त और ज़ेबा लिबास ! देख कर सूरत ही लग आती है प्यास ८
भूल कर मैं इनपे शैदा हो गया ! मुफ़्त का इक रोग पैदा हो गया ९
चाय क्या थी ईश्वर का क़हर था ! दुश्मने सेहत यह मीठा ज़हर था १०
सूखता आहिस्ता आहिस्ता दिमाग़ ! बुझ ही जाता एक दिन घरका चिराग़ ११
धर्म की भी गुप्त हानी उन में है ! सुनते हैं कुछ लाल पानी उन में है १२
यह बड़ी परमात्मा ने ख़ैर की ! गर्म सोहबत अब नहीं है ग़ैर की १३
अब न अन्देशा रहा नुक़सान का ! हो चुका है जन्म "अमृतपान" का १४
दो महीने से यही पीता हूँ मैं ! फल यह है नीरोग हो जीता हूं मैं १५
अब नहीं मस्तिष्क में, खुश्कीका काम ! मानते हैं इससे भय खांसी, ज़ुकाम १६
भागता है दूर मामूली बुख़ार ! जायका भी है निहायत ख़ुशगवार १७
दाम भी ऐसे नहीं कुछ वेशतर ! सिर्फ नौ आने ॥-) में लेलो पावभर १८
सुबह पी लेता हूं मैं जो एक जाम ! शाम तक आता है फ़रहतका पयाम १९
है उसी फ़रहतका यह ज़ाहिर असर ! बोल उठा दिल, राय अपनी नज़्म कर २०
वर्नः कैसा शाइरी का इश्तियाक़ ! रख चुका हूं इसको मैं बालाय ताक़ २१
जिन को हो विश्वास मेरी राय में ! वो न खोएं अपने पैसे चाय में २२
ख़ैर चाहें जान और ईमान की ! चाह रक्खें सिर्फ़ 'अमृतपान" की २३

मिलने का पता—मैनेजर अमृतपान, कटरा नील, देहली—

विषय सूची

विषय | पृष्ठ

* ओ३म् *

भाग ७] लाहौर—माघ १९८२ फरवरी १९२६ [अंक १०

[दयानन्दाब्द १०१]

ईश—प्रार्थना

[श्री० 'मराल' कविरत्न]

नाथ ! मन मन्दिर में जल्दी आप अब तो आइए।
यह पड़ा सूना इसे आकर प्रभो ! अपनाइए ॥ १ ॥
लग रही कब से लगन अब तो अनुग्रह कीजिए।
कीजिए करुणेश करुणा, क्लेश सब हर लीजिए ॥ २ ॥
आप अशरण के शरण, हम हैं शरण में आप की।
मार्ग शुभ दिखलाइए हम राह छोड़ें पाप की ॥ ३ ॥
तुम हो अजर तुम हो अमर हमको बचा कर मृत्यु से।
अमरत्व का वर दीजिए, भय मृत्यु का विनसाइए ॥ ४ ॥
श्रीराम का श्रीकृष्ण का यह रक्त फिर हममें बहे।
उन ही सरीखे वीर हममें से पुनः विकसाइए ॥ ५ ॥
भक्त वत्सल आप हैं अब और मत भटकाइए।
पुत्र हैं हम, गोद में हमको पिता ! बिठलाइए ॥ ६ ॥

शिवरात्री की भेंट

सचहै 'शिवरात्री आर्यसमाजकी जन्मरात्रीहै'। इस सूचिभेद्य अन्धकार में यदि कहीं भी ज्योतिकी किरण दिखाई देतीहै तो वह ऋषि की जीवनी है।

विरोधी चाहे कुछ देर के लिये स्वार्थवृत्तिसे प्रेरित हो ऋषिकी जीवनी पर कालिमा लगाने का यत्न करें किन्तु चांद पर थूकने वालों की क्या अवस्था होती है यह किसी से छुपा नहीं है। ऋषि की दिव्य मूर्ति के दर्शन करना चाहो तो आज युवक भारत के हृदयों में जाकर पता करो। वहां आपको एक चमक दिखाई देगी। बस, यही ऋषि की दिव्य मूर्ति है।

आर्य समाज के काम में आज बहुत कुछ शिथिलता प्रतीत होती है। कई कहने लग गये हैं कि जिन कामों को आर्य समाज किया करता था उन्हें अन्य सभा समाजों ने करना शुरु कर दिया है इस लिये आर्य समाज ......। किन्तु नहीं, अभी तो घर में ही बहुत कूड़ा करकट भरा हुआ है। इसे सिवाय आर्य समाज के कौन दूर कर सकता है। जबतक कुछ भी गन्दगी मौजूद है आर्यसमाज की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता।

आज आर्यसमाज के लिये सचमुच परीक्षा का समय है। एक ओर सारे संसार की विरोधी शक्ति है और दूसरी ओर अकेला आर्य समाज है। जय पराजय तो प्रभुके हाथ में है किन्तु जबतक ऋषि की दिव्य मूर्ति हमारे सामनेहै हमारे लिए चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं। वीर योद्धा अपने नायक की प्रतिमूर्ति को हृदयमें रखे उसीपर जान देदे इसीमें उसकी शोभा है। इस युद्धमें आर्यसमाज की परीक्षा हो जायगी कि वह कहां तक अपने प्रवर्तक के लिए बलि दे सकता है। धर्मोंकी परीक्षा बलिदानोंसे ही हुआ करती है।

आज एक वर्ष बाद फिर से वही शिव की रात्री आ उपस्थित हुई है। हमारे ऊपर ऋषि और उसके पूर्वाचार्यों का बहुत ऋण है। हमने यथाशक्ति उसके एकांश की पूर्ति करने का जो भी यत्न किया वह आप के सामने है। यह सन्तोषप्रद है वा नहीं, इसका निर्णय हम आपपर ही छोड़ते हैं। किन्तु यह जो कुछ भी है आपके सम्मिलित प्रयत्नों का फल है; इस लिये यह आपका है।

जिन महानुभावों ने लेख तथा कविता आदि किसी भी प्रकारसे ऋषि ऋणकी पूर्तिमें हमारा हाथ बंटाया है उनके हम अन्तःकरण से आभारी हैं।

किन्तु इस बातका हमें बहुत ही शोक है कि भगीरथ यत्न से प्राप्त भी सब कृतियों को हम इस अंक में स्थान नहीं दे सके। ——राजेन्द्र वि. अ.

ऋषि का बोधोत्सव कैसे मनाओगे ?

[श्री पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज]

क्या सत्ताईस्वीं वार फिर व्याख्यान सुन, वादे, चार आने भेंट चढ़ा कर पल्ला छुड़ाओगे ? ऋषि ने तुम्हें सीधा मार्ग दिखाया था, उस पर चलने की कभी तुम्हारी बारी भी आयगी वा नहीं ?

ऋषि दयानन्द ने जन्म दिवस से मृत्यु पर्यन्त ब्रह्मचारी रहकर दिखा दिया। क्या तुम्हें ब्रह्मचर्य के पालन का बोध अभी हुआ वा नहीं ? यदि विद्यार्थी और अविवाहित हो, तो क्या वीर्य का संयम करके पवित्र पद का अध्ययन करते हो ? यदि गृहस्थ हो तो ऋतुगामी होने का दावा कर सके हो, वा प्रामाणिक व्यभिचार में ही लिप्त हो ? यदि अध्यापक हो तो कहीं अब्रह्मचारी रह कर तो ब्रह्मचारियों के पथदर्शक नहीं बना रहे ?

प्रकृति पूजा का अनौचित्य समझ कर ऋषि दयानन्द ने उस का खण्डन किया और ईश्वर पूजा का समर्थन। परमात्मदेव में निमग्न हो कर ही उन्हों ने इस असार संसार को त्याग दिया। क्या तुम नियम-पूर्वक दोनों काल प्रेम से सन्ध्या करते हो वा केवल खण्डन में ही अपने कर्त्तव्य को इतिश्री कर देते हो ? क्या तुम्हारी सन्ध्या तोते की रटन्त ही है वा कभी उस समय की हुई प्रतिज्ञाओं पर अमल भी शुरू किया है ? क्या सदा कड़े खण्डन द्वारा सर्व साधारण को धर्म के शत्रु ही बनाते रहोगे वा उपासना द्वारा पवित्र होकर गिरे से गिरे व्यक्तियों को उठा कर धर्म की ओर खींचने में कृतकार्य होना चाहोगे ?

क्या तुम्हारा धर्म भाव और सिद्धान्त प्रेम अन्यों की निर्बलताओं को जगत् प्रसिद्ध करने में ही व्यय होगा, वा तुम कभी अपने सदाचार को ऊंचे लेजाकर निर्बलों को ऊपर उठाने का भी प्रयत्न करोगे ?

ऋषि ने योगाभ्यास से अलङ्कृत होकर वेदों का मर्म बतलाया, परन्तु विनय भाव इतना कि अपनी भूल सुधारने के लिये हर दम तय्यारी ज़ाहिर की। क्या तुम सिद्धान्ती होने के अभिमान को छोड़ कर कभी दूसरे की सुनने को भी तय्यार होगे ?

माना कि तुम अपनी अपूर्व तर्क शक्ति से सब कुछ सिद्ध कर सकते हो,

परन्तु क्या तुमने कभी सोचा है कि जिस ऋषि के ग्रन्थों से भाव चुराकर तुमने तर्क का महल खड़ा किया है उसने कोरे तर्क को अपने कार्य क्रम में क्या स्थान दिया था ?

[श्री पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज]

आर्य सन्तान ! आओ ! आज से फिर अपने जीवन पर गहरी दृष्टि डालो और समझलो कि जिस सत्य की प्राप्ति के लिए मूल-शङ्कर के हृदय में इस रात्री उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई उसकी तलाश में उसने शारीरिक कष्टों की कुछ भी पर्वा नहीं की, और जङ्गल और बियाबान, पहाड़ और मैदान-सबकी ख़ाक छानने और जने जने से, विनय भाव के साथ, उसी का पता लगाते हुए अन्त को सत्य स्वरूप में ही लीन होगए । चारों आश्रमों में ब्रह्मचर्य का पालन करते, गुण कर्मानुसार वर्णों की व्यवस्था स्थापन करते, उपासना से हृदय को सत्यग्राही और प्राणिमात्र के लिये कल्याणकारी बनाते हुए जो आर्य पुरुष कल्याण मार्ग में चलने का आज शुभ संकल्प करेंगे, उनका मैं भी ऋणी हूंगा । शमित्योश्म् ।

यज्ञ में हिंसा

(श्री० पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज)

अश्वालंभं गवालंभं संन्यासं पलपैतृकम् ।

देवराच्च सुतोत्पत्तिं कलौ पंच विवर्जयेत् ॥ पाराशरस्मृतिः ॥

इस श्लोक को जिस में अश्व तथा गौ के कलियुग में मारने का निषेध किया है लिख कर ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश में जो उत्तर लिखा है वह इस प्रकार है "जब अश्वालंभ अर्थात् घोड़े को मार के अथवा गवालंभ गाय को मार के होम करना ही वेदविहित नहीं है तो उस का कलियुग में निषेध करना वेद विरुद्ध क्यों नहीं" । ऋषि लोग वेद के आधार पर अश्व और गौ मारने का सर्वदा निषेध करते हैं —

यदि नो गां हिंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् ।

तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥

भावार्थ—जो गौ, अश्व, पुरुष अथवा अवीर (दुःख न देने वाले) को मारे उसे सीसे की गोली से विद्ध करो ।

याज्ञिकों ने भी जहां पशु मारने की क्रिया लिखी है वहां जिस प्रतीक का विनियोग किया है वह भी मारने का निषेध करती है । उन की प्रतीक है "स्वधिते मा हिंसि" । तो भी याज्ञिक इस मन्त्र को पढ़कर इसके सर्वथा प्रतिकूल आचार करते हैं ।

वेद को छोड़ कर आज मैं शतपथ ब्राह्मण का एक पाठ पाठकों की भेंट करता हूं जिससे पाठकों को विश्वास हो जायगा कि शतपथ भी आचार्य्य दयानन्द का पोषक है।

"भृगुर्ह वै वारुणिः। वरुणं पितरं विद्ययाति मेने तद्ध वरुणो विदांचकाराति वैमा विद्यया मन्यत इति ॥ १ ॥ स होवाच। प्राङ् पुत्रकं व्रजतात्तत्र यत्पश्येस्तद्दृष्ट्वा दक्षिण व्रजतात्तत्र यत्पश्येस्तद्दृष्ट्वा प्रत्यग्व्रजतात्तत्र यत्पश्येस्तद्दृष्ट्वोदग्व्रजतात्तत्र यत्पश्येस्तन्मा आचक्षीथा इति ॥२॥ स ह तत एव प्राङ् प्रवव्राज एदु पुरुषैः पुरुषान्पर्वाण्येषा पर्वशः संव्रश्चं पर्वशोविभजमानानिदं तवेदं ममेति सहोवाच भीष्मं बत भोः पुरुषान्न्वा पुरुषाः पर्वाण्येषां पर्वशः संव्रश्चं पर्वशो व्यभक्षतेति। ते होचुरित्थं वाऽइमेऽस्मानमुष्मिंल्लोकेऽसचन्त तान्वतामिदामिह प्रतिसचा महाऽइति। सो होवाचास्तीह प्रायश्चित्ती ३ रित्यस्तीति का-ति पिता ते वेदेति ॥ ३ ॥ स ह तत एव दक्षिण प्रवव्राज। एदु पुरुषैः पुरुषान्पर्वाण्येषां पर्वशः संकर्तं पर्वशो विभजमानानिदं तवेदं ममेति स हो वाच भीष्मं बतभोः पुरुषान्न्वा एतत्पुरुषाः पर्वाण्येषां पर्वशः संकर्तं पर्वशोव्यभक्षतेति ते होचुरित्थं वा इमेऽस्मानमुष्मिँल्लोकेऽसचन्त तान्वयमिदमिह प्रति सचामहाऽइति स होवाचास्तीह प्रायश्चित्ती ३ रित्यस्तीति काति पितैव ते वेदेति ॥ ४ ॥ सह तत एव प्रत्यङ् प्रवव्राज। एदु पुरुषैः पुरुषांस्तूष्णीमासीनांस्तूष्णीमासीना अदन्तीति ते होचुरित्थं वाऽइमेऽस्मानमुष्मिंल्लोकेऽसचन्त तान्वयमिदमिह प्रति सचामहाऽइति। स होवाचास्तीह प्रायश्चित्ती ३ रित्यस्तीति काति पितैव ते वेदेति ॥ ५ ॥

स ह तत एवोदङ् प्रवव्राज। एदु पुरुषैः पुरुषानाक्रन्दयत आक्रन्दयद्भिरद्यमानान्त्स होवाच भीष्मं बत भोः पुरुषान्न्वाऽएतत् पुरुषा आक्रन्दयत आक्रन्दयन्तोऽदन्तीति तेहोचुरित्थं वाऽइमऽस्मानमु० ॥ ६ ॥

स ह तत एवैतयोः पूर्वायोः। उत्तरमन्ववान्तरदेशं प्रवव्राजेदुस्त्रियो कल्याणीं चाति कल्याणीं च तेऽअन्तरेण पुरुषः कृष्णः पिङ्गाक्षो दण्डपाणिस्तस्थौ तं

हैनं दृष्ट्वाभीर्विवेद सहेत्य संविवेश तᳫंह पितो वाचाधीष्व स्वाध्यायं कस्मान्नु स्वाध्यायं नाधीषऽइति सहोवाच किमध्येष्ये न किंचनास्तीति तद्ध वरुणो विदांचकाराद्राग्वाऽइति ॥ ७ ॥

सहोवाच । यान्वैतत्प्राच्यां दिश्यद्राक्षीः पुरुषैः पुरुषान्पर्वान्येषां पर्वशः संवृश्च पर्वशो विभजमानानिदं तवेदं ममेति वनस्पतयो वै तेऽअभूवन्त्स यद्वनस्पतीनाᳫंसमिधमादधाति तेन वनस्पतीनवरुन्द्धे तेन वनस्पतीनां लोकं जयति ॥ ८ ॥

अथयानेतद्दक्षिणायां दिश्यद्राक्षीः पुरुषैः पुरुषान्पर्वाण्येषां पर्वशः संकर्त्तं पर्वशो विभजमानानिदं तवेदं ममेति पशवो वै तेऽअभून्त्स यत्पयसा जुहोति तेन पशूनवरुन्द्धे तेन पशूनां लोकं जयति ॥ ९ ॥

अथ यानेतत्प्रतीच्यां दिश्यद्राक्षीः । पुरुषैः पुरुषांस्तूष्णीमासीनांस्तूष्णीमासीनैरद्यमानानोषधयो वैता अभूवन्त्स यत्तृणेनावज्योतयति तेनौषधीरवरुन्द्धे तेनौषधीनां लोकं जयति ॥ १० ॥

अथ यानेतदुदीच्यां दिश्यद्राक्षीः । पुरुषैः पुरुषानाक्रन्दयत आक्रन्दयद्भिरद्यमानानापो वै ता अभूवन्त्स यदपः प्रत्यानयति तेनापोऽवरुन्द्धे तेनापां लोकं जयति ॥ ११ ॥

अथ यऽएते । स्त्रियावद्राक्षीः कल्याणीं चातिकल्याणीं च सा या कल्याणी सा श्रद्धा स यत्पूर्वामाहुतिं जुहोति तेन श्रद्धामवरुन्द्धे तेन श्रद्धां जयत्यथ यातिकल्याणी साश्रद्धा स यदुत्तरामाहुतिं जुहोति तेनाश्रद्धामवरुन्द्धे तेनाश्रद्धां जयति ॥ १२ ॥

अथ य एनं सोऽन्तरेण पुरुषः । कृष्णः पिङ्गाक्षो दण्डपाणिरस्थात्क्रोधो वै सोऽभूत्स यत्स्रुच्यप आनीय निनयति तेन क्रोधमवरुन्द्धे तेन क्रोधं जयति स य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तेन सर्वं जयति सर्वमवरुन्द्धे ॥१३॥ ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥ [६. १.] ॥ शतपथ कांड ११ अध्याय ६ ब्राह्मण १।

भावार्थ—भृगु अपने पिता वरुण के पास गया और शिक्षार्थ कहा। उत्तर में पिता ने भृगु से कहा पूर्वादि चारों दिशा और उत्तर पूर्व के बीच की अवांतर दिशाओं में जाकर देखो आप जो कुछ देखें यदि समझ में न आवे तो मेरे पास आकर पूछ लेना। भृगु प्रथम पिता के आदेशानुसार पूर्व में गया। वहां एक व्यक्ति पुरुष के अवयवों को विभक्त करता था। वह देख कर डरा कि यह क्या भयानक दृश्य है। दक्षिण में पुरुष अंगों के टुकड़े करते पाया। पश्चिम में एक व्यक्ति अन्य को भक्षण करता था, वह मौन था। उत्तर में मौन के स्थान में क्रन्दन था। अवांतर दिशाओं में एक में कल्याणी स्त्री और दूसरे में कृष्ण पुरुष के दर्शन किये।

इन दृश्यों का उस पर बुरा प्रभाव पड़ा। वह अपने पिता वरुण के पास गया। वहां जाकर दृष्ट दृश्यों का वर्णन किया। तब वरुण ने सब की संगति की। यथा प्रथम दृश्य में समिधायों का विधान है जिसमें वृक्ष के पर्वों को काट कर समिधाएं बनाई जाती हैं और उसमें अंगों का विभाग होता है।

द्वितीय दृश्य में पशुओं के दूध का वर्णन है जो उसके स्तनों से थोड़ा २ करके निकाला जाता है।

तीसरे में उन औषधियों का विधान है जो बिना काटे हवन में डाली जाती हैं। चतुर्थ दृश्य में क्रन्दन रूप से जल के शब्दों का अलंकार है। स्त्री और पुरुष रूप से श्रद्धा और क्रोध का वर्णन है।

यज्ञ में इन्हीं वस्तुओं का प्रयोग होता है। यज्ञ विध्वंसक को क्रोध से दूर करो। यज्ञ श्रद्धा सहित करो। यज्ञ में समिधा दुग्ध, दुग्धविकार दधि, घृतादि वनस्पति, जल का प्रयोग आवश्यक है और अन्त में वरुण कहते हैं जो इस प्रकार जान कर यज्ञ को करता है वही सब को जीतता है।

इस ब्राह्मण में हिंसा का सर्वथा ही निषेध है। यहां पशुओं के दूध का विधान है न कि मांस का। अतः आचार्य दयानन्द प्रतिपादित मत ही ठीक और वेद सम्मत है कि पशु मार कर यज्ञ करना वेद विहित नहीं है।

शिवरात्री का सन्देश।

(श्री० प्रो० रामदेव जी, आचार्य गुरुकुल विश्व-विद्यालय काङ्गड़ी)

शिवरात्री के दिन मूलशङ्कर को सत्य ज्ञान का बोध हुआ था इसी लिये इस दिवस को बोधोत्सव के नाम से मनाया जाता है। इसी दिन ऋषि को इस बात का ज्ञान हुआ था कि निराकार परमात्मा की मूर्त्ति नहीं बनायी जा सकती। आर्य जाति परमात्मा के सत्य स्वरूप को भूल कर पत्थरों को परमात्मा मानने लग गई थी और पत्थर के अन्दर ही परमात्मा के सम्पूर्ण गुणों का आभास देखने लग गई थी। ऋषि ने इसी शिवरात्री के दिन सच्चे शिव की प्राप्ति का दृढ़ संकल्प कर लिया था और १४ वर्ष तक नर्मदा की तलैटी से गंगा स्रोत तक भ्रमण करते हुए ब्रह्मचर्य और तप से अ ने जीवन को परिमार्जित करके, सैंकड़ों प्रकार की विपद्बाधाओं को झेल कर सच्चे परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त किया था। स्वामी दयानन्द के व्याख्यानों तथा ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट पता लगता है कि उनका भाव कितना (Uncompromising) कट्टर था। उन्होंने एक मिनट के लिये भी मूर्त्ति पूजकों से सुलह नहीं की उनके जीवन का बहुत सा भाग ईश्वर पूजा के सिद्धान्त के प्रचार तथा मूर्त्ति पूजा के खण्डन में व्यतीत हुआ। उनके विचार में आर्य जाति के गिरावट का मुख्य कारण मूर्त्तिपूजा था। ऋषि का धर्म वेदों की दृढ़ चट्टान पर अवलम्बित था और वह एक परमात्मा-पूजा का धर्म था। कई प्रकार के प्रलोभनों तथा आपत्तियों के आने पर भी स्वामी दयानन्द अपने सिद्धान्त से विचलित नहीं हुए इस्लाम भी मूर्त्ति पूजा का कट्टर विरोधी समझा जाता है। इसके प्रवर्त्तक हज़रत मुहम्मद ने अरब के ज़ाहिल लोगों के सामने एक परमात्मा की पूजा (तौहीद) का सिद्धान्त रक्खा और मूर्त्ति पूजा का खण्डन किया! परन्तु जिस समय करैश लोग सर्वथा मूर्त्ति पूजा छोड़ने के लिये बाधित हुए तो उन्होंने मुहम्मद साहब से प्रार्थना की कि उन्हें तीन दिवस का अवकाश दिया जावे, और तीन दिन तक उन्हें मूर्त्तियों की पूजा करने की आज्ञा दे दी जाय। मुहम्मद साहब ने उनकी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और उन्हें तीन दिन तक मूर्त्ति पूजा करने की आज्ञा दे दी। मुहम्मद को मूर्त्ति पूजा का कट्टर विरोधी समझा जाता है और कहा जाता है कि संसार में तौहीद

का स्पष्ट शब्दों में प्रचार पहिले पहिल इन्होंने किया। परन्तु हम देखते हैं कि मूर्त्ति पूजा के कट्टर विरोधी मुहम्मद ने भी मूर्त्ति पूजकों से मूर्त्ति पूजा के विषय में सुलह की।

परन्तु स्वामी दयानन्द ने इस विषय में किसी से एक मिनट के लिये भी सुलह नहीं की। उदयपुर महाराज स्वामी जी के शिष्य थे। महाराज की स्वामी जी में अनन्य भक्ति और श्रद्धा थी। इन्हों ने स्वामी जी को अपना गुरु बनाया था। एक वार की घटना है कि इन्हों ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि वे उदयपुर के राज-मन्दिर की गद्दी के मालिक बन जावें और सारी आय से अपने धर्मप्रचार का कार्य करे परन्तु केवल मूर्त्ति पूजा का खण्डन न करें। इस पर स्वामी जी महाराज से बहुत असन्तुष्ट हुए और उन्हों ने उस को खूब डांटा। इस प्रकार की अन्य भी कई घटनाएं स्वामी जी के जीवन में उपलब्ध होती हैं जिन के अध्ययन से पता लगता है कि कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होने के समय से लेकर मृत्यु पर्यन्त स्वामी जी ने एक मिनट के लिये भी मूर्त्ति पूजा के साथ सुलह नामा नहीं किया। स्वामी जी के जीवन का यह एक मुख्य भाग था। शिवरात्री या बोधोत्सव का यही सन्देश है।परन्तु हमें दुःख से कहना पड़ता है कि आर्य समाज इस समय अपने उद्देश्य से विचलित हो रहा है। देश के अन्दर जो लहरें चल रहीं हैं उन का आर्य समाज के प्रचार पर भी असर पड़ रहा है। उचित तो यह था कि आर्य समाज का प्रभाव ही देश की प्रत्येक लहर के अन्दर दिखाई देता परन्तु दुःख इस बात का है कि उलटा आर्य समाज पर इन का असर हो रहा है हिन्दू संगठन की लहर चली और आर्य समाज इस में बह गया। इतना तो हम समझते हैं कि आर्य जाति की रक्षा करना आर्य समाज का कर्त्तव्य है परन्तु इस का यह तात्पर्य नहीं कि हिन्दू संगठन के नाम पर आर्यसमाज अपने सिद्धान्तों की भी वलि दे दे जब से हिन्दू संगठन की लहर चली है तब से आर्य समाज के अन्दर मूर्त्ति पूजा के खण्डन करने का भाव ढीला हो गया है। कई आर्य समाजी भाई यह समझते हैं कि यदि मूर्त्ति पूजा का खण्डन किया जायगा तो हिन्दू भाई अप्रसन्न हो जायेंगे इस लिये हिन्दुओं को खुश करने के लिये हमारे भाई कई ऐसे कार्य कर बैठते हैं जो कि आर्य समाज की स्पिरिट के विरुद्ध हैं। हम ने कई उपदेशकों को यह कहते सुना है कि "हिन्दुओं के ३३ करोड़ देवी देवता हैं फिर भी वे मुसलमानों की कबरों की पूजा करते हैं।" जहां मूर्त्ति पूजा का सर्वथा खण्डन

करना चाहिये वहां हिन्दुओं को अपने देवी देवताओं की पूजा करने के लिये प्रेरित किया जाता है। वे भाई भूल जाते हैं कि जो व्यक्ति मूर्त्ति पूजा करता है उस का यह स्वभाव पड़ जाता है कि वह संसार भर की मूर्त्तियों की पूजा करे। यही कारण है कि बहुत से कब्र-परस्त मुसलमान भी हिन्दू जोतिषियों के पास आकर तावीज़ इत्यादि बन्धवाते हैं। इसलिये हमारा कर्त्तव्य तो यह है कि हम सर्वथा मूर्त्ति पूजा का खण्डन करें न कि इस के साथ सुलह करें। हमें यह भी शोक से कहना पड़ता है कि हमारे कई नेता हिन्दुओं की मूर्त्ति स्थापना इत्यादि क्रियाओं में जा कर हिस्सा लेते हैं। ऐसी बातों में शरीक होना भी स्वामी की स्पिरिट और वैदिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल आचरण हैं। हम यह देख रहे हैं कि आर्यसमाजी अपने सिद्धान्तों से गिर रहे हैं और हिन्दू संगठन की लहर में पड़ कर हम अपने सिद्धान्तों को कुर्बान कर रहे हैं! यदि सच्चे अर्थों में हमें ऋषि बोध का दिन मनाना है तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम किसी भी अवस्था में मूर्त्ति पूजा के साथ सुलह न करें और संसार से मूर्त्तिपूजा का सर्वथा अत्यन्ताभाव करके ऋषि के मिशन को पूरा करें।

प्यारा आर्य समाज

(ब्रह्मचारी भद्रजित् "भद्र")

चूम चूम वीरत्व भाव जिसने भर डाले।
थपकी दे दे अङ्ग अङ्ग लोहे के ढाले।
शिरस्त्राण शुभ धर्म मुझे सिर पर पहनाया।
धैर्य्य कवच से अभय और दुर्भेद्य बनाया।
अब जिसने है पहना दिया मुझको सैनिक साज यह।
वर विश्व ज्योति जगतो रहे प्यारा आर्य समाज वह॥ १॥
देदी तर्क कृपाण तीक्ष्ण हाथों में मेरे।
बुद्धी पैंतरे विविध भाँति के सीख घनेरे।
ढाल वेद की, प्रेम नीर पीने को साधा।
जन्म भूमि का प्यारा भोजन काँधे पर बाँधा।
जिसने दे आशीष शुभ रण में भेजा आज है।
वह, मेरा, जग का, ईश का प्यारा आर्य समाज है॥ २॥

वैदिक तृत्ववाद ।

(श्री नारायण स्वामी जी महाराज)

यह जगत् प्रसिद्ध है कि वेद ईश्वर, जीव और प्रकृति की नित्यता का प्रतिपादन करते हैं। सांख्य ने, ईश्वर और जीव दोनों को पुरुष नाम देकर, पुरुष और प्रकृति का भेद बतलाया। योग ने वह विधि बतलाई जिस से प्राणी (इस पुरुष और प्रकृति रूप) द्वैतका अनुभव कर लेवे। परन्तु सब की तह में वही वेद प्रतिपादित तृत्ववाद काम कर रहा है। जहां वेदों की अन्य शिक्षायें जगत में फैलीं वहां इस (तृत्व) वाद का भी विस्तार हुआ और जिस प्रकार अन्य शिक्षाओं में, देश काल की भिन्न २ परिस्थितियों से, परिवर्तन हुए उसी प्रकार इस तृत्ववाद का भी रूप बदला।

"उपनिषदों में तृत्ववाद"

उपनिषदों में यह तृत्ववाद एक और रूप में प्रकट हुआ—बृहदारण्यकोपनिषद में (देखो १।६।३) तृत्ववाद के अंग, नाम, रूप और कर्म वर्णित किए गये हैं। नाम का उपादान वाणी, रूप का उपादान चक्षु और कर्म का उपादान आत्मा को बतलाते हुए कहा गया है कि "तदेतत्त्रयं सदेकमयमात्मा आत्मेकः सन्नेतत् त्रयम्।" अर्थात् ये तीन होने पर भी एक ही आत्मा (के उत्पन्न किये हुए कार्य) हैं—और आत्मा एक होने पर भी ये तीन हैं सो यह प्रकट ही है कि चक्षु, वाणी और आत्मा से उत्पन्न रूप, नाम और कर्म आत्मा ही में समाविष्ट हैं। नाम रूपात्मक जगत में कर्म करने ही से समस्त जगत के व्यवहार की सिद्धि होती है। देश से बाहर देखें तो प्रकट होता है कि पारसी आदि प्राचीन मतों में वैदिक तृत्ववाद में केवल नाम का भेद हुआ, आशय का नहीं। सभी ईश्वर, जीव और प्रकृति की सत्ता का प्रतिपादन करते हैं—परन्तु आगे चलकर आशय का भी भेद होना प्रारम्भ हुआ।

"ताउ मत में तृत्ववाद"

चीन के प्राचीनतम मतों में कन्फ्यूशस और ताउ (लावज़ी का प्रचारित)

मत बहुत प्रसिद्ध हैं । दोनों मतों का प्रारम्भकाल प्रायः एक ही है। कन्फ्यूशस और लावज़ी की शिक्षाओं में भेद यह था कि कन्फ्यूशस अधिकतर अपना मत जगत संबन्धी अनुभवों के आधार पर स्थिर किया करता था और इसीलिये उस के मत में परलोक के लिये बहुत थोड़ा स्थान था जब कि ताउ मत विशेष कर भारत वर्षीय उपनिषदों के आधार पर खड़ा किया गया था। कन्फ्यूशस, किस प्रकार अनुभव से नियम स्थिर किया करता था उस के प्रकट करने के लिये कदा चत् एक घटना का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। एक बार कनफ्यूशस, अपने कुछ एक शिष्यों के साथ कहीं जा रहा था। एक जंगलके निकट पहुंचने पर उस ने एक बुढ़िया को रोते देखा। यह बुढ़िया अपने पति और पुत्र के साथ एक अत्याचारी राजा के अत्याचार से तंग आकर इस जंगल में चली आई थी। परन्तु यहां इस के पति और पुत्र को शेर ने मार डाला था। इसी दुःख से वह रो रही थी, यह जान लेने पर कन्फ्यूशस ने उस से कहा कि फिर तू क्यों नहीं यहां से चली जाती जिससे तू तो सिंहका शिकार होनेसे बच जावे। बुढ़िया ने उत्तर दिया कि इस जंगल में रहना इस लिये अच्छा है कि यहां अत्याचारी राजा तो नहीं है—(Because here is no oppressive Govt.) बस, इसी घटना के आधार पर कन्फ्यूशस ने नियम स्थिर करके अपने शिष्यों को बतला दिया कि "Oppressive Govt is more dangerous than a tiger"—अर्थात् अत्याचारी राज्य सिंह से भी कहीं अधिक भयप्रद है अस्तु। जहाँ कन्फ्यूशस की शिक्षाप्रणाली यह थी वहां ताउमत की शिक्षा के आधार पुस्तक थे। उन पुस्तकों में भी एक तृत्ववाद का उल्लेख मिलता है—ताउमत में वर्णन किया गया है कि अमरता दो प्रकार की है एक स्वर्ग की और दूसरी पृथ्वी की । स्वर्ग की अमरता १३०० और पृथ्वी की अमरता ३०० शुभकर्मों के करने से प्राप्त हुआ करती है। और दोनों प्रकार की अमरता का आधार यह तृत्ववाद है—

(१) खि (Khi) (२) हि (Hi) (३) वि (Wie) इन के क्रम पूर्वक अर्थ अरूप, अशब्द, और अस्पर्श हैं—अर्थात ये तीनों शब्द ईश्वर के विशेषण हैं जिन का सविस्तर उल्लेख हमें कठोपनिषद में मिलता है।

रिमसैट (Remnsat) एक पश्चिमी लेखक ने इस तृत्ववाद को यहूदीमत से सम्बंधित करने का व्यर्थ यत्न किया है उसने "खि" से ज (J) "हि" से

हैं (H) और "वि" से व (V) निकालने का यत्न इसलिये किया है कि इस J+H+V से "जहोवा" यहूदियों के देवता का वर्णन सिद्ध करदे परन्तु "वि" से जे को निकालना धींगा धांगी ही है

ईसाइयों में तृत्ववाद

ईसाइयों का तृत्ववाद (ईश्वर जीव) पिता पुत्र और पवित्रात्मा प्रसिद्ध है। इन के सम्बन्ध में ईसाइयों का यह मन्तव्य है कि "तीनसे एक और एकसे तीन" प्राय ऊपर दिये हुए वृहदारण्यकोपनिषद के वाक्य का अनुवाद मात्र है।

इस प्रकार जहां मत वादियों ने अपने मतों में इस तृत्ववाद का समावेश किया है वहां दार्शनिक और वैज्ञानिकों ने भी अपने २ तृत्ववाद निर्धारण किये हैं।

"कान्ट का तृत्ववाद"

कान्ट का तृत्ववाद जगत् प्रसिद्ध ही है १) ईश्वर God (२) मुक्ति Freedom (३) अमरता Immortality। कांट के इस तृत्ववाद को हम वैदिक तृत्ववाद की छाया ही कह सकते हैं।

"हैकल का तृत्ववाद"

हैकल जैसे जड़वादी (नास्तिक) वैज्ञानिक की भी इच्छा हुई कि वह अपने जड़ाद्वैतवाद में भी तृत्ववाद को जगह देवे और तदनुसार इस ने (१) सत्य The true (२) भलाई The Good और (३) सुन्दरता The beautiful को अपने तृत्ववाद का अंग ठहराया है। इस प्रकार वैदिक तृत्ववाद रूप और आशय के भेद से एक समय जगत्व्यापी सिद्धान्त बन चुका था और बहुत अंश में अब तक भी बना हुआ शेष है।

———

कर्मशील आर्य्यसमाज

(देशभक्त श्री कोण्डावेंकट पैय्या, मद्रास)

उन संस्थाओं में से जिन्होंने देश-निर्माण के लिये कार्य किया है, आर्य समाज का नाम मुख्यतया लिया जाना चाहिये। वैदिक-धर्म के पुनरुद्धार के अतिरिक्त आर्यसमाज की सामाजिक-क्षेत्र में जो सेवाएं हैं, उन से विशेषकर

उत्तर भारत अधिक प्रभावित हुआ है आर्यसमाजियों की यह बात मुझे बहुत पसन्द आती है कि उन्होंने विवाह की आयु मनुष्य के लिये २५ वर्ष और स्त्री के लिये १६ वर्ष निश्चित की है और मुझे बतलाया गया है कि प्रायः आर्यसमाजी लोग इसी आयु में ही विवाह करते हैं । मैं चाहता हूं कि इस बात का प्रचार मेरे आन्ध्र-प्रान्त में भी हो । इस के अतिरिक्त शिक्षा के क्षेत्र में भी आर्यसमाज ने विशेष प्रयत्न किया है विशेषकर पञ्जाब प्रान्त में तो इस ने स्कूलों का मानों जाल सा ही बिछा दिया है हरिद्वार का गुरुकुल काँगड़ी—और उस के संस्थापक श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के प्रति मेरे विशेष श्रद्धा के भाव हैं। यह सारे देश के लिए आदर्श संस्था है । इस के सिवाय 'अछूत-उद्धार' का कार्य जिसे कुछ ही सालों से कांग्रेस ने अपनाया है, आर्यसमाज में बहुत अरसे से चला आता है । और आज भी देश में इस कठिन समस्या को सुलझाने वालों में आर्यसमाजियों की संख्या बहुत अधिक है। यद्यपि मैं आर्यसमाज के अछूत-उद्धार विषयक प्रति प्रोग्राम का समर्थन नहीं कर सकता, तब भी इतना निस्सन्देह कह सकता हूं कि आर्यसमाज को इस कार्य का पर्याप्त श्रेय मिलना चाहिये ·

अब मैं समझता हूं कि थोड़े से आर्यसमाजियों का इतने अल्पकाल में यह सब कर दिखाना उन के सुदृढ़ सङ्गठन Organization का ही परिणाम है। और मैं चाहता हूं कि हमारे देश की बहुतसी जातीय-संस्थाओं को इस उत्तम संगठन की शिक्षा आर्यसमाज से लेनी चाहिये ।

उत्तर हिन्दुस्तान में थोड़े ही मनुष्य होंगे जोकि देशभक्त श्री कोण्डा वंकटपैय्या पन्तलुगारू के नाम से परिचित हों । परन्तु दक्षिण-भारत में और विशेषतः आन्ध्र-देश में देशभक्त जी का नाम 'घरेलू' सा होगया है । पिछले ४, ५ सालों में जितना जातीय महासभा का कार्य इधर हुआ है, वह मुख्यतया आप ही के परिश्रम का फल है । आप म० गांधी जी के विशेष चेलों में से हैं, और आपकी सादगी, आपकी तपस्या, आपका स्वार्थ त्याग और आपका शान्तिमय जीवन सब नवयुवकों के लिये आदर्श है । आप ही सब से प्रथम थे जिन्होंने दक्षिण-भारत में कोकिनाडा-कांग्रेस के प्रधान बनकर हिन्दी में भाषण किया । आपको हिन्दी भाषा से अगाध प्रेम है । आप यद्यपि आर्यसमाजी नहीं तब भी आर्य समाज के कार्यों से विशेष सहानुभूति रखते हैं । उसी सहानुभूति और सद्भावना का परिचय आपके ऊपर लिखे 'सन्देश' से मिलता है ।—सं०

*दर्शन !

(श्री वंशीधर विद्यालङ्कार, मुख्याध्यापक गुरुकुल सूपा)

मेरी आंखों के आगे वह—
चित्र खिंचा है—
चित्रित सी हो
खिंची हुई हैं दोनों आँखें।
कलम लिये बैठा मैं सोचूं
कैसे खींचूं-कैसे खींचूं
तेरी उस निस्तब्ध मूर्ति को।
अपने दिव्य नयन को खोले
बाल्य काल की चञ्चलता को
उत्सुकता में लिये हुए जब—
बैठा था तू स्तब्ध रात्रि में—
शङ्कर के दर्शन करने को
शङ्कर की प्रतिमा के आगे।
वायु सुप्त था—श्वास गूंजता—
था सोने वालों का पर तू—
किस चैतन्य दीप्ति से जलतीं—
निर्निमेष आँखों को खोले—
करता था आवाहन प्रभु का
भक्ति पूर्ण बालक के दिल से।
गजर बज उठा घोर तिमिर में।
ज्ञान सूर्य की मधुर उषा में—
हृदय-पद्म खिल गया। आगये
सन्मुख-निर्निमेष आँखों के
निराकार चेतन मय शङ्कर।
सुप्त भाग्य जागे भारत के॥

*यह कविता १६ मात्रा छन्द में अमिताक्षरों (Blank) में बनाई गई है - लेखक

सच्चा सुधारक ऋषि दयानंद

[श्री० पं० गुरुदत्त सिद्धान्तालङ्कार, आर्योपदेशक]

हम इस लेख में पाठकों के सन्मुख न तो स्वामी जी के कार्यों और सुधारों का ही वर्णन करेंगे और न ही हम उन उपकारों को गिनावेंगे, जो कि स्वामी जी ने आर्य जाति पर किये हैं। इन विषयों पर आज तक अनेकों लेख लिखे जा चुके हैं। स्वामी जी के कार्यों, सुधारों और उपकारों से आर्य जाति का प्रत्येक बच्चा २ परिचित है, अतः अब उन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

स्वामी जी ने मृतप्राय आर्य जाति तथा भारत का उद्धार करने के लिये किन २ उपायों का अवलम्बन किया, तथा उन्होंने अपने कार्य के लिये किस क्षेत्र का चुनाव किया, हम इस छोटे से लेख में इन ऊपर कही गई बातों पर प्रकाश डालते हुए पाठकों को ऋषि की दूरदर्शिता तथा उस की विस्मय में डालने वाली प्रतिभा का परिचय देंगे।

क्रांति के इतिहासों का अध्ययन करने से हमें निम्न सचाई (fact) का पता लगता है, कि दुनियां के किसी भी देश और जाति में बड़ी २ राजनैतिक क्रांतियां होने से पूर्व उस देश और जाति में सामाजिक और विशेष कर धार्मिक परिवर्तन प्रायः अवश्य हुआ करते हैं। दुनिया के बड़े २ राजनैतिक परिवर्तन प्रायः धार्मिक और सामाजिक क्रांतियों वा परिवर्तनों के बाद ही हुए हैं। हर प्रकार की राजनैतिक उन्नति के लिये उच्च आकांक्षा, अदम्य उत्साह, दृढ़ संकल्प, अपूर्व त्याग, अटूट आत्मविश्वास, अपूर्व धैर्य, गंभीरता, सच्चाई, संलग्नता तथा वैयक्तिक और सामाजिक उच्च जीवन आदि जिन २ गुणों की आवश्यकता होती है, व्यक्तियों और जातियों में उन अपूर्व गुणों का संचार प्रायः धर्म से ही हुआ करता है। सद्शिक्षा आदि अन्य साधनों द्वारा भी इन गुणों को व्यक्तियों और जातियों में पैदा किया जा सकता है तथापि धर्म इस का सब से श्रेष्ठ साधन है क्योंकि सद्गुण और सदाचार सामान्य मनुष्यों में तभी स्थिरता पूर्वक रह सकते हैं, जब कि मनुष्य के हृदय से संबद्ध हों, और ये कार्य धर्म द्वारा ही हो सकता है, क्योंकि धर्म का मनुष्य के हृदय

से सीधा सम्बन्ध होता है धर्म के बिना व्यक्तियों और जातियों में सद्गुण का विकास और सदाचार को स्थिरता असम्भव है यह एक ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक सचाई है ऐतिहासिक साक्षियों के अतिरिक्त क्रांतियों के प्रवर्तकों और नेताओं का चरित्र ही इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि कोई भी ऐसा पुरुष जो कि सच्चरित्र तथा पूर्ण धर्मात्मा न हो, कभी भी किसी क्रांति को सफलता पूर्वक नहीं चला सकता । मेज़िनी, वाशिंग्टन, डिवैलरा, रुसो, टालस्टाय, लेनिन, और महात्मा गांधी आदि सभी क्रांति कारक और अराजक नेता बहुत ही धर्मात्मा तथा सच्चरित्र हुए हैं । इसी बात को देख कर एक बार जर्मन देश के सम्राट् ने अपने भाषण में कहा था, कि समस्त धार्मिक चेष्टा एं वास्तव में राजनैतिक चेष्टाएं ही होती हैं" । यह बात निस्संदेह इस हद तक सच्च है कि धर्म द्वारा ही मनुष्य में समस्त सार्वजनिक चेष्टा के लिये उत्साह उत्पन्न होता है । बुद्ध जैसे प्रभाशील, और अहिंसाप्रधान, और दयालु धर्म ने भी भारत-वर्ष में इतना बड़ा संगठित साम्राज्य स्थापित कर दिया, जितना कि इस देश में ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित होने से पूर्व कभी देखने में न आया था । मुहम्मद ने अरब को एक राजनैतिक संगठन में संगठित करने के लिये तथा उनके जातीय बल को बढ़ाने के लिये वहां की धार्मिक दुरवस्था को सुधारनाही परमावश्यक समझा मुहम्मद ने अपने जीवनकाल में ही इस्लाम के द्वारा अरब की जंगली और असभ्य जातियों को परस्पर संगठित करके उन का बल इतना बढ़ा दिया कि मुहम्मद की मृत्यु के कुछ सदी बाद ही अशिक्षित अरब निवासी सारे पश्चिम के गुरु हो गये, तथा उनकी विजयपताका पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में स्पेन तक लहराने लगी । योरोप में लूथर के सुधारों के बाद ही उन्नति का युग प्रारंभ हुआ लूथरकी धार्मिक क्रांति और सुधारोंके बाद ही योरोपमें बुद्धिस्वातन्त्र्य तथा विज्ञान, शिल्प, विद्या, साम्राज्य-वृद्धि आदि की प्रबल लहर चली । प्योरिटेन-मत (Puritanism) ने ही इंग्लैंड में वास्तविक स्वतन्त्रता स्थापित की ।

यहूदियों की गिरी हुई राजनैतिक दशा को सुधारने के लिये तथा अपनी जाति को रोमन लोगों के दासत्व के पंजे से छुड़ाने के लिये ईसा ने अपनी जाति की गिरी हुई धार्मिक, सामाजिक और इख़लाकी दशा को सुधारना ही परमाव श्यक समझा क्योंकि क्राइस्ट इस बात को अच्छी तरह से समझता था, कि जब तक वह अपनी जाति की सामाजिक और सदाचार संबंधी हीन दशाको न

सुधारेगा, तथा फ़ैरेसीज़ और स्क्राइब्स द्वारा फैलाये हुए अंधविश्वासों और ढोंगों को दूर करके लोगों के जीवनों को उन्नत और उन के हृदयों को विशाल न बनावेगा एवं जब तक कि वह जन्मगत कृत्रिम ऊंच नीच के भेदों को दूर करके अपनी जाति में समानता, भ्रातृत्व और एकता के सिद्धान्तों का प्रचार न करेगा तब तक उस की जाति किसी प्रकार की भी उन्नति नहीं कर सकती और न वह विदेशियों की पराधीनता के पंजे से ही मुक्ति पा सकती है। अतः ईसा ने राज्यद्रोह न करके धार्मिक क्रान्ति को ही खड़ा किया। परन्तु शोक है कि हत-भाग्य यहूदियों ने ईसा के उपदेशों का महत्व न समझ कर उसे अपना दुश्मन समझ लिया, तथा उसे राज्यद्रोह के अपराध में पकड़ कर अपनी जाति के शत्रुओं के हाथ में सौंप दिया। बुद्धिमान् रोमन सरकार ईसा की उत्पन्न की हुई धार्मिक क्रान्ति के द्वारा पैदा होने वाले भावी राजनैतिक परिणामों को खूब समझती थी। अतः उसने इस स्वर्णावसर का उपयोग उठाकर ईसाको cross पर लटका दिया।

संसार के अन्य देशों में तो राजनैतिक आन्दोलनों का धर्म के साथ इतना घनिष्ट संबन्ध नहीं रहा, जितना कि भारत में रहा है। भारत में राजनीति सदा से धर्म के पीछे चलती रही है। यहां के बड़े २ राजनैतिक परिवर्तन तथा राजनैतिक क्रांतियां धर्म की आड़ में ही हुई हैं। बहुत प्राचीन काल से ही भारत की सामान्य जनता अपने राजनैतिक स्वत्वों तथा राजनैतिक ज्ञान से वंचित (हीन वा शून्य) रही है। बहुत प्राचीन समय से ही ये लोग दृढ़ धार्मिक रहे हैं। इसलिये इन के समस्त महान् कार्यारम्भों तथा कार्य सिद्धियों में धर्म ही प्रधान प्रेरक शक्ति रही है।

सोलहवीं सदीके अंत में तथा सत्रहवीं शताब्दि के आरम्भ में महाराष्ट्र में जो हलचल मची थी वह केवल राजनैतिक ही नहीं थी वरन् राज्यक्रान्ति से पूर्व वहां धर्मक्रान्ति हो चुकी थी। यदि महाराष्ट्र में धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति उत्पन्न न होती तो राजनैतिक क्रांति का होना सर्वथा असंभव था। यद्यपि मुगलों के अत्याचारों, औरङ्गजेब के धर्मोन्माद तथा उसकी हठधर्मिता के कारण भी महा-राष्ट्र में असन्तोष की वृद्धि हुई तथापि औरङ्गज़ेब की कट्टरता ही महाराष्ट्र के साम्राज्य विकास का एक मात्र कारण नहीं कही जा सकती। वास्तव में औरङ्गजेब के शासन से पूर्व ही मराठों का उत्थान प्रारम्भ हो चुका था। योरोप के धार्मिक संशोधन की तरह पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में भारत में विशेषतः दक्षिण

में धार्मिक और सामाजिक संशोधन तथा पुनरुज्जीवन का कार्य बड़े ज़ोर शोर से हुआ। दक्षिण भारत की इस धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति के नेता, साधु, कवि तथा तत्वज्ञानी थे। उपर्युक्त क्रांति में ब्राह्मणों तथा उच्चश्रेणी के लोगों की अपेक्षा दर्ज़ी, बढ़ई, कुम्हार, माली, नाई तथा भंगी आदि निम्न श्रेणी के लोगों ने ज़्यादा भाग लिया। इसी कारण ही तुकाराम, वामन पंडित, एकनाथ, रोहितदास, गोरा-कुम्हार, नामदेव दर्ज़ी आदि के नाम सुनते ही महाराष्ट्र की जनता मोहित हो जाती थी शिवाजी को भी अपने हिन्दू साम्राज्य स्थापना के कार्य के लिये उत्तेजना तथा प्रेरणा गुरु रामदास से ही प्राप्त हुई थी, जोकि उस समय महाराष्ट्र के धार्मिक नेता माने जाते थे। शिवाजी ने लोगों के धर्म भावों को भड़काया तथा अपने को हिन्दू धर्म का रक्षक तथा गौ ब्राह्मण का प्रतिपालक बतलाया। इस तरह धर्म की आड़ में अथवा राजनीति को धर्म का पहिरावा पहिना कर शिवाजी को एक बड़ा भारी साम्राज्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त हो सकी। इसी प्रकार १०वीं सदी में गुरु गोविन्द सिंह तथा उसके अनुयायियों बन्दा आदि द्वारा पंजाब में खड़े किये गये राज्यविप्लव का बीज कबीर, नानक आदि धर्म सुधारक सन्तों तथा हक़ीक़त राय धर्मी तथा गुरुतेग़ बहादुर आदि धर्म पर हंसते २ बलिदान होने वाले महात्माओं द्वारा बोया गया था। यदि कबीर, नानक आदि धर्मसुधारक सन्त पंजाब के हिन्दुओं में धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति द्वारा जागृति उत्पन्न न करते, तथा हक़ीक़त राय, गुरु तेग़ बहादुर जैसे भक्त लोग हंसते २ धर्म पर अपने को न्योछावर न करते, तो हिन्दु जाति में नये जीवन और उत्साह का संचार कदापि न होता, तथा उन में स्वतन्त्रता की प्रबल लहर कभी न चलती। नानक के सुधारों तथा हक़ीक़त और तेगबहादुर आदिके बलिदानोंने मरती हुई हिन्दुजातिमें नई जान फूंक दी। अन्यथा पंजाब में राज्यविप्लव या क्रान्ति कभी खड़ी न की जा सकती।

१८५७ का प्रसिद्ध गदर अधिकतर हिन्दु तथा मुसल्मान सिपाहियों के उस धार्मिक क्रोध का ही परिणाम था, जोकि चर्बी वाले कातूसों के कारण उत्पन्न हो गया था। कूकों का विप्लव, जिसके परिणाम स्वरूप सैंकड़ों को तोपों के सामने खड़ा कर उड़ा दिया गया, मुख्यतः रामसिंह के अनुयायियों के धर्मोन्माद का ही परिणाम मात्र था, इन सबके पीछे बंगाल का नूतन विक्षोभ भी बड़े बलके साथ ऊपर कही बात सत्य को पुष्टि कर रहा है। इस नाटक के समस्त अभिनेता धार्मिक पुरुष ही हुए हैं, वे मनुष्य जोकि एक हाथ में बंब का गोला ले जाते थे उनके दूसरे

हाथ में प्रायः भगवद्गीता पड़ी हुई होती थी, जिस समय महात्मा गांधी ने कांग्रेस तथा असहयोग आन्दोलन को धर्म का पहिरावा पहिनाया, उसी समय से ही भारत क सामान्य जनता में कांग्रेस और असहयोग आन्दोलन की कदर बढ़ी। महात्मा जी से पहिले कुछ थोड़े से शिक्षित लोगों को छोड़ कर कोई भारतीय कांग्रेस का नाम तक भी न जानता था। सिक्खों का वर्तमान शुद्ध राजनैतिक सत्याग्रह आन्दोलन तथा हिन्दु मुसल्मानों के राजनैतिक अधिकार मूलक पारस्परिक झगड़े क्या इस बात की बड़े बल के साथ पुष्टि नहीं कर रहे कि धर्म ही भारत की मुख्य प्रेरक शक्ति है? यहां राजनीति तभी सफल हो सकती है, जब कि उसे धर्म का पहिरावा पहिनाया जाय। ऊपर कही गई घटनाओं से यह स्पष्ट है, कि सामान्यतः सारे संसार में और विशेषतः भारत में धार्मिक क्रान्ति के बिना किसी प्रकार की भी जातीय वा राष्ट्रीय जागृति नहीं हो सकती।

ऋषि दयानन्द ऊपर कही गई सचाई (fact) से भली भान्ति परिचित थे। ऋषि आर्य जाति के रोग के निदान को तथा उसके ठीक इलाज़ को खूब अच्छी तरह जानते थे। जिस समय ऋषि का भारत भूमि में अवतरण हुआ, उस समय आर्य जाति बिल्कुल मरणासन्न अवस्था में थी उस समय हिन्दु जाति की हालत क्षय रोग पीड़ित व्यक्ति की तरह हो रही थी। नाना प्रकार के धार्मिक और सामाजिक कुरीति रूपी जर्म्स हिन्दू जाति के शरीर को खोखला कर रहे थे। धार्मिक अंधविश्वास, धार्मिक पराधीनता, सदाचार और वास्तविक कर्म कांड को नष्ट करने वाली धार्मिक कुप्रथायें तथा रीतिरिवाज़, बाल विवाह, स्त्रियों की गुलामी, स्त्री शिक्षा का अत्यन्ताभाव, पत्थर को भी मोम बनाने वाला तथा वज्र के कठोर हृदय को भी टुकड़े २ कर देने वाला करोड़ों विधवाओं का घोर आर्तनाद, जाति के अनाथों की बेपरवाही आदि कमज़ोरियां आर्य जाति के शारीरिक बल, मानासिक उत्साह, सदाचार तथा सामाजिक संगठन को लगातार क्षीण कर रही थीं। इस पर भी जात पात के कृत्रिम बन्धन, अछूतों और निचली श्रेणी के लोगों के साथ किये जाने वाले अमानुषीय निष्ठुर व्यवहार, अत्यन्त उग्र धार्मिक कट्टरपन तथा अनुदारता आदि साधनों द्वारा हिन्दू जाति अपने पैरों पर आप ही कुल्हाड़ा चला रही थी। ईसाई पादरी हमारी इन कमज़ोरियों का फ़ायदा उठा कर धर्म प्रचार के बहाने से हमारी सभ्यता तथा जातीयता का नाश कर रहे थे। ईसाई पादरियों ने घोषणा कर दी थी,

कि वे ३३ वर्ष के अर्से के अन्दर ही सारे भारतीयों को प्रभु ईसा मसीह की भेड़े बना देंगे ।

ऐसे कठिन समय में स्वामी कार्य क्षेत्र में पधारे । कुम्भ के मेले पर ऋषि ने भारत की धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक हीनावस्था का सच्चा जीता जागता फ़ोटो लिया ऋषि ने सच्चे वैद्य की तरह मृत्यु शय्या पर पड़ी हुई आर्य जाति के रोग के निदानों को पहचाना । ऋषि ने अपने मन में विचारा कि धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में सुधार और क्रांति उत्पन्न किये बिना आर्य जाति को जीवित जागृत बनाना तथा भावी स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ने के वास्ते लायक बनाना असम्भव है । उस समय किसी प्रकार के राजनैतिक सुधार के लिये अथवा स्वतन्त्रता संग्राम के लिये प्रयत्न करना ऊसर भूमि में बीज बोने के समान था । उस समय किसी प्रकार का भी राजनैतिक आन्दोलन भारत में सफलता पूर्वक नहीं चलाया जा सकता था । धार्मिक और सामजिक परतंत्रा की कड़ी बेड़ीयों में बन्धी हुई तथा बालविवाह, अछूतपने आदि रोगों से पीड़ित मरणासन्न हिंदु जाति—निश्शस्त्र क्रान्ति तो क्या वैधान्दोलन को चलाने में भी समर्थ न थी । केवलमात्र धार्मिक और सामाजिक पुनरुद्धार ही एकमात्र चिकित्सा थी, जिसके द्वारा उस समय आर्यजाति को आसन्न विनाश से बचाया जा सकता था । दूरदर्शी ऋषि ने इस बात को अच्छी तरह से अनुभव कर लिया था कि भारत में धार्मिक और सामाजिक क्रांति किये बिना आर्यजाति को जीवित जागृत बनाना तथा भावी स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई लड़ने वास्ते लायक बनाना असंभव है । ऋषि ने केवलमात्र भावी में राजनैतिक और जातीय सुधारों के लिये क्षेत्र ही तय्यार नहीं किया, अपितु उन्होंने अपने इलाज द्वारा जाति की बेहोशी को दूर करके उसे जीवित जागृत बना दिया ।

दयानन्द जैसा आदित्य ब्रह्मचारी ही उस समय भारत में बड़ी भारी क्राँति सामाजिक पुनरुज्जीवन, तथा जातीय निर्माण के महान् कार्य को कर सकता था । किसी अन्य के लिये यह कार्य करना असम्भव था । उस आदित्य ब्रह्मचारी ने किसी सैनिक और जनरल की सहायता के बिना ही अकेले भारत में ही नहीं, अपितु सारे संसार में क्राँति की, और बड़ी भरी क्राँति की ऋषि ने अकेले ही सारे पापों के विरुद्ध निर्भयता से क्राँति खड़ी की । ऋषि ने निर्भयता पूर्वक हर प्रकार के धार्मिक अन्धविश्वास और सामाज़िक पाप की जड़ पर कुल्हाड़ा चलाया ।

ऋषि की इस क्राँति का परिणाम यह हुआ कि हिंदु जाति की धार्मिक और सामाजिक परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्ति हो गई स्वामी रूपी सूर्य के उदय होने पर सब प्रकार के अन्धविश्वास अन्धकार की तरह एकदम विलीन हो गये ऋषि ने जाति के शरीर को क्षीण करने वाले जर्म्स का नाश करके अपने सुधार रूपी टौनिक से जाति के शरीर को इतना पुष्ट और बलवान बना दिया, कि वह भावी जीवन संग्राम में आने वाले आघातों और विपत्तियों का मुकाबिला करते हुए अपनी सत्ता को कायम कर सके, तथा सब प्रकार की उन्नति कर सके। आज हिन्दुजाति में इस संसार को संग्राम भूमि में अपनी सत्ता को कायम रखने के लिये जो हलचल दीखती है, उस के श्रेय का एक मात्र अधिकारी ऋषि दयानन्द ही है। ऋषि वास्तविक अर्थों में समाजशास्त्र का बड़ा भारी विद्वान् था ऋषि विनाश और निर्माण दोनों के उचित महत्व को खूब अच्छी तरह समझते थे। ऋषि इस बात को अच्छी तरह से जानते थे, कि जब तक सामाजिक बल और संगठन को कमज़ोर करने वाली तथा जात पात के भेदों को दृढ़ करने वाली हिंदु समाज की वर्तमान सामाजिक रचना तथा सामाजिक प्रणाली Institution को समूल नष्ट करके उसके स्थान पर नवीन रचना न की जावेगी, तब तक हिन्दु समाज का सुधार करना बिल्कुल असंभव है। अतः ऋषि ने पुरानी सामाजिक रचना का नाश करके उसके स्थान पर समानता, परस्पर सहयोग और एकता को पुष्ट करने वाली नवीन समाज-रचना की उस सच्चे वैद्य ने हिन्दु जाति के रोगों को दूर करने के लिये जो नुसख़ा दिया था, उस समय रोगी ने अपनी नादानी से उसे कड़वा समझ कर थूक दिया था। परन्तु आज सारे के सारे हिन्दू जाति के दिमाग़ रखने वाले नेता तथा हिन्दु जातीय महासभा ऋषि के निर्दिष्ट किये हुए उपायों और सुधारों के महत्व और उनकी उपयोगिता को अनुभव कर रही है। दूरदर्शी ऋषि ने आज से ६० साल पूर्व ही आर्य जाति के उद्धार के लिये जिस मार्ग को दिखाया था आज सारे के सारे हिन्दु उस ऋषि के बताये हुए मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं। ब्रह्मचर्य रक्षा, शुद्धि, धार्मिक उदारता, जात पात के कृत्रिम बन्धनों को तोड़ना, दलितोद्धार, स्त्री शिक्षा, स्त्रियों की स्वतन्त्रता, विधवोद्धार आदि जिन बातों का महत्व हिन्दु जाति के विचारशील नेता आज अनुभव कर रहे हैं, ये बातें कोई नई नहीं हैं। आज से ६० वर्ष पूर्व ऋषि ने इन बातों का केवल मात्र मौखिक प्रचार ही नहीं किया, अपितु उस दूरदर्शी ऋषि ने

इन बातों को क्रियारूप में परिणित करके आर्य जाति के सन्मुख आदर्श स्थापित किया था।

ऋषि ने सुधार का कार्य अन्य सुधारकों की अपेक्षा बहुत अधिक सफलता के साथ किया एक तो भारत के अन्य सुधारकों की अपेक्षा ऋषि विद्या, तपस्या, चरित्र निर्मलता तथा इन सब से बढ़कर ब्रह्मचर्य की पूर्णता में बहुत अधिक बढ़े चढ़े थे। इन सब बातों के अतिरिक्त ऋषि का सुधार करने का तरीका अन्य सुधारकों की अपेक्षा अधिक व्यापक, विस्तृत, क्रियात्मक तथा श्रेष्ठ था। ऋषि ने अन्य सुधारकों की तरह तर्क और श्रद्धा को पृथक कर केवल एक पर ही बल नहीं दिया, तथा दूसरे की बिल्कुल उपेक्षा भी नहीं की ऋषि ने दोनों को यथोचित स्थान दिया ऋषि ने बुद्ध, शङ्कराचार्य, कबीर, चैतन्य, रामानन्द आदि सुधारकों की तरह जाति और राष्ट्र की कर्मण्यता का नाश करने वाले मायावाद, निवृत्तिमार्ग तथा केवल परलोकवाद का सामान्य जनता में प्रचार नहीं किया। ऋषि ने प्रवृत्ति-मार्ग और निवृत्तिमार्ग दोनों का ही यथायोग्य उपदेश दिया। ऋषि ने बुद्ध, शङ्कर, कबीरादि सुधारकों की तरह सामान्य जनता को गृहस्थ जीवन से घृणा करने तथा संसार छोड़ने का उपदेश नहीं दिया। ऋषि ने अन्य सुधारकों की तरह सभी को एक लाठी से हांकने तथा जनता में अक्रियात्मक कार्य को प्रचार करने का भूल कर भी यत्न नहीं किया। ऋषि ने यथा योग्य भिन्न २ जाति और भिन्न २ वर्णके व्यक्तियों को अपने २ धर्म और कर्तव्य पालन करने का उपदेश देकर वर्णाश्रमों की बिगड़ी हुई दशा को सुधारा ऋषि ने महात्मा बुद्ध की तरह निराशावाद का कभी प्रचार नहीं किया। ऋषि पूर्णाशावादी थे। ऋषि को परमेश्वर की दयालुता और उस की न्याय बुद्धि पर पूर्ण विश्वास था, अतः वे कभी निराशावादी हो ही न सकते थे। ऋषि निराशा को महापाप और नास्तिकता समझते थे। ऋषिका धर्म आस्तिकता, ईश्वर विश्वास और आशा का धर्म था। उस में निराशावाद के लिये कोई स्थान न था। ऋषि ने महावीर, शङ्कर, नानक, आदि सुधारकों की तरह गुरुडम और गद्दी प्रथा चलाने का भी यत्न नहीं किया, जिस ने कि उस के संस्थापकों, प्रवर्तकों वा मूल सुधारकों की वास्तविक Spirit का नाश करके उस के विरुद्ध व्यक्ति पूजा प्रचलित करने तथा अन्ध विश्वासों, कुप्रथाओं और मतमतान्तरों का जाल फैलाने में बहुत सहायता की। ऋषि ने अपने पीछे अपने मिशन को पूरा करनेके लिये महात्मा बुद्धकी तरह प्रजासत्तात्मक संगठनको स्थापित किया, परन्तु दोनों महापुरुषों द्वारा स्थापित

संगठन प्रजासत्तात्मक होते हुए भी सिद्धान्त भेद के कारण मूल में ही एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। भगवान् बुद्ध परमात्मा तथा इलहाम पर विश्वास न रखते थे, अतः स्वाभाविक था, कि वे अपने अनुयायियों को अपने पीछे "धर्म की प्रामाणिकता के सम्बन्ध" में अपने उपदेशों तथा सदा के प्रामाणिक अधिकारी (Authority) होने का उपदेश देते जैसे कि भगवान् बुद्ध ने अपने अनुयायियों को "बुद्धं सरणं गच्छामि" संघं सरणं गच्छामि" के मूलमंत्रों का उपदेश दिया है। बुद्ध के उपदेश तथा बौद्ध संघ के निश्चय बौद्धमत के विषय में अन्तिम प्रमाण हैं। बौद्ध संघ प्रचारादि के प्रबन्ध तथा धर्म दोनों के विषय में अन्तिम प्रमाण है। महात्मा बुद्ध के "बुद्धं सरणं गच्छामि" के उपदेश ने उस की (बुद्ध की) वास्तविक Spirit के विरुद्ध बुद्ध की वैयक्तिक पूजा प्रचलित करने तथा उसे उपास्य देव मान कर पूजने (दूसरे शब्दों में बौद्धों में गुरुडम की प्रथा प्रचलित करने) में बहुत सहायता दी है। इस बात को इतिहास के विद्यार्थी भली भान्ति जानते हैं। दूसरी तरफ़ ऋषि ने अपना व्यक्ति या अपने उपदेशों तथा अपने द्वारा स्थापित संगठन को धर्म के विषय में कभी भी अन्तिम प्रमाण नहीं माना आर्यों के संगठन ऋषि के मिशन प्रचार करने के प्रबंध के विषय में तो पूर्ण स्वतंत्र हैं। परन्तु धर्माधर्म निर्णय करने का उन्हें कोई हक नहीं। धर्म के संबन्ध मे तो अन्तिम प्रमाण वेद ही हैं, न कि ऋषि के उपदेश अथवा उन के द्वारा स्थापित आर्य संगठन अतः ऋषि संगठन जहां रचना की दृष्टि से सब से उत्तम है, वहां भावी में इस के द्वारा भ्रम फैलने अथवा गुरुडम फैलने का कोई भय नहीं। इन ऊपर कहे गये मोटे २ भेदों को छोड़ कर ऋषि तथा अन्य भारतीय सुधारकों में एक और बड़ा भारी भेद है। ऋषि बुद्ध, महावीर, शङ्कर, नानक, कबीर तथा चैतन्यादि सुधारकों की तरह एकतरफ़ा सुधारक न था। जहां ऋषि द्वारा प्रचारित धर्म तथा Philosophy-comprihensive है वहां ऋषि के सुधार भी एकतरफ़ा न हो कर comprihensive हैं। यद्यपि ऋषि ने भारत में मुख्यतया धार्मिक और समाजिक क्रांति ही उत्पन्न की है, जो कि उस समय परमावश्यक थी। ऋषि ने धार्मिक और सामाजिक सुधारों के अतिरिक्त भारत का राजनैतिक सेवा भी बहुत ज्यादा की है ऋषि सच्चा देशभक्त था ऋषि के हृदय में देश भक्ति की आग जल रही थी। सब से पहिले ऋषि ने ही स्वतंत्रता और क्रांति का बीज बोया। आज भारत में जो भी धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक हल चल

दीखती है, तथा राष्ट्रनिर्माण और स्वराज्य स्थापना के कार्य की सिद्धि के लिये जो भी क्रांति के चिन्ह दिखाई देते हैं, इन सब का बीज ऋषि ने ही बोया था। वर्तमान भारत में दिखाई देने वाली जागृति के श्रेय का सेहरा एक मात्र ऋषि के सिर ही बांधा जा सकता है। वास्तव में ऋषि ही इस सारे श्रेय का एकमात्र अधिकारी है। भावी स्वतंत्र भारत के राष्ट्रनिर्माण के कार्य कर्ताओं में सब से ऊंचा आसन ऋषि को ही दिया जावेगा। २० वीं सदी का सच्चा सुधारक तथा क्रान्तिमय भारत का सच्चा निर्माता ऋषि दयानन्द ही है। प्यारे पाठको! आओ, एक वार सब मिल कर भूले भटके भारत को राह दिखाने वाले, प्राणों से भी प्यारी मातृभूमि की स्वतंत्रता का बीज बोने वाले तथा क्रान्तिमय भारत के निर्माता उस आदित्य ब्रह्मचारी के चरणों में भक्तिभाव से अपनी अंजलियों में श्रद्धा के फूल लेकर वाणी द्वारा अवर्णनीय अपनी प्रेमभरी अगाध कृतज्ञता को प्रकाशित करने के लिये अपने सिरों को झुका दें।

ऋषियों का चमत्कार।
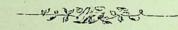
(श्री यशः पाल सिद्धान्तालङ्कार, वैदिक मिशनरी)

प्राचीन आर्यों ने सन्तति-शास्त्र-विज्ञान में आश्चर्य जनक उन्नति की थी। उनका यह विचार था कि सन्तानोत्पत्ति का कार्य बड़ा उत्तरदायित्व पूर्ण है। इस से अधिक महत्त्व का कार्य अन्य दूसरा कोई नहीं है। संस्कारों की सम्पूर्ण फिलौसफ़ी इसी विज्ञान के आधार पर निर्मित की गई थी। किसी जाति का भविष्य उस जाति के बालकों पर निर्भर है। जिस जाति के बच्चे निर्बल, बीमार तथा बलहीन हों वह जाति संसार में कभी भी उन्नति नहीं कर सकती और सदा पद दलित होती रहती है। इसी लिये हमारे शास्त्रों में गर्भाधान संस्कार को विशेष महत्व दिया है तथा गर्भस्थ बालक के संस्कारों को उन्नत तथा परिमार्जित करने के लिये गर्भावस्था में ही कई संस्कारों का विधान किया है। प्राचीन आर्यों ने इस सत्य को भली प्रकार से अनुभव किया था कि गर्भ के समय बालक को जिस तरह का बनाया जावेगा या जो जो संस्कार उस पर डाले जायेंगे उनको मिटाना

बड़ा कठिन हो जाता है। विवाह का उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति था न कि विषयभोग। विषयभोग के उद्देश्य से विवाह करने वाले व्यक्तियों की सन्तानें प्रायः विषयी होती हैं। यही कारण है कि आजकल हमारे देश की सन्तति सत्वहीन पैदा होती है।

मनुस्मृति में एक स्थान पर लिखा है:—

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः॥
यादृशं भजतेहि स्त्री सुतं सूते तथा विधम्।
तस्मात् प्रजा विशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः॥

अर्थात् पति ही पुत्र रूप से अपनी पत्नी से पैदा होता है। स्त्री का स्त्रीत्व यही है कि पति उस में फिर जन्म लेता है। गर्भाधान के समय जिस प्रकार का विचार स्त्री के हृदय में होता है उसी प्रकार की सन्तान उस से पैदा होती है। यह जानकर कि वंशानुक्रम संस्कार बहुत दृढ़ होते हैं शास्त्रकारों ने वंश के बुरे संस्कारों को दूर करने के लिये तथा उन के प्रभाव को नष्ट करने के लिये विविध उपायों का वर्णन किया है। परन्तु इतना निश्चित है कि कई संस्कार इतने प्रबल होते हैं जिनका मनुष्य के सदाचार, विचार तथा स्वभाव (Temperament) पर अवश्य असर पड़ता है। जहां गर्भाधान से पूर्व माता पिता के लिये पवित्र विचारों का विकास करना आवश्यक है तथा गर्भावस्था में बच्चे पर किसी प्रकार का बुरा संस्कार न पड़े इस बात के लिये बड़ी सावधानी की आवश्यकता बतलाई गई है वहां इस बातपर भी बल दिया गया है कि बीमार तथा अयोग्य व्यक्ति विवाह न करे ताकि अयोग्य तथा निर्बल सन्तान पैदा न हो। सन्तानोत्पत्ति (Breeding of Human beings) का कार्य बहुत ही उत्तरदायित्व पूर्ण समझा जाता था। इसी पर किसी भी देश या जाति का भविष्य निर्भर है। जिस जाति के माता पिता गर्भाधान संस्कार के महत्व को नहीं समझे उस जाति में बलवान् बच्चों का पैदा होना नितान्त असम्भव है। इसी सचाई को दृष्टि में रख कर मनु लिखता है:—

महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशाऽर्शसम् ।
क्षय्यामयाव्यपस्मारि श्वित्र कुष्ट कुलानिच ॥

मनु० ३. ६—७

चाहे कितने ही धन, धान्य, गाय, अजा, हाथी, घोड़े, राज्य, श्री आदि से समृद्ध ये कुल हों तो भी विवाह सम्बन्ध में निम्नलिखित दश कुलों का त्याग कर दे। जो कुल सत्क्रिया से हीन, सत्पुरुषों से रहित, वेदाध्यन से विमुख, शरीर पर बड़े २ रोम और बवासीर, क्षयी, दमा, खांसी, आमाशय, मृगी श्वेतकुष्ट और गलित कुष्ट हों, उन कुलों की कन्या वा वर के साथ विवाह न होना चाहिये। क्योंकि ये सब दुर्गुण और रोग विवाह करने वाले के कुल में भी प्रविष्ट हो जाते हैं।

इसी को दृष्टिमें रखते हुए डा०एफ, डबल्यू, मौट, एफ.आर.ए. एस लिखतेहैं कि "संस्कारोंकी वंशानुक्रमिता का प्रश्न जातीय हितकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह बड़े हर्ष का विषय है कि अब जनता ने इस विषय पर विचार करना प्रारम्भ किया है। प्रोफेसर आर्थर टामसन की सचाई को लोगों ने अनुभव करना प्रारम्भ कर दिया है कि "वर्त्तमान मूल का पुत्र है, संस्कार में एक बच्चे का पैदा होना कोई साधारण कार्य नहीं है परन्तु अपने माता पिता के प्रभावों तथा संस्कारों को लेकर ही बच्चा इस संसार में जन्म लेता है और इन संस्कारों का प्रभाव एक वंश से दूसरे वंश में जाता है"। इस उद्धरण से पाठक भली प्रकार समझ सकते हैं कि सन्तानोत्पत्ति का कार्य कितना महत्व पूर्ण है। अब तक पाश्चात्य विद्वानों ने सन्ततिशास्त्र (Eugenics) के विषय में अन्वेषण नहीं किये थे और उन को इस विद्या का सर्वथा ज्ञान न था परन्तु अब पश्चिम में भी इस विद्या के विषय में अन्वेषण प्रारम्भ हुए हैं और जितनी २ उन्नति होती जा रही है उतनी प्राचीन ऋषियों की बुद्धि का चमत्कार लोगों के सामने प्रगट हो रहा है और संसार को पता लग रहा है कि ऋषियों ने कितने आश्चार्यजनक सिद्धान्त आज से कई लाख वर्ष पूर्व मनुष्य जाति के सामने रक्खे थे। जितनी २ विज्ञान की उन्नति होगी उतनी ही वैदिक सिद्धान्तों की विजय होगी और वेद की सचाईयों का प्रकाश संसार में फैलेगा।

———

ऋषिबोध

[श्री मुक्तिराम उपाध्याय, आचार्य गु० कु० पोठोहार]

बालक के भोले भाव ।

सब सोते हैं, हम जाग आज तो शिव के दर्शन पावेंगे ।
चरणों में शीस झुका जल से झट उन को स्नान करावेंगे ॥
फिर अक्षत बिल्व चढ़ा यह भोजन सुमधुर उन्हें करावेंगे ॥
फिर जाग पिता जी को यह बीती सब ही कथा सुनावेंगे ॥

घटना की ठोकर ।

चूहा चावल चाब चढ़, शङ्कर के शुभ शीस ।
कूद फांद कह सा गया, मूल ! न यह जगदीश ॥

दोहे की व्याख्या ।

जिसे स्पर्श से शून्य वेद सब ही बतलाते ।
उसे स्पर्श कर हम क्योंकर ऊपर चढ़ जाते ॥
है इतनी समता सच्चे ईश्वर से इस की ।
भोजन में कामना, है इसको ना उस की ॥
वह चेतन यह जड़, वह स्रष्टा है यह माया ।
वह द्रष्टा यह दृश्य, भेद इतना ही पाया ॥
भोजक समझ इसे कुछ लोग चढ़ा जाते हैं ।
हम या पूजक वृन्द उसे सब खा जाते हैं ॥
इतना कर निर्देश कर्म अपने से चूहा ।
लम्बा बना मूल शङ्कर को उपजा ऊहा ॥

विचार परिवर्तन ।

रवि मण्डल में, शशि कुण्डल में,
तारा दल में, दावा नल में,

विद्युत् खद्योत निकर सब में विद्योत रही सुषमा जिसकी।
गिरि कन्दर के, सरिदन्तर के,
धरणीतल के, नभ अञ्चल के,
लघु दीर्घ चराचर की कृति से सम्प्रोत लखी महिमा जिसकी।
ग्रह चक्र फिरे, क्षण भी न टरे,
नहिं एक गिरे, न कभी टकरें,
इस ग्रह गण के उत्तोलन में गत तोल मिली गरिमा जिसकी।
तरु का उगना, फल का लगना,
जल का झिरना, ऋतु का फिरना,
इस अणुचय के परिवर्तन में प्रतिभास रही महिमा जिस की।
अजरामर का, सुख सागर का,
ज्ञानाकर का, जगतीधर का,
उस शङ्कर का निज मन्दिर ही निज आश्रम मान लिया किस ने?
दृक् दूर रुके, चल चित्त थके,
मन भी सटके, मति भी अटके,
ऋषि नेति रटें जिस को सुन के उस को पाषाण किया किस ने?।
जल मूल दिये, फल फूल दिये,
सब अन्न दिये, सम्पन्न किये,
जिस ने हम दाता पाता हैं उस के यह मान दिया किसने?
श्रुति मान नहीं, प्रभु ज्ञान नहीं,
कुल आन नहीं, बलिदान नहीं,
है मंत्र यही जप का जग को यह बेजड़ ज्ञान दिया जिसने।

धारणा।

मति मलहर द्युतिकर अजर, ईश्वर है बस और।
मिले विवेको गुरु जहां, चलो चलें उस ठौर॥

गुरु प्राप्ति।

यह चारु विचार धार धाया।
तप से गुरु देव एक पाया।

निगमागमनीति पक्ष धारी।
शुभचिन्तक शिष्य का भिखारी।
निज पूजित धर्म क्लेश तोड़ा १।
विधि ने यह ठीक जोड़ जोड़ा।
२ब्रज में यह मेल पा दया का।
दुहरा आनन्द आगया था।
गुरु में गुरुता३ मिली निराली।
तनुता४ की जो जनी व पाली।
मन में गुरु देव के समाया।
तनु ने उपदेश यह सुनाया।
इस नश्वर देह को तपा लो।
अविनश्वर धर्म को बचालो।

परिणाम।

गुरु आयसु उर धार, श्रुति पङ्कज परिमल मधुर।
निज उपदेश बयार, झोली दिशि दिशि ऋषि मुकुट।
गहि गुरु तर्क कुठार, काटि कुमतकण्टकि तरुहिं।
लखि हिय खेत सुधार, बोए श्रुति सहकार तरु।

धन्यवाद।

पीडित लखि जननी धरा, किया आत्म बलिदान।
धन्य ऋषे निज जाति का, जाने दिया न मान।

मङ्गल कारक ऋषि मिला, अब न रही वह बात।
मङ्गल कर अन्वर्थ बन, धन्य बनी शिवरात।

———

१–तोड़ा=तोड़ने वाला।

२–ब्रज में गुरु के दयाभाव को प्राप्त कर ऋषि को दूना आनन्द आया। अथवा ब्रज के साथ दया के मेल को देख कर दो आनन्द आमिले, अर्थात् ब्रजानन्द और दयानन्द का मेल हुआ।

३–गुरुता=ज्ञान की उत्कृष्टता।

४–तनुता=शरीर की कृशता।

राजनैतिक नेताओं के नाम ऋषि दयानन्द का सन्देश

(श्री० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति)

ऋषि दयानन्द के राजनैतिक विचारों से अपरिचित पाठक इस लेख के शीर्षक को देखकर चकित हो जाएंगे। वे कह उठेंगे कि ऋषि दयानन्द तो केवल एक धार्मिक वा सामाजिक सुधारक थे राजनीति के क्षेत्र से वे कोसों दूर रहते थे। राजनीति में उन्होंने कभी कदम तक नहीं रक्खा था। ऐसी अवस्था में वे राजनैतिक नेताओं के नाम कोई महत्त्वपूर्ण सन्देश दे ही कैसे सकते थे? पर स्वाध्यायशील सज्जनों के सन्मुख इस तरह की सारी शङ्काएं फ़ज़ूल हैं। ऋषि के वेदभाष्य, आर्याभिविनय और सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों को आद्योपान्त पढ़ने का जिन सज्जनों को सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे जानते हैं कि यद्यपि ऋषि दयानन्द ने प्रत्यक्ष अथवा बाह्य रूप से केवल धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति पैदा कर दी थी पर उन के लेखों का यदि मनन किया जाए तो वे राजनैतिक क्रान्ति उत्पन्न करने का सामर्थ्य रखते हैं और वर्तमान समय के बड़े से बड़े राजनीतिज्ञों के अनुभवसिद्ध मन्तव्यों से भी वे बहुत आगे बढ़े हुए हैं। इस विषय के विस्तार में न जाते हुए मैं दो तीन स्पष्ट उदाहरण पाठकों के सामने रखता हूं

सब से पहले मैं पाठकों का ध्यान ऋषि के इन शब्दों की तरफ़ खैंचना चाहता हूं "जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें त बिना दारिद्र्य और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।" सत्यार्थ प्र० समु० १० ॥

इन शब्दों के अन्दर ऋषि ने एक बड़े ही महत्त्व पूर्ण राजनैतिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है भारतवर्ष के वृद्ध पितामह स्वर्गवासी दादाभाई नौरोजी के निम्न शब्दों के साथ यदि उपर्युक्त वाक्य को तुलना की जाए तो आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। नौरोजी महोदय के शब्द ये हैं "A foreign rule can never be but a curse to any nation, on the face of the earth, except so far as it approaches a native rule; be the foreigners angels themselves." भावार्थ यह है कि विदेशी राज्य भूमण्डल पर

किसी भी जाति के लिये शाप के समान दु:खदायी हुए बिना नहीं रह सकता। हां, यह स्वदेशी शासन के पास तक पहुंच सकता है अगर विदेशी शासक खुद देवदूत ही हों। यहां यह बात याद रखनी चाहिये कि ऋषि के उपर्युक्त लेख के कई वर्षों बाद और विदेशी शासन के कड़वे फल का देर तक आस्वादन करने के पश्चात् दादा भाई नौरोजी महोदय की आंखें खुली थीं और तब उन्हों ने अपने हार्दिक उद्गार को ऊपर उद्धृत शब्दों द्वारा प्रकाशित किया था यद्यपि कई वर्ष पूर्व नर्म दल के नेताओं के समान उन का यही सच्चा विश्वास था कि अंग्रेज़ लोग ईश्वरीय प्रेरणा से भारत में आए हैं और उनकी कृपा की पूर्ण छत्रच्छाया के नीचे रहते हुए ही हमारा कल्याण हो सकता है। उन का दयामय हस्त हमारे ऊपर से उठते ही भारत वासियों का सर्व नाश निश्चित समझना चाहिये। वर्तमान समय में राजनैतिक नेताओं के शिरोमणि स्वनामधन्य महात्मा गान्धी जी भी बहुत काल के पश्चात् अंग्रेज़ी राज्य के असली स्वरूप को समझ सके हैं और उन्हों ने अपने प्रसिद्ध अंग्रेज़ी पत्र 'यङ्ग इन्डिया' में इस का सच्चा चित्र निम्न लिखित स्पष्ट शब्दों में खैंचा है जिस को पढ़ते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

"See what this Empire means to India :—exploitation of India's resources for the benefit of Great Britain; an ever increasing military expenditure disarmament and consequent emasculation of a whole nation, progressively repressive legislation in order to suppress an ever growing agitation seeking to give expression to a nation's agony, [quoted from the Great Thoughts of Mahatma Gandhi P. 46.]

अर्थात्—देखो इस (ब्रिटिश) साम्राज्य का भारत के लिये मतलब यह है कि ग्रेट ब्रिटेन के लाभ के लिये भारत की सम्पति की लूट, प्रतिदिन बढ़ता हुआ सैन्य व्यय, शस्त्र हीन कर के सम्पूर्ण जाति को नपुंसक बनाना, जाति के असली कष्ट को प्रकाशित करने वाले प्रवल आन्दोलन को कानून के अनुचित प्रयोग द्वारा दबाना, इत्यादि ॥ इन्हीं शब्दों को अन्य हर एक विदेशी शासन पर लागू समझने पर ऋषि के लेख का महत्त्व ठीक तौर पर समझ में आता है।

स्वराज्य के महत्त्व के विषय में ऋषि के सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समु० पृ० २३७ में लिखे निम्न शब्द एक अत्यन्त महत्त्व पूर्ण राजनैतिक सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं।

'कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर पिता माता के समान कृपा न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।'

प्रसिद्ध अंग्रेज राजनीतिज्ञ कैम्पबैल के "Good government can never be a substitute for the government by the people themselves." इस सुप्रसिद्ध वाक्य का यह भाव कि एक अच्छा शासन अपने शासन वा स्वराज्य का स्थान नहीं ले सकता, ऋषि के ऊपर उद्धृत वाक्य में सम्पूर्ण रुपेण पाया जाता है बल्कि उस से भी अधिक ज़ोरदार है।

ऋषि दयानन्द प्रजावाद वा Democrecy के कितने पक्षपाती थे यह सत्यार्थ प्रकाश आर्याभिविनयादि से तो स्पष्ट हो ही जाता है किन्तु इस विषय में 'संस्कृत वाक्य प्रबोध' नामक ऋषि के छोटे से ग्रंथ से निम्न लिखित संवाद देना अधिक मनोरञ्जक होगा

प्रश्न - राजा कौन हो सकता है ?

उ०—जो धर्मात्माओं की सभा का सभापति होने योग्य होवे।

प्र०—जो प्रजा को दुःख देकर अपना प्रयोजन साधे वह राजा हो सकता है वा नहीं ?

उ०—'नहि नहि नहि स तु दस्युः॥" नहीं नहीं नहीं, वह तो डाकू ही है॥

विषय विस्तार भय से ऋषि दयानन्द के राजनैतिक विचारों के महत्त्व दिखाने के लिये अन्य उद्धरण छोड़ देता हूं। इन उद्धरणों को पढ़ कर कोई भी निष्पक्षपात पुरुष यह कहने का साहस न करेगा कि ऋषि ने राजनीति पर कभी विचार न किया था अतः उन का निम्न सन्देश ध्यान देने योग्य है।

देश की वर्तमान राजनैतिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। कुछ वर्ष पूर्व जो स्वतन्त्रता की प्रबल उमंग जोश और स्वार्थत्याग उत्साहादि हमारे देश वासियों के अन्दर दिखाई देते थे उस का दसवां हिस्सा भी अब दिखाई नहीं देता। राष्ट्रीय महा सभा के सामने कोई निश्चित स्पष्ट मार्ग नहीं प्रतीत होता। औरों की बात तो अलग रही स्वयं महात्मा गांधी तक ने स्वीकार किया है कि वे देश का नेतृत्व करने में असमर्थ हैं जब तक विशेष कोई ज्योति उन को मार्ग न

दिखाए। हमारे देश वासियों की (सर्वसाधारण ही नहीं बल्कि राजनैतिक नेताओं की भी) अवस्था लक्ष्य भ्रष्ट निराश यात्रियों की सी प्रतीत होती है। इस शोचनीय दशा का मुख्य कारण यह है कि लोगों ने अब तक आत्म सुधार की ओर ध्यान नहीं दिया। धर्म और जातीयता दोनों भाव जब तक प्रत्येक भारतीय के हृदय में पूर्णतया अङ्कित हो कर उस के अन्दर देश भक्ति की तरङ्गें उठाने को समर्थ न हों तब तक देश के भविष्य उज्ज्वल होने की कोई आशा नहीं की जा सकती। ऐसी हालत में ऋषि दयानन्द सब दलों के राजनैतिक नेताओं के नाम मुझे यह सन्देश देते हुए दिखाई दे रहे हैं कि लोगों के अन्दर धर्म के भाव को जागृत करो। "अदीनाः स्याम शरदः शतम्" "अजिताः स्याम शरदः शतम्" इन वैदिक भावों को उन के दिल के अन्दर पूर्णतया अङ्कित कर दो। 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।' इस प्रकार के कर्मण्यता के भाव देश वासियों के हृदयों में कूट कूट कर भर दो। तब उन्हें बताओ कि "विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने का कारण आपस की फूठ, मत भेद ब्रह्मचर्य पालन न करना विद्या न पढ़ना पढ़ाना, बाल्यावस्था में अस्वयम्बर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेद विद्या का अप्रचार इत्यादि कुकर्म हैं जब आपस में भाई २ लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है।

स० प्र० १०म समु० ॥

क्या आज निराश प्राय राजनैतिक नेता ऋषि के इस महत्त्व पूर्ण सन्देश को सुनने के लिये तैय्यार हैं ? क्या वे अनुभव नहीं कर चुके कि जब तक धर्म, देशभक्ति वा जातीयता का भाव प्रबल होकर हम लोगों की आपस की फूट दूर न हो जाएगी तब तक कोरी हिन्दू मुसलमानों की एकता के लिये अपील बहरे कानों पड़ती रहेगी। आवश्यकता इस बात की है कि ऋषि के ऊपर उद्धृत वाक्यों में प्रकाशित भाव हरेक देशवासी के दिल में गड़ जाएं। वह इस बात को भी निश्चित तौर पर जान लें कि "जब तक एक मत, एक हानि लाभ, एक सुख दुःख परस्पर न मानें तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है।" (स० प्र० १०म समु०) तब निस्सन्देह देश उन्नति मार्ग पर आगे ही आगे बढ़ता चला जाएगा और भगवान की दया से अपने परम अभीष्ट स्वराज्य को प्राप्त कर लेगा। जब तक स्थायी देश भक्ति का भाव धर्म के साथ मिल कर भारतीयों के जीवनों को परिवर्तित नहीं कर देता तब तक देश की उन्नति सम्भव नहीं है॥

* शान्ति-सदन *

(लेखक—आयुर्वेदाचार्य, सन्तलाल दाधिमथ, वैद्यराज)

तुम सुषुमामय ! सुषुमाऽऽकर(१) हो;
तुम शिव ! श्रेय-सुधा के सर हो;
सुख-सागर हो;
शुचि, श्री-धर हो;
'सत्य' स्वयं हो, सर्वेश्वर हो ॥ १ ॥

तुम महिमामय ! करुणामय हो,
जड़—जङ्गम—जग के प्रत्यय हो,
सुखद ! सदय हो,
प्रिय अतिशय हो,
तुम—बिन किस विध सृष्टि—प्रलय हो ? ॥ २ ॥

तुम निर्—धन—हित बहु—धन पति हो.
तपन(३)—तप्त—हित हिम संहति(४) हो,
अ-वि-चल—मति हो,
सङ्कट—क्षति हो—
क्यों न ? प्रभो ! 'अ—गतीनां गति' हो ! ॥ ३ ॥

तुम तम—निर्—गत द्युतिमय दिन हो,
तुम मन—मधु—कर—हेतु नलिन ६ हो,
त्वत्—शक्ति न हो—
सफल—कृति न हो,
द्रुम—दल७—कम्प न त्वद्—गति बिन हो, ॥ ४ ॥

तुम भावुक के जीवन-धन हो,
तुम भगवन् ! भव-भय-भञ्जन हो,
सुख—साधन हो,
रुक्—प्रशमन हो,
तुम शुभ ! सब विध "शान्ति—सदन" हो ॥ ५ ॥

---

१ सुषुमा-परमा शोभा; २ प्रत्यय-कारण; ३ तपन-(त्रिविध) ताप; ४ हिमसंहति महाहिम; ५ संकट-क्षति, संकट-नाश; ६ नलिन-कमल; ॥

अन्ध गुरु के बन्द द्वार पर

(श्री० चतुरसेन वैद्य सम्पादक 'संजीवन')

अन्ध गुरु के द्वार बन्द थे, कुटिया ढह गई थी, पर द्वार वैसा ही था। गुरु निश्चिन्त उसमें सो रहे थे। वज्र सन्यासी अभीष्ट गुरु-दक्षिणा लिये द्वार पर अचल खड़े थे !!

शीत और अन्धकार से व्याप्त वातावरण था। अपने सफल परिश्रम की थकान से चूर २ हुआ वज्र सन्यासी वज्र निनाद से पुकार रहा था—हे तेज पुंज गुरु ! उठो, यह मैं आप के लिये गुरु दक्षिणा लाया हूं !!!

द्वार नहीं खुले, गुरु की निद्रा भंग न हुई। धीरे धीरे मथुरा की सोती हुई गलियों में ४ लाख नर नारी यह कौतुक देखने उस द्वार के सामने आ खड़े हुए। उन्हों ने सन्यासी के वज्र स्वर में स्वर मिला कर पुकारा—

हे गुरु उठो !! हे गुरु उठो !!!

मथुरा की विधवा भूमि आश्चर्य चकित हुई, और यमुना कुछ सोचने लगी। यमुना के उस ओर बूढ़े और झुके हुए वृक्षों के झुरमुट में विरहणी वंशीध्वनि कृष्ण को ढूंढ रही थी उसने आवाक् हो कर यह सुना !

उस दिन उसी बन्द द्वार पर हमने निश्चय किया, प्रातः काल हमने हठात् जागृत हो कर अपने आप को देखा और पहचाना, हम विस्मित हुए, हमने कहा, क्या यह हम हैं ? क्या हम ऐसे हैं ??? हम हंसे, हम गर्व से तन गये।

कुटिया ढही पड़ी थी, गुरु उसी तरह निश्चिन्त सो रहे थे। और वज्र सन्यासी अखण्ड जागृत तब से अब तक वहीं वैसा ही अचल खड़ा था।

उसने हमें देखा और सिर झुका लिया। हम कुछ न समझे। हम उठ खड़े हुए। हमने उसे अभिवादन किया, स्तुति की, कीर्तन किया।

परन्तु सन्यासी ने हमारी ओर सिर न उठाया, उसने फिर एक बार कुटिया के विध्वंस को देखा एक बार फिर गुरु को आवाज़ लगाई और चल दिया !!!

अध्यात्म व्याख्या वेद का सच्चा अर्थ है और शेष पक्ष उसके अनुकूल होने से सत्य हैं।

[श्री० जयदेव विद्यालङ्कार, सम्पादक 'आर्य जीवन']

वेद के प्राचीन भाष्यकारों ने वेद को दो विभागों में बांट दिया है। एक परा विद्या और दूसरी अपरा। परा विद्या अध्यात्म ज्ञान का नामान्तर है। अपरा विद्या कर्मकाण्ड को कहा जाता है। इसी के दो नाम विद्या और अविद्या भी हैं। इसी के रूपान्तर दो और नाम हैं सम्भूति और विनाश। विनाश क्षणिक कर्मको बतलाता है और सम्भूति नित्य बीजमय आत्माके प्रादुर्भाव को बतलाता है। अब यही विचार करना है कि वेद का वास्तविक अर्थ क्या परा विद्या है या अपरा विद्या ?

जैमिनी का मत है— 'अथातो धर्म जिज्ञासा' वेदाध्यन के अनन्तर धर्म विचार करना चाहिये क्योंकि वेदाध्यन का फल ही उसका अर्थ ज्ञान करना है। "चोदना लक्षणाऽर्थो धर्मः" चोदना वेदवाक्य ही धर्म में प्रमाण है और धर्म में प्रमाण ही वेद है। तात्य निमित्त परीष्टिः। उसके कारणों की परीक्षा कर लीजिए। क्योंकि और कोई प्रत्यक्ष आदि प्रमाण धर्म में प्रमाण हो नहीं सकते क्योंकि—

'सत् संप्रयोगे पुरुषस्य इन्द्रियाणां बुद्धि जन्म तत् प्रत्यक्षमनिमित्तं विद्यमानोपलम्भनत्वात् ॥'

विद्यमान पदार्थ में ही पुरुष की इन्द्रियों का व्यापार होने से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष से विद्यमान पदार्थ ही जाना जाता है इस लिये प्रत्यक्ष प्रमाण धर्म में प्रमाण नहीं। जैसे आज का किया दान धर्म ६ मास के बाद फल देता है तो दान क्रिया तो नष्ट हो गयी फिर उस अदृष्ट असत् दान क्रिया से कालान्तर में फल होगा यह कौन बतलाये ? उत्तर यही है कि वेद बतलाए गा।

इस प्रकार जैमिनी ने वेद को कर्म-काण्ड का पूर्ण सत्य प्रति पादक ग्रन्थ स्वीकार किया है। और कर्म काण्ड की दृष्टि से ही समस्त जैमिनीय शास्त्र में वेद तथा ब्राह्मण के वाक्यों का विचार किया गया है।

इस के अतिरिक्त उपनिषदों के भाग को या आरण्य काण्डों को लेकर वेदांत या उत्तर मीमांसा शास्त्र का विवेचन होता है और सम्पूर्ण उपनिषदों के वाक्यों का तत्व खोला गया है।

जितना मेरा स्वाध्याय है वहां तक मैं इसी परिणाम पर पहुंचा हूं कि वेदान्त और मीमांसा ये दोनों शास्त्र मूल वेद के आधार पर खड़े कर्म काण्ड और ज्ञान काण्ड की व्याख्या दर्शाने के लिये प्रवृत्त हुए हैं परन्तु बाद के भाष्यकारों ने उन का व्याख्यान अधिकत: साम्प्रदायिकता, या सुगमता के लिये ब्राह्मण ग्रन्थ और आरण्यकों के प्रकरण विवेचना परक ही कर दिये हैं। मूलवेद की तत्वार्थ विवेचना एकदम इन दोनों शास्त्रों से कट गयी है। और न बाद के स्वाध्यायशील विद्यार्थी इन दोनों शास्त्रों का स्वाध्याय मूलवेद के तत्वार्थ दर्शन करने के लिये करते ही हैं फल यह हो गया है कि हमारे जीवन में ज्ञान और कर्म दोनों वेद के मूल से टूट कर ऐसे अलग २ हो गये हैं कि दोनों का जीवन में समन्वय होता नहीं देखा जाता ब्राह्मण ग्रन्थों की व्याख्या में कर्म काण्ड और ज्ञान काण्ड दोनों का समन्वय रख कर ही वेद का व्याख्यान किया गया है। इस कारण ब्राह्मण ग्रन्थ वेद की सच्ची व्याख्या हैं उन में क्योंकि प्रत्येक इष्टि या क्रिया भाग की अध्यात्मिक व्याख्या साथ ही दी है इसलिये उस इष्टि में विनियुक्त मन्त्र के दो रूप प्रकट होते हैं। एक कर्म रूप, दूसरा ज्ञान रूप। कर्म की विवेचना मीमांसा करेगी और ज्ञान की विवेचना उत्तर मीमांसा करेगी।

अब यह प्रश्न विचारणीय है कि कर्म और ज्ञान ये दो रूप वेद मन्त्र के ऊपर प्रकट कैसे हुए। इसके लिये मैं एक लौकिक दृष्टान्त देता हूं।

किसी राजा ने आज्ञा दी 'हे मन्त्री! शत्रु की सेना पर युद्ध करने के कुछ नियम सत्तेप में दिखलाओ। तो वह अबोध राज को कहने लगा

पानी बन सन्धि करे विग्रह करे पनीर।
लाठी बन पीछे परे लुमड़ी सोचे धीर॥

मन्त्री के इस बचन में कुछ शब्द ऐसे हैं जो जड़ पदार्थों के वाचक हैं और कुछ जन्तु के नाम हैं और कुछ ऐसे भाववाचक शब्द भी हैं जो उत्तम रूप से मनुष्य समाज में मुख्य रूप से घटेंगे। और अन्यत्र गौण रूप से। पानी, पनीर और लाठी ये जड़, पदार्थ वाचक शब्द हैं। सन्धि करना, विग्रह करना और पीछे पड़ना

आदि शब्द मुख्य वृत्ति से मानवसंसार में घटता है जड़ संसार में नहीं घटता। फलत इन भाववाचक पदों से ये जड़ पदार्थ वाचक पद गौण रूप से अपने अन्दर रहनेवाले गुणों का अर्पण कर के स्वयं निवृत्त हो जायगे। परन्तु यह व्याख्या उक्त वाक्य के शतांश की व्याख्या होगी। परन्तु क्रियांश की व्याख्या के लिये प्रथम क्रिया का स्वरूप बनाना होगा।

एक गिलास का पानी दूसरे गिलास में उठाकर मिलाओ और उक्त वाक्य का स्मरण करो। देखो उस वाक्य का क्रियांश स्पष्ट हुआ कि नहीं। इसी प्रकार दूध में खट्टा, जाग या पनीर डाल देना दूसरे पद का क्रियांश है। पशु के पीछे लाठी लेकर चलना तीसरे चरण का क्रियांश है और इसी प्रकार एक लोमड़ी लाकर खड़ी कर देना चौथे अंश का क्रियांश है। फलतः मन्त्री के कहे दोहे के पूरे क्रियाकाण्ड को यदि एक सिलसिले में करें तो बड़ी हंसी आवेगी। और लोग केवल क्रियामात्र करनेवाले को पागल कहेंगे।

कल्पना कीजिये कि इस क्रियाकाण्ड का नाम रिपुदमनी इष्टि रखें तो उसका संक्षेप यही लिखा जायगा कि पानी में पानी मिलाओ, दूध में पनीर डालो, भैंस के पीछे लाठी लेकर चलो और गीदड़ी को देख दिखालो।

यदि मन्त्री के कथन का तात्पर्य भुलाकर केवल इस क्रियाकाण्ड पर ध्यान दें तो यह क्रियाकाण्ड एक मनहूसों का सा काम मालूम होता है। परन्तु यदि इन क्रियाओं को समझकर उन से प्राप्त होनेवाली वास्तविक ज्ञान शिक्षा को समझा जाय तो यही एक बड़े रहस्य की बात हो सकती है। परन्तु अंध परम्परा चल जाने पर इस क्रियाकाण्ड का फल ही शत्रु का वशीकार फल माना जाना सम्भव है और इसी में अपूर्व अदृष्ट की कल्पना और व्यर्थ श्रद्धा का आडम्बर और निगूढ़ अभिमानी देवताओं की कल्पना और स्तुति पूजापाठ इसी में जुड़ जाने सम्भव हैं।

इस दृष्टान्त को यदि पाठक समझ गये हैं तो हम उन पर अपना यह विश्वास प्रकट करना चाहते हैं कि वैदिक यज्ञ भी इसी प्रकार के कर्मकाण्ड हैं। जो प्रारम्भ काल में इसी प्रकार तत्वांश को स्थिर रखने के लिये क्रियांश की कल्पना की गई और बाद में अन्धी श्रद्धा ने उस को अदृष्ट अपूर्व की कल्पना कर के क्रियाकाण्ड को इतना बोझल कर दिया कि तत्वांश का सर्वथा लोप ही कर

दिया । यहां तक अभिमानी देवताओं ने जड़ पकड़ ली और फल की इष्टानिष्टता भी देवताओं की प्रसन्नता और रुष्टता पर अवलम्बित हो गयी और उस कर्मफल की व्यवस्था करनेहारे ज्ञानी परमेश्वर का वास्तविक ज्ञान सर्वथा लुप्त होगया।

उदाहरण के तौर पर हम 'अग्नि-आधान' का प्रकरण लेते हैं।

अग्न्याधान करने का अधिकार गृहस्थ को है ब्रह्मचारी को नहीं। अग्नि आधान करना स्त्री में पुत्र के निमित्त वीर्याधान करने के तुल्य है। अग्नि का उत्पन्न होना पुत्र के उत्पन्न होने के समान है। अग्नि भी कुमार है। पुत्र भी कुमार है स्त्री वेदी है ईंधन या काष्ठ समिधा कामवासनाएं हैं होता यजमान गृहपति हैं इत्यादि यज्ञ की गृहस्थ कर्म से तुलना सर्वांश में सुन्दर रूप से वैदिक ऋषियों ने की है। जिस का विवरण छान्दोग्य और बृहदारण्यक में बड़ी उत्तमता से किया है। और वहां इस का अध्यात्मिक रहस्य खोलकर कह दिया है। इस अध्यात्मिक रहस्य को जानकर उस के आधार पर जब अग्निहोत्र के मन्त्रों पर विचार करते हैं तब उन का चमत्कारी वास्तविक अर्थ प्रकट होता है। समिधाऽग्नि दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् समिध् से अग्नि का सत्कार करो और घृतों द्वारा उस अतिथि को बोधित करो, जगाओ। यह स्थूलार्थ है।

बिना तिथि बतलाए आया हुआ पुत्र अतिथि है। भली प्रकार चमकने वाली हृदय की आशा (कोष्ठा) से उसका सत्कार करो। स्नेह या पुष्टिकारक पदार्थों से उस का चैतन्य करो, उस को और अधिक जीवन दो। यह गृहस्थ का स्थूल आध्यात्मिक अर्थ है।

परन्तु जहां आत्मा स्वयं गृहपति है शान्ति गृहिणी है हृदयमात्र मन्दिर है वहां मन मात्र वत्स है। उधर भी योग क्रियाओं से उसका सत्कार करो और घृत दीप्तिवाली आन्तरिक ज्वालाओं (अर्चियों) से उस को पुष्ट करो यही अर्थ है। इस प्रकार समस्त क्रियाकाण्ड में बंटा हुआ वेदमन्त्र समूह मूलत ब्रह्मज्ञान की शलाका में पिरोया हुआ है।

इस प्रकार समस्त क्रियाकाण्ड आत्म का विलास और यजमान के हाथ का शक्ति के अनुरूप अधिकार प्रयोग है। इस कारण वह मूल में आध्यात्मिक संकल्प (Mental Idea) का विकसित स्थूलरूप है इसलिये वह भी अवश्य मूल में आध्यात्मिक तत्व से ही व्याख्या किया जायगा। इस सम्बन्ध में अभी बहुतसे विचार हैं परन्तु लेख लम्बा होने के भय से यहां ही समाप्त करता हूं। पाठक इस पर और भी विचारेंगे।

बल-प्रार्थना

(श्री पं० चेतराम शर्मा, क० म० वि० जालन्धर)

ऐसा बल दे ओ माँ ! बलदे !

देश-वेदना जगा देश में बाल-वृद्ध को चञ्चल करदे । ऐसा० । १ ।

भीषण अट्टहास सुन तेरा, जो उमंग से आग उबल दे,

अकड़बाज़ को पकड़ रगड़ कर जो गर्वी का गर्व कुचल दे । २ । ऐसा बलदे०

भूखे, मारे, डरे, सताये, तरसाये, बिलगाँय, जी-जले,—

वैरभाव के भावक दलसे जो जल-थल को उथल-पुथल दे ३। ऐसा बल दे०

धूर्त-कुटिल दल को कलबल कर छलिया, छद्मवेष को छल दे ।

बने निरंकुश को जो अंकुश, अत्याचारी को अड़चल दे ।४। ऐसा०

रोम-रोम में सोम-व्योम में स्वतन्त्रता की ज्वाला ढल दे ।

रक्त-चूस के रक्तपात से मरुथल में भी दलदल कर दे ।५। ऐसा०

शान्त कुटी, एकान्त मढ़ी में, जीर्ण झोपड़ी, शीर्ण देह में,—

आलय, विद्यालय, देवालय, कार्यालय में हल चल कर दे ।६। ऐसा०

धवल-महल में, अन्तःपुर में, हाट-बाट में, गहन-घाट में —

रास-हास में, रस-विलास में अदल-बदल कर जो खलबल दे ७। ऐसा०

जीवन-ज्योति जगा जनता में, जो जन मन-घन-भयतम हर दे ।

पराधीनता के दानव का जो उठ सारा दल-बल दल दे । ८ । ऐसा०

संजीवित कर भाषा-जननी जन-जन-तन-मन जीवन भर दे ।

कर अनुप्राणित बान्धव गण को बन्ध मुक्त माता को कर दे । ९ । ऐसा०

भूख-विकल की नग्नभूख में त्रस्त हृदय की मूक-कूक में,—

निःसहाय की हाय-हूक में, जो जीवन दे, जीवन-भरदे १० । ऐसा०

श्रमजीवी की थकी देह में, स्नेह-वञ्चिता के सनेह में,—

गृह-हीनों को धूप-मेह में, सुबल, सुफल दे, शरणस्थल दे ११ ऐसा०

आशा उठे निराश हृदय में, नाचे किसान अपने हल में,—

बँसुरी बजे चैन की वन में, गावें ग्वाले, ऐसा बल दे । १२ । ऐसा०

देशभक्त की दिव्य भूति में, दीन बन्धु की बन्ध स्फूर्ति में,

मातृभूमि की मधुर मूर्ति में, एक बार फिर चहल-पहल दे । १३ । ऐसा०

वेद और वर्तमान सभ्य जगत्

[श्री परमानन्द बी. ए. आर्योपदेशक]

महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने आर्य्य समाज के नियम बनाते हुए एक नियम यह रक्खाः—'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है'। कई लोग इस नियम को सुन कर चौंक उठे, और अब भी चौंक उठते हैं। वर्तमान युग विकास का युग है। वेद संसार के पुस्तकालय में सबसे पुराने पुस्तक हैं। यह कैसे संभव है कि वेद में वह सारी विद्याएं हों जो वर्तमान विज्ञान बड़ी तेज़ी के साथ नित्य आविष्कृत करता जाता है। इस स्थापना को पढ़ कर आधुनिक सभ्य मनुष्य का माथा ठनकता है। आजकल का सभ्य संसार केवल स्थापनाओं और कल्पनाओं से सन्तुष्ट नहीं होता, वह ठोस उदाहरण मांगता है। 'वेद का पढ़ना पढ़ना सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म्म है'। वैदिक धर्म्म में मनुष्य जाति के दो ही भेद किये गए हैं एक आर्य्य और दूसरे दस्यु। अतः वर्तमान सभ्य (आर्य्य) जगत् यह पूछने का अपना अधिकार समझता है कि वेद में ऐसी कौनसी विशेषता है जिसके कारण उसका पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना आवश्यक बताया गया है। वेद बीसवीं शताब्दी के मनुष्य के लिए क्या नया सन्देश लाता है? यह और इत्यादि प्रश्न महर्षि दयानन्द के समय से चले आते हैं यही प्रश्न स्वामी जी के जीवन काल में उठाया गया था जब वह अपना बनाया वेद भाष्य पञ्जाब विश्व विद्यालय की पढ़ाई में रखाना चाहते थे। आइये पाठक! आज आपको वेद के प्रमाण से बताएं कि वेद आधुनिक संसार को क्या देता है?

विषय बड़ा विस्तृत है और एक लेख की संकुचित सीमाएं उसके लिये सर्वथा अपर्य्याप्त हैं। अतः इस लेख में तो विषय का दिग्दर्शन मात्र ही हो सकता है। एक शब्द में वेद अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करता हुआ सब कुछ देता है। वेद लोक और परलोक दोनों संवारता है। पहले 'यह लोक' बनाता है और फिर 'पर-लोक' में भी मनुष्य का भला होगा इसका भी निश्चय हो जाता है। आयु, प्राण, द्रविण, प्रजा, कीर्त्ति, ब्रह्मवर्चस और अन्त में ब्रह्मलोक—यह वह सुख सामग्री है जो 'वरदा वेदमाता' देती है। वैदिक धर्म्म में धन के नियमित भोग की कहीं भी निन्दा नहीं की गई। जब संसार भी परमात्मा का है और वेद भी उसी का तो एक

पिता के दो पुत्र परस्पर निन्दा करते हुए कहीं अच्छे लगते हैं ? परमात्मा पूर्ण हैं उनका जगत् (कार्य्य) भी पूर्ण है। अतः वर्तमान सभ्य जगत् को यह जान कर परम सन्तोष होना चाहिये कि वेद इस जगत् को कहीं हेय नहीं बताता, किन्तु इसे सुखमय बनाता है। आइये पाठक ! इस जगत् के एक सुख का विचार करें जिसकी आपको समय विशेष में कामना उठा करती है, और देखें कि वेद उसके सम्बन्ध में क्या आनन्द समाचार देता है।

ऋग्वेद के पांचवें मण्डल के ५२ सूक्त का ९ म मंत्र इस प्रकार है:—

उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः,
उतपव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥

इस मंत्र का देवता 'मरुतः' है जो वेद में बहुधा 'सांसारिक मनुष्यों' का वाचक है। अर्थ इस प्रकार है (ते) वह (परुष्ण्याम्) पर्व वाली भूमि—पर्वतों-पर (शुन्ध्यवः) शुद्ध पवित्र होकर (ऊर्णाः) सुरक्षित रूप से (वसत स्म) रहें (उत) और (रथानाम्) गाड़ियों सवारियों के (पव्या) धुरों के लिये (ओजसा) ज़ोर (वाली वस्तुओं) से (अद्रि) पहाड़ को (भिंदन्ति) तोड़ते हैं (तोड़ कर मार्ग बनाते हैं)

इस मंत्र में कई उपदेश इकट्ठे मिलते हैं। पर्वतीय लोगों को शुद्धता और सुरक्षा से रहने की बड़ी आवश्यकता है। सर्दी के कारण पहाड़ी लोग स्नानादि कई शुद्धता के नियमों को शिथिल कर देते हैं। वहां exposure भी अधिक हो जाता है। चोर डाकू इत्यादि जिन्हें पृथिवी के समभागों पर छिपने का कम स्थान मिलता है वह पर्वतों पर जा छिपते हैं। कुछ हिंस्र पशु भी वहां हो सक्ते हैं। बिच्छुओं से तो सावधान रहने की आवश्यकता होती ही है। मकान भी शीत वर्षा आदि से रक्षा के लिये अच्छे बनाने चाहियें, ऊर्णा वसत) शब्दों से कुछ यह गन्ध भी निकलती है कि पर्वतों पर ऊन के कपड़े पहिनने चाहियें। यदि यह कल्पना ठीक हो तो सारी Woollen industry का उपदेश हो गया समझना चाहिये।

परन्तु वेद वहां कमाल करता है जहां वह पर्वतीय मार्ग तोड़ कर उन पर्वतों के शिखरों पर हमें ला बिठाता है। बीसवीं शताब्दी का मनुष्य गर्मी की ऋतु में कश्मीर और दार्जीलिंग की यात्रा करना चहता है। उसी के लिये पर्वतों को मार्ग देना चाहिये। परन्तु आजकल की व्यग्रता के दिनों में सब लोग पैदल नहीं जा

सक्के अतः गाड़ियों–सवारियों के लिये भी पर्वतों को मार्ग छोड़ना होगा। वह कैसे हो ? 'ओजसा' ज़ोर से (ज़ोर वाली वस्तुओं की सहायता से) सांसारिक मनुष्य 'अद्रि' को तोड़ते हैं। शायद कहीं Dynamite (बारुद) से भी काम लेना पड़ेगा। न टूटने वाली चीज़ भी मनुष्य के 'ओजस्' के आगे झुक जाती है। 'हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सक्ता'। 'कोह से दरिया बहाते हैं'

पाठक ! आपने वेद के अनुसार जीवन का फ़ल्सफ़ा देख लिया। मानुषी जीवन का उद्देश्य जीवन है। शारीरिक जीवन, आत्मिक जीवन, सामाजिक जीवन, भोग पूर्वक त्याग और त्यागपूर्वक भोग ही उस जीवन का सर्वस्व है। संसार को जब भी बलात्कार से भोगों से पृथक् रक्खा जायगा परिणाम भयंकर निकलेंगे। और यदि वह भोग, त्यागपूर्वक न होंगे–दूसरों को बिना अपने साथ सम्मिलित किये भोगे जाएंगे–तो उस का फल Communism, socialism, और bolshevism होगा। वैदिक धर्म मनुष्य को दोनों अतियों के बीच में रखता है और मनु के शब्दों में उपदेश करता है —

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्म्मयोगश्च वैदिकः॥

कामना

('श्री हरि')

(१)

प्रभु आप पूरन काम तो मैं दास एक सकाम हूँ
हो दीन बन्धु दयालु तो मैं दीन एक निकाम हूं॥
जो प्रेमसागर आप हैं तो मैं उसी का कूल हूं।
जो आप सुरतरु फूल हैं, तो मैं उसी की धूल हूँ॥

(२)

जो चन्द्र हैं हरि ! आप तो मैं प्रिय चकोर किशोर हूँ।
घनश्याम हैं तो आपका मैं नृत्यकारी मोर हूं॥
करुणानिधे ! करुणामयी यह भीख मुझको दीजिये।
"श्री हरि" किसी भी भांति से अपना बना प्रभु लीजिये॥

आन्ध्र देश में आर्य समाज और शुद्धि

(श्री० केशवदेव सिद्धान्तालंकार, मंत्री 'आन्ध्र आर्यन मिशन' गुंटूर, मद्रास)

आर्य समाज का जितना ही उद्देश्य ऊंचा है उतना ही वह उस से दूर है। कहां तो 'देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर' में आर्यसमाज का डंका बजाने के स्वप्न और कहां अपने देश का तीन चौथाई हिस्सा ही आर्यसमाज के प्रचार से खाली पड़ा है। विशेषतः दक्षिण-भारत में, जिस की आबादी देशी रियासतों को मिला कर ५ करोड़ से अधिक होगी, आर्यसमाज का कुछ भी पता नहीं। इस से बढ़ कर और शोचनीय दशा क्या हो सकती है कि जिस समय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी पिछले अक्तूबर मास में दक्षिण-भारत में पधारे तो कई अंग्रेज़ी पढ़े लिखों के पत्र उन्हें मिले, जिन में पूछा हुआ था कि "गत फ़र्वरी १९२५ में आप लोगों ने जो एक आर्य समाज मथुरा में खोला है, उसका कहां २ प्रचार हुआ है, कितने मैम्बर हैं, और क्या २ नियम हैं ?"

परन्तु इसमें दोष किसका है ? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि या तो आर्यसमाजियों में उत्साह ही नहीं कि अपना घर छोड़कर दूसरी जगहों में प्रचार के लिये जावें, या त्याग-भाव की कमी है। और फिर, नहीं तो पर्याप्त योग्यता का अभाव समझना चाहिये। इन तीनों के अतिरिक्त और क्या कारण हो सकता है ?

यद्यपि दक्षिण-भारत को लोग "द्राविड़ प्रदेश" कहते हैं, परन्तु वस्तुतः यही आर्य प्रदेश है। यहां आज भी ब्राह्म मुहूर्त्त में ब्राह्मणों का सस्वर वेदपाठ सुनाई देता है। आज भी द्विज लोग यथाविधि १६ संस्कार कराते हैं। आज भी ब्राह्मणों और उपनिषदों के प्रति श्रद्धा लोगों के हृदयों में विद्यमान है। यहां आर्यसमाज का प्रचार हो सकता है, सारे हिन्दू फिर से वैदिक-धर्मी बनाये जा सकते हैं। परन्तु कब ? जब कि कम से कम १०० आर्यसामाजिक विद्वान्, संस्कृत के धुरन्धर ज्ञाता, अंग्रेज़ी का भी पर्याप्त परिचय रखने वाले अपने घर बार का मोह छोड़ कर इधर बस जांय। बस ! अपना जीवन, अपनी योग्यता, अपना सर्वस्व अर्पण कर दें। निस्सन्देह यह कहना सरल है किन्तु करना ....।

यद्यपि आज ब्रह्म समाज को ४० वर्ष, और आर्य समाज को लगभग १५ वर्ष मद्रास-प्रान्त में काम करते हुए होगये हैं तथापि जैसा कि नीचे की रिपोर्ट से

पता चलता है इन दोनों समाजों का इस प्रान्त में बहुत कम फल देखने में आया है। गत १९२१ की मनुष्य गणना रिपोर्ट में समाजियों की संख्या जो कि सन् १९११ में ३७४ थी, १० साल के समय में घट कर आधे से भी कम १७१ रह गई है। और आर्यसमाज इस से भी गया गुज़रा है. आर्य समाजियों की कुल संख्या ५१ है। इस पर रिमार्क करते हुए सैन्सस सुपरिण्टैण्डैण्ट लिखता है:—

"Generally speaking it is evident (from the above figures) that neither of these reformed-Hindu societies—whether Brahmusmaj or Aryasmaj, has any effect on the religious life or thought of the masses of the Madras Presidency." Vol II, pp. 63

अर्थात्, साधारणतया, ऊपर की संख्याओं से यह स्पष्ट है कि ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज में से किसी भी सुधार-समाज का मद्रास-प्रदेश के लोगों के धार्मिक-जीवन और विचार पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

इसका कारण सिवाय हमारी अकर्मण्यता के और क्या हो सकता है? हम निश्चय से कह सकते हैं कि यदि ईसाइयत जैसी युक्ति हीन विदेशी-समाज यहां लाखों में फैल सकती है तो आर्य-समाज जैसी यौक्तिक (Rational) समाज के फैलने में किसे सन्देह होगा? परन्तु विशेष उद्योग होना चाहिये।

पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि यहां किस संगठित-रूप से ईसाइयत का प्रचार किया जाता है। केवल मद्रास-प्रान्त में काम करने वाले भिन्न २ ईसाई मिशन संख्या में ६७ हैं। फिर कुल विदेशी कार्य कर्त्ताओं की संख्या ११६८ है। फिर उनके साथ मिल कर काम करने वाले भारतीय (पोज़ीशन के) कार्य कर्त्ताओं की संख्या ३९५ है। साधारण काम करने वाले भारतीय २०००० से भी ऊपर हैं। इसके सिवाय कुल मिला कर स्कूल, कालिज, हस्पताल कोआपरेटिव सोसाइटी, सैटलमैण्ट, एसाइलम, प्रैस इत्यादि संस्थाओं की संख्या ६०० है। केवल शिक्षा विभाग में नियुक्त भारतीय और विदेशीयों की संख्या ११५०८ है। और वे लोग जिनका काम केवल मात्र ईसाई-धर्म का प्रचार करना है, ७१३४ की संख्या में हैं। अब बतलाइये कि यदि इन अवस्थाओं के होते हुए ईसाई लोग प्रति दिन ३०० की संख्या में, और प्रति वर्ष ११०००० एक लाख दस हज़ार की संख्या में बढ़ें तो क्या आश्चर्य है? यदि ऐसी ही अवस्था रही और

हिन्दू-जाति ने अपने अछूत भाइयों पर सामाजिक—अत्याचार करने न छोड़े तो अगले दस सालों के बाद सारे दक्षिण-भारत में एक भी "परया" "माला" या "मादिगा" हिन्दू न रहेगा।

यद्यपि २५ एप्रिल सन् १६२४ से पहिले भी * आन्ध्रदेश में ठाकुर खानचन्द्र जी वर्मा के "Chryst a myth" विषय पर व्याख्यान और आदि पूरी सोमनाथ राय की धर्म कथाएं कई बार हो चुकी थीं। और भाई परमानन्द जी ने भी शायद आज से १०. १२ वर्ष पूर्व इधर की एक गश्त लगाई थी, परन्तु "आन्ध्र" में नियमित प्रचार का श्रेय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज को ही मिलना चाहिये

सन् १६२३ का फ़र्वरी का महीना था जब कि श्री पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अछूतोद्धार के लिये कार्यकर्त्ताओं और धन की अपील की। शायद लेखक सबसे पहिला था जिसने "सन्यासी की अपील" के उत्तर में अपनी तुच्छ सेवाओं को भेंट किया। १ वर्ष बाद ठीक उन्हीं दिनों दक्षिण—भारत में "वैकम—सत्याग्रह" प्रारम्भ हुआ, और केशव मेमन, नम्बूदरी पाद इत्यादि सत्याग्रह-कारियों ने श्री स्वामी जी को उधर आने के लिये निमन्त्रण दिया। लेखक भी इस अवसर पर श्री स्वामी जी के साथ "दक्षिण-भारत" को रवाना हुआ। शायद इतिहास में यह पहिला ही अवसर था जब कि एक आर्य सन्यासी १५०० मील का सफ़र करके हज़ारों वृद्ध और नवयुवकों को मद्रास के प्रसिद्ध समुद्र तट की बालू पर खड़ा होकर पांच हज़ार वर्ष पुराने आर्य-सभ्यता का सुन्दर उपदेश देरहा था। आंखें चाहती हैं कि वह स्वर्गीय नज़ारा फिर कभी सामने हो। अस्तु, दक्षिण-कर्नाटक, मालावार और टामिल नाडू का चक्कर लगाते हुए श्री स्वामी जी २५ एप्रिल को गुंटूर पहुंचे। गुण्टूर आन्ध्र देश का केन्द्र समझना चाहिये। हज़ारों की संख्या में नगर निवासी सन्यासी का "वर्ण व्यवस्था और शुद्धि" विषयक व्याख्यान सुनने के लिये जमा हुए शहर की प्रत्येक छोटी बड़ी संस्था ने श्री स्वामी जी की सेवा में अपने २ तुच्छ अभिनन्दन-पत्र भेंट किये। स्वामी जी गुण्टूर से चल कर "गुडीवाड़ा" "मसुलीपटाम" "राजमहेन्द्री" और "बरहामपुर" होते हुए ऊपर कलकत्ता चले गये।

* मद्रास प्रैजीडैन्सी के भाषा के लिहाज़ से कांग्रेस ने ४ प्रांत बनाये हैं। उनमें से "तिलगू" भाषा वाले भाग को "आन्ध्र" कहते हैं।

इस प्रकार २८ एप्रिल सन् १९२४ से लेखक इस प्रान्त में है, और अपनी शक्ति के अनुसार थोड़ा बहुत कार्य कर रहा है। इस समय आन्ध्रदेश में ५ आर्यसमाजें हैं और लगभग १४० इन के सभासद हैं। गुण्टूर जिले में गुण्टूर, कृष्णा में गुडीवाडा, गोदावरी में निददवोल और एलूर, और ज़िला अनन्तपुर में हिन्दूपुर। इन सब में गुण्टूर को ही केवल जीती समाज कहना चाहिये, जहां लेखक का हैड-कार्टर है। इस के ६० से अधिक सभासद हैं। इस के आधीन एक Free Aryan Reading Room और एक रात्रि-पाठशाला भी है। परन्तु अपना स्थान न होने से कभी २ भयङ्कर आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। वस्तुतः किसी भी कार्य के लिये अपनी स्वतन्त्र स्थिति और अपने भवन की बड़ी आवश्यकता होती है।

शुद्धि का काम

इतिहास इस बात का साक्षी है कि शुद्धि का काम आन्ध्र देश के लिये कोई नया नहीं है किन्तु इस में सन्देह नहीं कि चाहे शुद्धि-संस्कार प्राचीन हो या अर्वाचीन. इतिहास में इसका नाम सदा आर्यसमाज के साथ लिया जायगा।

एवं अछूतों की शुद्धियां भी आज से दस वर्ष पूर्व एलूर-तालुक में होती रही हैं। परन्तु आर्यसमाज की तरह इस का भी नियमित Organized प्रचार का श्रेय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी को ही मिलना चाहिये। जिन्होंने शुद्धि का न केवल मौखिक-प्रचार ही किया, अपितु क्रियात्मक रूप से दक्षिण-कर्नाटक में वेणूर गांव में आर्यसमाज मंगलोर के आधीन एक "शुद्धि-संस्था" कायम की। पालघाट और वैकम की शुद्धियां सब उसके पीछे की हैं।

आन्ध्र-देश में भी "आन्ध्र-आर्यन-मिशन" की स्थापना के बाद सन् १९२४ के पिछले भाग से "शुद्धियां" होनी प्रारम्भ हुई हैं। और तब से लेकर अब तक लगभग ३००० अछूत, जो कि कई वर्ष पूर्व ईसाई होगये थे, फिर से शुद्ध कर के अपनी जाति में मिलाये गये हैं।

इन शुद्ध हुए २ अछूतों के लिये स्थान २ पर स्कूल खोले जारहे हैं। मुफ़्त-मेडीकल-एड का भी प्रबन्ध किया जा रहा है। कोओपरेटिव-सोसाइटी, बैंक्स इत्यादि खोलने की भी स्कीमें हैं। परन्तु इन के लिये पर्याप्त धन चाहिये। इस प्रकरण में यह लिखना आवश्यक है कि इस शुद्धि-कार्य में इधर के शिक्षित वकील और जमींदार हमें विशेष सहायता दे रहे हैं। इस समय लगभग

गुण्टूर के ४ तालुकों में "शुद्धि-सहायक-संघम्" स्थापित हो चुके हैं। शेष ५ तालुकों में भी शीघ्र स्थापित हो जाएंगे। अभी तक इतना विशाल कार्य सामने है कि देखकर भय और निराशा होती है कि अकेले आन्ध्र-देश में पाँच लाख से ऊपर अछूत और अन्य जातियां क्रिश्चियन हो चुकी हैं। इन सब को शुद्ध करके फिर से आर्य-जाति में मिलाना होगा। इस के लिये ईसाई मिशनरियों की तरह नियमित और लगातार कार्य की आवश्यकता है।

पाठक ध्यान रक्खें कि यह कार्य केवल अभी तक आन्ध्र के २ ज़िलों में ही शुरू हुआ है। अर्थात् गुण्टूर और कृष्णा। शेष ५ ज़िले "वैज़ाग" "गोदावरी" "नैल्लोर" "बल्लारी" और "अनन्तपुर" अभी तक छूए भी नहीं गये।

एक झलक

[श्री० पं० चमूपति एम. ए. अफ्रीका]

इस छोटे विचित्र हृदय में हैं कितनी चुलबुली उषाएं।
सो जाने को शिथिल होरही श्रान्त शीत सन्ध्या वेलाएं॥
है दिन के कोलाहल का स्वागत करता शीतल सौरभ भी।
और रात की नीरवता में लीन हो रहा कल कल रव भी॥
अरुणोदय की ख़बरें दे दे मिटती जाती तिमिर-कालिमा।
चित्रित है छाती पर चितारूढ़ दिनकर की दैव लालिमा॥
पर वह टंकारे की शिव-निशि-गर्भित उषा निराली थी।
औ' अजमेर पुरी में सांझ समय अनुपम दीवाली थी॥
एक झलक थी जीवन-लीला वेद-सुगीत उषाओं की।
आहुति लेती चिता दिशापति (१) की थी सती दिशाओं की॥
इन चुलबुली उषाओं में मैं किसे ढूंढने जाता हूँ?
सन्ध्या के जलते सुहाग में वह सति-तेज न पाता हूं॥
टंकारे की वह प्रभात सुर-पुर-दुर्लभ उजियाली थी।
देख सांझ का अजब साज अजमेर-पुरी मतवाली थी॥
चित-चित्रित वह दीप-मालिका जगमग २ जलती है।
घोर निराशा-निशा कभी रह रह कर उषा उगलती है॥

(१) वेद में संन्यासी को 'दिशांपति' कहा है। ऋ० ९. ११३. २.

ऋषि दयानन्द और सन्तति-सुधार

(ले० — प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, सम्पादक "अलंकार")

ऋषि दयानन्द ने जो चौमुखा, विस्तृत कार्य-क्रम देश के सन्मुख रखा है उसे देख कर उस महात्मा के सन्मुख हमारा मस्तक स्वतः नत हो जाता है। उस माली को वृक्ष की जड़ से लेकर फल तक, एक २ चीज़ का फ़िक्र था। समाज-सुधार की नींव उस ने रखी, धर्म पर चढ़े मोरचे को उस ने खुरेच डाला, शिक्षा के क्षेत्र में उस ने क्रान्ति मचा दी; जिस तरफ़ देखो उस तरफ़ उस ने कुछ न कुछ कर ही डाला । उस में दिव्य, अलौकिक शक्ति थी। वह जब तक जीवित रहा, अपनी अथाह शक्ति की लहरों को सब किनारों तक पहुंचाता रहा।

ऋषि दयानन्द के बाद उन के कार्य-क्रम को आर्यसमाज ने सम्भाला। इतने विस्तृत तथा व्यापी प्रोग्राम को सफल बनाने के लिये काम को बाँट लेना ज़रूरी था। काम बाँटा गया । समाज-सुधार के लिये जात-पात-तोड़क मण्डल, विधवा-विवाह-सहायक समिति, शुद्धि-प्रचारिणी सभा आदि खुलीं। धर्म-प्रचार के लिये वेद-प्रचार-फण्ड तथा समाजों के जल्सों, व्याख्यानों और कथाओं का सिलसिला जारी हुआ। शिक्षा के जीवनमय मौलिक सिद्धान्तों को सशरीर बनाने के लिये गुरुकुलों की प्रथा को जारी किया गया । इन सब से देश का बहुत भला हुआ। परन्तु जीवनी-शक्ति की लहर के उमड़ने से जिस प्रकार मुर्दे के ज़िन्दा हो जाने की उमीद थी, जिस प्रकार जादू से काया-कल्प हो जाने की आशा थी, वह कुछ न हुआ ! जात-पात तोड़ने पर धुँआधार व्याख्यान देने वाले जात ढूण्ड २ कर उस की बग़ल में घुसने लगे, विधवा-विवाह प्रचारक विधुर क्वारियों से, और चार चार पांच पांच बार विधुर होने पर भी, क्वारियों से शादियें करने लगे। शुद्धि का नाम ले कर मेज़ तोड़ देने वाले धुरन्धर व्याख्याता कच्ची-पक्की में फ़रक करने लगे। धर्म का डंका 'आलम' में बजा देने वाले, मौका पड़ने पर शिवजी को घण्टी घर के कोने में बजाने लगे। गुरुकुल के गीत गाने वाले उल्टी तानें आलापने लगे। मैंने इन सब बातों के कारणों पर सोचा है, खूब सोचा है। क्या कारण है कि हम दुनियां को जैसा बनाना चाहते हैं वैसी बनती ही नहीं।

लाख कोशिश करने पर भी नहीं बनती ? जहां तक मैं सोच पाया हूं, मैं समझता हूं कि इस का यह कारण है कि हम ने ऋषि दयानन्द के सम्पूर्ण कार्य-क्रम को नहीं अपनाया। "मीठा मीठा गप्प, कड़वा कड़वा थू"—जो मज़ेदार बातें थीं, जिन पर खूब लैक्चर झाड़े जा सकते थे, कथा-किस्से सुनाए जा सकते थे, तालियें पिटवाई जा सकतीं थो और 'वाह-वाह' लूटी जा सकती थी, वह सब कुछ हम ने किया; परन्तु ऋषि के प्रोग्राम में जो मूल-आधार था, जो उस प्रोग्राम की जान थी, जिस के किये बग़ैर प्रोग्राम मुर्दा और जिस के करने से प्रोग्राम में प्राण का सञ्चार हो सकता था, वह सब कुछ हम ने नहीं किया। ऋषि दयानन्द की खड़ी की हुई इमारत का आधार स्तम्भ था—

'गृहस्थाश्रम का सुधार'।

इस सुधार के लिये ऋषि दयानन्द की आत्मा तड़प रही थी, व्याकुल हो रही थी। कीचड़ में पड़े रहने से मनुष्य से बदबू आने लगती है। भङ्गी जो गन्दगी का ही काम करता है, लोग कहते हैं उस के परमाणु ही बदबूदार हो जाते हैं। खैर, बाहर के गन्द को धोया जा सकता है, किसी न किसी प्रकार दूर किया जा सकता है। परन्तु वर्त्तमान समय के गृहस्थ के कीचड़ से, इस गन्द से जो आत्माएं निकलती हैं, जिन बच्चों का जन्म होता है, उन के अन्दर, नस २ में, गन्द रच गया होता है। ऐसे लोगों के हाथ में जब देश-सुधार का प्रोग्राम दे दिया जायगा तो वह भला कभी सफल हो सकता है ? ऐसे लोगों को तो अच्छी बात भी कही जायगी तो उस का भी नतीजा उल्टा ही निकालेंगे। ऋषि दयानन्द इस बात को भली भान्ति समझते थे। वे जानते थे कि हम देश का कुछ नहीं बना सकते जब तक नस्ल को न सुधारा जाय। हमारी वर्तमान सन्तति ही आगामी के समाज को बनाने वाली होगी। यदि समाज में कुछ परिवर्तन लाने हैं तो बाह्य उद्योग तो होते ही रहने चाहियें परन्तु उन के साथ २ आन्तरिक उद्योगों में शिथिलता नहीं आनी चहिये। मेरा दृढ़ विश्वास है कि ऋषि दयानन्द इस से भी एक कदम आगे जाते थे। उन का कथन था कि वास्तविक सुधार वही है जो अन्दर से—जड़ से प्रारम्भ हो। इसी उद्देश्य को सन्मुख रख कर उन्हों ने नियोग की प्रथा का भी मण्डन किया, गृहस्थाश्रम पर भी पृष्ठों का ढेर लिख मारा। नियोग का मण्डन करते हुए, गृहस्थाश्रम पर सत्यार्थ प्रकाश में एक अध्याय लिखते हुए तथा संस्कार-विधि की रचना करते हुए ऋषि दयानन्द का लक्ष्य एक था और वह था गृहस्था-

श्रम के सुधार द्वारा—

'सन्तति-सुधार'।

इस समय हमारा ध्यान 'सन्तति-सुधार' (Race Betterment) की तरफ़ नहीं है। हम 'समाज-सुधार' कर रहे हैं परन्तु समाज की संघटक सन्तति की तरफ़ किसी का ध्यान नहीं है। प्रमादवश हम यह समझ रहे हैं कि चाहे किन्हीं संस्कारों की सन्तानें हमारे सन्मुख लायी जावें हम उन्हें गुरुकुलों की मशीनों में ढाल कर अपने काम का बना लेंगे। आर्य समाज का सभासद् बना कर या शुद्धि सभा का उत्साही कार्य-कर्ता बना कर जादू कर डालेंगे, परन्तु हम भूल में हैं। ऋषि दयानन्द इस भूल में न थे। हमें समझ लेना चाहिये कि आम की गुठली से अनार बना लेना कठिन ही नहीं, असम्भव है। जिस गन्द में से आज देश के भविष्यत् को बनाने वाली सन्तानों को निमन्त्रित किया जाता है उस गन्द के वैसे का वैसा बने रहते भी यदि हम किसी वास्तविक उन्नति की तरफ़ आशा लगाये हुए हैं तो बलिहारी है हमारी बुद्धियों की! ऋषि दयानन्द ने संस्कारविधि तथा सत्यार्थ प्रकाश में जगह २ पर गुरुकुलों तथा सन्तति-सुधार की तरफ़ इशारा किया है। जिन महानुभावों ने ऋषि से गुरुकुलों के इशारे को लेकर उस विचार को क्रियात्मक रूप देने का सफल उद्योग किया है उन के लिये मेरे हृदय में असीम श्रद्धा तथा भक्ति है, परन्तु मेरा विचार है कि ऋषि दयानन्द के विचारों की गहराई तक पहुँचने के लिये हमें कुछ और गहरा जाने की ज़रूरत है। सुना जाता है कि ऋषि दयानन्द एक वार एक वेद मन्त्र की व्याख्या कर रहे थे। व्याख्या करते २ उन्हों ने सन्तानोत्पत्ति के उद्देश्य से ही स्त्री-पुरुष के संयोग को वेदानुकूल ठहराया। श्रोताओं में से एक ने उठ कर निवेदन किया कि वर्तमान पतित गृहस्थ-जीवन में ये आदर्श घटने असम्भव हैं! ऋषि का एक ही उत्तर था "असम्भव है तो उन का फल भी भोगो! यह नहीं हो सकता कि जीवन-विद्या के नियमों का उल्लंघन भी किया जाय और सज़ा से भी बचा जाय!" इसी प्रकार ऋषि दयानन्द के जीवन की एक दूसरी घटना भी सुनी जाती है। कहते हैं कि एक वार ऋषि कुछ भक्तों के साथ सैर को जा रहे थे। मार्ग में ५-६ वर्ष की एक बालिका खेलती हुई मिली। ऋषि ने उस के सन्मुख मस्तक झुका दिया। पूछे जाने पर कहा कि मैंने मातृशक्ति के सन्मुख सिर झुकाया है। क्या ऊंचे

आदर्श हैं ? इतने ऊंचे हैं कि हमारा पतित जीवन उन से बहुत नीचे धूल में गिरा मालूम देता है। परन्तु फिर भी वे आदर्श हैं। समाज का जो थोड़ा बहुत जीवन चलता है वह उन्हीं के आधार पर है। आदर्शों की मात्रा जितनी बढ़ती जाती है उतना ही समाज का जीवन भी उत्कृष्ट तथा स्पृहणीय बनता जाता है, जितने ही वे आदर्श लुप्त होते जाते हैं उतना ही मानव-जीवन फीका तथा निस्सार होता जाता है। ऋषि के इन आदर्शों को जीवन में घटाने के लिये आर्यसमाज ने क्या किया है ? "सन्तति-सुधार" के महान् कार्य को अपनाने के लिये क्या प्रयत्न हुआ है ? दुःख से कहना पड़ता है कि इस तरफ़ हमारा ध्यान नहीं गया !

"सन्तति-सुधार" के प्रश्न को भारत ने बिल्कुल ही छोड़ रखा हो, ऐसी बात नहीं। इस प्रश्न के महत्व को जनता की पर्याप्त संख्या अनुभव करती है। इस समय भी "स्वस्थ बच्चों की प्रदर्शिनी" (Child welfare Exhibition) तथा "सन्तति-निग्रह" (Birth-Control) की दो लहरें देश में धीरे २ बढ़ती चली जा रही हैं। इन दोनों का उद्देश्य अच्छा है। बच्चों की प्रदर्शिनी से तो "सन्तति-सुधार" की लहर को बहुत सहायता मिल रही है परन्तु मेरा विचार है कि 'सन्तति-निग्रह' की लहर भारत के लिये ही नहीं, संसार भर के लिये घातक है। 'सन्तति-निग्रह' करनेवाले पवित्र विचारों को नहीं रख सकते। वे 'सन्तति-निग्रह' के अप्राकृतिक अमानुषिक तथा घृणित उपकरणों को विषय-वासना तृप्त करने का साधन समझने लगते हैं। ऐसे भावों के लोगों की सन्तानें चाहे कम भी क्यों न हों, परन्तु जो भी एक दो होंगी, वे कलुषित भावों तथा संस्कारों की पुंज होंगी। 'सन्तति-निग्रह' से सन्तानों की संख्या तो नियमित हो जायगी परन्तु 'सन्तति-सुधार' न होगा। युरुप की प्रत्येक चीज़ भौतिक-वाद की दृष्टि से की जाती है। ईसा का सिद्धान्त था कि संसार भी मिल जाय और आत्मा का घात करना पड़े तो उस संसार पर थूक दो। वर्तमान युरुप का सिद्धान्त है कि दो पैसे बचते हों तो आत्मा को बेच डालो। सन्तति-निग्रह में यह तो देखा जा रहा है कि जितना भोजन है उस से अधिक खाने वाले कहीं पैदा न हो जांय, यह नहीं देखा जा रहा कि जिन्हें डरते २ पैदा किया जाता है उनमें आत्मा भी है या नहीं। वे समय के संस्कारों को लेकर उत्पन्न होते हैं या व्यभिचार के। युरुप अपनी सुध आप ले, परन्तु मैं यह निश्चय से

जानता हूँ कि भारत को 'सन्तति-निग्रह' के अश्लील तथा गन्दे उपायों के इस्तेमाल करने की ज़रूरत नहीं है। भारत को तो 'सन्तति-सुधार' के उपायों की ज़रूरत है। ऋषि दयानन्द के एक २ कार्य में इसकी तरफ़ इशारा है। इस इशारे पर काम नहीं किया गया। ऋषि दयानन्द के विशाल कार्य-क्रम के आधार में, मूल-भूत, यही इशारा है। 'सन्तति-सुधार' के काम को नींव में रख कर काम किया जाय तो ऋषि का कार्य-क्रम एक दम सफल हो सकता है, नहीं तो ज़माना भी लम्बा है उमर भी काफ़ी है, गुज़र तो हरेक की जाती ही है।

आर्य-समाज ऋषि दयानन्द का उत्तराधिकारी है। आर्य-समाज ने ऋषि के कार्य-क्रम को पूरा करना है। आर्य-समाज का परम कर्तव्य है कि इस प्रोग्राम की तरफ़ दृष्टि फिराये। समझ लेना चाहिये कि इस कार्य-क्रम के पूरा किये बग़ैर कुछ न होगा। आर्य समाज की वेदियों पर से 'सन्तति-सुधार' विषय पर व्याख्यान होने चाहियें, इस विषय के समाचार-पत्र निकलने चाहियें, प्रत्येक शहर की आर्य-समाज में इस विषय की उत्तमोत्तम हिन्दी-उर्दू-अंग्रेज़ी पुस्तकों का संग्रह होना चाहिये। इस सारे कार्य को पूरे उत्साह से चलाने के लिये प्रत्येक शहर में—

'सन्तति-सुधार-संघ'

अर्थात् Race Betterment Association की स्थापना होनी चाहिये। आर्यसमाज को इस संघ की पूरी २ सहायता करनी चाहिये। इस संघ में हिन्दु मुसलमान, ईसाई, पारसी, सभी को सभासद बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। क्योंकि अभी देश के कोने २ में इस सङ्घ की शाखाएं नहीं खोली जा सकतीं इस लिये मुख्य संघ गुरुकुल-कांगड़ी में स्थापित किया गया है और इस कार्य को विस्तृत रूप दिये जाने का विचार हो रहा है। अभी तक 'सन्तति-सुधार-सङ्घ' Race Betterment Association का कोई निश्चित प्रोग्राम नहीं बतलाया जा सकता, हां निश्चित उद्देश्य अवश्य बतलाया जा सकता है। 'सन्तति-सुधार सङ्घ' का यह उद्देश्य है कि माता-पिता इस बात को समझ जाँय कि देश को हीन तथा अपाहिज सन्तानों की आवश्यकता नहीं है। 'सन्तति-सुधार-सङ्घ' प्रत्येक माता-पिता अथवा माता-पिता बनने की उम्मीदवारी रखने वाले व्यक्तिके सन्मुख अपनी मांग रखता है। उसकी मांग है, 'उत्तम-सन्तति'। यह मांग देश के डूबते भाग्यों पर आँसू बहा कर तथा आने वाली आत्माओं पर माता-पिता की उच्छृङ्ख-

लता से होने वाले अन्याय पर आहें भर कर की जाती है। क्या इस मांग को पूरा करने के लिये देश के नवयुवक तैयार न होंगे? स्मरण रखो, इस मांग को करने वाला दूसरा कोई नहीं है। इस मांग को करने वाला—

"ऋषि दयानन्द"

स्वयं है। यह मांग ऋषि दयानन्द की एक २ पुस्तक में प्रत्येक पुस्तक के एक २ पृष्ठ में, प्रत्येक पृष्ठ के एक २ शब्द और अक्षर में मौजूद है! ऋषि दयानन्द ने जो चौमुखा विस्तृत प्रोग्राम देश के सन्मुख रखा है उस प्रोग्राम की सफलता के लिये 'सन्तति-सुधार-संघ' का प्रोग्राम आधार है और इसीलिये अनिवार्य है। मुझे पूर्ण आशा है कि आर्य-समाज की शक्तियें जो कभी २ अनावश्यक नोंक-झोंक में बिखरने लगती हैं इस एक प्रोग्राम पर केन्द्रित हो जांयगी और ऋषि के प्रारम्भ किये हुए कार्य को सफल बना कर छोड़ेंगी। *

* नोट—इस विषय पर जो विस्तार से पढ़ना चाहें वे गुरुकुल कांगडी, बिजनौर से 'अलङ्कार' मासिक पत्र के सन्तति-शास्त्र विशेषाङ्क (Eugenics-Special-number) को मंगा कर पढ़ें। इस अङ्क का मूल्य छः आने है। ——लेखक।

गोरखधन्धा

[श्री प्रो० वागीश्वर विद्यालङ्कार]

साधु जन जहां रहे दुख भोग, मौज हैं लूट रहे खल लोग।
शम्भु कर रहे जहां विषपान, राहु ले रहे सुधा का दान॥
न्यायमय! हे अनाथ के नाथ!, वहीं है छुपा तुम्हारा हाथ॥ १॥

धर्म के धनी जहां हैं दीन, फूल फल रहे कर्म से हीन।
कमल हैं जहां कीच के बीच, बाग में सत्यानासी नीच॥
सर्वदा अटल नियम के साथ, वहीं है छुपा तुम्हारा हाथ॥ २॥

सत्य से जहां कट रहे सीस, झूठ से हित है बिस्वे बीस।
जहां बिच बँधे चमेली फूल, ईश शिर रहे धतूरे भूल॥
गा सके कौन नाथ! गुणगाथ, वहीं है छुपा तुम्हारा हाथ॥ ३॥

आर्य्य समाज का कार्य्य

[श्री अयोध्यानाथ शर्म्मा, एम. ए. काशी]

महर्षि दयानन्द के द्वंद रहित स्वच्छ हृदय में यदि कोई चिंता थी तो आर्य्य जाति के भविष्य की, कोई सोच था तो गिरे हुए भारत वर्ष का, कोई कामना थी तो वेद प्रचार की। इन कार्य्यों के करने के लिये स्वामी जी ने अपना भावी कार्यक्रम जिस प्रकार स्थिर किया था वह तीन भागों में बांटा जा सकता है और जिस के अनुसार उन्हों ने अन्त समय तक काम किया और जिस के अधूरे रहने का खेद उन को उस समय हुआ था जब दुष्ट जगन्नाथ ने, उस परोपकार और दया की मूर्ति को, केवल कुछ रुपयों के लालच से, बहुत बारीक कांच पीस कर दूध में मिला कर दिया। १, मौखिक प्रचार और शास्त्रार्थों द्वारा पाखंड-खण्डन और वेद प्रचार। २, वेदों के भाष्य और दूसरे ग्रंथों द्वारा प्रचार की भूमि तय्यार करना और ३, अपने पीछे भी उपरोक्त दोनों कार्य्यों को सुचारु रूप से जारी रखने के लिये आर्य्य समाज के रूप में अपना एक स्थानापन्न छोड़ना। इस तीसरे उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए उन्होंने सन् १८७५ में सब से पहले बम्बई में आर्य समाज स्थापित किया।

आज आर्य्य समाज के कार्य को अन्य सभा समाजों द्वारा होता हुआ देखकर बहुत से सज्जनों ने यह भी सोचना प्रारम्भ कर दिया है कि अब आर्य्य समाज की कोई आवश्यकता ही नहीं रही। परन्तु क्या हम समाज के मुख्य कार्य की ओर, जिस से प्रेरित हो कर उस के प्रवर्त्तक ने उस की स्थापना की थी अपने कर्त्तव्य का पालन पिछले पचास वर्षों में जैसा चाहिए था वैसा करसके हैं? यदि नहीं, तो क्या हमने उस ऋषि के प्रति, जिसने सब प्रकारके सुखकी सामिग्री को तिलाञ्जली देकर, सांसारिक दुःखों का आह्वान कर लोगों के हित के लिये अपने सर्वस्व को हमारे ऊपर निछावर कर दिया, कृतघ्नी और अविश्वासी ठहरने का घोर पाप नहीं किया है।

आर्य समाज से सम्बन्ध रखने वाली कितनी ही बड़ी बड़ी संस्थायें विद्यमान हैं जिन में जनता प्रति वर्ष लाखों रुपए व्यय करती है और जिन में कार्य करने वालों की संख्या बहुत पर्य्याप्त है। परन्तु इस से वेद प्रचार सम्बंधी कार्य्य की पूर्त्ति किस अंश तक हो सकी है इस प्रश्न का उत्तर बड़ाही असन्तोषप्रद मिलता है। इस का कारण हमारी उदासीनता और अकर्मण्यता के अतिरिक्त

और क्या हो सकता है। जितना धन और शक्ति संस्थाओं के चलाने में लगाया जाता है उस का एक भाग ही प्रचार कार्य के लिये पर्याप्त होता। संस्थाओं का होना आवश्यक है परन्तु प्रचार का कार्य्य अच्छी तरह से और सन्तोष प्रद होना परम आवश्यक है।

प्रचार सम्बन्ध में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि प्रचारक का अपना आचरण अच्छा, बनावट से दूर और सादा हो। या कम से कम जिन सिद्धान्तों को वह जनता के सम्मुख रखता हो, उनकी अवहेलना वह स्वयं न करता हो।

खण्डन बुरा नहीं है परन्तु उसके करने की क्षमता होनी चाहिये। स्वामी जी महाराज खण्डन करते थे और बड़े ही ज़ोरों में करते थे, परन्तु उनके ऐसा करने पर भी लोगों की श्रद्धा और भक्ति उनके प्रति कम न होकर और भी प्रबल हो जाती थी, और उनके अनुयायियों की संख्या उत्तरोत्तर वृद्धि को ही प्राप्त होती गई। विधर्मी भी उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते और उनके उपदेशों को हृदयंगम करते थे। इसका कारण यह था कि वे बड़े विद्वान, आचारवान, महान थे। उनको किसी के प्रति द्वेष न था, और जो कुछ वे कहते थे शुभ भावनाओं और विचारों से प्रेरित होकर ही। इस लिये खण्डन का कार्य केवल उन्हीं थोड़े लोगों पर छोड़ देना चाहिए जो इस के सर्वथा योग्य हैं और जिन के खंडन से जनता केवल अप्रसन्न ही न होकर उन की ओर आकर्षित होती हुई उनके बतलाए हुए मार्ग पर चलने के लिए उद्यत हो जावे।

आर्य समाज जैसी उत्तर दायित्व पूर्ण संस्था के लिये मुख्य और परम कर्त्तव्य की ओर पूर्ण ध्यान न देना शोभा नहीं देता। अतः शिव रात्रि के शुभ अवसर पर समाजों को इस बात का निश्चय करना चाहिए कि वे अपनी शक्ति को प्रचार की ओर अधिक लगाएँ गी और महर्षि के सच्चे प्रतिनिधि होने का प्रमाण देंगी। वेद के प्रचार द्वारा ही वैदिक धर्म्म की उन्नति हो सकती है। लोक हित का ध्यान रख कर तथा समाज के नियमों को सम्मुख रख कर प्रत्येक आर्य का यह कर्त्तव्य ठहरता है कि वह वैदिक धर्म्म-प्रचार में पूर्ण सहयोग दे और अपनी समाज को इस ओर कार्य्य करने के लिए प्रेरित करे। ऐसा करने से ही शिव रात्रि का सच्चा व्रत धारण किया जा सकता है नकि बड़ी बड़ी बातें करने से। अंत में कल्याणकारी शिव से प्रार्थना करते हैं कि वह हम में बल और शक्ति दें कि हम अपने व्रत का पालन कर सकें।

खण्डन का फल

[श्री० पं० चमूपति एम. ए. 'आर्य-सेवक' अफ्रीका]

एक ओर अल्पशक्ति आर्यसमाज है और दूसरी ओर नीतिमत्ता तथा वैभव के शस्त्रों से सजा हुआ सांप्रदायिक संसार। ख्वाजाहसन निज़ामी का और किसी से वैर नहीं। सनातनियों के वह मित्र हैं, आर्य समाज के जन्म-वैरी। अहमदियों के पत्र तथा व्याख्याता यदि किसी पर दांत पीसते हैं तो आर्य समाज पर। और तो और, सनातनियों की वक्र दृष्टि भी आज इसी आर्य समाज ही पर है। सनातन धर्म कान्फरेंस के स्वागताध्यक्ष का भाषण यदि किसी के अत्याचार के हाथों छिपा २ करुण क्रन्दन करता था तो आर्य समाज के। पण्डित मौलीचन्द्र का भाषण उस विकट विष का एक कण था, जो कुछ समय से सनातनी महादेव के कण्ठ में फंसा हुआ आर्य समाज के विरुद्ध परवश फनियर की तरह मुंह बढ़ाता है पर दांत नहीं पाता। इन सभाओं, सोसाइटियों, समुदायों का बस चले तो इकट्ठे आर्य समाजकी इतिश्रीः करें और मिल कर उसकी चिता पर सन्तोष का श्वास लें।

आर्य समाज ! तूने क्या पाप किया है जिस का प्रायश्चित तेरी मौत से कराने की चारों ओर से तैयारियां हो रही हैं। तेरा अपराध है खण्डन, तीव्र खण्डन, निर्भय निश्शंक खण्डन। महात्मा गांधी जैसा सहन शक्ति का देवता इसी असह्य अपराध पर तेरी पीठ में छुरा घोंपने को उद्यत होगया था। हृदय कांपता है जब स्मरण आता है, महात्मा ने तुझ पर स्त्री-अपहरण का कुत्सित पाप आरोपित किया और उसकी असत्यता प्रमाणित हो जाने पर भी अपनी भूल को पी गया। आज ला० लाजपत राय कहते हैं तेरी शास्त्रार्थ की प्रचार प्रथा मध्यकालीन है, यूरोप में इस विधि को कभी का छोड़ दिया गया है। हाय यूरोप का जादू ! हम धर्म प्रचार का ढंग भी अब यूरोप से सीखने जायंगे ! लाला जी का उद्देश्य क्या है ? क्या आर्य समाज ईसाइयों की भांति अपना प्रचार प्रलोभन से करे—छल से करे—राजभक्ति के ढोंग से करे ? यूरोप की और विधि कौन सी है ? लाला जी ने पश्चिम का साक्षात् अवलोकन किया है और यहां केवल सुने सुनाए का परिचय है। तो भी आए दिन के Fundamentalists फण्डेमेण्टैलिस्ट और Modernists मौडर्निस्ट ईसाइयों के परस्पर वाद विवाद की सूचनाएं पत्रों में प्रकाशित होती हैं। यह शास्त्रार्थ नहीं तो और है क्या ? पण्डित मदन मोहन मालवीय जी ने भरी सभा में शास्त्रार्थ का आह्वान चाहा है। इस का उत्तर अब आर्य समाज क्या दे ? मौन ?

नेताओं को विचार एकता का है और आर्य समाज को सुधार का। नेता बल के भूखे हैं, सुधारक सत्य और सदाचार के। इनकी भ्रान्त दृष्टि में सदाचार सब से बडा बल है। देखें इतिहास

किस के परिश्रम की प्रशंसा करता है। भावी विजयी हम होंगे या हमारे राजनैतिक नेता। इस में हमारी अपनी अब की साक्षि तो कोरा पक्षपात होगी। समय बदल गया है। नहीं तो महात्मा जी का तथा लाला जी का लक्ष्य-बिन्दु एक है। महात्मा को भारतीयता के नाते हम पर रोष था, लाला को हिन्दुत्व के नाते है। यदि हमें अपनी सफलता अथवा सत्य परायणता का प्रमाण राजनैतिक नेताओं से लेना हो, तो हम तो पहिली ही वार इन के सम्मुख होते ही अनुत्तीर्ण हैं। हमारा परीक्षक अन्तरात्मा है। इस से अधिक स्थूल साक्षि हमारे शत्रु मन्यों की है-अर्थात् उनकी जो आज हमारी जान के प्यासे प्रतीत हो रहे हैं।

मुसलमानो! कुरान की कसम है। अहमदियो! कलामे पाक को हाथ में लेकर सच कहो, हमने तुम्हारा हित किया है या अहित? मौलाना मुहम्मद अली! तुम्हीं कहना, हमारे खण्डन की छाप मात्र से ही क्या तुम ने कुरान को सिर से पांव तक सद्भावों के भूषणों से मण्डित करने का प्रयत्न नहीं किया? क्या हमारे खण्डन-कुठार के घाव कुरान के कलेवर पर वीरों के प्रसाद की भान्ति कुरान को शर-शय्या पर लेटाए हुए भी उस से अमरता का स्वांग नहीं भरवा रहे? लो! कुरान स्वयं बोल उठा!

I कुरान सूरा २७, आया ६० में मुहम्मद महोदय के परमात्मा के दर्शनार्थ सातवें आसमान पर जाने का वर्णन किया है। बुराक़ नाम का गधा इस पुण्य यात्रा में खुदा के रसूल की सवारी होने से अमरता प्राप्त कर चुका है परन्तु मौ० मुहम्मद अली अपने कुरान-भाष्य में लिखते हैं:—

'भाष्यकार प्रायः सहमत हैं कि यहां संकेत आरोहण के स्वप्न की ओर है जिस से पवित्र सन्देशहरको अपने पलायन (हिजरत) के पश्चात् बड़ी सफलताओं का वचन दिया गया।'

Holy Quran Note 1441

II सूरा ४१ आया १० में पृथिवी के छः दिनों में बनाए जानेकी कथा है जैसे तौरा (Old Testament) में सूर्य के चौथे दिन निर्मित होने का वृत्तान्त है। हमारे ईसाई भाइयोंने दिन का अर्थ स्टेज कर लिया तो अहमदी क्यों पीछे रहने लगे! उक्त भाष्यकार के अपने शब्दों में—

'छः समयों या दिवसों में सृष्टि होने का अर्थ आसमानों और ज़मीनों के निर्माण में लगे कालकी इयत्ता प्रकाशित करना नहीं......वास्तव में छः काल......इन पदार्थों की सृष्टि की स्थितियां-स्टेजें-हैं,'

Holy Quran Note 2199

III शैतान पर मौलाना की टिप्पणि देखने योग्य है। सूरा ७ आया १२ पर आप लिखते हैं:—

'इस प्रकार यहां दिया वर्णन इन दो प्रकार के प्राणियों के शील के मुख्य गुणों का द्योतक है। यहां इस का अभिप्राय केवल यह है कि आग्नेय शील (के मनुष्य) ही पूर्ण पुरुष अथवा सच्चे सन्देशहर के अनुकरण से नकार करते हैं।'

Holy Quran Note 862.

कुरान में यहां वर्णन शैतान के आदम के पूजन से इनकार करने का है। सो देख लीजिये यहां आदम मुहम्मद होगया और शैतान उस के विरुद्ध विद्रोही लोग।

IV आदम से यों छुट्टी हुई तो उस के पुत्र आबील काबील कहां बच सकते हैं? सूरा ५. आया २७ पर यह आलोक चढ़ाया है:—

'परन्तु इस सारी कथा का अभिप्राय आलंकारिक लिया जा सकता है जिसका संकेत पवित्र सन्देशहर के विरुद्ध यहूदियों के षड्यन्त्रों की ओर है। यहां अत्याचारी तथा पापी भ्राता (एक वचन) का अर्थ इस्राईली (बहु वचन) हैं और धर्मात्मा भाई (एक वचन) का अर्थ इस्माईली हैं जिन का प्रतिनिधि पवित्र सन्देशहर है।'

Holy Quran Note 686

कथा ही उड़ गई। बे सिर पैर की बात को सिर पैर देने का प्रयत्न किया है। यह और बात है, हाथी का सिर गणेश की गर्दन पर पूरा आए या न आए।

V कुरानी बहिश्त को सर सैयद ने देखा—यह का नाम दिया था वह अब क्या बन रहा है? अहमदी भाष्यकार के अपने शब्दों में:—

'स्वर्ग और नरक दो स्थानों के नाम नहीं, किन्तु वास्तव में दो अवस्थाएं हैं। क्योंकि यदि स्वर्ग हो तो नरक नहीं हो सकता। इन आयतों के अनुसार स्वर्ग सारे आकाश (Space) पर व्यापक है।

Holy Quran Note 2454

कुर्आन कर्ता इतनी अन्वेषण-कारक बुद्धि के मालिक न थे। इस का प्रमाण कुर्आन के अन्यस्थल हैं। शुक्र है १३०० वर्ष के पीछे कोई नाम लेवा ऐसा भी हुआ जिसने पूर्वजों की भूल सुधार दी। सुपूत ऐसी ही सन्तति को कहा है।

VI बहिश्त की यह गति है तो हूरों का ठिकाना? इस पर एक बृहत् टिप्पण दिया है। प्रमाण कोई नहीं।

'इसलिए श्वेत आंखों वाली, विशाल नेत्रों वाली, पवित्र सुन्दरियां—इस आया में आई हूर और ईन—इस जीवन की सुन्दर स्त्रियां नहीं। यह स्वर्गीय आह्लाद (वर) हैं जो धर्मात्मा स्त्रियां

भी पुरुषों के साथ भोगेंगी।······पवित्रता और सुन्दरता का प्रतिनिधि स्त्रीत्व है, पुरुषत्व नहीं।

Holy Quran Note 2356

हम जानते हैं कुरआन के निष्पक्ष अध्येता उपर्युक्त टिप्पणियों के रचयिता पर खेंचातानी का दोष आरोपित करेंगे। हम भी उन के साथ सहमत हैं। परन्तु एक सुधारेच्छुक के लिए यह कुछ थोड़े सन्तोष का स्थान नहीं कि अरब के उपजे धर्म से विज्ञान और पवित्र आचरण की कवितात्मक ध्वनि निकले। अटकलपच्चू कहानियों को इस्लाम के प्रारम्भिक इतिहास का आलंकारिक रूप दिया जाए। बहिश्त का विलासिनी-गृह उखाड़ उस के स्थान आध्यात्मिक अवस्थाओं का स्वप्न देखने की ओर प्रवृत्ति हो। मोटी आंखों और पवित्र भावों में क्या सम्बन्ध है-यह चाहे एक साहित्यिक समस्या ही रहे परन्तु स्त्रीत्व को पुण्य भावों का प्रतिनिधि अरबी सन्देशहर के मुख से—नहीं हम भूल गए, उस के भी खुदा के मुख से—कहलवाना बीसवीं शताब्दी का चमत्कार कहो तो है, चौदहवीं सदी का क़यामत का निशान कहो तो है।

विस्तार भय से पुराण और बाइबल का उद्धरण आज उपस्थित नहीं करते।

यह है खण्डन का मीठा फल, जिस का आस्वाद हमारे विरोधी होंट चाट कर लेते जाते हैं और बस नहीं करते। यह और बात है खाते भी हैं और खिलाने वाले को गाली भी देते जाते हैं। अभी इस फल का सहवर्त्ती विष है जो आर्य समाज देख रहा है और उस का उन्मूलन अपना पवित्र कर्तव्य समझ रहा है। हम भविष्य-वक्ता नहीं। संभव है, इस घोर संग्राम का परिणाम जो आर्य समाज ने अपने खण्डन-कुठार की पैनी धारा से संसार के या कम से कम भारत के कोने २ में मचा दिया है, समस्त आर्यों का प्राण-घात हो। संभव है, वैरी जन-बाहुल्य के बल से आर्य समाज को धराशायी कर उस पर सुख की नींद सोएं। हमें सन्तोष होगा यदि हमारे दहकते हुए शरीरों की अग्नि कम से कम रोग कीटों को स्वाहा करदे जो अभी कुरान में हैं, पुराण में हैं, और इंजील आदि सांप्रदायिक पुस्तकों में हैं। यदि हमारी राख पर पवित्र जातीयता का मन्दिर खड़ा होजाए तो अहो भाग्य हैं हमारे प्राणों के जो इस यज्ञ में आहुति बन कर गिरें। हम समझौता नहीं, सचाई चाहते हैं। मिश्रण नहीं, एकीकरण चाहते हैं। हम भेदभाव को सहता नहीं, ऐक्य के भाव में लीन कर देना चाहते हैं। हमारे उद्दिष्ट ऐक्य का दूसरा नाम सत्य है। हम गांधी नहीं, मालवीय नहीं, लाजपत नहीं, दयानन्द के चेले हैं।

महात्मा ने सच कहा, दयानन्द असहिष्णु थे—असत्य के असहिष्णु, कदाचार के असहिष्णु, वैमनस्य के असहिष्णु। उन का लक्ष्य ऐक्य था और उन का वह ऐक्य पर्याय था शुद्ध स्वच्छ सत्य का। वह नेता न थे, सुधारक थे।

दिव्य मूर्ति

(श्री० विद्यालङ्कार)
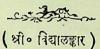
क्या खूब चीज़ थी वह दुनियां में एक आई।
ताक़त न आदमी की रूहानी एक आई ॥ १ ॥

बरसे हैं ईंट, पत्थर, शोले न डर ज़रा है।
बदले में इस के उसने अमृत नदी बहाई ॥ २ ॥

बादल घिरे हैं काले अन्धेर छा रहा है।
अपनी चमक से सबको रस्ता दिखाने आई ॥ ३ ॥

देते ज़हर का प्याला बढ़ कर खुशी से लेती।
बंधन में आप बंध कर जग को छुड़ाने आई ॥ ४ ॥

ख़म ठोक कर जो उससे लड़ने को आरहे थे।
भागे हताश उसने उंगली जो इक दिखाई ॥ ५ ॥

सर्दी क्या और गर्मी उस पर असर करेंगी?
उसने मुकाबिले में बस धूनि है रमाई ॥ ६ ॥

बन्दा बना के केवल बस एक उस प्रभु का।
सब में ही प्रेम की वह बीणा बजाने आई ॥ ७ ॥

पहिना गले में उस के देखो विजय की माला।
कहती है कौन तुम ने काली घटा हटाई ॥ ८ ॥

खिलते से चेहरे पर अभिमान की न रेखा।
कुछ काम हो गया है, मुसकान एक आई ॥ ९ ॥

संसार आज उस के कदमों पै चल चुका है।
फैली है बस लहर वह उस ने जो थी चलाई ॥ १० ॥

वह है गुरू हमारा हम एक शिष्य उस के।
सच्ची है राह केवल उसने जो है बताई ॥ ॥ ११ ॥

स्वामी दयानन्द का उद्देश्य

(देवतास्वरूप श्री भाई परमानन्द जी)

शिवरात्री इस लिए प्रसिद्ध है कि उस रात्री को स्वामी जी के हृदय में, जब कि अभी वह लड़के ही थे, यह भाव पैदा हुआ कि इस जाति के धर्म और ज्ञान पर एक बड़ा भारी अज्ञान का पर्दा छा गया है। स्वामी जी को इस के पीछे इस बात की बहुत ही चिन्ता रही उन के त्याग का कारण उन की भगिनी व चचा की मृत्यु थी जिन से इन्हें बहुत ही प्यार था। घर बार को त्याग देने के पीछे स्वामी तपस्या और विद्याध्ययन में लगे रहे। उन का बहुत सा समय इधर उधर घूमने में ही गुज़रा परन्तु इस समय में उन्होंने अपने उद्देश्य का ठीक निश्चय नहीं किया था। उन के चित्त में एक बड़ी भारी आकांक्षा सी प्रतीत होती है। उन के अपने भ्रमण करने के समय उन्होंने यह भी अनुभव कर लिया कि इस देश में अविद्या और ठगी की कोई सीमा नहीं है। उनका चित्त चाहता था कि जाति को इस अंधेरे गढ़े से किसी प्रकार से बाहर निकालें किन्तु उन्हें चिरकाल तक कोई उपाय सूझता न था।

उन की आयु इस समय बहुत बड़ी हो गई थी जब वे मथुरा में स्वामी विरजानन्द जी के पास अध्ययन किया करते थे। स्वामी दयानन्द के उद्देश्य का निश्चित हो जाना उन के प्रज्ञा-चक्षु गुरु विरजानन्द की कृपा से हुआ। विद्या प्राप्ति के पश्चात् उन से विदा होते हुए गुरु ने श्री स्वामी जी को दो बातों में उन के सारे जीवन का उद्देश्य बता दिया और इन्हीं बातों में जाति और धर्म के रोग की औषधि बता दी। वे दो बातें इस वाक्य में पाई जाती हैं 'वेदों का प्रचार करो और देशी रियासतों का सुधार करो।' इस देश के पतन का कारण यही था कि ब्राह्मणों ने वेदों के अध्ययन को छोड़ दिया था और देश के क्षत्रिय राजनीति और क्षात्रधर्म को भूल गए थे। धर्म की रक्षा वेदों के प्रचार से हो सकती थी और देश की रक्षा के लिये क्षत्रियों को अपने धर्म का परिचय दिलाना ज़रूरी था। इन दोनों मार्गों पर चलने के लिए स्वामी दयानन्द ने पहले पहल तो ब्राह्मणों और संस्कृत के विद्वानों के बीच में जाकर असत्य का खण्डन और सत्य का मण्डन करने का काम शुरू किया। बनारस में जा

पंडितों के साथ शास्त्रार्थ करने में उन का अभिप्राय यही था कि वे ब्राह्मणों के सामने खुले प्रकार से यह प्रगट कर दें कि जब से उन्होंने वेदों के मार्ग को छोड़ा है तभी से इस देश का पतन आरम्भ हुआ है और इस का पुनरुत्थान उसी समय होगा जब हिन्दु जाति फिर से वेदों के झंडे तले आ जायगी। इसी उद्देश्य का प्रचार करने के लिए स्वामी जी ने आर्यसमाज की स्थापना की।

स्वामी जी के उद्देश्य का दूसरा भाग देशी रियासतों में सुधार का था। स्वामी जी ने कुछ समय धर्म के प्रचार में लगाया परन्तु उस से अधिक समय उनका राजपूताने की रियासतों में गुज़रा जिस में कि उन का यही यत्न था कि किसी प्रकार से भारत की क्षत्रिय जाति में अपने धर्म का प्रेम उत्पन्न होजाय। उन के जीते जी राजपूत राजाओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने अपनी स्थापित की हुई परोपकारिणी सभा में भी इन राजाओं को ही अधिक भाग दिया। परन्तु उन के देहान्त हो जाने से इन राजाओं पर दूसरे प्रभाव पड़ गए और स्वामी जी का उद्देश्य अधिक सफल न हो सका।

स्वामी जी के दिल में राजपूताने के राजवंशों के लिए जिन्होंने पिछले इतिहास में जाति और धर्म की रक्षा के लिए इतना कुछ किया था अधिक श्रद्धा थी। इसलिये उन्होंने अपना वह उद्देश्य राजपूताना में ही पूरा करने का प्रयत्न किया। सम्भव है स्वामी जी के अपनी जन्मभूमि में न जाने का कोई और कारण भी हो। यदि वह काठियावाड़ में जाकर इसी उद्देश्य को सामने रख प्रचार करते तो बहुत सफलता की आशा हो सकती थी। यद्यपि स्वामी जी ने अपनी जन्म भूमि की ओर इतना अधिक ध्यान नहीं दिया किन्तु आज आर्य-समाज के लिये इस से अधिक सन्तोषजनक बात क्या हो सकती है कि इसी स्वामी जी की स्वजन्मभूमि के रईस और ठाकुर स्वामी जी की यादगार बनाने में इतने उत्सुक पाए जाते हैं।

यह भूमि अति प्राचीन काल से क्षत्रिय जातियों की निवास भूमि चली आती है। यदि इस भूमि के ठाकुर लोग अपने धर्म को जान देश की उन्नति में हाथ बटाएँ तो वह निस्सन्देह अपनी भूमि के उस महापुरुष के उद्देश्य को—जो कि इस समय में एक अकेला देश और जाति को जगानेवाला था—सफल करेंगे।

तपस्वी दयानन्द ।

ऋषि दयानन्द के जीवन और सन्देश की सच्चाई उसके देश वासियों पर प्रकट होती जाती है। मेरा विश्वास है कि आगामी दिनों में यह और भी अधिक प्रकट होगी।

गत वर्ष दिवाली के अवसर पर लण्डन की एक सभा में ऋषि की स्मृति में प्रशंसा पूर्ण उद्‌गार निकले थे। कुछ दिन हुये कि जञ्जीबार (पूर्व अफ्रीका) से आये एक व्यक्ति ने मुझे बतलाया कि वहां के स्त्री पुरुषों की बड़ी संख्या पर दयानन्द का गहरा प्रभाव है, मैं उसकी जीवनी में एक तीन तार का धागा फैला
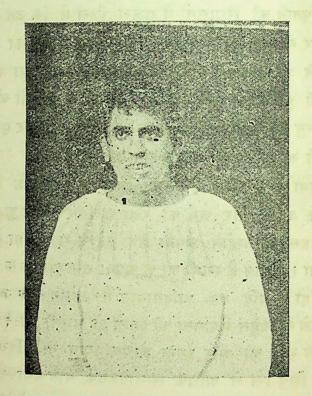
(ऋषि भक्त साधु टी. एल. वास्वानी)

हुआ देखता हूं वह 'ऋषि' 'योगी' और 'कर्मवीर' है। मैं जब उस के चित्र को देखता हूं तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह मानों अपने देश और प्राचीन इतिहास की पुकारों को सुन रहा है ! कोई प्रेरणा उसे घर से बाहर निकालती है, बहुत वर्षों तक इधर उधर घुमाती है और अन्त में वह 'प्रज्ञाचक्षु सन्यासी' के पास आता है और उसका आशीर्वाद पाकर अपने मिशन पर चल देता है। वह अपने जीवन में तपस्या किये बिना अपने 'मिशन' पर नहीं निकलता। एक 'तपस्वी' ही को 'मनुष्यों के शिक्षक' बनने का अधिकार है, क्या अर्वाचीन भारत में दयानन्द से बढ़ कर कोई तपस्वी हुआ है ?

उस दिन से डरो।

(श्री—संतराम बी० ए० मंत्री, जात-पात तोड़क मंडल)

जिनके नेत्र हैं वे देख रहे हैं, जिनके बुद्धि है वे समझ रहे हैं, और जिनके ज्ञानेन्द्रियां हैं वे अनुभव कर रहे हैं कि भारत में शीघ्र ही एक घोर विप्लव होने वाला है। हाँ, एक ऐसी महाज्वाला प्रज्वलित होने को है जिस में यहाँ की सर्व अन्यायमूलक रूढ़ियाँ, पक्षपातयुक्त रीतियाँ, और लोक-अरिष्टकारिणी संस्थाएं—चाहे वे समाजिक हों और चाहे राज नैतिक—भस्मीभूत हो जायँगी। उस प्रलयंकरी पावन ज्वाला में से इस देश का सारा सामाजिक और राजनीतिक मैल जल जायगा, और जो चीज़ बचेगी वह कुन्दन हो कर चमकेगी। देश में स्वार्थपरता, अन्यायप्रियता, और जन्माभिमान का विषैला फोड़ा इतना अधिक बढ़ चुका है कि राष्ट्र-रूपी शरीर का कायाकल्प होने के लिए समस्त देश का प्रायश्चित्त की भट्टी में जलना अवश्यम्भावी है।

मैं जितना सोचता हूँ मुझे यही निश्चय होता है कि आर्य जाति के अधःपतन और दुर्दशा का एक मात्र मूल कारण जात-पात का भाव है। यही जात-पात एक फूट की जननी है जिसने एक जाति को असंख्य छोटे छोटे मज़बूत पिंजड़ों में बन्द कर दिया है। इस जाति के नर-नारी जात-पात के बंधनों में फंसे हुए शिकारी के जाल में कबूतरों की तरह तड़प रहे हैं। जिसने यह जात-पातका फन्दा तैयार किया उसकी बुद्धि को बलिहार है। लोग कहते हैं कि अंगरेज़ Divide and rule अर्थात् फूट डाल कर शासन करने के सिद्धान्त पर चलते हैं परन्तु ज़ात पात का बनाने वाला तो अंगरेज़ों को भी मात कर गया। ऐसा मज़बूत जाल तैयार किया कि बड़े बड़े सुधारक भी उसे तोड़ने से कान पर हाथ धरते हैं। हमारे नेता सरकार का मुकाबिला कर लेंगे, जेल में चले जायंगे, आर्थिक हानि उठा लेंगे, परन्तु ज़ात-पात में विश्वास न रखते हुए भी उन्हें इसे तोड़ने का साहस नहीं होता। बड़े बड़े नेताओं को इस तंत्र से दुम दबा कर भागते देखा गया है।

आर्य समाज की आज कल यह दशा है कि उस के सदस्य की स्थिति जब तक साधारण रहती है तब तक उस के अन्दर सब प्रकार के सुधार का भाव

जोरों पर रहता है, परन्तु अमीरी में पैर रखते ही वह सब सुधारों का कम से कम कर्म से विरोध करने लगते हैं। अब वह सामाजिक सुधार को बखेड़ों का मार्ग बता कर योग और उपनिषदों की व्याख्या में ही आनन्द लेने लगता है। प्रायः देखा जाता है कि वेदों की व्याख्या करते समय बाल की खाल उतारने वाले महाशय इस क्षेत्र में पैर तक रखने का साहस तक नहीं करते। एक बार एक मित्र से बात चीत में मैंने पूछा कि क्या कारण है कि आप की समाज (कालेज-विभाग) के बहुत ही कम लोग जात पात तोड़क मण्डल के सदस्य बने हैं। तो उन्हों ने साफ़ कहा कि इस पार्टी में प्रायः अमीर लोग हैं और अमीर लोग प्रत्येक सुधार के विरोधी होते हैं। राज्यक्रान्ति और समाज क्रान्ति करने वाले प्रायः मध्यम स्थिति के लोग ही हुआ करते हैं।

आर्यसमाज की संस्थाएँ—इस के स्कूल, इस के कालेज, इस की कन्या पाठशालाएँ इस के उद्देश्यों को पूरा नहीं कर रहीं। इन संस्थाओं से प्रति वर्ष इतने लड़के और लड़कियां पढ़कर निकलती हैं, परन्तु उन में से सौ पीछे एक को भी ज़ात-पात तोड़ने का साहस नहीं होता। वर्ण-व्यवस्था गुण-कर्म स्वभाव से है, इस पर जबानी चाहे सैकड़ों व्याख्यान दिला लो, परन्तु प्रोफेसर साहब जब पुत्री के लिये वर ढूंढ़ने बैठेंगे तो ज़ात से बाहर नहीं जा सकेंगे। उपर्युक्त संस्थाओं को हम बाज़ार के तनूरों से उपमा दे सकते हैं। लोगों को रोटी खानी है। जो भी तनूर खोलेगा वे वहीं खाने चले जायंगे। सनातनियों, सिक्खों, देव-समाजियों, मुसलमानों और ब्राह्मों, सब ने कालेज और स्कूल खोल रक्खे हैं। आर्यसमाज की इस में कुछ विशेषता नहीं। इन संस्थाओं का खोलना सरकार का कर्त्तव्य है और वह खोल भी रही है। आर्यसमाज का जन्म किसी उच्चतर कार्य के लिए—मनुष्य और मनुष्य के बीच झूठे और बनावटी भेद को मिटाने के लिए—हुआ था यदि वह इस कार्य को नहीं करता तो उसका होना और न होना बराबर है। कालेज और हस्पताल खोलने, अकाल और बाढ़ के पीड़ितों की सहायता देने में ईसाई धर्म उनसे कहीं बढ़ चढ़कर है।

क्या कोई माता का लाल ऐसा है जो छाती पर हाथ रखकर कह सके कि ज़ात-पात के रहते शुद्धि अछूतोद्धार और हिन्दू-संगठन का प्रश्न सच्चे अर्थों में हल हो सकता है? यदि आज आर्यसमाजी ज़ात-पात को छोड़कर गुण-कर्म-स्वभावानुसार विवाह करने लग जांय—यदि वे दूसरे धर्मों को छोड़कर आने

वालों के साथ बेटी का सम्बन्ध करने में सब संकोच को छोड़ दें—तो आज ही सौ पीछे पचानवे मुसलमान वैदिक धर्म की शरण में आ जायँ। मुसलमानों के दौरात्म्य को दूर करने का ज़ात-पात को छोड़ने के सिवा और कोई भी उपाय नहीं। उन को आत्मसात् करने—भोजन के समान उन को अपने शरीर का अंग बनाने—से ही इस देश की राजनीतिक और धार्मिक समस्या हल हो सकती है।

ज़ात-पात के भाव ने केवल यही नहीं कि शुद्धि ही का द्वार बन्द कर दिया हो, यह स्वयं हिन्दुओं में भी अपने विष का प्रभाव दिखा रहा है अछूतों को जाने दीजिए, हिन्दुओं की स्पृश्य जातियों में भी जिन को "छोटी" जातियां कहा जाता है उन के अन्दर अपने को उच्च समझने वाली जातियों के प्रति अविश्वास का भाव जागृत हो रहा है। वे समझने लगे हैं कि ब्राह्मण, खत्री और बनिए हमें घृणा की दृष्टि से देखते और हमारे अभ्युदय पर द्वेष से जलते हैं। यदि कोई नाई या कहार का लड़का अपनी योग्यता से किसी अच्छे पद पर पहुंच जाय तो ये लोग उस का अपमान करने का यत्न करते हैं। म्युनिसिपल कमेटियों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों में, जहां प्रजा के मत से सदस्य चुने जाते हैं, इन लोगों की यही चेष्टा रहती है कि कोई "छोटी" जाति का मनुष्य सदस्य न बन जाय। यह रोग हिन्दुओं ही में नहीं, आर्य समाजियों में भी बड़े जोर से फैल रहा है। मेरे एक होशियारपुरी मित्र म्युनिसिपल कमेटी के चुनाव में इस द्वेष का शिकार हो चुके हैं।

अभी तक तो हिन्दुओं में ब्राह्मण और अब्राह्मण की, काश्तकार और ग़ैर काश्तकार की, बनिए और जाट की ही बांट थी, पर अब "उच्च जाति" और "छोटी जाति" की भी एक नई बांट शुरू होगी। सरकार ने मुसलमानों को विशेष अधिकार देना आरम्भ कर दिया है। ये "छोटी जाति" वाले भी अपमान से बचने के लिए हिन्दुओं से अलग होने पर विवश होने को हैं। इस से उच्च जातियों के रक्त को "पवित्रता" और "हिन्दू संस्कृति की रक्षा" सहज में हो सकेगी। अभी तक मुसलमानों का दौरात्म्य ही इन की "रक्त-शुद्धि" कर रहा है फिर "छोटी जातियां" भी, जो हिन्दू होते हुए भी अहिन्दू हैं, उस रक्त को "पवित्र" बनाने में सहायता देने लगेंगी। उस समय फूट की चण्डी भयङ्कर ताण्डव नृत्य करेगी और योगिनियां अट्टहास्य पूर्वक दम भरती हुई जाति का

रक्त-पान करेंगी। हा, वह दिन कितना भयावना होगा, कितना अनिष्टकारी होगा। परस्पर की फूट से यह जाति छिन्न भिन्न हो जायगी।

महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज़ की स्थापना ही इसलिए की थी कि वह इस अन्याय और स्वार्थमूलक जन्माभिमान को दूर करके आर्यों को नष्ट होने से बचाए, परन्तु खेद है कि वह आप ही उस का शिकार हो गया। आर्यसमाज में भी धवन, चोपड़े, शर्मा, वर्मा आदि नाम बड़े अभिमान के साथ लिखे जाते हैं। बीस वर्ष से आर्यसमाज के सभाव चले आते हैं, परन्तु अवस्था यह है कि ज़ात-पात को तोड़ना तो दूर इसके विरुद्ध लेकचर तक दिलवाने से घबराते हैं।

समझते हो, आर्यसमाजियों की इस उदासीनता का क्या परिणाम होगा? जिस उद्देश्य के लिए किसी संस्था का अस्तित्व होता है जब वह उस को पूरा नहीं कर सकती, तो फिर वह जीवित नहीं रह सकती। उसे किसी दूसरी के लिए स्थान खाली करना पड़ता है। ज़ात-पात का क़िला तो गिरा चाहता है। इस पर चारों ओर से वज्र-वृष्टि हो रही है, इस की दीवारें हिल रही हैं। इस की पर नहीं कह सकते इस को भूतलशायी करने का श्रेय किस को प्राप्त होगा। आर्यसमाज के नवयुवकों से हमारा निवेदन है कि बुड्ढे तो अपना बाजा बजा चुके। अब आर्यसमाज की गौरवरक्षा आप के हाथ है। अवसर आ गया है कि आप ज़ात-पात का विध्वंस करने के लिए कटिबद्ध हो जायं प्रत्येक युवक सच्चे हृदय से यह प्रतिज्ञा करे कि अपनी ज़ात में मुझे अनुकूल लड़की मिलने पर भी मैं समाज और देश के हित के लिए जाति-बन्धन को तोड़ कर ही विवाह करूंगा जिस प्रकार तरुण टर्कों ने परदा, बहु विवाह और खिलाफत आदि पुरानी और हानिकारक संस्थाओं को तिलांजलि देकर उन्नति के मार्ग पर पग रक्खा है, उसी प्रकार हमें भी वीरों की तरह इस ज़ात-पात के साथ को कुचलना पड़ेगा, अन्यथा हमारा कल्याण नहीं।

> "यदि दयानन्द न होता तो आज तक वेदों की चर्चा सर्वथा लुप्त हो गई होती और आर्यत्व, क्रशएनिटी के रूप में बदल गया होता।"
>
> महामहोपाध्याय शिवदत्त
> प्रोफेसर ओरियण्टल कालिज लाहौर

मौन व्रत

(कविराज हरनामदास बी० ए० आयुर्वेद विद्यारत्न–लाहौर)

स्त्रियां अपने मासिक धर्म्मादिसम्बन्धी रोग तथा पुरुष अपने वीर्य्य संबंधी रोग सब से छुपाने का यत्न करते हैं। और इन के विषय में मौन व्रत धारण करते हैं तथा कष्ट उठाते हैं॥

मैं प्रायः इन ही रोगों की चिकित्सा का इलाज करता हूं॥ अपना पूरा हाल भेज कर मेरी सेवा से लाभ उठावें॥ निम्न लिखित औषधियां शीघ्र ही फल दिखाती हैं॥

(१) सुप्रसावक बंधन १) बच्चा पैदा होते समय स्त्री को कष्ट नहीं होता

(२) सोम पाक १) सफ़ेद पानी को निश्चय पूर्वक अच्छा करता है मासिक धर्म्म के सब विकारों को ठीक करता है।

(३) गर्भ दाता १०) इस के प्रयोग से गर्भ स्थापित होता है। बहुत आजमाई हुई दवाई है।

(४) पुत्र दाता १०) गर्भ के ३ मास के अन्दर १ वार वरतें। पुत्र न हो तो दाम वापस।

(५) शक्ति रसायन ५) दुबले पतले स्त्री पुरुषों को मोटा ताजा करती है॥ पहले अपना तोल कर लेना॥

(६) धातु रसायन २॥) वीर्य्य को सब कमज़ोरियां तथा स्वप्न दोषादि ठीक करतो है।

(७) सिद्ध मकरध्वज ४८) तोला॥ इस से बढ़कर संसार में और कोई दवाई अधिक बल वीर्य्य को बढ़ाने वाली नहीं॥

हदायत नामा खावन्द—१।) रेशमी जिल्द। घरों में जितनी भी अशन्ति और दुःख उत्पन्न हो जाते हैं वह प्रायः पति की अज्ञानता के कारण होता है॥ यह पुस्तक पति पत्नी दोनों का जीवन सुधार देगी॥ (उर्दू)

भोजन शिक्षक।) मेवे, दाल, अनाज, सबजीयां जितनी खाने की वस्तु हैं सब के गुण अवगुण लिखे हैं। उर्दू की पुस्तक का नाम तालीमेगिज़ा है उसका दाम है॥

हरिज्ञान मन्दिर लाहौर।

हिन्दी की उत्तम २ नवीन और सचित्र पुस्तकें

स्त्री शिक्षाः—

पुस्तक	मूल्य
माता और पुत्र	१॥=)
महारानी शकुन्तला सजिल्द	१।)
पती पत्नी प्रेम	॥।)
दमयन्ती	।)
द्रोपदी सत्यभामा सम्बाद	=)
पार्वती	२।)
सुकन्या	१।)
गृहलक्ष्मी	१॥)
पुत्री शिक्षक	॥)
गृह शिक्षक	॥।)
शिशु सुधार	॥)
गृह धर्म	।॥)
उर्वशी	१)
सीता बनबास	।=)
अञ्जना देवी	॥=)
स्त्री सम्बोधनी	२॥)
नारायणी शिक्षा	२)
मनोहर कहानियां	।॥)
महासती मंदालसा	१॥)
सच्ची देवियां	।)
राजस्थानकी वीररानियां	१)
चितौड़ का शाका	।)
राजपूतनीका विवाह	।)
विधवा	।-)
मधूमती	≡)॥
गीता भाषा	१)

चुने हुए सामाजिक; सचित्र उपन्यास

पुस्तक	मूल्य
शाही लकड़हारा	२)
शाही डाकू	१॥)
शाही जादूगरनी	१॥)
शाही पती परायणा	॥=)
शाही चोर	)
भाग वन्ती	१॥)
सुप्रभात	१॥)
कर्तव्य घात	१॥)
प्रेम ए बना के क्यों मेरी मट्टी पलीद की	२)
कुसुम संग्रह	१॥)
शैल बाला	१)
गोरा	१॥)
टाम काका की कुटिया	१)
सम्राट अशोक	१॥)
भारत के महा पुरुष	५॥)
परशराम	३)
दङ्गल प्रभात	५)
देवदास	१)
मनोहर ऐतिहासिक (कहानियां)	१॥)
मनोरञ्जक कहानियां	१)
सेवा सदन	३)
प्रेम आश्रम	३॥)
रागिणी	४)
रंग भूमि	५)
प्रेम प्रसून	१)
राव बहादुर	।॥)
नट खट पांडे	१॥)
गधे की कहानी	॥।)
कृष्ण कुमारी	२)
प्रेम गंगा	१)
चरित्र हीन	३।)
नंदन निकुंज	१।)
मंजरी	१≡)
मूर्ख मंडली	॥=)
शान्ती नकेत	१।)
सत्या नन्द	१॥)
प्रेम	॥)
कुंवर सिंह	२)

गीता पर भाष्य

पुस्तक	मूल्य
गीता योग प्रदीप (पं० आर्य मुनी कृत)	३)
गीता भाष्य पं० राजा राम कृत)	२।)
गीता गुटका अर्थसहित	।॥)
गीता रहस्य	४॥)
गीता गुटका मूल	॥)
सरल गीता	१॥)

नारायण दत्त सहगल ऐंड संस

पुस्तक विक्रेता, अध्यक्ष आर्य बुक डिपो

लोहारी गेट लाहौर

भाद्रपद
१९९४

आर्य

Regd. L. No.—2757

वैदिक तत्त्वज्ञान और धर्म का प्रचारक पत्र

वार्षिक मूल्य ३)
एक प्रति ।=)

सम्पादक—
पं० प्रियव्रत वेदवाचस्पति

आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब
गुरुदत्त भवन, लाहौर

विषय-सूची

आर्य के ग्राहक बनिये और दूसरों को बनाइये यह आपका कर्तव्य है।

ग्राहकों से—आर्य अङ्गरेज़ी मास की ५-६ तारीख को प्रकाशित हो जाता है। पत्र न मिलने की अवस्था में पहिले अपने डाकख़ाने में पूछताछ कीजिये। फिर अङ्गरेज़ी मास की २० तारीख़ से पहिले पहिले हमें सूचना दीजिये। इसके पश्चात् हम पत्र भेजने के उत्तरदाता न होंगे। अपना पता बदलने की सूचना भी हमें तत्काल दीजिये।

पत्र-व्यवहार करते हुए अपना ग्राहक-संख्या अवश्य दीजिये
पता ग्राहक संख्या वाले चिट पर लिखा होता है।

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । अपघ्नन्तोऽराव्णः ॥

भाग २२ | लाहौर, भाद्रपद १९९४, सितम्बर १९३७ | अंक ५

[दयानन्दाब्द ११३]

वेदोपदश

—※—

हे इन्द्र तू ही मेरा आश्रय है !

न घा त्वद्रिक् अपवेति मे मनः त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रिय ।
राजेव दस्म निषदोऽधि बर्हिषि, अस्मिन् सु सोमे ऽवपानमस्तु ते ॥

ऋक् १० । ४३ । २ ।

शब्दार्थः [हे इन्द्र] (मे) मेरा (त्वद्रिक् मनः) तेरी तरफ गया मन (न घ अपवेति) अब कभी लौटता नहीं, तुझ से हटता नहीं, (पुरुहूत) हे बहुतों से पुकारे गये ! (कामं) अपनी सब इच्छा मनोरथ कामना को (त्वे इत्) तुझ में ही (शिश्रिय) मैंने आश्रित कर दिया है । (दस्म) हे दर्शनीय ! हे परम सुन्दर ! तू (राजा इव) राजा की तरह (बर्हिषि अधि) मेरे हृदयासन पर (निषदः) बैठ जा (अस्मिन् सुसोमे) इस उत्तम सोम आत्मा में अब (ते) तेरा (अवपानं अस्तु) अवपान हो,

उतर कर पीना हो।

भावार्थः—हे देव ! मैंने संसार में बहुत विहार किया, बहुत इच्छायें कामनायें पालीं, बहुत भटका; परन्तु जब से मेरा मन तेरी तरफ गया है जब से शास्त्र श्रवण द्वारा, तेरे एक सच्चे भक्त (गुरु) द्वारा, तेरे स्वरूप की एक झांकी मुझे मिली है तब से मेरा मन मुग्ध हो कर ठहर गया है। हे दर्शनीय ! तुझे देख कर मैंने सब कुछ पा लिया है। जिस प्यारे अमर तत्व को न पा लेने से सब व्याकुलता थी वही पा लिया है। तेरे स्वरूप ने दीख कर ऐसा मोहित कर लिया है कि अब मेरा मन हे परम सुन्दर ! तुझ से जरा देर को भी हटना नहीं चाहता है। मैं अब अन्य किस वस्तु की कामना करूं ? मेरी सब इच्छा कामना अभिलाषा, मनोरथ, सब का तू ही एक आश्रय हो गया है। अब मुझ में दीखने वाली कुछ स्वाभाविक कामनायें भी जिस में अवलम्बित हैं वह एक तेरी ही कामना रह गई है। हे मेरे हृदय को सब अन्य कामनाओं से शुद्ध कर देने वाले देव ! अब तुम मेरे इस निष्काम हृदयान्तरिक्ष को अपने इस मुग्ध करने वाले दर्शनीय स्वरूप से परिपूर्ण कर दो, मेरे अन्तःकरण के आसन पर आ विराजो। राजा की तरह मेरे हृदय के सिंहासन पर आरूढ़ हो जाओ। हे अभीष्ट देव ! तुम मेरे हृदय के शासक, नियन्त्रक, राजा, स्वामी हो जावो। हे समस्त प्रजाओं द्वारा पुकारे गए पुरुहूत ! मेरे महाभाग्योदय से जब तुम मुझे एक बार मिल गये हो तो मैं तुम्हें क्यों गंवा दूं। अतः अब तुम मुझ में स्थिर हो जाओ, आ बैठो। हे दर्शनीय ! तुम्हें एक बार देख लेने पर अब मैं तुम्हें आंखों से क्षण भर के लिये भी ओझल नहीं करना चाहता। अतएव कहता हूँ कि इस मेरे हृदय को अपना निवास स्थान बना लो। हे "रसेन तृप्त !" तुम अपने परिपूर्ण स्वरूप के सोमरस से सदा ही तृप्त हो, मैं तुम्हें अपने हृदय में निमन्त्रित कर के क्या सुख दे सकूंगा ? परन्तु नहीं, मेरा भक्त मन कहता है तुम्हें भी विशुद्ध हुई आत्मा को देख कर अवश्य सुख तृप्ति मिलती होगी। अतः तुम मेरे हृदय में बैठ कर मेरे शुद्ध हुवे, उत्तम हुवे, आत्मा से स्वभावतः निकलने वाले भक्तिरस का—सुसोम का आस्वादन करो। अपने उच्च सिंहासन से उतर कर मेरे इस तुच्छ पान को ग्रहण करो। मेरा यह कामना मल से रहित हुआ निर्लेप आत्मा तुम्हारा सोम हो कर सर्वभाव से तुम्हें समर्पित है, तुम इसे ग्रहण करो, स्वीकार करो, अपना लो।

"अभय"

वेदों के राजनैतिक सिद्धांत

[लेखक—श्री पं० प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति]

१६. राज्य में करने योग्य कुछ बातें

(Some ends to be realised by the state)

२३. राष्ट्र के जंगलों की रक्षा

वेद के

अवसृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः। ऋग्० १।१३।११

त्वं च सोम......वनस्पतिः। ऋ० १।६१६

अवसृजन्नुप त्मना देवान् यक्षि वनस्पते। ऋ० १।१४२।११

उप त्मन्या वनस्पते। ऋ० १।१८८ १०

वनस्पतिरवसृजन्नुपस्थादग्निः। ऋ० २।३।१०

अरिषण्यन् वीलयस्व वनस्पते। ऋ० २।३७।३

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते। ऋ० ३।८।१

उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि। ऋ० ३।८।३

यान् वो नरो देवयन्तो निमिम्युर्वनस्पते। ऋ० ३।८ ६

वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम। ऋ० ३।८ ११

अयमस्मान् वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत्। ऋ० ३।५३.२०

यत्र वेत्थ वनस्पते। ऋ० ५।५।१०

नित्यस्तोत्रो वनस्पतिः। ऋ० ९ १२।७

वनस्पते रशनया नियूया देवानां पाथ उपवक्षि विद्वान्। ऋ० १०।७०।१०

वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः। ऋ० १०।११०। १०॥ अथर्व० ५।१२।१०

ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता। यजु० २०।६५

वनस्पते सृजा रराणः।

त्मना देवेभ्यो अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु॥ अथर्व० ५।२७।११

इन मन्त्रों में से ऋ० १।६१।६ और ऋ० ९।१२ ७ में सोम को, ऋ० ३।५३।२० में इन्द्र को और शेष सब में अग्नि को वनस्पति कहा है। वनस्पति का अर्थ होता है वनों अर्थात् जंगलों का रक्षक। सायण ने भी इसका अर्थ "वनानां पालकः" ऐसा ही किया है। वनस्पति शब्द जहां विशेषण होकर प्रयुक्त नहीं हुआ प्रत्युत विशेष्य रूप में प्रयुक्त हुआ है वहां भी इसका अर्थ वेद में प्रायः अग्नि ही किया जाता है। सायण ने प्रायः सर्वत्र वनस्पति का अर्थ "एतन्नामकोग्निदेव." ऐसा किया है। निरुक्त में यास्काचार्य ने भी अपने से पूर्ववर्ती शाकपूणि आचार्य का मत देकर वनस्पति का एक अर्थ अग्नि ही स्वीकार किया

है। याज्ञिक पद्धति में यद्यपि कुछ लोग वनस्पति का अर्थ यज्ञयूप भी करते थे परन्तु इस यूप को भी अग्नि का ही एक रूप समझा जाता था। कुछ भी हो, वनस्पति शब्द अग्नि के एक विशेष रूप का बोधक समझा जाता रहा है। अब हम इस ग्रन्थ में निरन्तर देखते आ रहे हैं कि वेद में अग्नि और इन्द्र का एक अर्थ सम्राट् भी होता है। सोम भी कर्तव्य भेद से राजा का ही एक नाम है। इस प्रकार उपर्युक्त मन्त्रों में अग्नि, इन्द्र और सोम को वनस्पति कहने का अभिप्राय वेद के राष्ट्र परक अर्थ में राजा को ही वनस्पति कहने का हुआ। जिसका भाव यह हुआ कि राजा को वनस्पति होना चाहिये। अर्थात् राष्ट्र के जंगलों की रक्षा करनी चाहिये। किसी राष्ट्र के जंगल उसकी एक बड़ी भारी सम्पत्ति होते हैं। उनको यों ही नष्ट नहीं होने देना चाहिए। उनकी वनपाल लोगों को रखकर पूरी रक्षा करानी चाहिये। जब किसी तरह की आवश्यकता के वश होकर जंगलों के किसी भाग को काटना हो तो वह राज्य की स्वीकृति के बिना नहीं काटना चाहिए। जो बिना राज्य की स्वीकृति के जंगल के पेड़ काट लेगा उसे राज्य दण्ड देगा। राजा को वनस्पति कहने का यही आशय है।

वनस्पति शब्द के और भी कई यौगिक अर्थ हो सकते हैं। उदाहरण के लिये 'वन' शब्द का एक अर्थ वैदिक और लौकिक संस्कृत में जल भी होता है। तब वनस्पति का अर्थ होगा जलों का रक्षक। इस अर्थ में यह शिक्षा निकलेगी कि राजा को राष्ट्र के जलों की रक्षा करनी चाहिये। प्रजाजनों के काम में आने वाले पानी को कोई बिगाड़ न सके, गन्दा और ज़हरीला न कर सके, जिससे उसके पान से राष्ट्र के मनुष्य और पशु रोगी न हो जायें, ऐसा प्रबन्ध राजा को करना चाहिये। जिन प्रदेशों में पानी थोड़ा मिलता है वहां कोई पानी को व्यर्थ न खो सके इस अर्थ में भी राजा को पानी की रक्षा करनी होगी।

परन्तु हमने यहां वन का अतिप्रसिद्ध अर्थ जंगल लेकर वनस्पति का अर्थ जंगलों की रक्षा करने वाला ही किया है। इस सम्बन्ध में निम्न मन्त्र भी देखिये :—

वना सिषक्ति। ऋ० १।६६।१

तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं......अविन्दत्......

स वनानि। ऋ० १।१०३।५

स वना न्यृञ्जते। ऋ० १।१४३।५

पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्त्ति।

इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि।। ऋ० ३।५१।५

त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे। धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः।। ऋ० ६।२।९

भीमो दधते वनानि। ऋ० ६।६।५

नू गृणानो गृणते प्रत्न राजन्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः।

अप ओषधीरविषा वनानि गा अर्वतो नृनृचसे रिरीहि।। ऋ० ६।३९।५

सं यो वना युवते। ऋ० ७।४।२

देवास आयन् परशूँरबिभ्रन् वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन्।

नि सुद्रवं दधतो वक्षणासु यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति।। ऋ० १०।२८।८

अन्विद्वनान्यन्वोषधीरनु पर्वतासः ऋ०।१०।८९।१३

इन्द्र ओषधीरसनोत......वनस्पतीँरसनोत्। ऋ० ३।३४।१०

मुमुचाना ओषधयोऽग्ने वैश्वानरादधि ।
भूमिं सं तन्वतीरित यासां राजा वनस्पतिः ॥
अथर्व० ८।७।१६

इन मन्त्रों और मन्त्र खण्डों का शब्दार्थ क्रम से इस प्रकार है :--

"अग्नि (सम्राट्) वनों से सम्बन्ध रखता है और उनका सेवन करता है (सिषक्ति)।"

मन्त्र का 'सिषक्ति' क्रिया पद 'षच' धातु से बनता है। इस धातु के समवाय और सेवा ये दो अर्थ होते हैं। समवाय का अर्थ घनिष्ठ सम्बन्ध रखना होता है। सेवा के दो अर्थ होते हैं। एक परिचर्या द्वारा रक्षा करना और दूसरा किसी चीज़ का उपभोग करके उससे लाभ उठाना। मन्त्र का भाव यह हुआ कि राजा जंगलों से सम्बन्ध रखता है अर्थात् उसे पता रहता है कि राज्य में कहां-कहां कितने बड़े और किस प्रकार के वृक्षों के जंगल हैं, और उनकी सेवा करता है अर्थात् उनकी भली भांति रक्षा करता है तथा समय पर उनसे उचित लाभ उठाता है।

"इस इन्द्र (सम्राट्) के प्रभूत पुष्टिदायक ऐश्वर्य को देखो वह जंगलों को प्राप्त करके उनसे लाभ उठाता है (अविन्दत्)।"

अर्थात् राजा के ऐश्वर्य का एक बड़ा कारण यह है कि वह राष्ट्र के जङ्गलों की रक्षा कर के उनसे समय पर लाभ उठाता है।

"वह अग्नि (सम्राट्) जङ्गलों का प्रसाधन करता है (निऋञ्जते)।"

यास्काचार्य ने ऋञ्ज धातु का अर्थ प्रसाधन करना लिखा है। प्रसाधन के दो अर्थ होते हैं। एक बनाना और दूसरा सजा कर रखना। मन्त्र का भाव यह हुआ कि राजा जगलों को बनाता है अर्थात् जहां जङ्गल नहीं हैं उन प्रदेशों में भी आवश्यकता पड़ने पर नये जङ्गल लगवाता है। तथा इन जङ्गलों को सजा कर रखता है अर्थात् अच्छे वृक्षों की आकृति को बिगाड़ने वाले पासके अनभीष्ट वृक्षों और झाड़ी झंखाड़ों आदि को कटवा देता है तथा जङ्गलों में आने जाने के लिये आवश्यक सड़कें बनवाता है। भाव यह कि वह जङ्गलों को भी एक प्रकार के उद्यान से बना कर रखता है। जिससे लोग वायु सेवन के लिये उनमें निर्भय होकर जा सकें।

"इस इन्द्र (सम्राट्) के अनुशासन (निष्षिधः[1]) मनुष्यों में पूर्ण होकर (पूर्वीः) चलते हैं, इसके अनुशासन से पृथिवी प्रभूत धन धारण करती है, इसके अनुशासन से द्युलोक के पदार्थ अर्थात् पक्षी आदि, मनुष्य (जीरयः[2]), ओषधियें, जल और जङ्गल इसके लिये धन की रक्षा करते हैं अर्थात् इसे धन उत्पन्न कर के देते हैं।"

मन्त्र का भाव यह है कि सम्राट के अनुशासन अर्थात् राज्य प्रबन्ध और आज्ञाओं का कोई उल्लङ्घन नहीं कर सकता है, उनका पूर्ण रूप में पालन होता है, और वह अपना अनुशासन इस प्रकार चलाता है कि राष्ट्र के जङ्गल आदि उसके लिये ऐश्वर्य देने वाले बनते हैं।

"अपने प्रभाव से कभी जीर्ण न होने वाले (अजर) अग्नि (सम्राट्) तुझ तेजस्वी के (शिक्वसः[3]) जङ्गलों को जो लोग काट डालते हैं (वृश्चन्ति) उन को (त्या) चाहे वे अपनी शक्ति के मद में अपने को कितना ही स्थिरशक्तिसम्पन्न क्यों न समझते हों (अच्युताचित) तू उनको अपने तेज से खा डालता

१. अनुशासनानीति सायणः।
२. जीर्यन्त इति जीरयो मनुष्याः।
३. दीप्तस्येति सायणः।

है। अर्थात् खूब दण्ड देता है, जैसे कि पशु घास को खा जाता है।"

मन्त्र का भाव यह है कि जो लोग विना आज्ञा प्राप्त किये राज्य के जंगलों को काट डालें राजा को उन्हें दंडित करना चाहिये चाहे वे कितने ही बली और बड़े क्यों न हों, बड़े बड़ों की भी शक्ति राज्य के सम्मुख ऐसी है जैसे घास की पशुओं के सम्मुख।

"यह भीम अर्थात् दुष्टों को डराने वाला है अग्नि (सम्राट्) जंगलों की रक्षा करता है (दयते[1])।"

"हे इन्द्र (सम्राट्) तेरे रक्षणादि गुणों की प्रशंसा करने वाले प्रजा जनों को ऐश्वर्य देने के लिये, तू प्रभूत अन्न दे, जल दे, विष दूर करने वाली (अविषा) ओषधियें दे, जङ्गल दे, गौ, घोड़े और पुरुष दे।"

मन्त्र में अन्य वस्तुओं के साथ जङ्गलों को भी ऐश्वर्य देने वाली एक चीज़ माना गया है। प्रजाजन राष्ट्र की जङ्गल सम्पत्ति से उन को समृद्ध बनाने के उपाय करने की राजा से प्रार्थना कर रहे हैं।

"अग्नि (सम्राट्) वनों से सम्बन्ध रखता है"

मन्त्र का भाव यह है कि राजा को राष्ट्र के सब जङ्गलों की पूरी जानकारी रहनी चाहिये।

"इन्द्र (सम्राट्) की आज्ञा से राष्ट्र के व्यवहारी पुरुष (देवासः) कुल्हाड़ों को लिये जङ्गलों में आते हैं, जङ्गलों को काट कर प्रजाओं से (विड्भिः) अभिगत होते अर्थात् मिलते हैं (अभ्यायन्), प्रजाजन जङ्गल की सुन्दर लकड़ियों को (सुद्रवं) भार उठाने वाली गड्डियों में (वक्षणासु) रख कर ले जाते हैं और जहां जल (कृपीट) आदि गरम करने होते हैं वहां आग जलाते हैं (दहन्ति)।"

मन्त्र का भाव यह है कि यों ही कोई जङ्गलों की लकड़ियें नहीं काट सकता। राज्य की आज्ञा ले कर खास व्यवहारी लोग ही लकड़ी काट सकते हैं। ये व्यवहारी लोग जङ्गल से काट कर लाई गई लकड़ियों को प्रजाओं के पास ले जाते हैं। प्रजाजन आवश्यकतानुसार श्रेष्ठ लकड़ियों को खरीद कर गड्डों में लाद कर अपने घर ले जाते हैं और वहां उन से जल गरम करने आदि का जो कार्य करना होता है करते हैं। जल गरम करना लकड़ियों के अनेक प्रकार के उपयोगों का केवल उपलक्षणमात्र है।

"सम्राट् (इन्द्र) के अनुशासन में जङ्गल, ओषधियें और पर्वत चलते हैं।"

भाव यह है कि राजा जङ्गलों, ओषधियों और पर्वतों की देख-रेख और उन की समुचित रक्षा करता है। तभी जङ्गलादि अच्छी हालत में रहते हैं और राष्ट्र के लिये उपयोगी बनते हैं।

"सम्राट् (इन्द्र) प्रजाओं को ओषधियें देता है और वृक्ष (वनस्पतीन्) देता है।"

क्योंकि राष्ट्र के जङ्गल राजा की पालना में होते हैं इस लिये जब प्रजाओं को लकड़ी आदि के लिये वृक्षों की आवश्यकता हो तो वे राजा की आज्ञा से ही उन्हें प्राप्त हो सकते हैं। इस मन्त्र से यह भी भाव निकलता है कि राष्ट्र के लोगों को जितनी ओषधियों और लकड़ियों और फल प्राप्त करने के लिये जितने वृक्षों की आवश्यकता हो उन का प्रबन्ध राजा को करना चाहिये। ओषधियों और वृक्षों सम्बन्धी आवश्यकता पूरी न होने से प्रजा को जो कष्ट प्राप्त हो सकता है उन का उपाय करना राजा का कर्त्तव्य है।

"वनों का पालक (वनस्पतिः) सम्राट् जिन का राजा है ऐसी हे ओषधियो सब लोगों के हित-

१. देङ् रक्षणे।

कारी (वैश्वानरात्) सम्राट् की (अग्नेः) आज्ञा से प्रजाओं के हित के लिये मुक्त की गई तुम भूमि को व्याप्त करती हुई चलो ।"

मन्त्र का भाव यह है कि राजा को वनस्पति अर्थात् राष्ट्र के जङ्गलों का पालक होना चाहिये । 'राजा ओषधियों का राजा है' इस वाक्य का यह अभिप्राय है कि राष्ट्र के जङ्गलों में उत्पन्न होने वाली सब प्रकार की ओषधियों पर राजा का नियन्त्रण रहना चाहिये । शेष मन्त्र का भाव यह है कि राज्य की आज्ञा प्राप्त करने के अनन्तर ही ओषधियें जङ्गलों से काट और उखाड़ कर बेची जाने के लिये मुक्त की जानी चाहियें । और इस प्रकार एक से दूसरे के पास पहुंचती हुई वे ओषधियें सारे देश के नगरों और ग्रामों में व्याप्त हो जायें । इस मन्त्र से यह भी ध्वनि निकलती है कि राज्य में जो ओषधियें तैय्यार हों उन के निर्माण और क्रय-विक्रय पर भी राज्य का नियन्त्रण रहना चाहिये । कहीं ऐसा न हो कि अशिक्षित और अर्द्ध शिक्षित वैद्य लोग निकम्मी ओषधियें बना और बेच कर राष्ट्र के स्वास्थ्य की हानि करते रहें ।

पाठकों ने देखा होगा कि जो बात सम्राट् को वनस्पति कहने से व्यक्त होती थी उसी को उपर्युक्त मन्त्रों में अधिक स्पष्टता के साथ खोल कर कह दिया गया है । इन मन्त्रों में जङ्गलों को ऐश्वर्य देने का एक भारी साधन बताया गया है और कहा गया है कि राजा को इन का पालन और रक्षण करना चाहिये । राजा को ऐसा प्रबन्ध रखना चाहिये कि राजकीय जङ्गलों में से बिना राज्य की स्वीकृति के कोई भी लकड़ी या ओषधियें न ले सके । जङ्गलों का पालन और रक्षण होना चाहिये और इस कार्य के लिये विशेष वनस्पति या वनपाल रखे जाने चाहियें इस का निर्देश वेद में अन्यत्र भी मिलता है उदाहरण के लिये यजुर्वेद के —

वनानां पतये नमः । यजुः १६ । १८

अरण्यानां पतये नमः । यजुः १६ । २०

इन मन्त्रों में वनों और अरण्यों के पालकों का नमः अर्थात् आदर सत्कार करने का वर्णन है—

यहां वन और अरण्य दो शब्दों का इकट्ठा प्रयोग हुआ है । सामान्य रूप में इन दोनों शब्दों का प्रयोग जङ्गल अर्थ में होता है । वेद और लोक दोनों में ही इन शब्दों का एक सामान्य अर्थ जङ्गल है । परन्तु यहां ये दोनों शब्द साथ-साथ आये हैं । इस लिये इन के अर्थों में कुछ भेद अवश्य होना चाहिये । दोनों शब्दों के धात्वर्थ को देखने से वह भेद स्पष्ट हो जाता है । अरण्य[1] शब्द 'ऋ गतौ धातु से अथवा नञ् पूर्वक 'रमु क्रीडायाम्' धातु से निष्पन्न होता है । अतः अरण्य वह जङ्गल होगा जो नगर से दूर हो अथवा जिस में क्रीडा न की जा सके, जिस में मनुष्यों का विहार और सञ्चार न हो सके । नगर से दूर के और सघन जङ्गलों को अरण्य कहेंगे । वन शब्द 'वन संभक्तौ' धातु से बनता है । संभक्ति का अर्थ सेवन, दान और विभाग होता है । जो सड़कों द्वारा सुविभक्त हो, जिस में मार्ग विभाग होने के कारण लोग फिर सकते हों, जिस में वायु आदि का सेवन करने के लिये लोग भ्रमण करने जा सकते हों, जो शुद्ध वायु आदि के प्रदान द्वारा लोगों को स्वास्थ्य, प्रसन्नता आदि देता हो ऐसे जङ्गल या वृक्षों के समूह को वन कहते हैं । ऊपर 'स वना न्यृञ्जते" (ऋग् १ । १४३ । ५) इस मन्त्र में कहा

१. अपार्णं ग्रामाद् अरमणं भवतीति वेति यास्कः । निरु० ६ । ३ । २८ । २४

भी है कि राजा को वनों को प्रसाधित करना अर्थात् सजाना चाहिये। जो वृक्ष समूह मार्गविभागादि के द्वारा सजाये गये हों जिस से कि लोग उन में भ्रमण कर सकें उन्हें वन कहेंगे। प्रचलित भाषा में जिस वृक्ष समूह को उद्यान कहते हैं उसी को यहां वन कहा गया है। वन शब्द लौकिक संस्कृत में भी उद्यान के लिये प्रयुक्त होता है। आम्रवण, पुष्पवन आदि शब्दों में वन के प्रयोग से यह बात स्पष्ट है। आम्रोद्यान और पुष्पोद्यान को आम्रवण और पुष्पवन कहेंगे परन्तु आम्रारण्य और पुष्पारण्य कभी नहीं कहेंगे। इस से वन और अरण्य का भेद साफ़ हो जाता है। जब वन और अरण्य शब्द एकार्थक होते हैं तब वन की व्युत्पत्ति हिंसार्थक वन धातु से होती है। बड़े-बड़े सघन जङ्गलों में हिंसक प्राणी रहते हैं। यदि कोई अकेला दुकेला मनुष्य वहां चला जाय तो उन हिंसक प्राणियों द्वारा अरण्य उस की हिंसा कर देता है इस लिये वह वन कहलाता है। अथवा अरण्यों में रहने वाले प्राणी एक दूसरे को मार कर खाते रहते हैं इस प्रकार अरण्य मानों प्राणियों की हिंसा करते रहते हैं इस लिये भी वे वन कहलाते हैं।

वेद द्वारा वनों और अरण्यों के रक्षकों का सत्कार करने का विधान होने से यह स्वयं ही सिद्ध हो जाता है कि ऐसे वन-पाल राष्ट्र के वनों की रक्षा के लिये रखे जाने चाहियें। क्योंकि वनपाल न होने की अवस्था में उन का सत्कार सम्भव ही—नहीं हो सकता।

आर्य समाज का विस्तार

तीन वर्ष का कार्यक्रम

लें०—श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
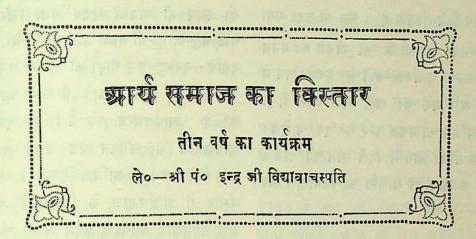
मैंने सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरङ्ग सभा में निम्न लिखित प्रस्ताव उपस्थित किया था, जो थोड़े से आवश्यक परिवर्तन के साथ स्वीकार हो गया—

(१) वर्त्तमान में आर्य समाजों के लिए ऐसा कार्यक्रम बनाया जाय जो सामूहिक और अपील करने वाला हो और वह कार्यक्रम १९४१ में होने वाली मनुष्य गणना को लक्ष में रख कर बनाया जाय।

(२) यह कार्यक्रम कम से कम ३ वर्ष का होना चाहिये और इस काल में आर्य सभासदों और आर्यों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए।

(३) समाजों को प्रेरणा की जानी चाहिए कि वे नई २ संस्थायें खोलने का यत्न न करें।

(४) आर्य समाजों को प्रेरणा की जाय कि अन्य धर्मावलम्बियों के साथ संघर्ष से बचा जाय। अनिवार्य होने पर ही संघर्ष में पड़ना चाहिए।

(५) यत्न होना चाहिए कि ३ साल में आर्यसमाजों की संख्या तिगुनी और आर्य-सभासदों की संख्या दस गुनी होनी चाहिए।

(६) नौजवानों के सङ्गठन को समाज अपने हाथ में ले और उन्हें आर्य समाज की ओर आकर्षित करने का यत्न होना चाहिए।

(७) आर्य समाज के अधिक से अधिक शिक्षणालय होते हुए भी शिक्षा की समस्या बड़ी जटिल हो रही है। उस पर पूर्ण विचार हो कर उसे नया ढङ्ग या Impetus मिले नित नई संस्थाओं का उद्घाटन न होना चाहिये।

विचार के बाद प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ। निश्चय हुआ कि निम्न सज्जनों की एक उपसमिति बनाई जाय जो इस सम्बन्ध में अपनी विस्तृत रिपोर्ट सभा में पेश करे:—

(१) श्री पं० इन्द्र जी
(२) श्री डा० युद्धवीर सिंह जी
(३) श्री लाला नारायणदत्त जी

इस प्रस्ताव के तीन भाग हैं।

पहला भाग विधायक है। वह इस प्रस्ताव का मुख्य भाग है। उस में कहा गया है कि आगामी तीन वर्षों में आर्य समाजों की संख्या तिगुनी और आर्य सभासदों की संख्या १० गुनी हो जानी चाहिये।

दूसरा भाग निषेधात्मक है । उस में कहा गया है कि यथासम्भव दो चीजों को रोकने का प्रयत्न किया जाय । अन्य धर्मावलम्बियों से व्यर्थ संघर्ष में न पड़ा जाय, और ढर्रे पर चल कर व्यर्थ में ही संस्थाओं के खोलने का प्रयत्न बन्द कर देना चाहिये।

प्रस्ताव के तीसरे भाग में पहले भाग को कार्य में परिणत करने के लिये उप समिति का निर्माण किया गया है।

इन में से पहला भाग ही सब से आवश्यक है। वही प्रस्ताव की जान है। शेष दोनों भाग उस के केवल सहायक हैं। उन को यही आवश्यकता है कि वह पहले भाग में बताये हुये कार्यक्रम को पूरा करने योग्य परिस्थिति पैदा कर सकते हैं।

मैं इस लेख में प्रस्ताव के मुख्य भाग को समझाने का प्रयत्न करूंगा।

उपनिषदों में कहा है 'भूमा वै बलम्' संख्या में बल है । यह मानी हुई बात है कि आर्यसमाज के सदस्यों की प्रारम्भिक संख्या-वृद्धि आज से शायद २५ वर्ष पूर्व ही समाप्त हो गई थी। उस के पीछे यदि कुछ संख्या वृद्धि हुई है तो वह कुदरत का परिणाम है, प्रयत्न का नहीं । आर्यसमाजियों की सन्तान अपने को आर्य समाजी कहने लगी और इस प्रकार परिवार के परिवार आर्य समाजी हो गये। जो व्यक्ति अब से २५ वर्ष पूर्व आर्य समाजी बन चुके थे, इस समय उन्हीं का विस्तार है । प्रयत्न से नये बनाये हुये नये आर्य समाजियों की संख्या बहुत ही कम है।

इस त्रुटि के अनेक कारण हैं । सब से मुख्य कारण तो यह है कि आर्यसमाज ने अपने आप को स्वयं ही अपना लक्ष्य बना लिया है । जैसे कोई मनुष्य लम्बी यात्रा तय करने के लिये गाड़ी बनाये, परन्तु उस गाड़ी को अपना लक्ष्य बनाकर उसी के रंगने और सजाने में सारी आयु व्यतीत कर दे आर्यसमाज की वैसी ही दशा हुई है। आर्यसमाज का संगठन एक लक्ष्य के लिये हुआ था । वैदिक धर्म का अधिक से अधिक प्रचार करना, संसार में आर्यसमाज के सिद्धान्तों को मानने और तदनुसार आचरण करने वालों की संख्या में अधिक से अधिक वृद्धि करना उसका लक्ष्य था। परन्तु हुआ क्या ? आर्यसमाज अपने असली लक्ष्य को तो भूल गया, और अपने संगठन को ही लक्ष्य मान कर उसी के पालन पोषण में लग गया। जो साधनमात्र था उसे साध्य बनाकर पूजने लगा।

संख्या में रुकावट पड़ने का दूसरा कारण यह था कि आर्यसमाज भूल करने में इस से भी आगे बढ़ा। उस ने केवल अपने को ही लक्ष्य बना लेने की भूल नहीं की, उस ने अपनी खोली हुई संस्थाओं को भी पवित्र मान लिया नई संस्थाओं की स्थापना और पुरानी संस्थाओं का संचालन उनके लिये एक धर्म सा बन गया है। जो लोग संस्थाओं के उपासक हैं, उन से पूछिये कि क्या आर्यसमाज उन्नति कर रहा है ? तो उत्तर मिलेगा 'क्यों नहीं । आर्यसमाज अवश्य उन्नति कर रहा है। देखिए बीस वर्ष पहले आर्यसमाज के पास जितने स्कूल थे, आज उस से ५ गुने हैं। जितनी कन्या पाठशालायें थीं, उस से १० गुनी हैं, और अनाथालय भी अधिक हैं । ऐसे संस्थापक सज्जनों को जानना चाहिये कि संस्था बनाना आर्यसमाज का कोई उद्देश्य नहीं है । संस्था यदि आर्य समाज के लक्ष्य की पूर्ति में सहायक हैं तो ठीक है। अन्यथा वह केवल बोझ है।

इस समय की संस्थाओं का अधिक भाग आर्यसमाज पर बोझ ही है। जो शक्ति प्रचार में लगनी चाहिये, वह संस्थाओं में व्यय हो गई है। आर्यसमाज की दशा बिलकुल उस बाल-गृहस्थ जैसी हुई है, जिस पर छोटी आयु में ही सन्तानका बोझ पड़ जाय। जैसे उस मनुष्य की उन्नति कुण्ठित हो जाती है आर्य समाज की भी वैसी ही दशा हुई है।

एक और भी भ्रान्ति है जो आर्य समाज के विस्तार के मार्ग में बाधक होती रही है। प्रारम्भ काल में यह आवश्यक था कि आर्यसमाज के प्रचारक खण्डन और शास्त्रार्थ की रीति का अनुसरण करते। उस समय जनता सीधी थी, और सचाई को सुनने के लिये उद्यत थी परन्तु अब दशा बिलकुल बदल गई है। मतमतान्तरों ने शास्त्रार्थ और खण्डन की पद्धति की निर्बलताओं को समझ कर उन से पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न किया है। अब न शास्त्रार्थ होते हैं, और न वाद— अब तो शास्त्रार्थ के नाम से अधिकतः तू तू मैं मैं और वितण्डे का ही प्रयोग होता है। उन से सत्यासत्य निर्णय तो खाक भी नहीं होता, उल्टा धर्म का मज़ाक बनता है, और परस्पर वैमनस्य के बीज बोये जाते हैं।

इस प्रस्ताव में संस्था और शास्त्रार्थ को सीमाओं में परिणत करते हुए आर्य समाज के सामने प्रचार के कार्य को मुख्यता के साथ रखा गया है।

१९४१ में मनुष्य गणना होने वाली है। हम चाहते हैं कि आगामी तीन वर्षों में आर्य समाज के सन्देश को इतने वेग से और दूर दूर तक पहुँचाया जाय कि यदि आज उनकी संख्या २० लाख है, तो १९४१ में उन की संख्या कम से कम २ करोड़ होनी चाहिये। साथ ही उस बढ़ी हुई संख्या को सम्भालने के लिये आर्य समाज के केन्द्रों में वृद्धि करने की भी आवश्यकता है। आर्य समाजों की संख्या को तिगुना कर देने के विचार की तह में यही बात है।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की आर्य अन्तरङ्ग सभा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर के आर्य समाज को एक सही मार्ग दिखलाया है। यदि सभा ने सचेत हो कर पथ-प्रदर्शन किया, और आर्य समाज ने उत्साह दिखलाया तो तीन वर्षों में आर्यों का दस गुना और आर्य समाजों का तीन गुना हो जाना कुछ कठिन नहीं है। इच्छा और प्रयास का थोड़ा सा सहारा चाहिये, कार्य की पूर्ति बहुत ही सुलभ है।

इन्द्र और वृत्रासुर

श्री वीरेश विद्यालंकार
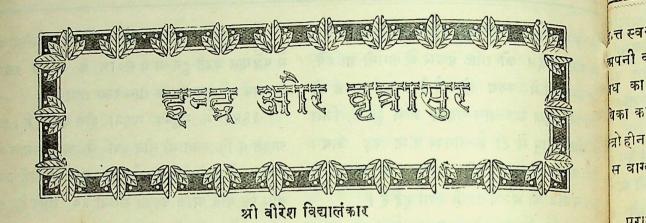
वेद में आये हुए आलंकारिक वर्णनों को हमारे पुराणकारों ने लौकिक उपाख्यान (ऐतिहासिक इतिवृत्त) अथवा काल्पनिक कथाओं के (Fictions) रूप में कैसे क्यों और कब परिवर्तित किया इसकी खोज करना कुछ सहल काम नहीं है। यदि यह मान लिया जाय कि वस्तुत: ये घटनायें घटी हैं तो इन्हें ज्यों का त्यों वर्णन करने की बजाय इन्होंने इन कथाओं को आधुनिक उपन्यास सुलभ ढग से नमक मिर्च लगा कर क्यों इतना रोचक बनाने का यत्न किया था-यह समझ में नहीं आता। हो सकता है कि आजकल के काल्पनिक उपन्यास (Fictions) व चित्रपट के जमाने की तरह उस समय भी साहित्य-कला में इस प्रकार की लेखन पद्धति विशेष बल पूर्वक प्रचलित होगई हो जिसके वेग में बहकर इनके लेखकों ने सत्य-यथार्थ (Realistic theme) को तिलाञ्जलि देकर हमारे हाला व छाया वादी कवियों की तरह काल्पनिक जगत में अधिक से अधिक विचरण करने में ही अपने को कृत कृत्य समझा हो, और इसी कारण दृश्य सत्य के आधार को छोड़कर अपने कल्पना के घोड़ों को बेलगाम करके तीनों लोकों की स्वच्छन्द सैर कराने में ही अपने पाण्डित्य की इतिश्री समझी हो। कुछ भी क्यों न हो इतना तो सत्य है कि इन नवीन पुराणों में वैदिक रूपकादि अलंकारों की नकल में जो ऐतिहासिक व काल्पनिक घटनाएं घड़ी गई हैं उनमें तत्कालीन साहित्य कला की प्रगति की जो दिशा रही होगी उसका सविस्तर विवरण हमें आसानी से प्राप्त होजाता है।

उदाहरणार्थ हम इन्द्र और वृत्रासुर की कथा लेते हैं। यह कथा प्रथम तो शतपथब्राह्मण में आती है। कथा का रूप एक आख्यायिका का है जिसमें मन्त्रों के शब्द पदादि को शुद्ध स्वर वर्णों के अनुसार न उच्चारण करने से क्या दोष होता है इसको बताया गया है। कथा इस प्रकार है कि वृत्रासुर के पिता की यह इच्छा थी कि उसका पुत्र इन्द्र का हनन करने वाला हो, इसी उद्देश्य को समक्ष करके उसने अपने पुत्र को 'इन्द्रशत्रु वर्धस्व-कहकर इन्द्र का बध करने की आज्ञा दी। परन्तु वृत्र बेचारा व्याकरण और सौवर के नियमों को क्या जाने। उसने भी पिताकी आज्ञा से 'इन्द्रशत्रु वर्धस्व' कहा, परन्तु कहने में गलती की, क्यों कि उसे अन्तोदात्त उच्चारण (अर्थात् उत्तरपदार्थप्रधानवाचीतत्पुरुष कर्मधारयसमास से निष्पन्न इन्द्रशत्रु शब्द जिसका अर्थ इन्द्र होता है) करना चाहिये था परन्तु उसने तो (अन्य पदार्थ प्रधानवाची बहुव्रीहि समास का आश्रय करके इन्द्र: शत्रु: यस्य स वृत्रः) आद्यु-

त्त स्वर से उच्चारण कर दिया । इसलिये स्वयं अपनी वाणी का दोष युक्त प्रयोग करके अपने ही ध का कारण बना । वेदांग शिक्षा में इसी आख्यायिका का दृष्टान्त दिया गया है । वहां आता है ।

त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतो
पराधात् ॥ ५२ ॥

पुराणों में कथा का रूप बदल जाता है। त्वष्टा के त्र वृत्रासुर का देवराज इन्द्र से युद्ध हुआ । युद्ध में त्र ने इन्द्र को ही निगल लिया जिससे सब देवता यभीत होकर 'त्राहि मां त्राहि मां' करते हुए विष्णु गवान की शरण में पहुंचे और वृत्रासुर के विनाश लिये प्रार्थना करने लगे । विष्णुभगवान् ने कहा क इसके मारने का उपाय यही है कि मेरे समुद्रफेन प्रविष्ट होने पर यह मारा जायगा ।

ऐसे ही एक और कथा आती है, जो नमुचि (न ुंचति इति) असुर से सम्बन्ध रखती है । जब न्द्र ने सब असुरों का विजय कर लिया तो नमुचि रण में टिका रहा । उसने इन्द्र का पराभव करके विश्राम लिया । नमुचि ने इन्द्र का पराभव तो किया परन्तु उसको यह भय रहा कि इन्द्र समय पाकर पुनः मेरा पराभव करेगा क्यों कि यह इन्द्र किसी की अधीनता स्वीकार नहीं करता । अस्तु, सने स्वयं इन्द्र से सन्धि का प्रस्ताव किया और वचन दिया कि वह इन्द्र को इस शर्त पर मुक्त करेगा कि वह (इन्द्र) उसे (नमुचिको) न तो दिन न रात में, न जल स्थल में, कहीं भी उसका हनन न करेगा । इन्द्र ने तिज्ञा की कि वह इस शर्त को स्वीकार करेगा-और मय पाकर उसने उषा व सन्ध्या काल में (जब न न रात होती है) समुद्रीय फेन से (जो न द्रव र न शुष्क होता है) नमुचि का शिर काट डाला ।

इन से मिलती जुलती कथाओं में भी अश्विनौ अश्विनी कुमार तथा सरस्वती देवी द्वारा वृत्रासुर दल के वधार्थ इन्द्र को वज्र व कुलिश का दिया जाना वर्णित है । ऋग्वेद में प्रथम 'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री । अहन्नहिम्...' आदि मन्त्र में तथा 'त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्य्यं ततक्ष' मन्त्र पद में भी इन्द्र के अमोघ वज्र का स्पष्ट वर्णन हुआ है । इसके अतिरिक्त असुर लोग इन्द्र की यज्ञ यागादि में प्राप्त सोमरस के पान द्वारा उत्पन्न शक्ति का पान कर इन्द्र को निस्तेज बनाये रखने का कुचक्र रचते थे, इसीलिये मरुत आदि देवता मघवा इन्द्र को अपनी अनेक शक्तियां (कुलिश, वज्र, अशनि, इषु, जाल तथा वध्रि आदि साधनभूत) प्रदान कर असुरों पर विजय के लिये यत्नवान् रहते थे ।

इस प्रकार इन ऐतिहासिक व काल्पनिक परन्तु मनोरञ्जक कथानकों के आधार व स्रोत को ढूंढ़ने का प्रयत्न किया जाए तो निस्सन्देह गवेषक की दृष्टि वैदिकी अलंकारों द्वारा वर्णन करने की शैली की ओर सहसा खिंच जाती है । वह जिन देव-दानव-मानवों के संघट्ट में पुराणों द्वारा निर्मित चित्रपट का अवलोकन करता है उसी के आभ्यन्तर चित्रपटों में वैदिक अलंकारों को काव्यमय परिभाषा में प्राकृतिक व भौतिक पदार्थ विद्या के सुन्दर और भव्य-नियमों के ताने बाने को सुचारु रूप से संचालित होता हुआ पाता है । वह (Natural sciences) आधिभौतिक व आधिदैविक विज्ञान के संग्रहालय में प्रवेश करता हुआ वेद के रूपकालङ्कारादि रूपी दिव्य नेत्रों से प्रकृति व सृष्टिक्रम के गुह्यतम रहस्यों को शनैः २ देखने और विज्ञात करने का आदि होता जाता है । व्यष्टि, समष्टि एकत्व, अनेकत्व तथा

विश्व में निरन्तर प्रवर्तमान देवासुर संग्राम के नाना काण्डों-पर्वों तथा परिच्छेदों की उलझनों को सुलझाने की योग्यता प्राप्त करके कृत-कृत्य हो जाता है प्राकृतिक घटनाओं के संघर्ष, जिनमें विजय-पराजय की कथा, अथवा ऐसे संघर्ष में एक तीसरी परिवर्तनकारी अद्भुत घटना का उपस्थित हो जाना और उनमें सम्मेलन तथा समता स्थापित करने में साधनभूत कारण बनना, देखने वाले के लिये क्या कुछ कम आश्चर्यकारी है। ऋतुचक्र का निरन्तर समय पर सञ्चालन; घाम ताप से तपी धरती जब शुष्कता तथा उष्णता से पीड़ित प्राण विहीन हुई २ अनन्त प्यास से तड़प रही होती है, उस समय इस असह्य अवस्था में परिवर्तन लाना, इस घर्म जाल में फँसे हुए कृमि-कीट पतंग, तरु मानवादि समस्त प्राणि-जगत को जीवनाश्वासन देना किस प्राणदा और जीवनदा शक्ति का काम हो सकता है। धन्य है उस विजयशील वज्रबाहु मघवा इन्द्र का जो इस घर्मजाल से मायारूप में परिवर्तित हुई २, सम्पूर्ण विश्व को अपने विस्तार से व्याप्त करके गाढ़ अन्धकार में संमुग्ध करती हुई, अत्यन्त बलवती घनघटा रूपी वृत्रासुर की सेना जो अपने घनघोर गर्जन से तथा तड़तड़ाती और चमचमाती हुई बिजलियों के प्रहार से इस दीन हीन संसार को संत्रस्त कर रही होती है, ऐसी हालत में उस ऐश्वर्यशाली मघवा इन्द्र का धन्यवाद है, जो विश्व को इस विकट संकटमयी अवस्था से बचाता है। यही इन्द्र अपने दिव्य कर्मों से यज्ञ में देव मानव द्वारा सोमरस प्राप्त करता है, क्योंकि यही विजयशील इन्द्र है जो कि समस्त वृत्रासुर की सेना का नियमन कर के उन्हें अपने विद्युन्मय वज्र किरण रूप तेज से अङ्ग २ और कण २ छेदन भेदन करके जगत् में जल वर्षण-सिंचन तथा प्रवाह रूप बनाकर स्निग्धता, आर्द्रता, ओषधि वनस्पति में बीजाङ्कुरत्व व पत्र-पुष्प फल-मूलादि भाव तथा कूड़ा कर्कट तथा मलादि को प्रवाहित कर अपने बड़े घर समुद्र में भेजना रूप सेवा के लोकोपकारक कर्म नियमों में नियोजित करता है।

इन्द्र की आज्ञानुवर्ती होकर नदी पूर में वेग से बहती हुई उस जलधारा का ध्यान करें जिसे मानो निरन्तर दौड़ने की आज्ञा हो तथा कहीं रुकने की मनाही न हो, जो अपने बड़े घर समुद्र में पहुँच कर भी जलप्लावन तथा तूफ़ान रूपी उत्पात मचाने पर तुली हो, उसे तीव्र ताप से वाष्पीभूत करके मरुद्गणों द्वारा आकाश मण्डल में पहुंचा फिर कण २ हनन कर के भूमि में सुला देना उस इन्द्र का ही कर्म है।

वेद में नाना अलङ्कारों द्वारा अध्यात्म व भौतिक विज्ञानों के नियमों का जिस खूबी से वर्णन है वह स्वयं इतना पूर्ण है कि उस पर कुछ अधिक कहना सूर्य को दीप दर्शाने के समान है। परन्तु ऋग्वेद के अनेक सुन्दर सूक्तों में उपरोक्त विज्ञान नियमों के प्रकाशक मन्त्रों के होते हुये भी आश्चर्य तो इस बात का है कि बहुत से यूरोपियन विद्वानों को यह भ्रम हुआ कि वेद तो प्राचीन आर्यों के ग्राम्य गीत हैं। शायद संस्कृत व वेद मन्त्रों के ठीक अर्थ समझने की योग्यता न रखने के कारण ही उन्होंने यह कल्पना की हो कि सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र, घनघटा व विद्युत् आदि प्राकृतिक दृश्य घटनाओं को देखकर जब खुशी से उन्माद की अवस्था को प्राप्त होकर आर्य लोग अपना हृदयोद्गार निकालते थे तब वही गीत संग्रह होकर वेद रूप में आये।

इस कल्पना की निस्सारता न केवल अनेक यूरोपीय विद्वानों ने ही सिद्ध की है परन्तु कल्पना

के आविष्कर्ताओं ने स्वयं अपने वेद विषयक लेख व व्याख्यान द्वारा इसको निर्मूलता प्रसिद्ध की है।

पुराणकारों ने जिस प्रकार अपने समय की बलवती साहित्य-कला धारा के पीछे आँख मूँदे चलकर वेद से इतिहास निकालने व उसमें इतिहास प्रविष्ट कराने का सन्तत प्रयत्न किया और वह अपने प्रयत्न में विफल हुए इसी प्रकार इन यूरोपियन भौतिक विज्ञान वादियों की हालत हुई कि उनका कहना बाल-प्रलाप मात्र सिद्ध हुआ। परन्तु हमें इतने से सन्तोष न कर लेना चाहिये और उचित तो यह है कि इन दोनों पक्षों के युक्ति जाल रूप अन्धकारावरण का आर्य्य विद्वान् तर्क प्रमाणानुकूल खण्डन करने में यत्नशील हों जिससे वेद विषयक अनेक संशय लोगों के दिलों से दूर होकर वेदार्थ का सत्य प्रकाश हो।

उपरोक्त गाथा का स्रोत जो ऋग्वेद म० १। सूक्त ३२ के मन्त्रों में मिलता है इस बात की अन्तःसाक्षी है कि वेद में आलंकारिक तौर पर सृष्टिक्रम में हो रही स्वाभाविक घटनाओं का किस कलामय ढंग से वर्णन किया जाता है। इस सूक्त में तो वृत्रासुर तथा इन्द्र का संग्राम मानो 'देव-विजय नाटक' के रूप में रक्खा गया हो और दर्शाया गया हो कि इन्द्र की शक्ति पृथ्वीस्थानी अपने से अवर परन्तु प्रगल्भ तथा उद्धत हुई २ शक्ति का किस प्रकार नियमन करने में सफल होती है। उदाहरणार्थ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका से दो मन्त्र दिये जाते हैं जिनसे उपरोक्त स्थापना की पुष्टि होती है।

अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।

स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥म० ५॥

(इन्द्रः) सूर्य (वज्रेण) वज्रः, प्रकाशः प्राणो-वास्यास्तीति, वीर्यं वै वज्रः ॥ श० का० ७ अ० ४। अपने विद्युत् रूप किरण से (महता वधेन) बड़े तीक्ष्ण प्रहार से (वृत्रम्) मेघ इति नैरुक्तास्त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः। यदवर्धत तद्वृत्रस्य वृत्रत्वं। निरुक्त अ० २। खं० १६।७७, वृत्रो ह्वा इदं सर्वंवृत्वा शिश्ये तस्माद्वृत्रो नाम। शत० का० १ अ० १, ब्रा० ३. मेघ को (वृत्रतरम्) अत्यन्त वर्धमान. बलवान (व्यंसं) काट दिया है कंधा जिसका अर्थात् छेदन कर दिया है घन जाल जिसका ऐसा (अहन्) मारता है और वह (अहिः) मेघ (अहिरिति मेघ नामसु पठितं) निघं० अ० १। खं० १०। (कुलिशेन) वज्र द्वारा (विवृक्णा स्कंधांसीव) कटे हुए कन्धे अर्थात् अंग वाले के समान (पृथिव्या उपपृक्) पृथिवी के ऊपर (अशयत्) सो जाता है (छन्दसि लुङ् लङ् लिटः) इससे सामान्य काल में लङ्। जिसके बल से वृत्रासुर रूप मेघ का विशाल शरीर कट २ कर भूमि पर गिरकर सो जाता है उसके पराक्रम का मन्त्र में वर्णन हुआ है।

परन्तु वृत्रासुर की सेना भूमि पर हमेशा के लिये सोगई हो ऐसा नहीं, क्यों कि समय पाकर वह फिर उठ खड़ी होती है और अन्तरिक्ष स्थानी इन्द्रासन के लिये पुनः २ चेष्टा करती है। इस कारण इन्द्र इनका हनन करके ही अपने इन्द्रत्व की रक्षा करता है

नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यं मिहमकिर
द्ध्रादुनिंच। इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो
मघवा विजिग्ये ॥ म० १३ ॥

(नास्मै विद्युत) नवृत्र द्वारा माया रूप से प्रयुक्त की हुई विद्युत् (न तन्यतुः) ने तड़ २ शब्द द्वारा कम्पाने वाली बिजली (नयामहि मकिरद्ध्रादुनिंच) और नहीं मेघ द्वारा प्रयुक्त तोपके समान गंभीर

गर्जना से भयभीत करने वाली भीषण विजली (न सिषेध) इस इन्द्र का निरोध करने में समर्थ नहीं होती। (उत) वितर्क में (अहिश्च इन्द्रश्च यद् युयुधाते) जो मेघ और सूर्य परस्पर विजय के लिये लड़ते हैं (वृत्र के बढ़ने पर इन्द्र का तेज आवृत अर्थात् मन्द पड़ जाता है और जब सूर्य की ताप प्रकाश रूप किरण सेना बढ़ती है तब मेघ का घटाटोप फटकर विदीर्ण होजाता है) तो इन सब (अपरीभ्यो) विद्युतों से (मघवा विजिग्ये) पूजनीय इन्द्र का विजय होता है। घोर और भीषण बलों का प्रयोग करता हुआ भी वृत्रासुर अंत में विजय शील इन्द्र के सन्मुख परास्त होता है, यह भौतिक विज्ञान के दृश्य मान प्राकृतिक विषय का अलंकार युक्त वर्णन है। इसी प्रकार वेद में उन उपाख्यानों का मूल भी देखा जा सक्ता है जो पुराणादि ग्रंथों में ऐतिहासिक व कल्पनामूलक मनोरञ्जन के लिये लिखे गये हैं॥

अग्ने ?

ओं सनः पितेव सूनवे ऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥

हे प्रकाश ज्ञानमय
जगत् पिता प्रभो !

पिता समान पुत्र को	हे देव। बाल बुद्धि हम
कल्याण दान देकर,	आये शरण में आपकी
सुभूरिप्रेम भेंट से,	सद्धर्म कर्म के लिये
हमें सदा उबारो।	प्राण नाथ प्रेरो॥

'द्विरेफ'

आनन्द साम्राज्य

(लेखक—धर्मदेव विद्या वाचस्पति बङ्गलौर)

आनन्दमयि माता का मैं हूँ, ध्यान कर रहा। उस की कृपा से मन में दिव्या-नन्द भर रहा॥
आनन्द वह जिस में न होता, क्लेश लेश है। जिस में दिखाई दे सदा, ज्योतिर्विशेष है॥
आनन्द की विशुद्ध गङ्गा की मैं मीन हूँ। मां के ही ध्यान में सदा, दिन रात लीन हूँ॥
तूफ़ान आंधियां नहीं, मुझ को हिला सकें। भय शोक चिन्ता है न जो, मुझ को रुला सके॥
आनन्दमयि माता ने मुझे, गोद में लिया। भय आधि चिन्ता शोक को, है उस ने हर लिया॥
आनन्द के साम्राज्य में, मैं हूँ विचर रहा। आनन्द नद में हूँ सदा, कल्लोल कर रहा॥
कामादि शत्रुगण न मेरे, पास आ सके। मां की न गोद से मुझे, कोई हटा सके।
मैं लाड़ला हूँ पुत्र अब, माता का बन गया। आनन्दमयि माता को दे, तन मन व धन दिया॥
उसकी जिधर मर्ज़ी मुझे, अब वह चला रही। आनन्द का अमृत मुझे, निशिदिन पिला रही॥
आनन्दमयि माता की मैं नित, गोद में रहूं। उसके लिये आपत्तियां, आनन्द से सहूँ॥
बस और कोई कामना, मेरे मन में अब नहीं। माँ की मधुर गोदी मिले, दिन रात हर कहीं॥

गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को श्री आचार्य देवशर्मा जी का उपदेश

सब से प्रथम मैं ब्राह्मण वर्ण को लेता हूँ चूंकि आशा की जाती है कि गुरुकुल से ब्राह्मण अधिक मात्रा में निकलेंगे। किसी भी अन्य संस्था की अपेक्षा यहां से ब्राह्मण अधिक निकलेंगे इतनी आशा रखना तो सर्वथा स्वाभाविक भी है। मैं तो गुरुकुल संस्था को ब्राह्मण-संस्था देखना चाहता हूँ, और ऐसा ही मानकर व्यवहार करता हूँ। यह गुरुकुल ब्राह्मणों के जन्म का मुख्य स्थान हो यह तो समझता ही हूँ। लोग गुरुकुल से जैसे स्नातकों की आशा करते हैं और जिस आशा से गुरुकुल को तन मन धन से पोषित करते हैं वह तो ब्राह्मणों के निकलने से ही पूरी हो सकती है।

तुममें से जिन्होंने ब्राह्मण का संकल्प किया है उन्हें आज का मेरा कथन विशेष ध्यान से सुनना ही चाहिये, परन्तु जिन्होंने वैसा संकल्प नहीं किया उनके लिये भी इस उच्चवर्ण का माहात्म्य अच्छी तरह जान लेना बहुत लाभकारक होगा, क्योंकि क्रमशः सब को उसी तरफ जाना है।

वेद में कहा है कि ब्राह्मण ही इस पृथ्वी का असली राजा है। वस्तुतः ब्राह्मण इस संसार को चलाते हैं। मैं बता चुका हूं कि संसार में सदा सत्य की रक्षा करते हुए ज्ञान द्वारा नये सत्य के मार्ग पर संसार को ले चलने वाले ब्राह्मण होते हैं। 'आइडियाज़ रूल दि वर्ल्ड' का अर्थ यही है कि संसार पर असल में ज्ञानशक्ति, ब्रह्मशक्ति ही शासन करती है। क्षत्रशक्ति समझती है कि मैं बड़े बड़े वीरता के कार्य करके उथल पुथल कर रही हूं। या धन शक्ति समझती है कि मैं संसार में बड़े परिवर्तन ला रही हूँ परन्तु असल में इन दोनों को पीछे से गति देने वाली एक ज्ञान-शक्ति है। जो लोग उस ज्ञानशक्ति से अपनी एकता करते हैं वे ब्राह्मण होते हैं। ब्राह्मण मनुष्य समाज रूपी शरीर के मस्तिष्क (बुद्धि) होते हैं, सत्व गुणमय होने से ऊपर ठहरने वाले और ऊपर से ज्ञान प्रकाश का प्रभाव उत्पन्न करने वाले होते हैं। क्या तुम में से कोई है जो उस जगह अपना स्थान देखते हैं? तो उनमें जो स्वाभाविक गुण होने चाहियें उन्हें गीता के शब्दों में सुनो—

शमो दमः तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।

यदि तुम दुनिया में ब्राह्मण का भाग पूरा करने आये हो तो तुम्हारे अन्दर ये शम, दम, आदि गुण स्वभावतः होंगे। ये ब्राह्मणत्व की पक्की पहचान हैं। यदि तुम में शम है, मानसिक शान्ति है, यदि तुम्हारा मन इतना चलायमान नहीं है कि वह विशेष यत्न

करने पर भी न रुके, तुम्हारे मन की वृत्ति प्रशान्त वाही हैं; और यदि तुम में दम है अर्थात् इन्द्रियनिग्रह, इन्द्रियदमन करना तुम्हारे लिये बड़ी भारी समस्या नहीं है, यद्यपि कहा है कि 'बलवान् इन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति' तो भी यदि तुम कुछ यत्न करके इन्द्रियों पर अपना प्रभुत्व पा लेते हो तो तुम इन ब्राह्मण गुणों वाले हो। यदि तुम तपस्वी हो कष्ट सहने से नहीं घबराते हो बल्कि अपने कर्त्तव्यपालन में जो स्वाभाविक कष्ट आवें उन्हें झेलने में आनन्द पाते तो तुम्हारे पास ब्राह्मण का धन या ब्राह्मण की शक्ति (वज्र) विद्यमान है। तपः शक्ति, सत्य के लिये कष्टसहन [आजकल की भाषा में 'सत्याग्रह'] वह हथियार है जिससे ब्राह्मण सर्वत्र विजय प्राप्त करता करता है। यदि तुम में स्वभावतः अन्दर और बाहर की पवित्रता (शौच) रखने की वृत्ति रहती है तो यह ब्राह्मण वृत्ति है। ब्राह्मण किसी भी मलिनता को बर्दाश्त नहीं करता है, बाहर की नहीं किन्तु अन्दर की कभी भी नहीं। क्षमा ब्राह्मण का स्वभाव होता है, वह कभी बदले की सोच ही नहीं सकता। वह मानता ही नहीं कि उसका कभी कोई अपकार कर सकता है, अतः वह अपनी तरफ़ से सबको सदा क्षमा किये रहता है। क्षत्रिय क्षमा न करे यह हो सकता है पर ब्राह्मण सहनशीलता (क्षमा) छोड़ दे तो ब्राह्मणत्व से गिर जाय। और फिर आर्जव, सरलता ऐसा गुण है जो ब्राह्मण का सर्वोत्कृष्ट भूषण है। कुटिलता टेढ़ापन, असत्य ये ब्राह्मण में नहीं हो सकते। जहां ज्ञान है वहां कुटिलता टेढ़ापन, मिथ्या व्यवहार टिक नहीं सकते। अतः सरलता सच्चे ज्ञान के पात्र ब्राह्मण की पक्की पहिचान है। और अन्त में ज्ञान और विज्ञान ब्राह्मण के मुख्य लक्षण हैं। ज्ञान और उच्च प्रकार का ज्ञान जिसमें होता है उसमें शम दम आदि स्वयमेव होते हैं। मन की शान्ति का ज्ञान से सम्बन्ध स्पष्ट है इन्द्रिय-दमन भी जबरदस्ती करने से कभी नहीं सफल हो सकता पर ज्ञान प्रकाश होने पर आसानी से हो जाता है। तप की शक्ति भी ज्ञान-शक्ति ही है। अतः परमेश्वर के तप विषय में कहा है "यस्य ज्ञानमयं तपः"। इसी तरह अन्य सब ब्राह्मण के गुण भी ज्ञानमूलक ही हैं। पर उसके भी मूल में आत्मपरमात्मसत्ता पर निर्भर होना अर्थात् आस्तिक्य है। ब्राह्मण में आत्म-सत्ता पर विश्वास तर्क द्वारा नहीं किन्तु एक प्रकार के हार्दिक अनुभव द्वारा होता है। वह सहज स्वभाव से परमेश्वर में श्रद्धा रखता है। और फिर ब्राह्मण की सब शक्ति, सब उच्चता, सब ज्ञान भंडार उसे जगदन्तरात्मा पर इस प्रकार पूर्णतया आश्रित होनेके कारण ही प्राप्त होते हैं। अस्तु। ये ब्राह्मण के स्वाभाविक गुण हो गये। जैसे कि गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है—

मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव!

उसी तरह जो लोग इस शम, दम आदि संपत्ति को जन्म से ही साथ लेकर पैदा होते हैं वे ब्राह्मण होते हैं अतः तुममें से जिनमें ये सहज गुण हों या आसानी से आ सकते हों वे अपने को ब्राह्मण के धर्म द्वारा सेवा करने के योग्य बनावें।

कौन ब्राह्मण है या नहीं, यह बात माता पिता तथा गुरु बालकके इन गुण-कर्म-स्वभावों द्वारा जन्म से ही देखकर जान सकते हैं इतना ही नहीं किन्तु यदि हम और आगे बढ़ें तो पायेंगे कि ब्राह्मण आदि उत्पन्न कर लेना माता-पिता पर आश्रित है अर्थात् माता-पिता के संकल्प पर आश्रित है कि वे

गर्भाधान संस्कार करते हुए किस प्रकार के आत्मा का, किन गुणों वाले आत्मा का आह्वान करते हैं। पर इतना आजकल कौन करता है ? किस में इतनी शक्ति है ? पर यह सत्य है कि असल में वर्णव्यवस्था का पुनरुद्धार वहां से शुरु होना चाहिये। संकल्प वहां से प्रारम्भ होवे तब तुम्हारे लिये अब संकल्प करना कुछ कठिन न रहे। अस्तु अन्त में मैं यह कहना चाहताहूं कि अपने संकल्प की दृढ़ता के लिए तुम्हें वर्तमान काल के महान् ब्राह्मणों के चरित्र ध्यान से देखने चाहियें, उनके संपर्क में आने का यत्न करना चाहिये, बल्कि उनकी शिष्यता ग्रहण करनी चाहिये, तब तुम्हारा ब्राह्मणत्व अतिशीघ्र चमक उठेगा यह तुम देखोगे। मैं किस वर्ण का हूं, यह जानने का भी सबसे अच्छा तरीका यह है कि मनुष्य भिन्न भिन्न प्रकार के महा पुरुषों के जीवन—चरित्र पढ़े और फिर देखे कि उसे किस का चरित्र सब से अधिक भाता है, किस जैसा बनने को उसका अन्तरात्मा उछलता है तो वह महापुरुष जिस वर्ण का माना जाता है उसी वर्ण का तुम अपने को समझ लो।

इस युग के एक महान् ब्राह्मण दयानन्द हुए हैं। उनको देखो। उन्होंने उदित हुए सूर्य की तरह देश के घोर अज्ञान को दूर किया। अपने शम, दम और तप के बल से देश में क्रान्ति पैदा कर दी, सब लोग इनके दृष्टिकोण से देखने सोचने लगे। पश्चिमीय सभ्यता के प्रबल प्रवाह को ऐसा धक्का पहुँचाया कि अवस्थायें ही बदल दीं। गांधी जी हैं जो कि सचमुच दुनिया को एक नया सन्देश देने को जन्मे हैं। इस ज़माने में उनका अहिंसा पर—न केवल वैयक्तिक अहिंसा किन्तु सामुदायिक अहिंसा पर भी, इतना अटल विश्वास होना यह एक अत्यन्त असाधारण बात है, मानवातीत सी बात है, उनके नज़दीक साथी भी उनके इस विषयक व्यवहार से बहुत बार चकरा जाते हैं। पर उनका आस्तिक्य, उनका ज्ञान उनका तप, उनकी क्षमा उन्हें ऐसा अजेय बनाये हुए हैं कि यह हिंसाभरी दुनिया आज उस एक व्यक्ति की आसानी से अवहेलना नहीं कर सकती। एक और महान् ब्राह्मण बल्कि ऋषि, परमहंस योगी श्री अरविन्द हैं जिनकी महत्ता, शायद अभी संसार के लिये प्रकट होने को है।

यह तो बहुत बड़े ब्राह्मणों का वर्णन हुआ। पर तुम अपने स्नातक भाइयों में ही देखो। मुनि देवराज जी विद्यावाचस्पति एक ब्राह्मण हैं। नैष्ठिक-ब्रह्मचारी हैं। मानसिक शान्ति तो उनमें इतनी है कि एक स्नातक मित्र कहते थे कि मुनि जी जब चलते हैं बैठते हैं तो एक शान्ति का वातावरण सदा उनके साथ रहता प्रतीत होता है, जो दूसरों पर शान्ति का प्रभाव डालता है। उन्होंने अब तक (स्नातक हो जाने के २० वर्ष बाद तक भी) ज्ञान-संपादन करने में अपना जीवन लगाया है। उन्हें कुछ सच्चा सूक्ष्म और ऊँचा ज्ञान मिला है यह उनसे बातचीत करने पर उनके लेख पढ़ने से प्रतीत हुए बिना नहीं रहता है। उन का इन्द्रियनिग्रह, उनकी तपस्या, उनकी सरलता से हम सब अच्छी तरह परिचित हैं। श्री० पं० बुद्धदेव जी को कौन नहीं जानता ? उनके अन्दर जो एक लगन है, अग्नि है, आर्यसमाज व ऋषि दयानन्द के लिये ज्ञानमयी भक्ति है उसे कौन अस्वीकार कर सकता है ? सन् ३० में जब मैंने उन्हें स्नातक सत्याग्रही जत्थे में शामिल होने को कहा तो उन्होंने कुछ ऐसा सा जवाब दिया (उन जैसी सुन्दर और ठीक २ भाषा तो मैं नहीं बोल सकता) कि आप जिस काम के लिये मुझे चाहते हैं वह हैतो बहुत ही अच्छा किन्तु मैं क्या करूँ। मैं अपना सिर तो पहले ही दयानन्द को दे चुका हूँ, यदि मेरा दूसरा सिर होता तो उसे इसके लिये दे देता। उनकी तपस्या और

क्षमा शीलता के भी कई दृष्टान्त सुनाये जा सकते हैं। बड़े से बड़ा त्याग उनके लिये खेल है। पर सब से बड़ी विशेषता उनकी आर्जव (सरलता) सरल-हृदयता है उनके हृदय में कुटिलता ज़रा भी नहीं है। उनके विरोधी भी अपने दिल में उनकी इस लगन और इस सरलहृदयता के कायल हैं। उन की विद्वत्ता, वक्तृत्वशक्ति तथा कवित्व तो शायद बच्चा-बच्चा जानता है। फिर पं० जयदेव जी वेद भाष्यकार हैं। जिन के ब्राह्मण होने में मुझे कोई शक नहीं। उनका विद्या-व्यसन, उनका विस्तृत अध्ययन, उन का तप सादगी तथा सरलवृत्ति उन्हें ब्राह्मण वर्णीय बनाती है। स्वामी व्रतानन्द जी हैं, जो संन्यासी भी हो चुके हैं, आजन्म ब्रह्मचारी हैं। कितने सच्चे, सरल, तपस्वी और धर्म परायण हैं। ब्रह्म-शक्ति के बल से चित्तौड़ जैसी जगह में गुरुकुल चलाने का कार्य कर रहे हैं। इन कुछ प्रसिद्ध पुराने स्नातकों के अतिरिक्त मैं अन्य कई प्रचार कार्य में लगे या गुरुकुलों में लगे तथा देश-सेवा में लगे स्नातकों को भी ब्राह्मण वर्ण में गिना सकता हूँ और कुछ ऐसे हैं जिन से मैं भविष्य में दृढ़ आशा रखता हूँ कि वे कुछ समय बाद अपने ब्रह्मतेज से चमकेंगे पर अभी उन सब का नामोल्लेख करने की शायद आवश्यकता नहीं। जिस में ब्राह्मणत्व ऊँचे दर्जे का होगा और स्पष्ट होगा वह छिपेगा नहीं, उसका अनुकरण भी ब्राह्मण-वृत्ति रखने वाले लोग करेंगे, पर यह भी सत्य है कि बहुत लोग ऐसे होते हैं जो इन वर्णों में से ब्राह्मण वर्ण में ही आ सकेंगे और किसी में नहीं, किन्तु उन का यह ब्राह्मणत्व किसी न किसी त्रुटि या कमी के कारण पूरी तरह समर्थ या प्रभावशाली नहीं हो पाता है। ऐसे पुरुषों को ब्राह्मण धर्म पालन करते हुए ही अपनी उन त्रुटियों, कमियों को दूर करने का यत्न सतत जारी रखना चाहिये। अन्य वर्ण के लिये भी यही बात लगती है अस्तु। आज का मेरा विषय तुम्हें ब्राह्मण वृत्ति के स्वाभाविक गुण, धर्म, बतलाने का ही था। कुछ ब्राह्मणों के चरित्र का वर्णन भी मैंने इसी बात को स्पष्ट करने के लिये किया है। अगली बार मैं ब्राह्मण-कर्म पर बोलूँगा, और (यह बताऊँगा कि कौन कौन से कार्य, कर्म (पेशे) हैं जो कि ब्राह्मणत्व प्राप्त कर निकले स्नातकों को भविष्य जीवन में स्वीकार करने चाहियें, अर्थात् देश में कौन से कार्य स्थान और क्षेत्र हैं जो कि ब्राह्मण स्नातकों की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

हमारा अविवेक

[श्री के ज्ञानी, मद्रास]

सर्वेण्टस-आफ़-इण्डिया सोसाइटी, पूना के मंत्री श्री कोदण्ड राव जी अपनी विदेश-यात्रा के पश्चात् मद्रास पधारे और यहां उनके व्याख्यान भी हुए। विदेश में भारतीयों की अवस्था बतलाते हुए ट्रिनिडाड तथा ब्रिटिश गायना का उन्होंने ज़िक्र किया। उस सम्बन्ध में निम्न वाक्य ध्यान देने योग्य हैं:—

"गत कुछ समय से ट्रिनिडाड में भारतीय भिन्न २ पार्टियों में विभाजित हो रहे हैं। उदाहरणार्थ ब्रिटिश गायना और ट्रिनिडाड में पहिले पर्दा प्रथा न थी। कुली-स्त्रियां बिना किसी प्रापेगैण्डा के ही इस बीमारी से छूट गई थीं। दुर्भाग्य वश एक मौलवी भारत से वहां गया जिसने उन्हें बताया कि पर्दे के बग़ैर खुले मुंह रहना मज़हब की रूह से हराम है। अब इस प्रश्न पर वहां के मुसलमानों में दलबन्दियां हो गई हैं।'

"और यह दलबन्दी का कार्य केवल मौलवी ही नहीं कर रहे हैं। गत कुछ समय से आर्य समाजी और सनातनी पण्डित भी वहां पहुंचे हैं। उनका काम एक दूसरे को बुरा भला कहना तथा धार्मिक समालोचना। परिणाम यह है कि भारतीयों की संघशक्ति बढ़ने की जगह घट रही है।"

संभव है कि हमारे पाठकों को श्री कोदण्ड राव जी के उपरोक्त वाक्य अप्रिय प्रतीत हों। परन्तु उनमें 'सत्य' है इसका निषेध नहीं किया जा सकता। क्या

हमारे आर्य-प्रचारक अनुचित समालोचना को अपना ध्येय बनाते हैं? क्या बग़ैर लड़े झगड़े धर्म-प्रचार नहीं हो सकता? क्या सनातनी रीति-रिवाजों का खण्डन अच्छे ढंग से नहीं किया जा सकता? क्या ईसाई मत व इस्लाम की नुक्ताचीनी हंसी-मज़ाक के बग़ैर नहीं हो सकती? हमारे इस प्रचार का फल क्या है? जहां २ आर्य समाज के ऐसे प्रचारकों ने पैर रखे हैं वहां २ जातीय विद्वेष की अग्नि भड़क उठी है। एक ओर हमने हिन्दुओं में आपस की फूट का बीज बोया है और दूसरी ओर मुसलमानों व ईसाइयों को श्रेणीरूपेण शत्रु बनाया है। इस पारस्परिक वैर-विरोध का परिणाम यह है कि समझदार व्यक्ति मत व मज़हब के नाम से ही घबड़ाने लगे हैं। वो समझते हैं कि मज़हब के माने समालोचना व ईर्षा-द्वेष के हैं। और आर्यसमाज का तो दुर्भाग्य यह है कि इसके अपने घर में भी भयंकर कलह है। नेताओं की आपस में नहीं बनती। संस्थाएं आपस में जलती हैं। पत्रों व पत्रकारों—दोनों में दैनिक तू-तू-मैं मैं है। प्रतिनिधि-सभाओं व उनके अधिकारियों ने तो समाजों को बराबर 'अखाड़े' का रूप दे रखा हुआ है। ऐसी अवस्था में प्रचार तो क्या? दुराचार बढ़ रहा है। सिद्धान्तों से प्रेम छूट कर स्वार्थ-परता अधिकाधिक हो रही है। सेवा व त्याग की जगह अधिकार-लिप्सा सर्वत्र दिखाई देती है। इसी कारण समाज में नया खून कम आरहा है। और जो पुराना है वह भी बहुत कुछ विकृत हो चुका है।

और फिर इस मनोवृत्ति से विशेष लाभ भी तो नहीं हुआ। न तो सनातनियों की संख्या में कमी आई। और न विधर्मियों के मत-परिवर्तन-कार्य में कोई अन्तर हुआ। ईसाइयत व इस्लाम की जन-संख्या पूर्वापेक्षया अधिक ही बढ़ रही है कम नहीं।

दूसरी ओर हम महात्मा गांधी जी की तरफ देखते हैं। कुछ ही वर्ष पूर्व उन्हों ने 'हरिजन' समस्या को हाथों लिया। अत्यन्त शिष्टता पूर्ण शब्दों में उन्हों ने सर्व-सामान्य को इस विषय में समझाया। परिणाम क्या हुआ कि आज सनातनी व हरिजन दोनों ही महात्मा जी के आभारी हैं। और समस्या के सुलझने का इससे अधिक क्या प्रमाण है कि दक्षिण की कट्टरतम रियासत ट्रावनकोर में मन्दिरों के दरवाजे हरिजनों के लिये खुल गये हैं। और मैसूर एसेम्बली में यह विषय इस वक्त पेश है। अस्तु।

किसी ने कहा है 'कठोर शब्दों से पत्थर नहीं टूटते'। हमें भी अशिष्टता पूर्ण अपनी समालोचना शैली को छोड़ प्रेम, बुद्धि व क्रियात्मिक जीवन द्वारा धर्म-प्रचार के मार्ग में अग्रसर होना चाहिये॥

किमधिकम्?

सूचना—आर्य्य समाज कलकत्ता के लिये पुरोहित की आवश्यकता—

आर्य्य समाज कलकत्ता में पुरोहित का स्थान शीघ्र रिक्त होने वाला है उस के लिये एक ऐसे सदाचारी अनुभवी विद्वान् की आवश्यकता है जो संस्कृत हिन्दी तथा अंग्रेज़ी के अच्छे ज्ञाता वैदिक सिद्धान्तों के मर्मी पण्डित अच्छे अनुभवी वक्ता हों। शास्त्रार्थादि कर सकें, प्रचार की बड़ी लगन हो तथा दार्शनिक रुचि रखते हों। आवेदन पत्र प्रमाण सहित निम्न पते पर आगामी ता० ३०—९—३७ ई० तक आना चाहिये और यह भी लिखें कि कम से कम कितनी दक्षिणा चाहते हैं।

निवेदक—

लक्ष्मी प्रसाद मंत्री आर्य्य समाज

१९ कार्न वालिस स्ट्रीट कलकत्ता।
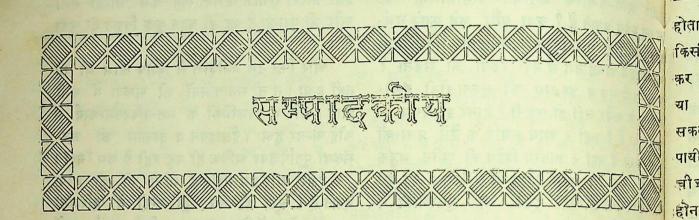
खेद-प्रकाश—

आर्य के गत २ अगस्त के अङ्क में "मां की याचना" नामक कविता गई है। वह मेरे ज्ञान के बिना निकल गई है। उसमें जो भाव प्रकाशित किये गये हैं वे आर्य प्रतिनिधि सभा और उसके पत्र आर्य की निश्चित नीति के विरुद्ध हैं। मुझे खेद है कि वह कविता आर्य में निकल गई। भविष्य में इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जायेगा कि इस प्रकार की आर्य की नीति के विरुद्ध चीजें उसमें न छप सकें।

प्रियव्रत "सम्पादक आर्य"

साम्प्रदायिकता और धर्म —

आजकल हिन्दुस्तान में साम्प्रदायिकता ने इतना उग्र रूप धारण किया हुआ है कि मनुष्य साम्प्रदायिक इतिकर्तव्यता को ही धर्म समझने लग गये हैं। वास्तव में धर्म का साम्प्रदायिकता से कोई सम्बन्ध नहीं। धर्म, प्राणिमात्र पर दया तथा विश्वप्रेम की झांकी दिखाने वाला होता है। इसके विपरीत साम्प्रदायिकता गुट्टबन्दी तथा असहिष्णुता की पैदा करने वाली होती है। धर्म में प्राणिमात्र पर परोपकार के लिये अपने ऊपर कष्ट झेलने की भावना पायी जाती है। और धर्म में रहता हुआ मनुष्य अपने ऊपर कष्ट झेल लेगा परन्तु दूसरों को कष्ट न देगा। साम्प्रदायिकता में बिलकुल इसके विपरीत भावनायें पायी जाती हैं। साम्प्रदायिक मनुष्य अपना दुःख नहीं देख सकता। कोई उसकी पड़ताल करे यह उसे चुभता है। वह विरोधी को हर तरह से नीचा दिखाने की कोशिश करता है। इसका यह मतलब नहीं समझ लेना चाहिये कि सम्प्रदाय में रहता हुआ मनुष्य कभी भी धर्म का आचरण नहीं करता, समय समय पर उसके अन्दर भी धर्म की प्रवृत्तियाँ जाग उठती हैं। परन्तु वह भी बहुत थोड़ी देर के लिये, प्रायः उस पर सम्प्रदाय का भूत सवार रहता है। इसके लिये बहुत से हिन्दु-मुस्लिम नेताओं के उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनकी वाणी में विश्वप्रेम का स्रोत बहता हुआ दिखाई देता है परन्तु उनके कार्यों में सदा सम्प्रदायिकता की बू आती है। दूसरी चीज जो कि सम्प्रदाय में अकसर पायी जाती है वह है आक्रमण की भावना। साम्प्रदायी मनुष्य अपने सम्प्रदाय को बढ़ाने के लिये सदा दूसरी जातियों पर आक्रमण किया करता है। इसके कुछ-कुछ उदाहरण आजकल की शुद्धि और तबलीग है बहुत कम ऐसी शुद्धियाँ हैं जो कि सच्चे धर्म की भावना से प्रेरित होकर की जाती हों। दूसरे मतों में शामिल होने वालों में बहुतों को तो यह ही नहीं पता

होता कि इन दो मतों में वास्तव में कौनसा अच्छा है। किसी लोभ या भय के कारण वे मत परिवर्तन कर रहे होते हैं। जहां स्वार्थ, लोभ, भय, या राजनीति आदि हों, वहां धर्म कैसे रह सकता है। धर्म में तो सदा आलिङ्गन की भावना पायी जाती है। धर्म में अपना पराया कोई चीज नहीं। जहां ममत्व आ गया वहां धर्म का होना असम्भव है। इसलिये यदि आज हिन्दुस्तान से सम्प्रदाय-रूपी विष, वृक्ष को उखाड़ना हो तो उसकी जड़ों में स्नेह मयी जल धारा का लगातार सिंचन करना पड़ेगा। तब कहीं अगली सन्तति में हम इस साम्प्रदायिकता को जड़ से उखाड़ सकेंगे। स्कूल और कालेजों में प्रेम का पाठ पढ़ाया जाये, तथा घर २ में बच्चे के अन्दर दूसरों के प्रति प्रेम का संस्कार पैदा किया जाये तो यह साम्प्रदायिकता का विष दूर हो सकता है। हमें इस बात की बड़ी खुशी है कि मौजूदा पञ्जाब गवर्नमेंट ने दो जातियों के अन्दर वैमनस्य के कारण बढ़ती हुई खाई को भरने के लिये कमर कस ली है। हमारी यह दिली इच्छा है और पूर्ण आशा भी है कि मौजूदा गवर्नमेंट इस परिवर्तन कारी युग लाने में पूर्ण सफल होगी।

लाहौर छावनी में बूचड़खाना :—

लाहौर छावनी में फौज के लिये बूचड़खाना खोला जाने वाला है। जिस में प्रतिदिन ४ हज़ार गौवों की फौज देवी की तृप्ति के लिये बलि दी जायेगी। यह स्पष्ट तौर पर हिन्दू तथा सिख धर्म पर एक वज्रपात है। हिन्दु धर्म-शास्त्रों में गौ का इतना बड़ा महत्व है कि उसको माता, जननी का दर्जा मिला हुआ है। वेदादि-धर्म शास्त्रों में जगह जगह इसके गुण गाये गये हैं। इसलिये हिन्दू धर्म को यदि गौ धर्म कहा जाये तो इस में कोई अत्युक्ति न होगी। हिन्दु गौ को इतना पवित्र समझते हैं कि उसकी रक्षा के लिये वे हरतरह की कुर्बानी करने को तय्यार हैं। इसी मर्म को जानते हुए हमारे शत्रुओं ने गौ को आगे करके ऐसे बड़े २ युद्ध जीते जिनका जीतना उनके लिए नामुमकिन था। इसी तरह समय २ पर हिन्दू जाति ने गौ के लिये और भी कई बड़ी २ कुर्बानियां की हैं। इसलिये सरकार को हिन्दू जाति की गौ के प्रति इस उच्च भावना का मान करना चाहिये। और महाराणी विक्टोरिया की आघोषणा के अनुसार ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत किसी भी जाति की धार्मिक भावनाओं पर ठेस नहीं पहुँचानी चाहिए। बूचड़ खाना हिन्दू तथा सिक्ख धर्म पर कुठाराघात है इसलिये हिन्दू तथा सिक्खों को परस्पर संगठित होकर इसका मुकाबिला करना चाहिये।

इसका एक दूसरा आर्थिक पहलू भी है। जिसका क्या मुसलमान, क्या हिन्दू, और क्या सिक्ख-सब के साथ इसका सम्बन्ध है। यह देश कृषि प्रधान देश है! ऊँट, घोड़े, हाथी आदि से तो यहां खेती हो नहीं सकती। इसलिये उत्तम खेती के लिये तथा उत्तम घी, दूध के लिये इस पशु की अत्यन्त आवश्यकता है। गांवों में गरीब किसान आदियों का तो एकमात्र यही सहारा है। खेती के लिये या उत्तम घी दूध के लिये मुसलमानों को भी इसकी रक्षा की उतनी ही आवश्यकता है कि जितनी हिन्दुओं को। इसलिये प्रत्येक देश बासी को चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान हो, अथवा अन्य किसी धर्म से सम्बन्ध रखने वाला हो—परस्पर संगठित होकर और साम्प्रदायिकता के संकुचित

वातावरण से ऊपर उठ कर इस बूचड़खाने के विरोध में आवाज़ उठानी चाहिये। हमारी सरकार से भी प्रार्थना है कि—जहाँ उनके अपने देश में घी दूध की नदियां बहती हैं प्रत्येक व्यक्ति को १२ सेर के लगभग मक्खन पड़ता है, वहां इस देश पर भी कुछ रहम करें। और इस बूचड़खाने को बन्द करवा कर हिन्दुओं तथा सिक्खों की धार्मिक भावनाओं की रक्षा करें।

दहेज—प्रथा के विरुद्ध बिल

सिंध-असैम्बली में दहेज प्रथा के विरुद्ध एक बिल पेश होने वाला है। बिल का संक्षेप में स्वरूप यह है कि विवाह के समय दहेज लेना अथवा देना, लड़के और लड़कियों का व्यापार इसी प्रकार और भी कोई सा दहेज का स्वरूप किसी भी प्रकार से न्याय युक्त न समझा जाये। और यदि कोई अपनी इच्छा से सहायता देता है तो वह भी किसी सीमा के अन्दर होना चाहिये। इस प्रकार दहेज-प्रथा के विरुद्ध सिंध-असैम्बली में हिन्दू मैम्बर ने जो पग उठाने का निश्चय किया है वह सराहनीय है। दहेज प्रथा अन्य कुरीतियों के समान हिन्दू जाति पर एक कलङ्क है। इसको धो डालना प्रत्येक गवर्नमैन्ट का का कर्तव्य है।

फ्रांसीसी-भारत में—

फ्रांसीसी भारत में बाल-विवाह रोकने के लिये फ्रांसीसी सरकार ने जो नियम लागू किया है वह अत्यन्त श्लाघनीय है। वहाँ १६ वर्ष से कम आयु वाले लड़के १४ वर्ष से कम आयु वाली लडकी का विवाह न हो सकेगा। वैसे तो यह अवधि-भी इतनी समुन्नत नहीं जितनी कि हिन्दुस्तान के सुधार के लिये आवश्यक है, परन्तु तो भी फ्रांसीसी सरकार ने यह एक उत्तम कार्य कर हिन्दुस्तान का बहुत उपकार किया है हमारी-प्रार्थना है कि वह और भी सुधार के कार्य कर हिन्दुस्तान को अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिये योग्य बनावेगी।

शराब पर पाबन्दी:—

कांग्रेसी-सरकारों ने जब से शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया है तब से सामाजिक व आर्थिक आदि अवस्थाओं को सुधारने के लिये हमेशा प्रयत्न शील रही हैं। वे जनता की प्रतिनिधि हैं इस लिए उनसे सामाजिक सुधारों की आशा करना स्वाभाविक भी था। बोम्बे, मद्रास आदि की कांग्रेसी सरकारों ने मद्य पर पाबन्दी लगाकर एक अति सराहनीय कार्य किया है। शराब मनुष्य जाति को अन्दर से खोखला करने वाली है जिस जाति में मद्य आदि का प्रचार हो वह जाति कभी तरक्की कर ही नहीं सकती इसलिये इन सरकारों ने जो प्रशंसनीय कार्य किया है हमें आशा है कि अन्य सरकारें भी इस ओर सराहनीय पग उठायेंगी। और चूंकि मुस्लिम धर्म में मद्य का निषेध किया गया है इसलिये मुस्लिम जनता के प्रतिनिधि भी अपने २ प्रान्तों में इसे रोकने का भरसक प्रयत्न करेंगे।

जम्मू की हड़ताल :—

अखबार पढ़ने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस बात को भली भांति जानता है कि जम्मू हड़ताल कितना भयंकर रूप धारण कर चुकी है। जेलों में देवियों की भूख हड़ताल से एक नाज़ुक स्थिति पैदा हो गई है। इस प्रकार न जाने यह हड़ताल कब तक जारी रहे। हमारी महाराज से प्रार्थना है कि वे हिन्दुओं और सिक्खों की उचित मांगों पर अवश्य ध्यान देवें। और हमारी हिन्दुओं तथा सिक्खों को बधाई है कि उन्होंने शान्त वातावरण रखते हुए गौ माता की रक्षा में एक ऐसा उत्कृष्ट संगठन बनाया जो कि सब हिन्दुओं तथा सिक्खों के लिये अनुकरणीय है।

के दीवाने पैदा करता दूसरी ओर अर्जुन देश-देश को जगाता। उस के मार्ग में बहुत सी कठिनाइयां आयी पर अर्जुन किसी के आगे झुका नहीं।

गुरुकुल कांगड़ी के पिछले ५८ वर्षों के साथ एक इतिहास जुड़ा है। जिन दिनों गुरुकुल खोलने की चाह स्वामी जी के हृदय में थी उन दिनों स्थान नहीं मिल रहा था। स्वामी जी के संकल्प की बात नजीबाबाद के उदारमना व्यक्ति मुंशी अमनसिंह जी के हृदय में घर कर गई। मुंशी जी जन्मना वैश्य थे किन्तु थे दूर दर्शी। उन्होंने इस महान् कार्य के लिए अपनी गङ्गा के किनारे भूमि, स्वामी जी को भेंट करनी चाही और एक पत्र स्वामी जी को इस सम्बन्ध में लिखा। इस पत्र को स्वामी जी ने किसी विरोधी का व्यंग समझा। बहुत दिनों तक प्रतीक्षा करने के बाद मुंशी जी ने दूसरा पत्र लिखा। इस पत्र के कुछ दिन बाद स्वामी जी की ओर से एक व्यक्ति नजीबाबाद आया और उन्होंने उस स्थल का निरीक्षण किया जो भूमि मुंशी अमनसिंह जी गुरुकुल के लिए देना चाहते थे। कुछ दिन बाद गङ्गा के किनारे बिजनौर जिले की सीमा पर स्थित श्यामपुर कांगड़ी नाम के ग्राम की भूमि में गुरुकुल खोल दिया गया।

बिजनौर में इस गुरुकुल के खुलने से जहां सारे देश का हित हुआ वहाँ बिजनौर के साथ स्वामी श्रद्धानन्द, प्रो० इन्द्र तथा अन्य कुछ गुरुकुल के सम्बन्धित व्यक्तियों का सम्पर्क बढ़ा।

मुंशी अमनसिंह जी तो १९२६ में अपना नश्वर शरीर छोड़ गए और १९२४ की गङ्गा की भीषण बाढ़ में गुरुकुल बदल कर सहारनपुर जिले में चला गया जहां आजकल अच्छी सेवाओं से देश को उपकृत कर रहा है।

बिजनौर में गुरुकुल खोलने से इस जिले का विशेष उपकार हुआ। जिले में कई मान्य विद्वान् गुरुकुल में अध्यापक रहे। इन में सम्पादकाचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा, स्व० पं० भवानी प्रसाद जी के नाम उल्लेखनीय हैं। स्व० पद्मसिंह शर्मा गुरुकुल कांगड़ी में साहित्य के अध्यापक भी रहे और स्वामी जी के कुछ पत्रों के सम्पादक में भी योग दिया। कुछ कारणों से जब गुरुकुल और महाविद्यालय का झगड़ा हुआ उन दिनों कुछ मन मुटाव भी रहा किन्तु पं० पद्मसिंह शर्मा का हृदय सदा स्वामी श्रद्धानन्द के गुणों का प्रशंसक रहा। यह इस बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि जिस दिन स्वामी जी का बलिदान हुआ उन दिनों पद्मसिंह जी अपने ग्राम नामक नगला में थे। नायक नगला से उनके परिवार का एक व्यक्ति चांदपुर में मङ्गल की पैंठ के लिए आया था। उसने वहां स्वामी जी के बलिदान का समाचार सुना और गांव लौटने पर पण्डित जी को सुनाया। सुनते ही पद्मसिंह जी मूर्छित हो गए और लगातार अपने स्वाध्याय की कोठरी को बन्द करके रोते रहे। बाद में उन्होंने स्वामी जी के सम्बन्ध में श्रद्धांजलि स्वरूप जो लेख लिखा था उसे आज भी पढ़ कर आंसू आ जाते हैं। स्व० पद्मसिंह

जी शर्मा भी इस समय संसार में नहीं है और आगामी सात अप्रैल को उन की २५ वीं श्राद्ध तिथि है। स्वामी श्रद्धानन्द जी और पं० पद्मसिंह जी शर्मा ने हिन्दी के उन्नयन में जो सराहनीय कार्य किया है उसके लिए भी दोनों सदा स्मरण किए जाएंगे। स्वामी जी और शर्मा जी साहित्य सम्मेलन के सभापति रहे। शर्मा जी ने मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक भी सर्व प्रथम पाया। इस प्रकार गुरुकुल के संसर्ग से यह सब कार्य हुआ। गुरुकुल कांगड़ी के दूसरे अध्यापक पं० भवानी प्रसाद जी ने अपना पुस्तकालय भी गुरुकुल को सौंप दिया। उनका सारा जीवन आर्य-समाज और गुरुकुल कांगड़ी की सेवा में बीता। अपनी निवास भूमि हल्दौर में रह कर अपने अग्रज स्व० लाला ठाकुर दास के सहयोग से शिक्षा, हरिजनोद्धार, महिला जागरण में भारी काम किया। उनके लिखे दो ग्रन्थ आज भी देश का मार्ग दर्शन कर रहे हैं। एक पर्वपद्धति जो सारे भारत के आर्य जन का प्रिय ग्रन्थ है दूसरा बिजनौर मण्डल का इतिहास यह क्षेत्रीय जानकारी कराता है। आपने अपने पुत्रों को भी गुरुकुल की सेवा में लगाया। भवानीप्रसाद जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री रामगोपाल विद्यालङ्कार भारत के हिन्दी पत्र सम्पादकों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। दूसरे पुत्र श्री मदनगोपाल विद्यालङ्कार भी गुरुकुल काँगड़ी के स्नातक हैं।

इसके अतिरिक्त मुंशी अमनसिंह जी के दौहित्र श्री नन्दकिशोर विद्यालङ्कार तथा गुरुकुल कांगड़ी के यशस्वी उपाध्याय वागीश्वर विद्यालङ्कार भी बिजनौर में जन्म लेने के कारण गुरुकुल की छत्र छाया में यशस्वी जीवन बिता रहे हैं।

इस प्रकार स्वामी श्रद्धानन्द के इस अमर वृक्ष ने बिजनौर के बहुत से लोगों को शिक्षा-दीक्षा देकर सुयोग्य बनाया है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी की शताब्दी पर एक बार उनकी बिजनौर की उपेक्षित भूमि से सम्बन्ध होने पर जो कृपा भाव रहा वह याद हो आता है। स्वामी जी और उन के सहकर्मी सभी जिन महानुभावों ने जो राष्ट्र के जागरण में कार्य किया उन के प्रति मेरी श्रद्धांजलि अर्पित है।

उस अमृत भरी गोद में बैठ सकते हो

हे मर्त्यलोक के निवासियो ! क्या तुम्हारी निर्बल शक्तियें तुम्हें परमात्मा तक पहुंचा सकती हैं ? छोड़ो इन व्यर्थ चेष्टाओं को और निवास के साथ अपने मन तथा अपने आत्मा का सारा प्रेम उसकी ओर छोड़ दो; भक्ति से ही तुम उसकी ओर पहुंच सकते हो। क्या तुम देखते नहीं कि बच्चे के हाथ पसारते ही माता उसे गोद में ले लेती है। इसी तरह वह जगदम्बा भी तुम्हारे लिए अपनी गोद को हर समय खोले बैठी है। तुम्हारे हाथ पसारने की देर है कि तुम उस अमृत भरी गोद में बैठ कर निश्चिन्त हो सकते हो।

—स्वामी श्रद्धानन्द, धर्मोपदेश।

श्रद्धांजलि[1]

डा० सुखदेव

स्वामी श्रद्धानन्द जी की जन्म-शताब्दी के अवसर पर मुझे गुरुकुल के इस उत्सव में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया। सन् १६०१ से ले कर १६२६ में उन का बलिदान होने तक मैं उन के साथ रहा और उन के सिपाहियों में रहा, इसलिए मुझे उन के महान् व्यक्तित्व को निकट से देखने-भालने का और उन से बहुत कुछ सीखने का अवसर मिला।

स्वामी जी के जीवन के बहुमुखी कार्यों पर कुछ कहना लिखना किसी अच्छे वक्ता या लेखक का काम है। पर मैं न वक्ता हूं न लेखक। फिर भी मैंने इस अवसर पर अपने भाव-सुमन चढ़ाने का साहस किया है, यह स्वामी जी के प्रति मेरी अगाध श्रद्धा और निष्ठा का ही प्रतीक है। मैंने अपने कुछ संस्मरण स्वामी जी के स्मृति-ग्रन्थ के लिए भी लिखकर दिए हैं। उन के सम्बन्ध में मेरे हृदय में भावों का इतना बवंडर खड़ा होता है कि उसे सिलसिलेवार प्रकट करना और वह भी थोड़े से समय में मेरे लिए असम्भव है। वस्तुतः यह काम जीवन-चरित लेखकों का है। स्वामी जी की जीवनी लिखने का काम तो उन के सुपुत्र पण्डित इन्द्र जी या गुरुकुल के अन्य स्नातक कर सकते हैं और उन्होंने किया भी है।

स्वामी जी का पहला नाम लाला मुंशीराम जी था, फिर महात्मा मुंशीराम हो गया और सन्यास लेने के बाद वे स्वामी श्रद्धानन्द बने। असल में स्वामी जी इस नाम के लिए जीवन भर अपने आप को तैयार करते रहे थे। वे जिस किसी काम को एक बार नाप-तोल के बाद सही समझ लेते थे, फिर उसे पूरा करने में पूरी श्रद्धा के साथ जुट जाते थे और किसी विरोध या बाधा की परवाह नहीं करते थे। गङ्गा के पार बीहड़ जङ्गलों में गुरुकुल की स्थापना करना उनकी इस अगाध निष्ठा और दृढ़व्रती होने का एक सबूत है।

स्वामी जी के जीवन से लाभ उठाने का सुयोग मुझे तभी से मिला जब मैं लाहौर में मेडिकल कालेज में पढ़ता था। उनके व्याख्यान आर्य-समाज में हुआ करते थे और मुझे उनके सुनने की बहुत उत्सुकता रहती थी। महात्मा मुंशीराम जी शुरू से ही आर्य-समाज में नेता के रूप में सामने आये। वे नेता के लिए आचरण का पवित्र होना बहुत आवश्यक मानते थे। यह कहना अनुचित न होगा कि उन पर महर्षि दयानन्द के जीवन की गहरी छाप पड़ी थी और वे उनके ग्रन्थों से बेहद प्रेम करते थे। महात्मा मुंशीराम जी आर्य-समाज के सिद्धांतों के प्रचार के लिए स्वामी जी के साहित्य को प्रमुख साधन समझते थे, इसी कारण महात्मा मुंशीराम जी ने अपने पत्र 'सद्धर्म प्रचारक, को उर्दू से हिन्दी में किया

१. श्रद्धानन्द शताब्दी पर गुरुकुल की पुरानी भूमि में सम्पन्न सम्मेलन में दिया गया भाषण।

ग्रौर उसके जरिए ग्रार्य-समाज के सिद्धान्तों की जोरदार पैरवी की।

महर्षि दयानन्द के समय देश में अंग्रेजी राज था ग्रौर देश पूरी तरह गुलाम था ग्रौर गुलामी की सब बुराइयां जनता में व्याप्त थीं। स्वामी जी ने जनता के उद्धार के लिये ग्रार्य-समाज की स्थापना की थी, पर उन के संदेश को ग्रागे के लिए किसी सच्चे ग्रनुयायी ग्रौर देशप्रेमी की ग्रावश्यकता थी। महात्मा मुंशीराम जी ने ग्रपनी लगन ग्रौर त्याग व तपस्या से उस स्थान को ग्रहण किया। ग्रार्य-समाज में तब पढ़े लिखे विचारक लोग तो थे, पर उन में बहुत से सरकारी नौकर भी थे जो ग्रार्य-समाज को राजनीति से ग्रलग रखने के पक्षपाती थे। उन में ग्रंग्रेजी सरकार का कोपभाजन बनने की हिम्मत न थी, इस लिए वे यही दलील देते थे कि ग्रार्य-समाज का राजनीति ग्रौर शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं, उसे तो सिर्फ धर्म का प्रचार करना चाहिए। महात्मा मुंशीराम जी इस बहस में तो नहीं पड़े, पर उन्होंने ग्रसली तौर पर इस बात का खण्डन गुरुकुल कांगड़ी जैसी राष्ट्रिय शिक्षा-संस्था खोल कर किया। वे देश की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए सदाचार, शिक्षा ग्रौर राजनीतिक स्वाधीनता सभी को ग्रावश्यक ग्रौर परस्पराश्रित मानते थे। महात्मा मुंशीराम जी ने ग्रपने मार्ग को पूरी श्रद्धा के साथ चुना था, इस लिए उन्होंने गुरुकुल की स्थापना ग्रपने घर-बार की मोह-ममता छोड़ कर यहां गङ्गा के किनारे जंगलों में की थी ग्रौर गुरुकुल में सबसे पहले ग्रपने दोनों पुत्रों को भी प्रविष्ट किया था। सदाचार को ले कर वे जो व्याख्यान देते थे उन में उनके जीवन की पूरी छाप रहती थी ग्रौर इसी लिए उन के श्रोताग्रों चाहे वे किसी भी मत के मानने वाले हों व ग्रनुयायियों पर गहरा ग्रसर भी होता था। जब महात्मा जी कुरबानी देने वालों में सब से ग्रागे रहते थे तो ग्रौर लोगों पर उन का ग्रसर क्यों न होता?

सन् १६०६ में पटियाला के राजा की नाबालिगी का फायदा उठा कर अंग्रेज सरकार ने ग्रार्य-समाज की उभरती हुई शक्ति को कुचलने का यत्न किया तो महात्मा मुंशीराम जी ने ग्रपने जिस साहस ग्रौर दूरदर्शिता का का परिचय दिया वह ग्रार्य-समाज के इतिहास में सदा स्मरणीय रहेंगे। सरकार ने सब ग्रार्य-समाजियों को पकड़ कर एक कैम्प में डाल दिया था ग्रौर ग्रार्य-समाज मन्दिर पर ताला डाल दिया था। ग्रार्य-समाज को राजद्रोही संस्था प्रमाणित करने के लिए सरकार ने मुकदमे का जोरदार नाटक रचा था। यह मुकदमा कई महीने चला ग्रौर फिर प्रमुख ग्रार्य-समाजियों को रियासत से बाहर निकल जाने का हुक्म देकर मुकदमा उठा लिया गया था। इस मुकदमे में महात्मा मुंशीराम जी ने ग्रार्यों की पैरवी करने के लिए बड़े-बड़े एडवोकेटों तक दौड़-धूप की ग्रौर उन की मुंह मांगी फीसें देने का भी पूरा यत्न किया पर कोई सामने ग्राने को तैयार नहीं होता था। ग्रार्य-समाजी भी सरकारी कोप का शिकार होने से बचने के लिए समाज की सदस्यता से ग्रपने नाम कटाने लगे

थे। तब महात्मा जी ने आर्यसमाजियों को बड़े ओजस्वी शब्दों में कहा था—"यदि तुम से कहा जाये कि अपने परमात्मा और उस की पवित्र वाणी वेद से विमुख हो कर ही प्रजा-धर्म का पालन हो सकता है तो तुम स्पष्ट कह दो कि जिस आत्मा पर संसार के चक्रवर्ती राजा का भी अधिकार नहीं हो सकता,उसे बेचने के लिए हम तैयार नहीं हैं। जो लोग वैदिक धर्म का गौरव नहीं समझते उन कायरों को आर्यसमाज से अलहदा हो जाना चाहिए।"

पटियाला से जिन आर्य सज्जनों को निर्वासित किया गया उन्हें महात्मा जी ने गुरुकुल में नियन्त्रित कर पनाह दी। उन का स्वागत किया और उन को गुरुकुल की सेवा के लिए अभिसिक्त किया। इन में लाला नन्दलाल जी, मुरारी लाल जी मास्टर, लक्ष्मणदास जी जैसे लोग भी थे, जो आर्यसमाज के सच्चे सेवक थे। शेष कुछ आर्यसमाजी महापुरुषों ने दिल्ली में जा कर आर्यसमाज का कार्य सम्भाला। उन की सेवाओं से समाज की बड़ी उन्नति हुई। पटियाला में महात्मा मुंशीराम जी के आगे आने से आर्यसमाज की प्रतिष्ठा देश में खूब बढ़ी और यह अनुभव किया गया कि सरकार का सही तौर पर मुकाबला करने वाली कोई संस्था है तो वह आर्यसमाज ही है। आर्यस-माज पर ब्रिटिश सरकार ने कड़ी नजर रखनी शुरू की और उसी सिलसिले में भारत के वायसराय लौर्ड चेम्सफोर्ड और संयुक्त प्रान्त के गवर्नर सर जेम्स मेस्टन आर्यसमाज की संस्था गुरुकुल को स्वयं देखने आये। वे असक्त में स्वामी जी की वीरता लेने के ध्येय से आए थे परन्तु स्वामी जी की निर्भयता आदि गुणों से प्रभावित हो कर गए।

महर्षि दयानन्द ने आर्य-समाज को सारे संसार का उपकार करने का उद्देश्य ले कर स्थापित किया था, पर वे स्वयं हिन्दू जाति से आए थे और वेद भी हिन्दू जाति के लोगों में ही माने जाते हैं। इस लिए स्वभावतः उन्होंने अपना काम हिन्दू जाति से ही शुरू किया। उनके बाद आर्य समाज में प्रविष्ट होने वाले लोगों को साम्प्रदायिकता की दलदल से बाहर निकालने का काम महर्षि के सच्चे अनुयायी महात्मा मुंशीराम जी ने किया। उन्होंने गुरुकुल में ब्रह्मचारियों को १४ वर्ष तक बिना किसी जाति या सम्प्रदाय के भेदभाव के एक साथ बैठ कर खाने-पीने का अनूठा परीक्षण सफल कर के दिखाया। गुरुकुल में छूतछात और संकीर्ण साम्प्रदायिकता को कभी स्थान नहीं दिया गया।

स्वामी श्रद्धानन्द जी राष्ट्रीय महासभा काँग्रेस का बहुत आदर करते थे, पर उन्हें उस के तौर-तरीकों पर मतभेद था। वे राजनीति, धर्म और समाज में ऊंचे आचरण व नैतिकता को विशेष महत्त्व देते थे। इसलिए वे उसके राजनीतिक नेताओं का आदर करते हुए भी आर्य-समाज को ही देश के लिए अधिक उपयोगी और लाभदायक समझते थे। जब तक वे जीवित रहे, अपने चरित्र को ऊंचा रख कर आर्य-समाज को भी देश के लिए कुर्बानी करने वाली प्रमुख संस्था के रूप में आगे बढ़ाते रहे। आर्य-समाज के भीतर

स्वामी जी के विरोधियों की कमी नहीं थी, पर बहुमत सदा स्वामी जी के साथ ही रहता था। आर्य-समाज के अतिरिक्त श्री मदनमोहन मालवीय, हकीम अजमल खां और डा० अंसारी जैसे उदार विचारों के सनातनी हिन्दू और राष्ट्रीय मुसलमान भी उनको साथ रखना और उनसे लाभ उठाना बहुत जरूरी समझते थे।

जब गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया तो स्वामी जी भारत में पहले व्यक्तियों में थे। जिन्हों ने उसका स्वागत किया था, क्योंकि वह आंदोलन सत्य व तप के आधार पर चलाया गया था। गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों ने पत्थर तोड़ कर धन एकत्र किया था और उसे गांधी जी के पास अफ्रीका भेजा था। गांधी जी की विजय हुई तो सरकार ने सिर्फ यही शर्त रखी कि आप इस देश में न रहें। गांधी जी भारत आ गए और सब से पहले अपने बच्चों को ले कर गुरुकुल कांगड़ी महात्मा मुंशीराम जी के पास आए थे। गांधी जी ने ईसाई, मुसलमान, हिन्दू और अन्य उग्रपन्थी नेताओं से बातचीत की और उन्होंने वचन दिया कि कांग्रेस को हम इसी रास्ते पर चलाएंगे।

पहला जलसा लखनऊ कांग्रेस के समय हुआ, जिसमें लोकमान्य तिलक, डा. अंसारी आदि नेता एकत्र हुए। भला स्वामी जी ऐसे मौके को कब छोड़ सकते थे? उन्होंने सत्याग्रह आंदोलन के लिए अपना नाम लिखाया और दलितोद्धार के काम को माना हुआ था–– जिसे उन्होंने आर्य-समाज की सेवाओं का एक मुख्य अङ्ग हाथ में लेने का विशेष आग्रह किया। उन्होंने कहा––"जब तक छूतछात की समस्या हल नहीं की जाएगी, नौकरशाही हमारे ६ करोड़ भाइयों को हमारे खिलाफ खड़ा करके हमें सफल न होने देगी।" आखीर में स्वामी जी ने कांग्रेस के नेताओं की इस सम्बन्ध में भारी उदासीनता देख कर दुखी मन से कांग्रेस से अलग हो कर दलितोद्धार का कार्य स्वामी जी रूप में करने का निश्चय किया।

स्वामी जी छूत-छात व जात-पात के सवाल को क्रियात्मक ढङ्ग से हल करना चाहते थे। वे इस बात के इतने कट्टर समर्थक थे कि १६०१ ई० में ही उन्होंने अपनी दूसरी पुत्री अमृतकला का विवाह जाति-बन्धन तोड़ कर मेरे साथ किया था।

स्वामी जी की ओजस्विता और निर्भीकता सिर्फ व्याख्यानों और शास्त्रार्थों तक ही सीमित न थी। शेर और दूसरे खूंखार जानवरों वाले घने जङ्गलों में गुरुकुल को कायम करने में उन्हें कभी भय नहीं लगा। उनकी कुटिया गङ्गा के किनारे सब से अलग थी। वे रात को उठ कर आश्रम और गोशाला तक का चक्कर लगा आते थे। इस से भी उग्र निर्भीकता का परिचय उन्होंने चांदनी चौक में घंटाघर के नीचे मार्च १६१६ में दिया था। जो घटना आज संसार-प्रसिद्ध बन चुकी है।

दिल्ली में स्वामी जी के नेतृत्व में १८ दिन तक मुस्लिम हड़ताल रही, ट्राम और तांगे तक सब बन्द थे। हिन्दू-मुसलमानों का

वैसा प्रेम शायद फिर कभी देखने को नहीं मिला। गोरखे सिपाही संन्यासी की छाती पर बन्दूकें ताने खड़े रहे, पर उन्हें गोली चलाने की हिम्मत न हुई। लोगों के जोश का वारापार न था। मुसलमान उन्हें जामा मस्जिद के मिम्बर पर ले गए और वहां से एक आर्य-संन्यासी ने एक समयोचित्त सुन्दर प्रार्थना के साथ अपना ओजस्वी भाषण दिया।

राजधानी दिल्ली के इन दृश्यों में ब्रिटिश हकूमत का जनाजा उठता साफ नजर आता था। स्वामी श्रद्धानन्द दिल्ली महानगरी का बेताज बादशाह था।

आर्य-समाज का गौरव महर्षि दयानन्द द्वारा बलिदान देने की पम्परा को आगे बढ़ाया वीर संन्यासी श्रद्धानन्द ने। उनका जीवन जैसा उज्जवल और महान् था वैसा ही उसका अन्त भी शानदार था—वे बहादुर की तरह जिए और बहादुर की तरह ही जाति के लिए अपने प्राणों की आहुति दे गए।

आज आर्य-समाज की स्थिति डांवाडोल है। जिस आर्य-समाज ने अंग्रेजों की ताकतवर हकूमत से लोहा लिया, आज वह अपने कर्तव्य-को भी भूलने लगा है। आर्य-समाज में नेतृत्व की क्षमता है, यह हमें फिर से अपने हाथों में लेनी है। हमें स्वामी जी की इस जन्म-शताब्दी को सही तरीके से मानने का तभी अधिकार हो सकता है जब हम देश की राष्ट्रीयता को बल दें, छूत-छात और जातीयता के भूत को भगाएं और गुरुकुल जैसी आर्य शिक्षा-संस्था को फिर से पुराने रास्ते पर चलने का सच्चा संकल्प करें। उस महापुरुष की आत्मा का हमारे लिए यही सन्देश है।

—

क्या आप जानते हैं ?

★
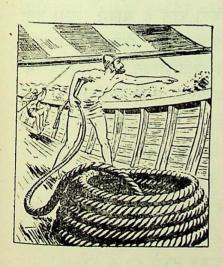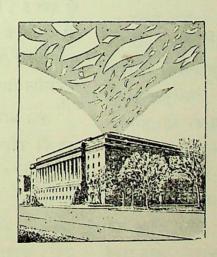
१. चक्र और पुली के समान रस्सा भी मानव जाति का प्राचीनतम उपकरण है। बटे हुए तन्तुओं और तारों के ये सूत्र समुद्रों को लांघने, नयी भूमियों को तोड़ने, पर्वतों को विजय करने और इस प्रकार के असंख्य प्रयोजनों में काम आते हैं।

२. अमेरिका का पेटेण्ट करने वाला कार्यालय प्रतिदिन औसत तीन सौ नए आविष्कारों को पेटेण्ट कराने के प्रार्थनापत्र प्राप्त करता है।

शिक्षणालयों का अन्ताराष्ट्रिय होना क्यों अनिवार्य है ?

श्री सत्यव्रत 'कुशल', वेदालङ्कार, एम. ए.

अस्तित्व के लिये

शिक्षणालयों का अन्ताराष्ट्रिय होना इस लिये अनिवार्य है क्योंकि शिक्षणालय जीवन के लिये हैं, समाज के लिये हैं। जब सारा समाज और सारा जीवन अन्ताराष्ट्रीय होने जा रहा है तब शिक्षणालयों का अन्ताराष्ट्रिय होना स्वतः अनिवार्य है।

क्या अन्ताराष्ट्रिय युग में शिक्षणालय बिना अन्ताराष्ट्रिय हुए युग के सच्चे प्रतिनिधि और युग के सच्चे उन्नायक हो सकते हैं ? क्या बिना अन्ताराष्ट्रिय हुए उन का 'विश्व-विद्यालय' नाम सार्थक हो सकता है ? और क्या इस प्रकार वे जीते रह सकते हैं ? अपने गौरव और अस्तित्व के लिये भी उन का अन्ताराष्ट्रिय होना अनिवार्य है।

युग के सच्चे प्रतिनिधि

कितने ही छोटे-बड़े समुदायों की परिधियों को चीरता हुआ मनुष्य 'राष्ट्रियता' तक पहुंचा। फिर वह राष्ट्रियता को भी सीमाओं से घिरी हुई परिधि-मात्र अनुभव करने लगा है। आज वह इस की भी ससीमता को छिन्न-भिन्न करता हुआ अन्ताराष्ट्रियता की उन्मुक्त असीमता में प्रवेश करना चाह रहा है। जब एक ओर मनुष्य आदर्श विश्व-राज्य, आदर्श विश्व-समाज, आदर्श विश्व-संस्कृति, और आदर्श विश्व-धर्म की मधुमयी आशाओं को फलवती देखना चाहता है, तब भिन्न-भिन्न युगों में युग-धर्म के, समाज के, तथा जीवन के आदर्शों के सच्चे प्रतीक, सच्चे प्रतिनिधि, शिक्षणालय क्या कूप-मण्डूकता के ही अपने पुराने संसार में सोते रह सकते हैं ?

किसी समाज व संस्कृति का प्रतिबिम्ब उस का साहित्य होता है। साहित्य में ही उन की आत्मा प्रतिबिम्बित होती है। पर साहित्य के अध्ययन और अध्यापन, विचार और प्रचार, तथा, शोध और खोज के केन्द्र तो शिक्षणालय ही होते हैं। शिक्षणालयों के ही तो माध्यम से साहित्य बोल पाता है। शिक्षणालय ही साहित्य को वाणी, लेखनी और बल प्रदान करते हैं। इस लिये किसी समाज, संस्कृति, एवं युग के सच्चे प्रतिनिधि या सच्चे प्रतिबिम्ब तो वस्तुतः शिक्षणालय ही होते हैं। किसी काल के आदर्श, तथा उन की वैयक्तिक व सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठा, सजीव रूप में प्रतिबिम्बित तो वास्तव में तत्कालीन शिक्षणालयों में ही हो पाते हैं।

क्या आज के शिक्षणालयों को वर्तमान युग की उदीयमान अन्ताराष्ट्रियता के अनुरूप अन्ताराष्ट्रिय नहीं होना पड़ेगा ? क्या वर्तमान युग के शिक्षणालय अपने युग के सच्चे प्रतिबिम्ब और सच्चे प्रतिनिधि होने में किसी प्रकार अपवाद बन सकेंगे ?

युग के सच्चे उन्नायक

शिक्षणालय किसी समाज, संस्कृति, व युग के आदर्श प्रतिनिधि तो होते ही हैं, पर साथ ही वे अपने भावी उन्नतिशील युगों के सच्चे

निर्माता व उन्नायक भी होते हैं। यदि वर्तमान विश्व-समाज ने सौ-पचास साल बाद सचमुच अन्ताराष्ट्रिय बन जाना है, या, उसे वैसा बन जाना चाहिये तो विश्व-समाज का, जगत् का, अपने आचरण, विचार और प्रभाव से उस दिशा में नेतृत्व करने वाले, समाज को उस लक्ष्य तक पहुंचा सकने वाले, अन्ताराष्ट्रिय युग-व्यक्ति (स्त्री व पुरुष) भी कहीं से आने चाहियें। यह कार्य शिक्षणालयों का ही है कि वे आदर्श विश्व-समाज के प्रतिष्ठापक आदर्श अन्ताराष्ट्रिय युग-व्यक्तियों को पैदा करें।

पर क्या स्वयं अन्ताराष्ट्रिय हुए बिना वे अन्ताराष्ट्रिय युग-व्यक्तियों को पैदा कर सकते हैं ? क्या शिक्षणालय स्वयं सच्चे अर्थों में धर्मशील हुए बिना विश्व-जीवन के छोटे-बड़े सभी क्षेत्रों में अपने व्यापक प्रभाव से धर्म (समन्वयात्मक परस्परोपयोगिता) की प्रतिष्ठा करने वाले सांस्कृतिक युग-व्यक्तियों को जन्म दे सकते हैं ?

व्यक्ति-मात्र की, और प्राणिमात्र की, चिर सुख-शान्ति रूप, लोक और परलोक में वास्तविक कल्याण रूप, अन्ताराष्ट्रिय लक्ष्य से हीन शिक्षणालय विश्व-हित की सच्ची आकांक्षा वाले युग-व्यक्तियों का और उन के द्वारा सब प्रकार से सुखी और समृद्ध अन्ताराष्ट्रिय आदर्श विश्व-समाज का क्या कभी निर्माण करा सकेंगे ? क्या कभी वे इस कल्पना को कुछ भी साकार बना सकेंगे ?

उन की सार्थकता ही नहीं है

स्थान-स्थान पर छोटे-बड़े सभी शिक्षणालय अपने को ग्राम-विद्यालय, नगर-विद्यालय, वर्ग-विद्यालय, प्रान्त-विद्यालय, या, राष्ट्र-विद्यालय न कह कर 'विश्व-विद्यालय' ही कहना चाहते हैं और कह रहे हैं, जब कि वस्तुतः विश्व-विद्यालय वे एक अंश में भी नहीं होते हैं। ऊंची दुकान और फीका पकवान ! क्या विश्व-विद्यालयता का कोई भी लक्षण उन में घटता है ?——

१. क्या जाति-भेद, भाषा-भेद, धर्म-भेद, वर्ग-भेद आदि के, तथा आयु, धन व सम्बन्ध आदि के भेद-भाव से रहित हो कर मनुष्य-मात्र को शिक्षा का समान अवसर वे देते हैं ?

२. क्या विश्व-विद्यालय कहे जाने वाले शिक्षणालयों में मनुष्य-मात्र के वैयक्तिक हितों का भी पूरा ध्यान रखा जाता है? क्या मनुष्य-मात्र के वास्तविक कल्याण, सच्ची सुख-समृद्धि (सर्वाङ्गीण लौकिक अभ्युदय और निःश्रेयस) के, उस के सर्वाङ्गीण विकास के, साधनभूत लौकिक और अलौकिक सर्वविध विद्या-विज्ञानों की वहां समन्वय से ऐसी उत्तम व्यवस्था है कि उन में शिक्षा के लिये विश्व का व्यक्ति-व्यक्ति लालायित हो उठता हो, और, यदि वे वहां शिक्षा लें तो व्यक्ति-व्यक्ति का वास्तविक कल्याण, सच्ची सुख-समृद्धि, उस का पूर्ण विकास, वहां सिद्ध भी हो जाते हों ?

३. क्या वे विश्व की, सभी राष्ट्रों की, जगत् की, युग की, सुख-शान्ति की अन्ताराष्ट्रिय

सामाजिक आवश्यकताओं को (वैयक्तिक सुख-समृद्धि के साथ-साथ) समन्वय से ऊंचे या नीचे किसी भी स्तर पर पूरा कर पा रहे हैं ? क्या वे विश्व में शिक्षा के वैयक्तिक व सामाजिक उद्देश्यों की कुछ भी सराहनीय पूर्ति कर पा रहे हैं।

४. यदि सारे विश्व के नहीं, तो क्या वे अपने राष्ट्र, प्रान्त, और स्थान-विशेष के, या, वर्ग-विशेष के ही कुछ लोगों को उच्चतम सर्वाङ्गीण स्तर पर शिक्षा दे पा रहे हैं ? क्या कुछ ही लोगों को--- 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (सारी धरती ही हमारा परिवार है), 'विश्वे अमृतस्य पुत्राः' (हम सब ही एक परमात्मा की सन्तान होने से भाई-भाई हैं), या, 'माता भूमिः पुत्रो ऽहं पृथिव्याः' (सारी पृथ्वी मेरी माता है और मैं उस का पुत्र हूं) जैसी अन्ताराष्ट्रिय भावना वाले और इस लिये विश्वहित की आक्षांका वाले--- अन्ताराष्ट्रिय सांस्कृतिक युग-व्यक्ति किसी भी अंश में वे बना पा रहे हैं ?

तब कैसे उन्हें 'विश्व-विद्यालय', या--राष्ट्र-विद्यालय, प्रांत-विद्यालय, नगर-विद्यालय, या-- किसी वर्ग-विशेष का, सम्प्रदाय-विशेष का, विद्यालय भी कहा जा सकता है ? विश्व-विद्यालय तो बहुत दूर, वस्तुतः तो वे **स्थानीय विद्यालय भी नहीं हैं**। फिर सच्चे अर्थों में अन्ताराष्ट्रिय हुए बिना कैसे उन का 'विश्व-विद्यालय' नाम सार्थक हो सकता है ?

अन्ताराष्ट्रिय होना ही होगा

शिक्षणालय व्यक्ति, ग्राम, नगर, प्रांत, राष्ट्र एवं वर्ग-विशेष आदि के, या विश्व के, किसी के भी हितों का ध्यान रखें--हर दृष्टि से उन के अन्ताराष्ट्रिय होने में ही उन के उस लक्ष्य की सर्वाङ्ग-सिद्धि सम्भव है। व्यक्ति से ले कर विश्व तक का एक-एक कण परस्पर सम्बद्ध है। प्रत्येक पारस्परिक सहयोग व सद्भाव पर जीवित है। सच्ची अन्ताराष्ट्रियता में व्यक्ति से ले कर विश्व तक के सभी वर्गों व सम्प्रदायों के, सभी जातियों, संस्कृतियों व धर्मों के, स्वार्थों का अद्भुत समन्वय रहता है।

फिर, शिक्षणालय अपने युग के आदर्श प्रतिनिधि होने के साथ-साथ भावी युग के सच्चे निर्माता और उन्नायक भी होते हैं। इस दृष्टि से भी उन्हें अन्ताराष्ट्रिय होना ही पड़ेगा। क्योंकि अद्भुत रूप से समन्वित और अत्यन्त व्यापक अन्ताराष्ट्रिय विश्व-संस्कृति और विश्व-धर्म का युग अत्यन्त निकट है। शिक्षणालयों को उस युग के अनुरूप सच्चे अर्थों में अन्ताराष्ट्रिय और 'विश्व-विद्यालय' बनना होगा। अन्यथा, काल क्या एक क्षण के लिये भी किसी की प्रतीक्षा में ठहरा है ? क्या काल के भीषण चरणों ने अपनी रुकावटों और प्रतिकूलताओं को कुचलने में कभी किसी की परवाह की है ?

जो शिक्षणालय युग-धर्म को, काल-धर्म को, क्रान्त दृष्टि से जल्दी ही पहचान कर तदनुसार समुचित मार्ग अपना लेंगे, और,

अन्ताराष्ट्रिय युग के अनुकूल अपनी शिक्षा-विधि में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर लेंगे, वे वर्तमान युग की वैयक्तिक व सार्वभौम सामाजिक आवश्यकताओं को तो पूरा करते ही रहेंगे बल्कि वे अपने युग से सौ-पचास साल, और हो सकता है सदा ही, आगे रहते हुए वर्तमान विश्व-समाज का आदर्श अन्ताराष्ट्रियता की ओर निर्बाध एवं सजीव नेतृत्व भी करते रहेंगे, तथा भावी आदर्श युग के शीघ्र ही उत्थान में सच्चे सहायक, उन्नायक और उस के निर्माता भी बन सकेंगे।

वर्तमान व भावी युगों की मांगों को, व्यक्ति व विश्व-जीवन की मांगों को, अद्भुत समन्वय और क्रान्तिकारिता से पूरा करते रहने वाले शिक्षणालय ही आज जीवित रह सकेंगे। वे ही अपने गौरव और अस्तित्व को कायम रख सकेंगे। उन्हीं की आज कुछ विशेषता समझी जा सकती है और वे ही युग के लिये, विश्व के लिये, तथा अपने राष्ट्र, प्रान्त, जाति व धर्म के लिये अनिवार्य हो सकेंगे। ऐसे शिक्षणालयों के लिये धन की भी कमी नहीं हुआ करती है। उन के लिये तो धन स्वयं बरसने लगता है।

यही कारण है कि अपने युग के सच्चे प्रतिनिधि, सच्चे निर्माता, व उन्नायक होने के कारण, एवं अपनी सार्थकता, विशेषता, अनिवार्यता, गौरव, तथा अस्तित्व को बनाये रखना अनिवार्य होने के कारण, शिक्षणालयों का अन्ताराष्ट्रिय होना नितान्त ही अनिवार्य है।

दृष्टि-विभ्रम

❀

१. दुनियां के अन्य भागों की अपेक्षा गरम देशों के ऊपर आकाश अधिक नीला रहता है। आकाश की नीलिमा, सर्वत्र, ऊपर की ओर कुछ मील तक ही गई होती है। तेरह मील की ऊंचाई पर आकाश लगभग काले वर्ण का प्रकट होता है।

२. सुबह को सूर्य उदय होता प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में सूर्य उदय नहीं होता। अपनी धुरी पर घूमती हुई पृथ्वी के साथ घूमते हुए हमें अन्तरिक्ष पर सूर्य के उदय होने की विडम्बना होती है।

गुरुकुलोत्सवे श्री चिन्तामणि-द्वारकानाथ-देशमुख-महोदयानाम्

दीक्षान्त-भाषणम्

(सारभागः)

श्रीमन्तः कुलपतिमहोदयाः, नवस्नातकाः, उपस्थिताश्च सज्जनाः,

अनुग्रहो ह्येष भवत् प्रशंसा-
भरेण, सौजन्यवरा, नतांसः ।
चन्द्रावतंसं प्रथमं ततश्च
हंसाधिरूढां प्रणमामि देवीम् ।।
विशारदानां भवतां पुरोऽहम्
सशारदोऽप्यस्मि भृशं विनीतः ।
श्रियोज्झितो वक्तुमना यथावत्
स्वरक्षणयास्मि परं सदुर्गः ।।

❀ ❀

हिन्दीभाषाश्रयि मम मुद्रितं दीक्षान्त-समारोहाभिभाषणं भवद्धस्तगतमेव । कतिपय-दिनेभ्यः प्राक् तु कुलपतिमहोदयैः संस्कृत-माश्रित्य कञ्चिदवसरं यावद् भवता व्याहरणीय मिति प्रादायि मह्यमादेशः । यथा गुरूणां तथा कुलपतिनामाज्ञा ह्यविचारणीया इति सुविदित-मेव मनीषिणाम् । अत एव कंचित् कालं यावदहं संस्कृतभाषायां मदभिभाषणांशं भवतः श्रावयिष्यामि ।

अद्य गौरीगुरोरन्तिकेऽमरतटिनी-रोधसि गुरुकुलस्य पावनप्रसन्ने जलस्थल-पवन-मण्डले भवद्भिः सह समागतस्य भूयान् खलु मम संमदः । अस्यानन्दस्य प्रभवाः पण्डित-वरेण्या इन्द्र-विद्यावाचस्पति-महोदयाः प्रथमतस्तावन्मद् धन्यवादार्हा, यदेतैर्दीक्षान्ताभिभाषणार्थं मामन्त्र्यैष शोभनोऽवसरो मह्यं प्रादायि ।

अनेनैव निमन्त्रणेन कुलपतिमहोदयैर्नितरा महं संमानितः । सप्तसप्ततिनवशतसहस्रतमे संवत्सरे विश्वविद्यालय-रूपेण परिणामितमिदं गुरुकुलमद्य यावत् कतिपयैः प्रथित-यशोभि-र्देशनेतृभिरर्थाद् देशमुखैः दीक्षान्ताभिभाषणेन स्वेन स्वेनान्वगृह्यत । अमीषां--महामना पं० मदनमोहन मालवीय–डॉ० भगवानदास–स्वामी श्रद्धानन्द–डॉ० राजेन्द्रप्रसाद–आचार्य नरेन्द्रदेव –गुरुदेव रवीन्द्रनाथ–डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् –राजर्षि टण्डन–प्रभृतीनां समपंक्ति कृत्वा मामित्थं संमानितवतां कुलपतिमहाभागानामहं वितरामि धन्यवादान् ।

सुविदितमेव भवतां यत् षष्ठिवत्सरेभ्यः प्राक् प्रत्यष्ठाप्यत भारते राष्ट्रिय-कांग्रेस-संस्था । उदञ्चच्च ततः प्रभृति देशेऽस्मदीये कापि नव्या राजनीतिजागर्तिवीचिः । अस्य अभिनव-जागरणस्य च प्रभावः प्रथमतः विभाजितेभ्यो बंगेभ्यः समुत्थितस्य आन्दोलनस्य रूपेण प्रादुर-भूत् । तदनुषङ्गेण च नवभारतस्य नेतारः राष्ट्र संस्कृत्यनुरूपां शिक्षाप्रणालीमधिकृत्य विमर्शं कर्त्तुमारभन्त । तदनुसारेण च देशस्यास्य स्थाने स्थाने तादृशाः कतिपये विश्वविद्यालयाः प्रत्यष्ठा-प्यन्त । येषां साधारणैरर्थात् शासन-प्रतिष्ठापितैं विश्वविद्यालयै र्ना विद्यत कोऽपि सम्बन्धो न च तेभ्यः शासनादुपालभ्यत किमपि साहाय्यम् । ते च विश्वविद्यालयाः स्वातन्त्र्योन्मुखस्य भारतस्य प्रतिभोचितां शिक्षा-प्रणालीं निर्मातुं बद्धपरिकरास्तदध्वनि च पुरःसरा अभूवन् । अस्मिन्नारम्भे कतिपये ऽनुभूतासंख्यान्तरायाः

कतिपये चाप्यकालं निमीलन-कवलीभूता आसन् । परन्तु कतिपय विश्वविद्यालय-संचालकैरमीषु दुर्दमनीया लक्ष्यमार्गण-तत्परतात्मनः समदर्शि । विद्यालयाश्च सम्मुखे तस्थुषामपि प्रत्यूहानां विकासपदवीमेवाध्यरोहन् । सैषा उदग्र राष्ट्रिय-संस्था-परम्परा, यस्यां लब्धास्पदं जादवपुर-स्थापत्य-विद्यालयः, शान्तिनिकेतनस्य विश्वभारती, देहलीदत्तपदा जामिया-मिलिया, इदं च भवतां हरद्वारार्पित-दृढ़चरणं गुरुकुलम् ।

* *

आदौ तावत् तां प्राचीनां भारतीय-शिक्षा-प्रणालीं (यद्यपि विदितचरां अभ्यस्त-पूर्वामपि) वर्णयिष्यामि, यां कृत-समुचित-परिवर्तनां पुनरुज्जीवयितुं संरक्षितुं च कृतारम्भाः संस्था-संचालकाः । तामेनां शिक्षा-प्रणालीं वैदिककालादारभ्य प्रचालितां सूत्रकाराः नियमैरबध्नन् ।

प्राप्त-पञ्चवर्षवयोऽवस्थो बालकोऽनुष्ठित विद्यारम्भ - संस्कार - लिपि-संख्यादि - शिक्षायामावेश्यत । अष्टमे वर्षे च बालकस्योपनयन-विधिः समपाद्यत । उपनयनं तदानीं न केवलं ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यानामपि तु शूद्राणामपि सममान्यत । एतेषां संस्काराणां विवरणं अनधीतसंस्कृतानां जनानां कृते डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी इत्येतेषां एकस्मिन् प्राचीन-भारतीय-शिक्षा-प्रणाली-विषयके ग्रंन्थे संकलितं सविस्तरं चोपलक्ष्यते ।

अयं हि उपनयनसंस्कारो द्वितीय-जनुषा तुल्योऽमन्यत, गुरुश्च पितृतुल्यः । संस्कारावसरे का का वेशभूषा केशभूषा उचितानुचिता वेति तत् संबन्धिभिर्नियमैः सुनिश्चितैर्नियम्यते स्म । संस्कारात् पश्चाच्च गुरुर्ब्रह्मचारिणं शिष्यरूपेण स्वीकरोति स्म । शिक्षावस्थायां गृहे गृहे भिक्षा याचनं गुरोः कृते समिधोदक-पुष्पाद्यवचयनं ब्रह्मचारिणः कर्त्तव्यमभवत् । एवं सद्गुरुः सपर्यार्हो ऽभवत् । तद् वैपरीत्ये च निर्धारित-दुराचारे गुरौ धिक्कार-संदर्शनेऽपि विद्यार्थिनोऽधिकारिण आसन् ।

ब्रह्मचारी अर्थात् विद्यार्थी प्रागेव सूर्योदयात् शयनादुत्थित–निर्वर्तित-समयोचित-विधिः अनलसः प्राणायामादिसाधनैः एकाग्रचित्तः, स्वाध्यायमग्नो भवति स्म । तेन च संवर्ज्यन्यासन् विविधानि विलासोपकरणानि । यथा—उपानत्, छत्रं, वाहनं, दयूतं, नृत्यं, गन्धद्रव्यं, गायनं इत्यादीनि ।

तथा च निषिद्धान्यासन्—वितंडावादः, व्यर्थ वार्तालापः, अनृतं वचः, दिवा निद्रा । काम-क्रोध-द्वेष-लोभ-प्रभृतीनां विकाराणां च अनवकाश-दानम् । प्रोदसाह्यन्त व्यकास्यन्त च इष्टाः गुणाः, यथा—कर्तव्यपरायणता, विनयः, आत्म-विश्वासः, निरहंकारा मनः-प्रवृत्तिः, इत्येवं विधाः । समाप्त-ब्रह्मचर्याश्रमश्च गृहकोष्ठे कस्मिंश्चित् अवारुध्यत, तत्तेजसा मा भूद् ह्रेपितो भगवान् मार्तण्ड इत्युद्दिश्य । अपराह्णे च न्यमीलयन्त तस्य विद्यार्थिदशा-संसूचकानि समस्तानि चिह्नानि । सुगंधिद्रव्यैश्चासौ अस्नाप्यत । तत् पश्चादेव स स्नातकः गृहस्थाश्रम-प्रवेशोन्मुखः स्वभवनं समावर्त्यते स्म । अयमेव समावर्तन-संस्कार-विधिः । एतदर्थं च समवेता अद्यात्र सर्वे वयम् ॥

एवं विधायाः सनातन्याः स्फुटोदग्रतायाः गुरुकुल-परम्परायाः पुनरुत्था स्वर्णिम-स्वप्न-पूर्ताविव महर्षि-दयानन्द-सरस्वती-महाभागा दत्तलक्षा आसन्। तं च स्वप्नमुदर्क-परिणामं कर्त्तुं स्वर्गीयाः स्वामि-श्रद्धानन्द-महाभागाः कुलपितृपदाधिकारिणः प्रायस्यन्त। न मोघ-स्वप्ना भवन्ति कदाचित् पुण्यात्मान इति निर्दिष्टमेव अजस्रं संसारेतिहासक्रमेण। गाँधीमहात्मानोऽपि संदर्भेऽस्मिन् प्राहुः—

न बुद्बुदसमाः स्वप्नाः
अकिंचित् सदृशा मम।
उदर्कं परिणामाँस्तां-
श्चिकीर्षामि यथाबलम्॥

श्रद्धानन्द-स्वामिनः धृतव्रतां पुराणपरिपाटीं समुस्थापयितुं ऐच्छन्। यामनुसृत्य कृतोपनयन–संस्काराः बालकाः ब्रह्मचर्यव्रतमधार्यन्, ज्ञान-विज्ञानावापत्ये च विद्या परिसंख्यानुसारमिव किमु चतुर्दशहायनानि यावद् गुरुकुले निवास-मकार्यन्त। अनेन प्राचीन संस्कृतिपुनरुज्जीवनेन अस्याः अर्वाचीन विज्ञानेन सार्धं समन्वयं साध-यितु-कामाः आसन्। अकांक्षन् च हिन्दीभाषा-माध्यमेनोपात्त-विद्येषु अन्तेवासिषु जागरयितु-मात्मविश्वासं देशप्रेमाणं च।

संवत्सरे पञ्चाशदधिक नवशताधिकसह-स्रतमे (१६५०) गुरुकुल-स्वर्ण-समारोहावसरे प्राहुर्मोहमयी-राज्यपालाः श्री. श्रीप्रकाशमहो-दयाः यत् कार्यारम्भदिनेषु तेषु स्तोकमेवा दृश्यत क्षितिजे आशा-मयूख इति। तेषामद-म्यस्य साहसस्य उत्कटस्य उत्साहस्य च लक्षण-मेवैतत् यदमीभिर्न केवलं अस्मद् शिक्षाप्रणालीं याथार्थ्येन राष्ट्रधर्मोचितां स्वयंशासितां च कर्त्तुं व्यवस्यत, अपि तु नैजविचारानुसारेण अध्युषित-मरण्यं, द्रुम-विदारण-कर्कशं कृतं करयुगलं, वन्यश्वापदानां च धृष्टः संत्रासः, सुस्थापित-श्चायं विद्यालयः। अमीषां प्रधानसहायतामभ-जद् अमीषामेव आन्तरिकी दृढाकांक्षा।

संतोषसंदोहास्पदं चेदं यदमीभिः रोपितो बालतरुरद्य द्रढिमरमणीयो वनस्पतिः समजनि। अस्य च स्कन्धानां छायायां कृतोप-वेशाः कतिपये छात्राः संप्राप्योचितोपयुक्त-शिक्षाः, संघटय्य स्वीयस्वीयं शारीरिकं मान-सिकं आध्यात्मिकं च जीवनं समाजस्य देशस्य च सेवामातेनुः।

❋ ❋

अन्ततोऽद्य गुरुकुलमामन्त्र्य विहाय च तदीयमादर्शमयं जलवायुमण्डलं व्यवहार-व्यापार–संसारं प्रविविक्षून् नवस्नातकानुद्दिश्य किंचिद् वक्तुमिच्छामि।

प्रगति–प्रवणेऽस्मिन् भुवने भूयिष्ठमादृत-नियुक्त-वैज्ञानिक-शिल्पनिष्णातेऽपि तादृशा एवावश्यकतया वाञ्छिता मनुजा येषां चरित्रं, न्यायप्रियता, कार्यदक्षता च विश्वासं जनयति लोकानाम्। वत्सरशतानि यावद् दास्य-शृंखला-वरुद्ध-व्यापारः सद्योऽधिगत-स्वातन्त्र्योऽय-मस्माकं देशः। एकदा मानव-प्रगतिपदाग्रणी-रप्यधुना अतिक्रांतो भौतिक-वस्तुषु बहुभि-र्देशान्तरैः स्वोचितमुदग्रं स्थानं पुनः समासाद-यितुं राष्ट्रमण्डले अत्यधिकान् प्रयत्नानपेक्षते। अस्य उच्चलक्ष्यस्य अवाप्तये आवश्यकास्तावन्त

एव प्रयासा यावन्तः स्वातन्त्र्य-प्राप्तेः कृते कर्त्तव्या आसन् । वर्षशतावधि दास्यपरिणामतो बधिरीकृतान्तःकरणा इव वयं भारतीयाः । मर्षयामो वयमतिसुकरं अन्यायं अशिष्टतां असत्यं च । सर्वथा परित्याज्येयं नीतिसंस्था-बधिरता । अस्मिन् कार्ये भूयिष्ठा चोत्तरदायिता युष्मत् सदृशां नवयुवकानाम् ।

प्रविविक्षितं बहु-समुत्कण्ठं जगदिदं भवतां कृतेऽनाढ्य सुखसाधनैः । तानि च कृच्छ्रसम्पादयानि दृश्येरन् । अनयैव जीवनाहमहमिकया अत्यन्तमधः पातिता नैतिकी सरणिः । उन्नामिताश्च सलौकिकघोषं दुर्गुणाः—सत्तालोभ-कुटिलता-मिथ्याचार-न्यायनिष्ठौदासिन्य प्रभृतयः इति समक्षमेव भवेद् भवताम् ।

अस्मिन् सत्वविरोधिनि जलवायुमण्डले चरित्रं परीक्ष्येत भवताम् । अस्यैव परिवर्तनाय सुसन्नद्धा भवेयु र्भवादृशाः सुसंस्कृताः दृढशीलाः नवयुवकाः । यदि प्रतिस्वकत्वेन युवा न कमपि विक्रमं साधयितुमसमर्थो भवेत् तर्हि नैतद् विस्मयावहं, किमुतस्वाभाविकमेव । किन्तु समाजस्य वास्तवतः प्रगतिर्यथार्थतश्चारुशीलत्वं, साधारण-नागरिक-चरित्रोदात्तत्वं तत्त्कार्यक्षमत्वमेवावलम्बते । कामं संस्कृतेः विकासः सभ्यतायाश्च परिपोषो मितसंख्यानां साधारणानां दार्शनिकानां प्रयत्नानालम्बते । अन्ततस्तु असामान्या असामान्या एव ।

सामान्यजन-वशंवदं पुनरेकं वस्तु । तच्च स्वचरित्रस्थिरत्वं तेन च साधनीभूतेन सामान्याः समाज-प्रगति-कार्ये साहाय्य-प्रदानमनुष्ठातुं पारयन्ति । कार्यं उच्चावचं किमपि स्यात् । हृदयाभिनिवेशेन निर्वाहणीयं, तच्चरित्रं च सर्वशक्तचा संरक्षणीयमिति प्रवच्मि । उच्चावचं पद-निर्भरं न चरित्रमित्यनुभूतिर्मम । एतद् वैपरीत्ये दृष्टवानिदमप्यहं यच्चरित्रमूल्यं न तावत् संभाव्यते धनाढ्यैर्यावन्निर्धनैः । एष एवानुभवो मनुजानां अद्य यावत् यत् सच्चरित-समासादित आनन्दः आसक्ति-जन्यानि सुखान्यतिशेते, जीवने च आनंदाधिकं किं कांक्षणीयम् । व्रताभ्यासिनो यूयम्—

अकर्णा अप्युदारा
भो दत्तकर्णा विदर्णवाः ।
आकर्णयन्तु मद् वाणीम्
अभ्यर्हण-पुरःसराम् ॥

❀

सस्यस्य धर्मः प्रथितः किलैष
यदुप्तबीजादधिक लुनीध्वे ।
उप्ताल्लुनीथाऽऽचरणात् स्वभावं
शालं स्वभावान्नियतिं च शीलात् ॥

शुभा शोभना भवतात् सा नियति र्भवताम् इति ।

★

श्रीयुत चिन्तामणि द्वारिकानाथ देशमुख महोदय के कर-कमलों में

अभिनन्दन-पत्र

माननीय अतिथि,

भागीरथी के तट पर रेत के कुछ चमकीले कणों को चुगते समय हमें तो अचानक ही महा-मूल्य चिन्तामणिरत्न मिल गया। आज का यह प्रभात मङ्गलमय है और यह दिवस भी अत्यन्त शुभ है। हमारे चिरकाल के सञ्चित पुण्य आज सफल हो रहे हैं। आज हमारी इस पवित्र कुल-भूमि की महिमा बढ़ गई है, हमारी आशा-लता में नई कोंपलें फूट रही हैं, और हम अपने आप को धन्य समझ रहे हैं क्योंकि आज इस विद्यामन्दिर में हम अपने प्रिय-अतिथि सुकवि तथा सहृदय श्रीमान् का स्वागत कर रहे हैं और क्योंकि संस्कृत-साहित्य के प्रेमी तथा सरस्वती देवी की निस्पृह सेवा में परायण आप की अर्चना करने का अवसर हमें आज प्राप्त हो गया है। आप का छात्र-जीवन प्रारम्भ से ही अत्युज्ज्वल रहा और आपने विदेश जा कर भी वहां की परीक्षाओं में असाधारण सफलता प्राप्त कर देश के मुख को समुज्ज्वल किया। गणितादि जैसे नीरस तथा काव्य-साहित्य जैसे सरस विषयों में समान गति वाले आप को पा कर बहुमुखी प्रतिभा अपने आप को कृत-कृत्य मान रही है। देश की अर्थनीति को ठीक दशा में संचालन करने की आप की असाधारण क्षमता को बुद्धिमान् आज भी स्वीकार करते हैं। आप इतने निर्भय तथा मनस्वी हैं कि मत-भेद होने पर आपने भारत के गौरवास्पद वित्त-मन्त्रि-पद को ठुकरा दिया और अब आप विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सभापति बन कर सरस्वती की निःस्वार्थ सेवा कर रहे हैं। सरस्वती आप के मुख में रह कर तथा सौभाग्य-वती श्रीमती दुर्गाबाई जी आप के भवन में आप की सेवा कर रही है। यह देख कर तीसरी देवी कमला भी आप की सेवा क्यों न करना चाहेगी? माननीय अतिथे, ये वे पावन तपोवन प्रदेश हैं जिन्हें देवता भी विविध पुण्याचरणों द्वारा प्राप्त कर के पञ्च-क्लेशों से छुटकारा पाया करते हैं। यहां एक ओर तो वैदिक संस्कृति के समान निर्मल भागीरथी बह रही है और दूसरी ओर भारतीय उच्चादर्श के समान विशाल हिमाचल सिर उठाए खड़ा है। यहीं पर सृष्टि के आदि युग में प्रथमोदीयमान सूर्य की रश्मियों के साथ-साथ मानव के ज्ञान-नेत्रों को आलोकित करने वाले वैदिक ज्ञान का भी सर्व प्रथम प्रकाश हुआ था।

यहां मुनिजनों के मानस सरोवर से निकली, अनन्त पथों से गमन करने वाली भ्रम-रहित ज्ञान-गंगा ने पर्वत से उत्पन्न होने वाली भ्रम युक्त जलमयी त्रिपथगा गंगा को जीत लिया है। यहीं पर तीव्र सती व्रत का पालन करती हुई दक्षप्रजापति की पुत्री सती प्रातःस्मरणीय भारतीय नारियों में सर्वप्रथम पद की अधि-कारिणी बनीं। यहीं पर भारत-भूमि को मिथ्या विश्वासों के जाल में जकड़ी देख कर ऋषि-राज दयानन्द ने अपनी पाखण्ड-खण्डिनी-पताका की स्थापना की थी। उसी ऋषि की ज्ञाना-

ञ्जन शलाका के लगाने से नूतन दृष्टि प्राप्त कर स्वनाम-धन्य गुरुवर स्वामी श्रद्धानन्द जी ने यह अनुभव किया कि देश में प्रचलित विदेशी शिक्षा-पद्धति विषमयी है और उन्होंने उस का प्रतिकार करने के लिए यहां हिमालय के चरणों में गुरुकुल-रूपिणी मृत-संजीवना लता लगा दी। यद्यपि इस गुरुकुल के वातावरण में नवीन प्रेरणा श्वास ले रही है किन्तु इस के हृदय में भावना तो वही प्राचीन है। इस संस्था ने नवीन ज्ञान-विज्ञान की यमुना को वैदिक साहित्य की गङ्गा में मिलाकर मानो हरिद्वार में भी प्रयाग बना दिया है। यहाँ पर ब्रह्मचर्य, तप, श्रम तथा सत्य की साधना द्वारा उसी तत्त्व की आराधना की जा रही है जो विभिन्न रूपों में भी वस्तुतः अभिन्न है। श्रद्धेय-चरण गुरुवर श्री श्रद्धानन्द जी ने यजमान बन कर जिसे प्रारम्भ किया था उस ज्ञान-यज्ञ को हम आज भी चला रहे हैं। हम से पूर्व भी अनेक योग्य योग्यतर अध्वर्युओं ने इस की रक्षा की है और अब इस का भारी बोझ हमारे कन्धों पर आ पड़ा है। प्रबल विदेशियों के शासन काल में हमारे पूर्ववर्ती कार्यकर्त्ताओं ने भय और लोभ की परवाह न करते हुए इस के अभिमान की रक्षा थी। इस के वीर पुत्र स्वाधीनता-संग्राम में अपने स्वार्थों, यहाँ तक कि प्राणों की भी आहुति देने में किसी से पीछे नहीं रहे। भारत की प्राचीन मधुर गुरु-शिष्य-भावना की रक्षा इस भीषण भौतिकवाद के युग में अत्यन्त कठिन हो रही है।

राष्ट्रिय शिक्षा के प्रसार के लिए देश में जो अनेक प्रयत्न किए गए हैं, उन में इस गुरुकुल का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। हमारे इस गुरुकुल में इस समय वेद, आयुर्वेद, कृषि तथा विज्ञान ये चार प्रधान विभाग हैं। हम अंग्रेजी से हिन्दी, संस्कृत तथा विविध प्रादेशिक भाषाओं का एक विशाल शब्दकोष भी बना रहे हैं, जिस का काम आर्थिक कठिनाई के कारण हमारे लिए पूर्ण सन्तोषप्रद नहीं है। लक्ष्य तो अत्यन्त महान् है किन्तु उस के मुकाबले में हमारे साधन अत्यन्त अल्प हैं। हमारा प्रयत्न जुगनू द्वारा आकाश-मण्डल को प्रकाशित करने के समान प्रतीत हो सकता है। किन्तु जो भी आप जैसे सहृदय सज्जनों की सहानुभूति का पाथेय प्राप्त कर हम अपार सागर को पार करना चाहते हैं। हमारे सम्मानित अतिथि, हम जानते हैं कि आप जैसे राजपुरुषों के योग्य स्वागत सत्कार करने की शक्ति हम में नहीं है तो भी जब हमें यह याद आ जाता है कि श्री द्वारिकानाथ ने विदुर के शाक को प्रेम से स्वीकार कर लिया था तो हमें ढाढस बंध जाता है, क्योंकि हम जानते हैं कि सत्पुरुष तो केवल भावना के ही भूखे हुआ करते हैं।

हम हैं आपके गुणानुरागी
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के निवासी।

नवस्नातकों की विदाई

श्री सुरेशकुमार नवस्नातक

समादरणीय अतिथिवर्य, पूज्य संन्यासि वर्ग, श्रद्धेय गुरुजन, स्नेही बन्धुओं तथा उपस्थित नर नारियो !

यज्ञकर्म की ऊर्ध्वमुखी ज्वालाओं तथा पावन वेदमन्त्रोच्चार के साथ कुलमाता की मोदमयी गोद से विदा लेते हुए हम कुल पुत्रों को आज हर्ष तथा विषाद की सम्मिश्रित अनुभूति व्याकुल किये दे रही है। निरन्तर चौदह वर्ष तक गुरुजनों की स्निग्ध चरण-छाया में विद्यामृत का पान कर इस विस्तृत जगती में प्रवेश करते हुए हम आज अपने को असहाय अनुभव कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हम अवलम्बहीन से, आधारहीन से, विकलांग से उस पथ पर बढ़ चलने की तैयारी में हैं जो सघन अन्धकार से आवृत है, जो हमारे लिए सर्वथा अपरिचित है। इस मार्ग में पग-पग पर धनलोलुप, स्वार्थी जनों की गृध्रदृष्टियां, अनुद्देश्य ही परार्थघातिनी मनोवृत्तियां तथा नीच जनों के कपटाचार मानों हमें निगल जाने के लिए आंखें बिछाए पड़े हैं। इस संसार के दाम्भिक व्यवहारों की कटुता किसे कष्ट नहीं देती ? इस भौतिकता प्रधान जगत् की आदर्शहीनता तथा विनाशोन्मुख अविरत दौड़ में हमें अपना स्थान बनाना है। सांसारिक विषय-वासनाओं तथा हीन आकर्षणों की व्याल-मालाओं को वश में लाना है। समस्वरता, सामञ्जस्य, सामवृत्ति एवं विश्वबन्धुत्व की भावना वाले कुलमाता के सन्देश को देश-विदेश में फैलाना है तथा दीर्घकाल के गुरुकुलवास से उपार्जित अपने चरित्रधन, मानसधन और देहधन को राष्ट्रोन्नति के हेतु होम कर देना है।

सभ्यो ! विदाई की इस वेला में रह-रह कर चौदह वर्ष पूर्व के उस दृश्य की धुंधली स्मृति हमारे मानस पटल पर अङ्कित हो जाती है, जब हमारे माता-पिता कुल माता की गोद में दूसरा जन्म लेने के लिए हम बाल बटुओं को रोता कलपता छोड़ गए थे। आज याद करते हैं उस बाल बुद्धि को जो प्रातः जागरण के काल में होने वाले सात्विक कष्ट पा कर अज्ञानवश माता-पिता की आलोचना करती थी पर जिसे यह नहीं मालूम था कि सोना आग में तप कर ही निखरता है। वह बाल बुद्धि उस घट के समान थी जो रिक्तावस्था में कूप के अन्दर प्रवेश करते हुए पनिहारिन को बुरा भला कहता है, पर ऊपर आते समय अपनी पूर्णता को लखकर उसी पनिहारिन की प्रशंसा करता है। आज जब हम पीछे मुड़कर चौदह वर्ष पूर्व के उस अपने स्वरूप की वर्तमान स्वरूप से तुलना करते हैं तो हृदय अभिमान से भर उठता है पर साथ ही यह नहीं भूलते कि यह सब कुलमाता का ही प्रसाद है। कुलमाता ने ही हम में ज्ञान तथा कला की वह योग्यता उत्पन्न की है जिस के बिना मनुष्य को भर्तृहरि ने 'साक्षात्पशुःपुच्छविषाणहीनः' कहा है।

परन्तु अब तो कुलवास की वे मधुर स्मृतियाँ, वह सात्विक आनन्दमय जीवन, वह

निश्चिन्तता किसे-किसे कहूं सब कुछ ही तो स्वप्न साम्राज्य का विषय बनते चले जा रहे हैं। पुण्य सलिला, पापमोचिनी माँ जाह्नवी के सरणशील जलों के स्नान, पान तथा गान के वे सुख नाम शेषता को प्राप्त हो रहे हैं। उन्नत-भाल, नगाधिराज हिमालय तथा शिवालिक की प्रान्तभूमियों और आकाश चूमने वाली चोटियों के विहार अब कथा का विषय रह गए हैं। पर्वतमालाओं की प्राकृतिक वितान पंक्ति से घिरे इन मैदानों में बहने वाले स्वच्छन्दमन्द समीरण के सुखसार मानो सो गए हैं। चहुंदिशि लहलहाती हुई यह हरी-भरी खेती मानो सूख गई है। हमारे लिए तो पुष्प मुरझा रहे हैं, कलियां म्लान हुई जा रही हैं, चाँद पीला पड़ गया है, सूर्य की तेजस्विता नष्ट हो गई है। अपने विशाल व विस्तृत वपु से श्रान्त जनों की क्लान्ति को दूर करने वाले इन फलफूल भरे वृक्षों की वह शीतल छाया अब कहां? कुलभूमि के कूपों के सुधासम जलों का वह माधुर्य अब कहां? प्रकृति नटी के ऐसे वैभवपूर्ण उन्मुक्त स्वरूप का दर्शन अब कहां? गुरुजनों की सदा सन्मार्गोपदेशिनी, सर्वदा हितकारिणी, सत्य और प्रिय वे मधुर वाणियां अब कहां? सुहावने मौसम में झुण्ड बना कर गप्पें लड़ाते हुए साथियों के वे शिष्ट तथा साहित्यिक नर्म वचन अब कब सुनने को मिलेंगे? राष्ट्रिय तथा सांस्कृतिक पर्वों की वह अपूर्व सादी शोभा, वह शान्त हलचल और उस में महिमा-मण्डित होती हुई कुलमाता की वह दिव्य स्वरूप भुलाए नहीं भूलेगा। कुल-पिता की स्मृति को ताजा कर देने वाले बलिदान-पर्व की वे सांस्कृतिक योजनाएं, सामूहिक क्रीड़ाएं और आमोद प्रमोद की घटिकाएं स्मृतिपटल से हटाए न हटेंगी। सुख-दुःख में हमेशा साथ देने वाले, एक साथ विद्यालय का पान करने वाले साथियों का साथ छुटाए न छूटेगा। इस पावन कुलभूमि की तो घास का एक-एक तिनका, जल की एक-एक बूंद, भवनों की एक-एक ईंट, वृक्षों की एक-एक शाखा, पौधों की एक-एक कली, फूलों की एक-एक पत्ती, हमारे मन में इस भांति समाई हुई हैं, इस भांति अङ्ग-अङ्ग में रमी हुए हैं कि इन को छोड़ने की कल्पना ही आंखों में आँसू ला देती है।

परन्तु नियति पर किस का वश चला है। इस क्रूर, कठोर संसार की यह यथार्थता हमें यहाँ से अलग कर के ही रहेगी, हमें कुल-माता का विछोह सहना ही होगा।

अब हम विदा हो रहे हैं, कुलभूमि से जुदा हो रहे हैं। हे गुरुजनों! आपके सान्निध्य में विद्याभ्यास करते हुए हम अन्तेवासियों ने जाने अनजाने कितने ही अपराध किए होंगे, कितनी अशिष्टताएं की होंगी। पर आप धन्य हैं, एक बार भी हमारे लिए अमंगल नहीं सोचा पर क्षमाशील धरती माता की तरह सब कुछ सह कर शुद्ध हृदय से हमारी मंगल-कामना की। अतः विदाई की इस बेला में अन्तर्मन से उठी हुई हमारी अश्रुजलसिक्त ये विनीत क्षमा-याचनाएं स्वीकार हों। हे बृहस्पति तुल्य गहन ज्ञान वारिधि गुरुओं! तुम्हें प्रणाम! अयि

कलकलनिनादिनि उत्ताल-तरंगे गंगे ! तुम्हें प्रणाम ! शुभ्र तुहिन्-तुङ्ग-किरीटिन् पर्वतराज हिमालय तुम्हें प्रणाम ! हे हरीभरी उपत्य-काओ, हे कुलभूमि के वृक्षो, हे यज्ञ-ज्वालाओ, हे सहाध्यायो बन्धुओं ! आप सब को प्रणाम! अब हम विदा होते हैं, हमें विदा दो ।

—

क्या आप जानते हैं ?

१

२

३
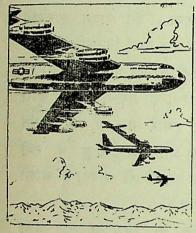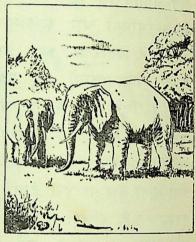
१. जनवरी १९५७ में अमेरिकी वायुसेना के बी. ५२ तीन हवाई जहाज भू-मण्डल के चारों ओर बिना रुके हुये उड़े । ४५ घण्टों में यह यात्रा उन्हों ने पूरी की । भू-मण्डल के चारों ऐतिहासिक उड़ान के अन्य रिकार्ड इस प्रकार हैं--१९२४ में अमेरिका के ३ बाई प्लेनों ने १४ दिन १५ घण्टों में यह दूरी तय की थी--१९२९ में जरमन, ग्राफ, जैप्लिन ने २० दिन ४ घन्टों में, १९३६ में विलिपोस्ट सोलो ने ७ दिन १८ घण्टों ४९ मिनट में, १९४७ में बिल-ओडम सोलो ने ३ दिन १ घन्टा ५ मिनट में ।

२. नीदरलैंड का दावा है कि उस के यहां मनुष्य की औसत आयु और देशों की अपेक्षा सब से अधिक है । हौलेण्ड की स्त्रियों की औसत आयु ७९.९ वर्ष है और आदमी की औसत आयु ७०.६ वर्ष है । अमेरिका की औरतों की आयु दूसरे नम्बर पर है जो कि ७२.७ वर्ष है । अमेरिका के मनुष्यों की आयु सातवें नम्बर पर है (६६.६ वर्ष) । इस से अधिक आयु नार्वे, स्वीडन, न्यूजीलैंड डेन्मार्क और इङ्गलैण्ड के मनुष्यों की है ।

३ अफ्रीका के हाथी सीधे खड़े हुए ही सो लेते हैं । परिपक्व आयु में पहुंचने पर इस जाति के युवा हाथी अपने जीवन के अन्तिम ३० या ४० वर्ष खड़े रह सकते हैं । यद्यपि ये घुटने टेक कर बैठ सकते हैं और ज़मीन पर लेट सकते हैं, परन्तु ये अपनी मजबूत टांगों पर खड़े रहना ही पसन्द करते हैं ।

★

गुरुवर श्री पं० काशीनाथ जी शास्त्री

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

१

गङ्गा तट पर गुरुकुल प्रारम्भ होने के लगभग ३० वर्ष पीछे यह अनुभव करके कि अब ब्रह्मचारियों को संस्कृत दर्शन की उच्च शिक्षा देने के लिए किसी प्रकान्ड विद्वान् की आवश्यकता है, गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने एक विश्वस्त कार्यकर्ता को काशी भेजा। काशी प्राचीनकाल से पण्डितों की खान रही है। भेजते हुए मुख्याधिष्ठाता जी ने अपने कार्यकर्ता को बाबू शिवप्रसाद गुप्त के नाम परिचायक पत्र दिया। जिस में लिखा था कि गुरुकुल के लिए एक प्रथम कोटि के विद्वान् की आवश्यकता है। आप इस कार्य में हमारी सहायता कीजिये। गुरुकुल से कुछ विद्वानों के नाम भी निर्दिष्ट कर दिये गये थे। निर्दिष्ट नामों में से एक नाम पं० काशीनाथ शास्त्री का भी था। गुरुकुल के उस समय के संस्कृत शिक्षकों में से कई विद्वान् पं० काशीनाथ जी से विद्याध्ययन कर चुके थे। अन्य निर्दिष्ट नामों में श्री भागवताचार्य का नाम मुख्य है। पं० भागवताचार्य जी अपनी वावदूकता के लिए प्रसिद्ध थे।

कार्यकर्ता ने काशी पहुँच कर गुप्त जी से परामर्श किया। गुप्त जी ने बताया कि पं० काशीनाथ जी का नाम तो सुना है, परन्तु कैसे हैं और कहां हैं ? यह कुछ मालूम नहीं। तब गुरुकुल से गए हुए सज्जन शास्त्री जी की तलाश में निकले। घन्टों के प्रयत्न के पश्चात् एक विद्यार्थी के साथ शहर की एक तङ्ग गली में पहुंच कर देखा कि अत्यन्त पुराने ढङ्ग के बड़े से कमरे में तख्त पर रजाई ओढ़े हुए एक वृद्ध विद्वान् बैठे हैं और छात्रों को हाथ में पुस्तक लिए बिना ही पढ़ा रहे हैं। कक्षा की समाप्ति के लिए चिरकाल तक बैठ कर प्रतीक्षा करनी पड़ी। जो कुछ देखा वह आश्चर्यजनक था। शारीरिकभाष्य का पाठ चल रहा था। गुरु जी के हाथ में अथवा पास कोई पुस्तक नहीं थी। स्मृति से ही पढ़ा रहे थे। छात्रों के पास पुस्तकें थीं परन्तु उन्हें भी देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। कभी-कभी गुरु जी के कहने पर शिष्य लोग भी प्रतीक देख लेते थे। पठन-पाठन स्मरण शक्ति के आधार पर ही चल रहा था।

जब शिष्य लोग चले गए तब गुरुकुल के कार्यकर्ता ने शास्त्री जी के सम्मुख गुरुकुल चलने का प्रस्ताव रक्खा। शास्त्री जी को उन दिनों काशी नरेश से २५ रु० मासिक की दक्षिणा प्राप्त होती थी। उसी से तपस्वी विद्वान् की जीवन-यात्रा चल रही थी। वह काशी से बाहर जाने का प्रस्ताव सुन कर आश्चर्य में पड़ गए और एक वार तो स्तब्ध से रह गए। पुण्य नगरी काशी और भगवती भागीरथी के तट को छोड़ कर कहीं अन्यत्र जाना उन दिनों के पण्डितों को अधमकृत्य सा ही प्रतीत होता था। परन्तु जब उन से निवेदन किया गया कि कांगड़ी ग्राम भी हरिद्वार

तीर्थ का एक अंग है और गुरुकुल का आश्रम भी भागीरथी के तट पर बना हुआ है तब गुरु जी कुछ नरम हो गये और धीरे धीरे दो तीन दिन में डेढ सौ रुपये मासिक दक्षिणा पर गुरुकुल जाने के लिए उद्यत हो गये।

२

कुछ दिनों की प्रतीक्षा के पश्चात् गुरुवर पं० काशीनाथ जी शास्त्री गुरुकुल में पहुंच गये। गुरुकुल में उन्हें 'गुरु जी' इस आदरणीय उपाधि से निर्देश होता था। गुरु जी पुराने ढंत के पान्डित्य का बढ़िया नमूना थे। उनका वेष यह था कि धोती और बन्डी के अतिरिक्त चादर ओढ़ते थे। गर्मियों में चादर के स्थान पर लिहाफ ओढ़ लेते थे। अधिक गर्मी होने पर बन्डी भी उतार देते थे। उनके स्टाक में कोई चौथा कपड़ा नहीं रहता था। धोबी के यहां कोई कपड़ा धुलने नहीं देते थे। नहा कर गीली धोती या तो स्वयं निचोड़ लेते थे अथवा उनका वह शिष्य जो साथ रहता था, निचोड़ देता था। प्रायः वह अपने साथ अपने वड़े आत्मज पं० हरिनाथ जी को रखते थे।

भोजन या तो अपने हाथ से स्वयं बनाते थे अथवा सजातीय शिष्य से बनवाते थे। गुरु जी का जन्मस्थान बलिया था। उनका भोजन वहीं की पद्धति के अनुसार बनता था। एक छोटा सा रसोई घर चिकित्सालय के सामने उनके लिये सुरक्षित कर दिया गया था। दोपहर के समय अध्यापन से निवृत्त होकर गुरु जी स्नान करते और फिर रसोईघर में चले जाते थे। प्रातःकाल के समय केवल दूध पीते थे। विशेषता यह थी कि दूध पी कर दूध के बर्तन में पानी डाल कर उस पानी को भी पी जाते थे। कहा करते थे कि दूध अमृत है, उसके किसी अंश को भी छोड़ना अमृत का तिरस्कार करना है। भोजन के पश्चात् गुरु जी अपने निवासस्थान आनन्दाश्रम में जा कर कुछ समय तक विश्राम करते थे। पुराने गुरुकुल के यात्रियों ने गंगातट पर बने हुए आनन्दाश्रम को अवश्य देखा होगा। वह फूस से छाया हुआ एक आंगनवाला आश्रम था जिसमें छः सात कमरे थे। उसमें पंडित-मन्डली रहा करती थी। जिस पन्डित का परिवार आ जाय उसे परिवार गृहों में चले जाना पड़ता था। आनन्दाश्रम के अधिष्ठातृ-देवता गुरु जी थे।

पुराने पण्डितों को प्रायः पान, तम्बाकू, सुपारी सूँघनी आदि में से किसी न किसी चीज की आदत हुआ करती थी। गुरु जी को सूँघनी की आदत थी। वैसे तो जागृतदशा में सदा थोड़ी थोड़ी देर में सूँघनी सूँवते रहना उनके लिए आवश्यक था, परन्तु जब वे पढ़ाने के लिए बैठते थे, तब वह अनिवार्य हो जाता था। तब बहुत सी सूँघनी चुटकी में ले कर नासिका के मार्ग से मस्तक तक पहुंचाने से मन सावधान सा हो जाता था। उसके पश्चात् गुरु जी को कोई पुस्तक हाथ में लेने की आवश्यकता नहीं रहती थी। शिष्य लोग पाठ बोलते जाते थे और गुरु जी समझाते जाते थे। इस प्रसंग में एक मनोरंजक घटना याद आ गई। उसे भी लिखे देता हूं। एक साल

चौमासे में गंगा का जल बहुत बढ़ गया। गुरुकुल और हरिद्वार के बीच में आवाजाही बिल्कुल बन्द हो गई। परिणाम यह हुआ कि सूँघनी की नई पुड़िया बाजार से न आ सकी और पुरानी पुड़िया खाली हो गई। पूरा एक दिन इसी तरह बीत गया। अगले दिन प्रातः-काल जब हम लोग गुरु जी के सामने पढ़ने के लिए बैठे तब बहुत ही करुणाजनक दृश्य उपस्थित हुआ। गुरु जी कभी विद्यार्थियों की ओर देखते थे और कभी गंगा की धार की ओर। सूँघनी के बिना विद्वता के उस अथाह सागर के मस्तिष्क और वाणी सर्वथा शुष्क हो गये। तीन दिन इसी तरह बीत गये। कोई पाठ न हुआ। चौथे दिन गुरु और शिष्य उसी प्रकार बैठ कर समय व्यतीत कर रहे थे कि इतने में गंगा की धारा में तमेड़ दिखाई दी। तमेड़ कनस्तरों की उस नौका को कहते हैं जिसे तैराक लोग अपनी छाती के बल से भरी हुई गंगा में चलाते हैं। तमेड़ के दिखाई देने पर गुरु जी ने इशारे से एक ब्रह्मचारी को भगाया जिसने तमेड़िये से सूँघनी की पुड़िया ला कर गुरु जी के हाथ में दे दी। उस समय उनके चेहरे की प्रसन्नता देखने योग्य थी। गुरु जी ने सूँघनी की कई चुटकियां इकट्ठी नाक में चढ़ा लीं जिससे एक बार तो आँख और नाक ले खूब पानी बह निकला परन्तु थोड़े ही समय में प्रतिमा के सब कपाट खुल गये और कक्षा का क्रम जारी हो गया।

३

अल्पज्ञता और बाल्यावस्था के कारण सब ऐसे छात्रों की तरह हमारे अन्दर भी दुरभिमान की मात्रा पर्याप्त थी। हम लोग अपने को अध्यापकों का कुशल परखैया मानते थे। सब के बारे में सम्मतियां बना रखीं थीं। किसी अध्यापक को हम वैयाकरण तो मानते थे परन्तु उसे साहित्य में कोरा ही समझते थे। उसी प्रकार साहित्य और दर्शन के अध्यापकों के एक देशी ज्ञान की चर्चा करते रहते थे। गुरु जी के सब शिष्यों का प्रतिनिधि बन कर मैं यह कहने का साहस करता हूं कि कई वर्षों तक अध्ययन करके भी हम गुरु जी के चौमुखे पान्डित्य में कोई छिद्र न निकाल सके। व्याकरण, वेदान्त, न्याय, साहित्य आदि विषयों का कोई भी ग्रन्थ ले कर बैठते थे तो कभी गुरु जी की प्रतिभा को रुकते नहीं पाया। प्रत्येक विषय उनके विशाल मस्तक में मानों बड़े बड़े और स्पष्ट शब्दों में उल्लिखित था। कम से कम हम छात्रों को उस ज्ञान सागर का कोई और छोर नहीं दिखाई देता था। अब ५० वर्षों के पश्चात् जब चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर देखता हूं तब वैसे गम्भीर पान्डित्य का चिन्ह भी दिखाई नहीं देता।

उस पाण्डित्य की गम्भीरता यह थी कि गुरु जी में दिखावे का अणुमात्र भी अंश नहीं था। न किसी से वादविवाद और न शास्त्रार्थ। पठन और पाठन ये दो ही उनके कार्य थे जिनके अतिरिक्त संसार की अन्य महत्वाकांक्षायें उन्हें प्रतीत होती थीं। गंभीरता का यह हाल था कि अध्यापन काल के अतिरिक्त दिन भर में शायद एक दर्जन वाक्य ही बोलते

हों। बातचीत में सदा ठेठ पुरबिया भाषा का प्रयोग करते थे। हम ने खड़ी बोली बोलते हुए उन्हें कभी नहीं सुना। निम्नलिखित घटना से उन की भाषा और सादगी का ठीक-ठीक परिचय मिल सकता है। एक बार लम्बी छुट्टियों में गुरु जी बलिया जाने के लिए तैयार हुए। यात्रा के लिए एक खुर्जी सजाई गई जिसमें एक ओर कुछ कपड़े और दूसरी ओर सत्तू चने आदि बंधे हुए थे। रेल की यात्रा में गुरु जी न जल पीते थे और न खाना खाते थे। जब गाड़ी किसी बड़े स्टेशन पर ठहरती थी तब यदि प्लेटफार्म के नल पर नहाने का अवसर मिल गया और चादर तान कर ओट करने की भी सुविधा हुई तो चने चाब कर पानी पी लेते थे। हम विद्यार्थी लोग गुरु जी को गाड़ी में बिठाने के लिए स्टेशन तक गए। खुर्जी को कन्धे पर डाल कर गुरु जी तीसरे दर्जे के डिब्बे में प्रविष्ट हुए और सीट के नीचे की जगह में बैठने लगे तो हम लोगों ने सीट पर जगह खाली कराकर गुरु जी से निवेदन किया कि महाराज आप नीचे क्यों बैठते हैं सीट पर बैठिए, जगह तो है। गुरु जी ने बहुत भोले ढङ्ग पर उत्तर दिया "अरे यहीं ठीक है वहां से कोई उठाय देई है।" उस समय तो हम लोगों ने यह विश्वास दिला कर कि सारे रास्ते में आपको कोई नहीं उठाएगा, गुरु जी को सीट पर बिठा दिया था। आगे कैसी बीती यह भगवान जाने।

४

गुरु जी को हम जीता-जागता बोलने वाला पुस्तकालय कह सकते हैं। हमारे देश में आदिकाल से ऐसे पुस्तकालय विद्यमान रहे हैं। श्रुति और स्मृति इन दोनों शब्दों का उद्भवस्थान वहीं हैं। ऐसे प्रतिभासम्पन्न विद्वान् वेदों से ले कर काव्यशास्त्रों तक के ग्रन्थों को अपने मस्तक में सुरक्षित रख लेते थे। हमारे इतिहास के मध्यकाल में जब जड़ पुस्तकालयों पर जब विध्वंसक आक्रमण होने लगे तब उन सजीव पुस्तकालयों ने ही हमारी सांस्कृतिक निधि की रक्षा की थी। गुरु जी उन सजीव पुस्तकालयों की माला के शायद अन्तिम कड़ी थे। आज विद्वान् भी बहुत हैं और वक्ता भी बहुत परन्तु वैसा गम्भीर और मौन पांडित्य ढूंढने से भी नहीं मिलता। उन विद्वानों में प्रदर्शन नहीं था। इस कारण उन पर कुदृष्टि भी नहीं पड़ती थी। उस मारकाट के विषय में जैसे बहुत से ऊंचे मन्दिरों का विध्वंस हो गया वैसे ही बहुत से दिखाई देने वाले निर्जीव और सजीव पुस्तकालय भी काल के चक्र में आ गए। यदि उस खण्ड प्रलय में हमारी संस्कृति का आधारभूत साहित्य बचा रहा तो उस का श्रेय पं० काशीनाथ जी जैसे सजीव परन्तु मौन पुस्तकालयों को है। हम लोगों ने लगभग चार वर्ष तक गुरु जी से व्याकरण तथा दर्शनों का अध्ययन किया। वे हमारी शिक्षा के अविस्मरणीय चार वर्ष थे। अपने दार्शनिक साहित्य में हमारी श्रद्धा दिनोंदिन बढ़ती गई। यहां तक कि समय की परिस्थितियों के साथ उस का सामंजस्य

गुरुकुल-महोत्सव तथा श्रद्धानन्द-जन्म-शताब्दी समारोह

श्री शंकरदेव विद्यालङ्कार

प्रथम दिवस—१० एप्रिल

महोत्सव का श्रीगणेश इस साल श्री श्रद्धानन्द-जन्म-शताब्दी समारोह से प्रारम्भ हुआ। उस के लिए १० एप्रिल को समस्त कुलवासी तथा उत्सव के यात्री सबेरे ही गङ्गा के उस पार उस पुण्य-भूमि में पहुंच गए, जहाँ पहले-पहल पुण्यश्लोक स्वामी जी ने झोंपड़ियाँ बना कर गुरुकुल तपोवन का प्रारम्भ किया था। कुल के पुराने सुयोग्य स्नातक श्री पंडित विद्यानिधि और श्री धर्मदेव जी वेदवाचस्पति कुछ ब्रह्मचारियों सहित एक दिन पूर्व ही वहाँ पहुंच गए थे। वहाँ जा कर उन्होंने आश्रम और महाविद्यालय के स्थानों की भली प्रकार सफाई करा कर उसे समारोह के लिए अलंकृत किया था। प्राचीन यज्ञशाला पर स्मृति-सभा के लिए एक सुन्दर शामियाना सजाया गया था। पुरानी कुल-भूमि का एक विशाल मानचित्र बना कर उस में सब विभागों के स्थिति-स्थान अङ्कित किए गए थे। विविध विभागों के भवन जहाँ-जहाँ हुआ करते थे वहाँ पर झण्डियाँ गाड़ कर विभाग का नाम लिखा गया था। पुण्य-भूमि में विद्योपासना करने वाले पुराने स्नातक बन्धु और प्राचीन कार्यकर्ता एक-एक स्थान की यात्रा और परिक्रमा करते हुए स्नेह और भावना से द्रवित हुए जा रहे थे। स्वामी जी की कुटिया अब वहाँ नहीं थी। गङ्गा की धारा उसे बहा चुकी थी। परन्तु कुटिया के आँगन में लगाई हुई चमेली का एकाकी झुरमुट आज भी प्रहरी के समान निष्पन्द खड़ा था। महाविद्यालय की विशाल इमारत गङ्गा की बाढ़ को सह कर और गर्मी-सर्दी के अनेक झझावातों को पार कर के अजेय रूप में खड़ी थी। उस की ताजगी और आकर्षकता पूर्ववत् बनी हुई थी। पुराने स्नातक कुलबन्धु उस भव्य इमारत के एक-एक कमरे को निहार कर उन से संबद्ध अपनी जीवन-घटनाओं को याद कर के भाव-विमुग्ध हो रहे थे।

सब से पहले समस्त कुलवासियों ने मिल कर पुरानी यज्ञशाला में ही बृहद् यज्ञ किया। उस के पश्चात् श्री स्वामी अभेदानन्द जी के सभापतित्व में पुण्यभूमि-स्मृति-सम्मेलन शुरू हुआ। कुलपति श्री इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने सम्मेलन का उद्घाटन किया। अपने संक्षिप्त भाषण में आपने कहा—इस पुण्यभूमि के साथ हमारे जीवन की सर्वोत्तम स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं। इस भूमि के एक-एक वृक्ष और एक-एक

(पृष्ठ ३४४ का शेष)

भी डावांडोल हो गया था। अन्त में हमारी शिक्षा का रुख तो कुछ बदला परन्तु उन प्रारम्भिक वर्षों के गहरे अध्ययन ने बुद्धि का जो संस्कार किया उस ने सदा हमारा साथ दिया। इस प्रकार के लिए तप, पांडित्य और सरलता की मूर्ति स्मरण आते ही हमारा मस्तक आभार की भावना से झुक जाता है।

—

भवन के साथ हमारी आत्मीयता स्थापित है। आज हम सब बन्धु अपनी जीवन-दायिनी और ज्ञानदात्री इस पुण्यभूमि के प्रति और इस के प्रतिष्ठापक कुलपिता श्री स्वामी जी महाराज के प्रति अपनी कृतज्ञता और श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए एकत्र हुए हैं। तत् पश्चात् इस पुण्यभूमि में अपना छात्र-जीवन व्यतीत करने वाले स्नातक बन्धुओं तथा कार्यकर्ताओं ने कुल के प्रारम्भिक दिनों की अपनी चुनी हुई और प्रेरणा देने वाली स्मृतियाँ सुनाई। श्री डॉ० सुखदेव जी, वैद्य श्री धर्मदत्त जी, श्री विद्यानिधि जी, श्री ईश्वरदत्ता जी मेधार्थी, आदि स्नातकों ने कुलपिता के स्नेह और वात्सल्य की अनेक घटनाएं सुनाई। श्री वैद्य निरंजनदेव जी (प्रियहंस) और श्री शंकरदेव जी ने कविता का पाठ किया। "प्रियहंस" जी की कविता की एक-एक पंक्ति को सुन कर और कुलभूमि के अतीत गौरव को याद कर के श्रोतागण भाव-विभोर हो रहे थे। कुलबन्धुओं की अंखियाँ प्रेमाश्रुओं से छलछला रही थी।

सभा का वातावरण अतिशय गम्भीर और आर्द्र बन गया था। जिस समय वैद्य श्री धर्मदत्त जी गुरुकुल-भूमि की प्रथम भेंट के अवसर पर महात्मा मुंशीराम जी के चरणों में प्रणाम करते हुए महात्मा गाँधी का शब्द-चित्र अङ्कित कर रहे थे, तब सारी सभा गद्गद् हो उठी थी। मध्यान्ह के बारह बजे तक इसी प्रकार समस्त बन्धु मानों पुरानी स्मृतियों की मंदाकिनी में स्नान करते रहे। सभा के अन्त में सर्व-सम्मति से दो प्रस्ताव पास हुए।

१. पुण्यभूमि में महाविद्यालय-भवन के सामने एक स्मृतिस्तंभ स्थापित किया जाय। उस पर संक्षेप में गुरुकुल का प्रारम्भिक इतिवृत्त, मुख्य कार्यकर्त्ताओं के नाम तथा बड़े दानियों के नाम अङ्कित किये जाँय। उस स्तंभ का रूप और आनुमानिक व्यय निर्धारण कर के विद्यासभा में उपस्थित किया जाय।

२. श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के गुरुकुल सम्बन्धी प्रारम्भिक कार्य की स्मृति तथा पुण्यभूमि की उपयोगिता को स्थिर करने के लिए यह उचित है कि उस भूमि में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि तथा आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब के सम्मिलित अथवा पृथक् तत्त्वाधान में प्रति वर्ष अथवा अधिक वार साधना-शिविर लगाए जाया करें।

सभापति पद से श्री स्वामी अभेदानन्द जी ने भी स्वामी जी के कई संस्मरण सुनाए और उन के चरण-चिन्हों पर चलने की प्रेरणा दी।

सभा समाप्त हो जाने पर ५०० से अधिक आगन्तुकों ने मिल कर प्रेम-पूर्वक सहभोज किया। साँझ तक सभी आगन्तुक पुण्यभूमि के विविध स्थानों तथा वन-वीथियों की यात्रा करते हुए कुल के अतीत गौरव की गाथाएँ कहते और सुनते रहे। कुछ एक भावनाशील कुलबन्धु उस समस्त दृश्य को निहार कर महाकवि भवभूति का वह प्रख्यात श्लोक गुनगुना रहे थे।

पुरा यत्र स्रोतः—
पुलिनमधुना तत्र सरिताम्।

विपर्यासं यातो—
घनविरलभावः क्षितिरुहाम् ।
बहो-कालाद् दृष्टं
अपरमिव मन्ये वनमिदम् ।
निवेशः शैलानां
तदिह नः बुद्धि दृढ़यति ॥

एक बन्धु गद्-गद् हो कर कह रहे थे--

गुरुभिः पाठ्यमानानां
ते हि नो दिवसाः गताः ॥

एक दिन की इस पावन यात्रा को पूर्ण करके सभी यात्री नवीन कुलभूमि में लौट आए। जाते और लौटते हुए प्रायः सभी बन्धु वन के उन चिर-परिचित प्रदेशों और वृक्ष-कुंजों की ओर संकेत करके उन के साथ अपनी चिर-मैत्री का भावपूर्ण वर्णन करते हुए थकते नहीं थे।

द्वितीय दिवस—११ एप्रिल

सायंकाल तीन बजे समस्त कुलवासी शोभायात्रा के रूप में व्यवस्थित हो कर श्रद्धानन्द द्वार से प्रस्थित हुए। आगे-आगे बाजे बज रहे थे। चौराहों पर जुलूस रुक जाता था और कुलपिता के यशोगीत गाए जाते थे। यह जुलूस गुरुकुलपुरी के प्रत्येक मुहल्ले से गुजरता हुआ झंडाचौक में पहुंचा। वहां पर पताका गीत गाया गया और वाद्यनिर्घोषों और जयकारों के साथ आचार्य श्री प्रियव्रत जी ने नई कुलपताका फहराई और कुलपिता श्रद्धानन्द जी महाराज की जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में उनके जीवन की सबसे अधिक महत्त्व की बात गुरुकुल स्थापना को बताते हुए उन के चरण चिन्हों पर चलने की प्रेरणा दी। ध्वज-वन्दना और विविध जयकारों के पश्चात् कार्यक्रम समाप्त हुआ।

श्री देशमुख जी संग्रहालय में मूर्तियों का निरीक्षण कर रहे हैं।

तीसरा दिन—१२ एप्रिल

आज सबेरे से ही उत्सव के पण्डाल के चारों ओर उल्लासपूर्ण वातावरण जम रहा था। उत्सव के यात्रियों की रौनक बढ़ रही थी। सब से पहले ब्रह्मचारियों ने पण्डाल में बृहद् यज्ञ द्वारा कार्य प्रारम्भ किया। पण्डाल के प्रधान प्रवेश द्वार पर प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान आचार्य भगवानदेव जी ने मङ्गल वाद्यों के साथ ओंकार की ध्वजा फहराई। तत्पश्चात् श्री स्वामी अभेदानन्द जी महाराज का प्रवचन "धर्म और सभ्यता" के विषय को ले कर हुआ। आपने बताया कि धर्म हमारे जीवन के आध्यात्मिक पहलू को प्रगति प्रदान करता है। जिसे आजकल संस्कृति कहा जाता है, उस के लिए पुरानी परिभाषा "धर्म" है। "सभ्यता" हमारे जीवन के भौतिक उत्कर्ष को सूचित करती है। हमें जीवन के आध्यात्मिक पहलू का सदा ध्यान रखना चाहिये।

अब आचार्य भगवानदेव जी की अध्यक्षता में "वेद सम्मेलन" प्रारम्भ हुआ। इस सम्मेलन में गुरुकुल के वेद महाविद्यालय के छात्रों ने विविध वैदिक विषयों पर खोजपूर्ण निबन्धों का पाठ किया। निबन्धों के विषय इस प्रकार थे।

१. ब्र० सुरेशकुमार १४ श,—वैदिक विचार-स्वातंत्र्य।
२. ब्र० नृपेन्द्रकुमार १४ श,— वेद में आयुर्वेद।
३. ब्र० प्रशांतकुमार १३ श,—ऋषि दयानन्द और विनियोग-वाद।
४. ब्र० दिलीपसिंह १२ श,—वैदिक राष्ट्र व्यवस्था।
५. ब्र० हेमसिंह ११ श,—वेद में गोपालन।
६. ब्र० विनोदकुमार १० म,—अग्निहोत्र।

इस में ब्रह्मचारी प्रशान्त, ब्र० नृपेन्द्र और ब्र० दिलीप अपने अच्छे खोजपूर्ण निबन्ध के लिए पुरस्कार के भागी हुए।

अपराह्न में भजनों के पश्चात् उत्तर-प्रदेश के प्रसिद्ध लोकसेवक श्री अलगूराय शास्त्री एम. पी. की अध्यक्षता में गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली-सम्मेलन संपन्न हुआ। इस सम्मेलन में श्री द्विजेन्द्रनाथ जी शास्त्री सिद्धान्त शिरोमणि, श्री धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड, श्री वंशीधर जी विद्यालंकार, श्री स्वामी अभेदानन्द जी आदि विद्वानों ने गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली की विशेषता को समझाते हुए आधुनिक शिक्षा-विधि के दूषणों का उल्लेख किया। श्री वंशीधर जी ने बताया कि राजनीतिक दृष्टि से स्वाधीन हो जाने पर भी भारत अपनी मानसिक व शैक्षणिक वृत्ति में गुलाम बना हुआ है। छात्रों के जीवन और चारित्र्य के घड़वैया आज के अधिकांश शिक्षक आत्म-विश्वास से शून्य हैं। शिक्षक का व्यक्तित्व छात्र के चरित्र-निर्माण में विशेष रूप से सहायक होता है। यदि शिक्षक ही आत्मविश्वास से रहित होगा तो छात्र के जीवन कैसे तेजस्वी बन सकेंगे। आज की मानसिक दीनता का कारण यही है कि हमारे गुरुजन ही निष्प्राण और श्रद्धा-विहीन हैं।

सभापति पद से बड़ी ओजस्वी वाणी में बोलते हुए श्री अलगूराय जी ने कहा—ऋषियों की प्रोज्ज्वल प्रतिभा से निकली हुई हमारी शिक्षण-विधि अतिशय गौरव पूर्ण है। इस युग में महर्षि दयानन्द पहले महापुरुष थे जिन्होंने उस के पुनरुज्जीवन की आवाज उठाई और उसे स्वामी श्रद्धानन्द जी ने मूर्त-रूप प्रदान किया। प्रत्येक जाति को अपनी परम्पराओं का अभिमान होना चाहिए। भारत की पुरातन शिक्षा-विधि पर हमें अभिमान होना चाहिए। क्यों कि उसी की बुनियाद पर हमारी संस्कृति खड़ी हो सकी है। सभापति जी के उद्बोधक विचारों को सारी जनता मंत्र-मुग्ध हो कर सुन रही थी।

साँझ को श्री अलगूराय जी ने कृषि विद्यालय और विकास योजना केन्द्र की ओर से आयोजित प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। यह प्रदर्शनी बहुत शिक्षाप्रद रही। ग्रामीण जनता ने इस से बहुत लाभ उठाया है। इस साल के उत्सव में यह प्रदर्शनी बड़े आकर्षण का विषय रही।

रात को भजनों के पश्चात् श्री शिवकुमार जी

शास्त्री का व्याख्यान हुआ और फिर कविरत्न श्री हरिशंकर जी शर्मा के सभापतित्व में कोई बारह बजे तक कवि सम्मेलन होता रहा। अधिकांश कविताएं स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन और कार्य पर पढ़ी गई।

चौथा दिन—१३ अप्रैल

प्रातः बृहद् यज्ञ और भजनों के अनन्तर श्री स्वामी व्रतानन्द जी का धर्मोपदेश हुआ। आप ने श्रेय और प्रेय अर्थात् त्याग और भोग की मीमांसा करते हुए श्रेय मार्ग को प्रशस्त बताया। इस के अनन्तर कोई नौ बजे उत्तर-प्रदेश के मुख्य मंत्री डॉक्टर सम्पूर्णानन्द जी कुलभूमि में पधारे। कुलपति श्री इन्द्र जी तथा कृषि विद्यालय के अध्यक्ष जी ने प्रवेश द्वार पर आप का पुष्प-मालाओं से स्वागत किया। पंडाल पर पहुंचने पर मुख्यमन्त्री जी के सभापतित्व में संस्कृत भाषा में सरस्वती सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। सम्मेलन में गुरुकुल महाविद्यालय विभाग के छात्रों ने "भारत के विश्वविद्यालयों में संस्कृत का अध्ययन आवश्यक करना चाहिए या नहीं" इस विषय पर वादविवाद किया। मुख्य मंत्री जी ने कहा—संस्कृत का महत्व न केवल भारत के लिए है वरन विदेशों के लिए भी है। संस्कृत को समझने वाले भारत के हर कोने में मिलते हैं। द्रविड़ भाषाओं को छोड़ कर सभी भारतीय भाषाएं अपनी शब्दावली के लिए संस्कृत की ऋणी हैं।

मुख्यमंत्री को कुल की ओर से संस्कृत में मानपत्र दिया गया। इस के पश्चात् मुख्य मन्त्री जी ने गुरुकुल महाविद्यालय के नवीन छात्रावास का उद्घाटन किया। यह छात्रावास एक लाख रुपये की लागत से तैयार हुआ है। छात्रावास का नाम राष्ट्रपति जी के नाम पर राजेन्द्रप्रसाद छात्रावास रखा गया है। अपराह्न में भजनों के पश्चात् पानीपत आर्य कालेज के उपाचार्य श्री लक्ष्मीदत्त दीक्षित का राजनीति विषय पर व्याख्यान हुआ। आप ने बताया कि हमारे जीवन में राजनीतिकता बढ़ती जा रही है। इसी लिए हमारे जीवन चरित्र की दृष्टि से खोखले हो रहे हैं।

इस के पश्चात् श्रद्धानन्द जन्म शताब्दी की स्मृति में आर्यविद्वान् श्री गंगा प्रसाद जी (टिहरी राज्य के अवसर प्राप्त न्यायाधीश) के सभापतित्व में श्री श्रद्धानन्द संस्मरण सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। इस सम्मेलन में स्वामी जी महाराज के साथ मिल कर कार्य करने वाले तथा उन की शिष्यता में गुरुकुल में शिक्षा पाये हुए अनेक स्नातक शिष्यों ने स्वामी जी के जीवन के चुने हुए और प्रभावोत्पादक संस्मरण सुनाये। जिन में श्री पं० विष्णुमित्र जी (गुरु जी) डाक्टर सुखदेव जी, श्री विनायकराव जी विद्यालंकार, श्री वंशीधर जी विद्यालंकार, कविराज श्री हरिशंकर जी शर्मा (आगरा) तथा श्री बाबू पूर्णचन्द्र जी (उत्तर प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान) तथा स्वामी श्री अभेदानन्द जी जी के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रत्येक वक्ता का एक-एक संस्मरण श्रोताओं के हृदयों को गद्गद् किये देता था। स्वामी जी महाराज के अनेक सहकर्मी और शिष्य तो उन पुरानी बातों को सुन कर द्रवित हुए जा रहे थे। सभापति जी ने पुराने इतिहास को दुहराते हुए स्वामी की वीरता और निर्भयता के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। सम्मेलन के अन्त में एक प्रस्ताव यह पास हुआ कि गुरुकुल की पुरानी पुण्यभूमि में एक स्मृति स्तम्भ बनाया जाय जिस पर कुल का इतिवृत्त लिखा जाय। पुराने कार्यकर्त्ताओं तथा दानियों के नाम भी उन पर अङ्कित हों।

रात को भजनों के पश्चात् श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार का प्रभावशाली व्याख्यान "भूमिः माता, पुत्रोऽहं पृथिव्या" अथर्ववेद के इस मंत्र के आधार पर हुआ और आप ने विश्व भ्रातृवाद की पैरवी करते हुए विश्व सरकार की योजना के लिए कुछ उपाय सुझाए। तत्पश्चात् उत्तर प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री बाबू पूर्णचन्द्र जी के सभापतित्व में चरित्रसुधार सम्मेलन हुआ। आप ने अपने अध्यक्षीय भाषण में देश में फैले हुए अनाचार, दुराचार, और

भ्रष्टाचार के विरोध में बलशाली आन्दोलन उठाने के लिए प्रेरणा दी। यह भी बतलाया कि इस कार्य में आर्यसमाज को सब से आगे रहना चाहिए। आर्यसमाज इस क्षेत्र में अतीत में बड़ा प्रशंसनीय काम कर चुका है। श्री पं० हरिशंकर शर्मा और पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड आदि विद्वानों ने भी भाषण किये। उस के बाद गुरुकुल विश्वविद्यालय के कार्यों का चित्र-पट दिखाया गया।

५ वां दिन—दीक्षान्त समारोह १४ एप्रिल

प्राभातिक कार्यों के पश्चात कुल के समस्त अन्तेवासी, गुरुजन तथा स्वामिनी सभा के अधिकारी जन वेद महाविद्यालय के विशाल प्रांगण में एकत्र हुए। प्रतिवर्ष की तरह वहां पर कुल का ध्वजगीत गाया गया। वाद्य-निर्घोष के साथ कुलपति श्री इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने कुलपताका फहराई। कुलमाता और कुलपिता श्रद्धानन्द जी के जयघोषों के साथ शोभायात्रा पण्डाल की ओर प्रस्थित हुई। सब से आगे मङ्गलवाद्य बज रहे थे। उस के पश्चात् क्रमपूर्वक, संन्यासी महात्मा गण, स्वामिनी सभा के सदस्य, कुल के गुरु-जन, पुराने स्नातक जन, अपने-अपने नियत वेश में जा रहे थे। उन के पीछे नवस्नातक तथा महाविद्यालय व विद्यालय विभाग के ब्रह्मचारी जा रहे थे। श्रद्धानन्द अतिथि-भवन के प्रवेश द्वार पर पहुंचने पर आज के समारोह के मान्य अतिथि श्री चिन्तामणि देशमुख भी शोभायात्रा में सम्मिलित हो गए। द्वार पर ही स्वामिनी सभा के प्रधान जी, कुलपति जी तथा कुल के विभिन्न विभागों के अध्यक्षों ने आपका पुष्पमालाओं से स्वागत और अभिनन्दन किया।

पण्डाल में पहुंच जाने पर शोभायात्रा के सभी जन अपने निर्दिष्ट स्थानों पर बैठ गए। सब से पहले शंखध्वनि द्वारा समारोह के प्रारम्भ का संकेत किया गया और विश्वविद्यालय के प्रस्तोता श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालङ्कार ने विधिवत् दीक्षान्त संस्कार के प्रारंभ होने की घोषणा की। अब कुलवन्दना गाई गई। तदन्तर श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने यज्ञाग्नि के समक्ष नवस्नातकों को तथा विद्यामार्तण्ड की पूजा-पदवी (संमानित उपाधि) प्राप्त करने वाले विद्वानों को व्रत ग्रहण करवाया। अब तुमुल वाद्यनिर्घोषों के साथ इन सब दीक्षित स्नातकों को गुरुकुल विश्वविद्यालय की नियत पोशाक (चोले) प्रदान की गई। पूजार्थ पदवी के अधिकारी पांच विद्वानों को कत्थई रङ्ग के चोले पहनाये गए जिन पर पीली पट्टियाँ लगी हुई थीं। पाँच नवस्नातकों को आस्मानी रङ्ग के चोले प्रदान किये गए। स्नातकों ने समस्त देवमण्डली के समक्ष शीश झुकाते हुए विद्याप्रचार, सद्वृत्त, मानव-सेवा व प्राणिसेवा के लिए शपथ ग्रहण की। तत्पश्चात् श्री आचार्य जी ने वेद-कालेज और आयुर्वेद कालेज के पांच नवस्नातकों को प्रमाणपत्र प्रदान किए। श्री सुरेशकुमार, श्री रणवीरपुरी तथा श्री ताराचन्द्र को "विद्यालङ्कार" की पदवी दी गई तथा श्री राजबहादुर और श्री सोमदेव को आयुर्वेदालङ्कार की पदवी। गुरुकुल विश्वविद्यालय के अन्तर्गत देहरादून में स्थित कन्या गुरुकुल महाविद्यालय की दस स्नातिकाओं को भी "विद्यालङ्कार" की पदवी प्रदान करने की घोषणा की गई। निम्नलिखित पाँच विशिष्ट विद्वानों को उन की सारस्वत-सेवाओं के निमित्त विश्वविद्यालय की सर्वोच्च पदवी "विद्यामार्तण्ड" दे कर समादृत किया गया।

१. श्री विनायकराव विद्यालङ्कार, बारएट-लॉ। भूतपूर्व हैदराबाद राज्य के वित्त-मंत्री, प्रतिष्ठित समाज-सेवक और साहित्यकार।

२. श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार। इतिहास और पुरातत्त्व के प्रकाण्ड पंडित, अनेक शिक्षा प्रतिष्ठानों में इतिहास-शास्त्र के उपाध्याय, मङ्गलाप्रसाद पारि-तोषक विजेता तथा हिंदी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति, अनेक ग्रन्थों के प्रणेता।

३. श्री वंशीधर विद्यालङ्कार। उच्च कोटि के साहित्यकार और समालोचक, "अजंता" पत्रिका

के सम्पादक, उस्मानिया विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष और उपाध्याय।

४. श्री धर्मेन्द्रनाथ तर्कशिरोमणि, एम. ए., पी-एच. डी., शास्त्री, एम. ओ. एल.। आगरा विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के संयोजक, मेरठ कालेज में संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष और उपाध्याय। दार्शनिक विषयों के उच्च कोटि के विद्वान्। अनेक ग्रन्थों के प्रणेता तथा आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच. डी पदवी प्राप्त।

५. श्री द्विजेन्द्रनाथ जी शास्त्री, सिद्धान्त-शिरोमणि। संस्कृत-साहित्य के उद्भट विद्वान्। वृन्दावन गुरुकुल के भूतपूर्व कुलपति तथा संस्कृत-भाषा में "संस्कृत-साहित्य-विमर्शः" नाम से संस्कृत-साहित्य के विशाल इतिहास-ग्रन्थ के प्रणेता, यजुर्वेद के हिन्दी-भाष्यकार।

अब आचार्य जी ने तैत्तिरीय उपनिषद् के प्रसिद्ध वचनों (सत्यंवद, धर्मंचर आदि) द्वारा स्नातकों को उपदेश दिया। तदनन्तर साहित्योपाध्याय श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार द्वारा सुन्दर संस्कृत श्लोकों में उपनिबद्ध अभिनन्दन-पत्र मान्य अतिथि श्री चिन्तामणि देशमुख की सेवा में अर्पित किया गया। कुलपति श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने मान्य अतिथि के गुणों की चर्चा करते हुए उन से दीक्षान्त प्रवचन करने की प्रार्थना की। मान्य देशमुख जी ने अपने दीक्षांत भाषण का प्रमुख अंश संस्कृत-भाषा में सुनाया और कुछ अंश हिंदी भाषा में। (संस्कृत भाषण अन्यत्र दिया गया है)। श्री ईश्वरदत्त जी विद्यालङ्कार मेधार्थी ने पुराने स्नातकों की ओर नवस्नातकों का स्वागत किया, और नवस्नातकों की ओर से श्री सुरेशकुमार जी ने उसका उत्तर दिया (वह भी अन्यत्र छपा है)। संन्यासीवर्ग की ओर से श्री स्वामी अभेदानन्द जी महाराज ने नवस्नातकों को आशीर्वाद दिया और अन्त में गुरुकुल की स्वामिनी सभा के प्रधान श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने वैदिक-मन्त्रों द्वारा नवस्नातकों को आशीर्वचन कहे। नवस्नातकों ने समस्त जनता और देवमण्डली को प्रणाम किया। यज्ञ की पूर्णाहुति के साथ दीक्षांत विधि समाप्त हुई।

दुपहर बाद भजनों के पश्चात् गुरुकुलाचार्य श्री प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति का प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। आपने आर्यसमाज और गुरुकुल द्वारा की गई देश की सेवाओं का मूल्यांकन करते हुए गुरुकुल संस्था की उपयोगिता और सफलता का दिग्दर्शन कराया, साथ ही आपने गुरुकुल संस्था की सहायता के लिए जनता से अपील की जिसके फलस्वरूप एक लाख साठ हजार रुपये का विविध स्थानों से आया हुआ दान घोषित किया।

रात को भजनों के पश्चात् श्री क्षितीशकुमार जी विद्यालङ्कार का ओजस्वी व्याख्यान हुआ जिस में आपने बतलाया कि जगत् में प्रचलित आधुनिक तालीम का विशेष झुकाव यांत्रिक और व्यावसायिक कौशल सम्पादन की ओर विशेष रूप से है। जीवन के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का विकास और परिष्कार करने वाली शिक्षा की ओर सरकारों और राष्ट्रों का ध्यान बहुत कम है। फलतः समाज के शील और चरित्र का दिवाला निकलता जा रहा है।

उनके बाद आर्यजगत् के विचारशील विद्वान् प्रो. सत्यव्रत जी सिद्धांतालङ्कार ने अपनी प्रभावशाली वाणी में यह बतलाया कि भारत राष्ट्र में आज समाजवादी समाज निर्माण की चहुंओर पुकार मच रही है। परन्तु हमारे समाज की ओर समाज-विधायक नेताओं की सारी प्रवृत्तियां और प्रक्रियाएं व्यक्तिवाद की ओर जा रही हैं। समाज की मूलभित्ती परिवार भी आज व्यक्तिवादी बनते जा रहे हैं। इसलिए आज सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि हमारी शिक्षापद्धति भी समाजवादिनी बनाई जाय। भारत के प्राचीन शिक्षा-शास्त्रियों का दृष्टि-बिन्दु इस दिशा में बहुत प्रशंसनीय रहा है। आज विश्व की अशान्ति का प्रधान कारण यही व्यक्तिवादी मनोवृत्ति है। इसी

कारण आज हमारी समाज-व्यवस्था लड़खड़ा रही है।

छठा दिवस—१५ एप्रिल

प्रातः श्री आचार्य जी ने नवीन प्रविष्ट ब्रह्मचारियों की उपनयन विधि कर के वेदारम्भ संस्कार किया। इस बार ५० नये ब्रह्मचारी प्रविष्ट हुए। आचार्यजी ने नव प्रविष्ट छात्रों को गायत्रीमंत्र की दीक्षा और उपदेश किया।

दोपहर बाद श्री आचार्य भगवानदेव जी ने "मन का वशीकरण" विषय पर भाषण दिया। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने आदर्श और व्यवहार का समन्वय किस प्रकार किया जाता है इस विषय में यह प्रवचन किया। उन के पश्चात् प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार ने अपने अध्ययनपूर्ण व्याख्यान में यह बताया कि किस प्रकार भारत के आधुनिक जागरण को महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज ने प्रभावित किया है। महर्षि दयानन्द का आंदोलन १९वीं शताब्दी का भारत का सब से अधिक शक्तिशाली आंदोलन कहा जा सकता है। उस ने हमारे मानसिक दैन्य को बुरी तरह झकझोरा था।

इन व्याख्यानों के अनन्तर श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में समाज-सुधारसम्मेलन प्रारम्भ हुआ। इस सम्मेलन में अनेक विद्वान् वक्ताओं ने बतलाया कि किस प्रकार उत्तर भारत में ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द जी, लाला देवराज जी तथा आर्यसमाज के अन्य नेताओं ने समाज सुधार के क्षेत्र में बड़े महत्वपूर्ण कार्य किये। उन सुधारों के लिए उन को अपने आत्मीयजनों द्वारा भी बहिष्कार और धिक्कार सहन करने पड़े। असल में इन्हीं महापुरुषों ने सामाजिक मांगल्य और राजनीतिक सफलता की पृष्ठभूमि तैयार की थी। श्रीमती दुर्गाबाई जी ने भी आर्यसमाज के इन कर्मवीरों के प्रति अपनी श्रद्धाँजलि अर्पित करते हुए हिंदीभाषा में कहा कि यदि ये महापुरुष अपने त्याग-तप से सुधारणा की भूमि तैयार न करते तो हमें आज अपने समाजसुधार के काम में भारी कठिनाइयों का मुकाबला करना पड़ता। हमारी सिद्धियों का संपूर्ण श्रेय इन त्यागी पथान्वेषियों और अग्रगन्ताओं को है।

रात को श्री मिहिरचन्द्र जी धीमान के सभापतित्व में देर तक व्यायाम सम्मेलन होता रहा। जिस में गुरुकुल के बड़े-छोटे सभी छात्रों ने सामूहिक व्यायाम कला और अङ्गबल के अद्भुत प्रयोग प्रदर्शित किए। इस प्रकार छः दिन के अनक उद्बोधक और लाभकारी कार्यों के पश्चात् महोत्सव और श्रद्धानन्द जन्म-शताब्दी महोत्सव का कार्य बड़ी सफलता के साथ समाप्त हुआ।

भूल सुधार

चैत्र २०१३ के श्रद्धानन्द विशेषाङ्क में २५६ पृष्ठ पर दूसरे कौलम की १७ वीं पंक्ति में ७० के स्थान पर १० पढ़ने की कृपा करें।

श्री ठाकुर अर्जुनसिंह जी का गुरुकुल संग्रहालय को प्रशंसनीय दान

गत वार्षिकोत्सव के अवसर पर सहारनपुर जिला बोर्ड के अध्यक्ष श्री ठाकुर अर्जुनसिंह जी ने गुरुकुल संग्रहालय को १०५ मुगलकालीन सिक्कों का प्रशंसनीय दान दिया है। इन में अकबर, जहांगीर, शाहजहां आदि मुगल बादशाहों की मुद्रायें हैं। इन से संग्रहालय के मुगलकालीन सिक्कों में अभिनन्दनीय वृद्धि हुई है। इस सराहनीय दान के लिये संग्रहालय ठाकुर साहब का आभारी है और यह आशा रखता है कि वे भविष्य में भी संग्रहालय पर इसी प्रकार का कृपाभाव बनाये रखेंगे और प्राचीन वस्तुओं को रखने वाले अन्य सज्जन भी उन के इस अनुकरणीय उदाहरण से प्रेरणा ग्रहण कर संग्रहालय को पुरानी मुद्राओं, चित्रों, हस्तलिखित ग्रन्थ आदि का दान करेंगे।

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

पुस्तक	लेखक	मूल्य
ईशोपनिषद्भाष्य	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२)००
मेरा धर्म	श्री प्रियव्रत	४)००
वेद का राष्ट्रिय गीत	श्री प्रियव्रत	१)०
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	श्री प्रियव्रत	४)००
वरुण की नौका, २ भाग	श्री प्रियव्रत	६)००
वैदिक विनय, ३ भाग	श्री अभय	२), २), २)
वैदिक वीर-गर्जना	श्री रामनाथ	)=७
वैदिक-सूक्तियां	,,	१)७५
आत्म-समर्पण	श्री भगवद्दत्त	१)५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान	,,	२)००
वैदिक अध्यात्म-विद्या	,,	१)२५
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत	श्री अभय	२)००
ब्राह्मण की गौ	श्री अभय	)७५
वेदगीताञ्जलि (वैदिक गीतियां)	श्री वेदव्रत	२)००
सोम-सरोवर, सजिल्द,	श्री चमूपति	२)००
वैदिक-कर्त्तव्य-शास्त्र	श्री धर्मदेव	१)२५
अग्निहोत्र	श्री देवराज	२)२५

संस्कृत ग्रन्थ

पुस्तक		मूल्य
संस्कृत-प्रवेशिका, १, २ भाग		)७५,)८७
साहित्य-सुधा-संग्रह, ३ बिन्दु	प्रत्येक	१)२५
पाणिनीयाष्टकम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध		७)००, ६)००
पञ्चतन्त्र (सटीक) पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध		२)००, २)५०
सरल-शब्दरूपावली		)६२

ऐतिहासिक तथा जीवनी

पुस्तक	लेखक	मूल्य
भारतवर्ष का इतिहास ३ भाग	श्री रामदेव	६)००
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द		७)००
ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, २ भाग		)७५
अपने देश की कथा	श्री सत्यकेतु	१)३७
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव		)५०
योगेश्वर कृष्ण	श्री चमूपति	४)००
मेरे पिता	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	४)००
सम्राट् रघु	,,	१)२५
जीवन की झांकियां ३ भाग	,,	)५०,)५०, १)००
जवाहरलाल नेहरू	,,	१)२५
ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र	,,	२)००
दिल्ली के वे स्मरणीय २० दिन	,,	)५०

धार्मिक तथा दार्शनिक

पुस्तक	लेखक	मूल्य
सन्ध्या-सुमन	श्री नित्यानन्द	१)५०
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश, तीन भाग		३)५०
आत्म-मीमांसा	श्री नन्दलाल	२)००
वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा	श्री विश्वनाथ	१)००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१)२५
सन्ध्या-रहस्य	श्री विश्वनाथ	२)००
जीवन-संग्राम	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	१)००

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
आहार (भोजन की जानकारी)	श्री रामरक्ष	४)००
आसव-अरिष्ट	श्री सत्यदेव	२)५०
लहसुन:प्याज़	श्री रामेश बेदी	२)५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी)	,,	३)००
तुलसी, दूसरा परिवर्द्धित संस्करण	,,	२)००
सोंठ, तीसरा ,,	,,	१)००
देहाती इलाज, तीसरा संस्करण	,,	१)००
मिर्च (काली, सफेद और लाल)	,,	१)००
सांपों की दुनियां, (सचित्र) सजिल्द	,,	४)००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण	,,	३)२५
नीम:बकायन (अनेक रोगों में उपयोग)	,,	१)२५
पेठा : कद्दू (गुण व विस्तृत उपयोग)	,,	)५०
देहात की दवाएं, सचित्र)७५	बरगद	)७५
स्तूप निर्माण कला	श्री नारायण राव	३)००
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग		१)२५
जल चिकित्सा	श्री देवराज	१)७५

विविध पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
विज्ञान प्रवेशिका, २ भाग	श्री यज्ञदत्त	१)००
गुणात्मक विश्लेषण (बी.एस.सी. के लिए)		१)००
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार)		)७५
आर्यभाषा पाठावली	श्री भवानी प्रसाद	१)५०
आत्म बलिदान	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२)००
स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा	,,	१)५०
जमींदार	,,	२)००
सरला की भाभी, १, २ भाग	,,	२)००, ३)५०

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

मुद्रक : श्री रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक : श्री धर्मपाल विद्यालंकार, स० मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।